Chapter पैंतालीस

कृष्ण द्वारा अपने गुरु–पुत्र की रक्षा

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि कृष्ण ने किस तरह देवकी, वसुदेव तथा नन्द महाराज को सान्त्वना दी और फिर उग्रसेन को राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसमें यह भी वर्णन हुआ है कि कृष्ण तथा बलराम किस तरह अपनी शिक्षा पूरी करके अपने गुरु के मृत पुत्र को वापस लाये और फिर घर लौटे।

यह देखकर कि उनके माता–पिता—देवकी तथा वसुदेव—उन्हें ईश्वर के वास्तविक रूप में समझ चुके हैं, श्रीकृष्ण ने पुनः अपनी योगमाया का विस्तार किया जिससे वे उन्हें अपने प्रिय पुत्र के रूप में मान सकें। तब बलराम के साथ कृष्ण उन दोनों के पास पहुँचे और कहा कि हमें यही दुख है कि साथ रहकर भी, हमारे माता–पिता और हम पारस्परिक सन्तोष नहीं पा सके। फिर उन्होंने कहा, ''कोई भी पुत्र एक सौ वर्ष की जीवन अवधि में भी अपने उन माता–पिता के ऋण से उऋण नहीं हो सकता जिनसे उसे शरीर प्राप्त होता है। कोई भी सक्षम पुत्र, जो अपने माता–पिता की सेवा–सुश्रूषा नहीं कर पाता उसे अगले जीवन में अपना ही मांस खाना पड़ता है। निस्सन्देह जो व्यक्ति अपने संरक्षण में रहने वाली सन्तान, पत्नी, आध्यात्मिक गुरु, ब्राह्मण, माता–पिता इत्यादि की सेवा–सुश्रूषा नहीं कर पाता वह जीवित शव के समान है। हम तो कंस के भय से आपकी सेवा नहीं कर पा रहे थे अतः आप हमें क्षमा कर दें।'' श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर भावविभोर वसुदेव तथा देवकी ने अपने दोनों पुत्रों को गले से लगा लिया और आनन्द के आँसुओं की झड़ी लगा दी।

इस प्रकार अपने माता–पिता को प्रसन्न करके कृष्ण ने कंस का राज्य अपने नाना उग्रसेन को दे दिया और तब अपने उन पारिवारिक सदस्यों के अपने अपने घरों को लौटने की व्यवस्था की जो कंस के भय से भाग गये थे। कृष्ण तथा बलराम के बलशाली बाहुओं के संरक्षण में सारे यादव परमआनन्द का अनुभव करने लगे।

इसके बाद कृष्ण तथा बलराम नन्द महाराज के पास गये और उनकी इस बात के लिए प्रशंसा की कि उन्होंने पराये पुत्रों का इतने लाड़–प्यार से पालन किया। तत्पश्चात् कृष्ण ने नन्द से कहा, ''हे

पिताश्री! आप व्रज लौट जायें। हम जानते हैं कि हमसे बिछुड़ने से आपको तथा हमारे अन्य सम्बन्धियों को कितना कष्ट होगा, यहाँ मथुरा में आपके मित्रों को संतुष्ट करने के तुरन्त बाद मैं बलराम सहित आपके पास लौट आऊँगा।'' फिर कृष्ण ने नाना प्रकार की भेंटें अर्पित करते हुए नन्द की पूजा की। अपने पुत्रों के प्रेम के वशीभूत हो नन्द भावविभोर हो उठे। आँखों में अश्रु भरकर उन्होंने कृष्ण तथा बलराम को गले से लगाया और सारे ग्वालों को साथ लेकर व्रज के लिए प्रस्थान किया।

इसके बाद वसुदेव ने पुरोहितों से कहा कि वे उनके पुत्रों का द्विज-संस्कार सम्पन्न करें। तब कृष्ण तथा बलराम ब्रह्मचर्य-व्रत प्राप्त करने गर्ग मुनि के पास गये। सर्वज्ञ होते हुए भी कृष्ण तथा बलराम ने अपने गुरु के आश्रम में रहने की इच्छा व्यक्त की, अत: वे अवन्तिपुर में सान्दीपनि मुनि के साथ रहने चले गये।

गुरु की सेवा किस तरह करनी चाहिए इसकी सही विधि की शिक्षा देने के लिए कृष्ण तथा बलराम ने अपने गुरु की सेवा उसी तरह की, जिस तरह भगवान् के अर्चाविग्रह की की जाती है। सान्दीपनि मुनि ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन्हें समस्त वेदों के साथ साथ छहों वेदांगों और उपनिषदों का विस्तृत ज्ञान प्रदान किया। कृष्ण तथा बलराम एक बार सुनकर ही इनको आत्मसात कर लेते और इस तरह उन्होंने ६४ दिनों में चौंसठों परंपरागत कलाएँ सीख लीं।

विदा लेने के पूर्व दोनों भाइयों ने अपने गुरु सान्दीपनि से इच्छित दक्षिणा लेने के लिए कहा। बुद्धिमान गुरु ने दोनों के अद्भुत पराक्रम को देखते हुए उनसे अनुरोध किया कि वे उनका पुत्र वापस ला दें, जिसकी मृत्यु प्रभास सागर में हो चुकी थी।

कृष्ण तथा बलराम एक रथ पर सवार होकर प्रभास गये और वहाँ वे सागर के अधिदेव के पास पहुँचे और उनकी पूजा की। कृष्ण ने सागर से कहा कि वह उनके गुरु-पुत्र को लौटा दे। तब सागरराज ने उत्तर दिया कि समुद्र के भीतर निवास करने वाले पञ्चजन नामक राक्षस ने उस लड़के का हरण किया है। यह सुनकर कृष्ण समुद्र में प्रविष्ट हुए, फिर उस राक्षस का वध किया और वह शंख ले लिया जो उसके शरीर में से निकला था। किन्तु जब कृष्ण को उस राक्षस के उदर में गुरु-पुत्र नहीं मिला तो वे यमराज लोक पहुँचे। जब यमराज ने कृष्ण को पाञ्चजन्य बजाते सुना तो वह बाहर निकल आया और उसने भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। तब कृष्ण ने उससे सान्दीपनि के पुत्र को माँगा जिसे यमराज ने

उन्हें तुरन्त दे दिया।

तत्पश्चात् कृष्ण तथा बलराम अपने गुरु के पास आये और उन्हें उनका पुत्र लाकर भेंट किया तथा उनसे दूसरी दक्षिणा भी माँगने की विनती की। किन्तु सान्दीपनि मुनि ने कहा कि उन जैसे शिष्यों को पाकर उनकी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो चुकी हैं। इस प्रकार उन्होंने दोनों को घर लौट जाने का आदेश दिया।

कृष्ण तथा बलराम ने रथ पर चढ़कर अपने घर तक की यात्रा की। उनके आगमन पर, उन्हें देखकर, सारे लोगों को अपार हर्ष हुआ, मानो उनका खोया हुआ कोष प्राप्त हुआ हो।

श्रीशुक उवाच
पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ।
मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पितरौ—माता-पिता ने; उपलब्ध—अनुभव करने के बाद; अर्थौ—भाव (ईश्वर के रूप में उनका वैभवशाली पद); विदित्वा—जानकर; पुरुष-उत्तमः—परम पुरुष ने; मा भूत् इति—''ऐसा नहीं होना चाहिए''; निजाम्—अपनी; मायाम्—माया को; ततान—विस्तार दिया; जन—भक्तगण को; मोहिनीम्—मोहने वाली।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह जानकर कि उनके माता-पिता उनके दिव्य ऐश्वर्य से अवगत हो चुके हैं, भगवान् ने यह सोचा कि ऐसा नहीं होने दिया जाना चाहिए। अतः उन्होंने अपने भक्तों को मोहने वाली अपनी योगमाया का विस्तार किया।

तात्पर्य : यदि वसुदेव तथा देवकी कृष्ण को सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में देख लेते तो पुत्र के रूप में कृष्ण के प्रति उनका प्रबल प्रेम नष्ट हो जाता। कृष्ण ऐसा नहीं चाहते थे। वे तो उनके साथ वात्सल्य रस का आनन्द लेना चाह रहे थे। जैसाकि श्रील प्रभुपाद प्रायः इंगित किया करते थे, यद्यपि हम सामान्यतः ईश्वर को परम पिता के रूप में सोचते हैं किन्तु कृष्णभावनामृत में हम भगवान् की लीलाओं में प्रवेश करके उनके माता-पिता का अभिनय करके उनके प्रति अपने प्रेम को प्रगाढ़ बना सकते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर संकेत करते हैं कि *जन* शब्द का ''भक्तों'' के रूप में किया जा सकता है जैसाकि *भागवत* के श्लोक (.२९.१) *दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः* में आया है। उनके अनुसार *जन* का ''माता-पिता'' के रूप में भी किया जा सकता है क्योंकि *जन* शब्द *जन्* धातु से

बना है, जिसका अर्थ है ''जन्म देना।'' इस अर्थ में (जैसाकि *जननी* या *जनकौ* में है) *जन-मोहिनी* से सूचित होता है कि भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति का विस्तार करना चाह रहे थे, जिससे वसुदेव तथा देवकी पुन: उन्हें अपने प्रिय पुत्र की भाँति प्यार कर सकें।

उवाच पितरावेत्य साग्रज: सात्वनर्षभ: ।
प्रश्रयावनत: प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥ २॥

शब्दार्थ

उवाच—कहा; पितरौ—अपने माता-पिता के; एत्य—निकट जाकर; स—सहित; अग्र-ज:—बड़े भाई, बलराम; सात्वत—सात्वत वंश का; ऋषभ:—महानतम वीर; प्रश्रय—विनीत भाव से; अवनत:—झुककर; प्रीणन्—प्रसन्न करते हुए; अम्ब तात इति—''हे माता, हे पिता''; स-आदरम्—सम्मानपूर्वक।

सात्वतों में महानतम भगवान् कृष्ण अपने बड़े भाई सहित अपने माता-पिता के पास पहुँचे। वे उन्हें विनयपूर्वक शीश झुकाकर और आदरपूर्वक ''हे माते'' तथा ''हे पिताश्री'' संबोधित करके प्रसन्न करते हुए इस प्रकार बोले।

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि ।
बाल्यपौगण्डकैशोरा: पुत्राभ्यामभवन्क्वचित् ॥ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अस्मत्त:—हमारे कारण; युवयो:—आप दोनों के लिए; तात—हे पिता; नित्य—सदैव; उत्कण्ठितयो:—चिन्तित; अपि—निस्सन्देह; बाल्य—बालकाल का (आनन्द); पौगण्ड—बालपना; कैशोर:—तथा किशोरावस्था; पुत्राभ्याम्—आपके दोनों पुत्रों के कारण; अभवन्—हुआ था; क्वचित्—कुछ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : हे पिताश्री, हम दो पुत्रों के कारण आप तथा माता देवकी सदैव चिन्ताग्रस्त रहते रहे और कभी भी हमारे बाल्यकाल, पौगण्ड तथा किशोर अवस्थाओं का आनन्द भोग नहीं पाये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है : यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि अभी भगवान् कृष्ण ने किशोर अवस्था (-१५ वर्ष) पार नहीं की है क्योंकि मथुरा की स्त्रियों ने कहा है—*क्व चाति सुकुमारांगौ किशोरौ नाप्तयौवनौ*—कृष्ण तथा बलराम के अंग-प्रत्यंग अतीव सुकुमार हैं, क्योंकि वे अभी किशोर अवस्था में हैं, युवावस्था तक नहीं पहुँच पाये (*भागवत* .४४.८)। वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं क ी परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि।

कैशोरम् आपञ्चदशाद् यौवनं तु ततः परम्॥

'*कौमार* अवस्था पाँच वर्ष तक, *पौगण्ड* अवस्था वर्ष तक और *कैशोर* अवस्था १५ वर्ष तक रहती है। इसके बाद यौवन आता है।' इस परिभाषा के अनुसार कैशोर अवस्था की समाप्ति पन्द्रह वर्ष की आयु में होती है। जब कृष्ण ने कंस का वध किया था, तो उनकी आयु ग्यारह वर्ष की ही थी जैसाकि उद्धव के शब्दों से पता चलता है—*एकादशसमास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत्*—ढकी ज्वाला की तरह कृष्ण बलराम के साथ ग्यारह वर्षों तक अज्ञात रहते रहे (*भागवत* .२.२६)। चूँकि कृष्ण तथा बलराम ने व्रज-भूमि में ब्राह्म-दीक्षा नहीं ली थी अतः इसी समय (मथुरा जाते समय) उनकी कैशोरावस्था प्रारम्भ हुई, न कि समाप्त हुई।

प्रस्तुत श्लोक में कृष्ण के इस कथन के प्रति आक्षेप कि "उनके माता-पिता उनकी कैशोरावस्था का आनन्द नहीं उठा पाये" सामान्य आयु-गणना पर आधारित है। फिर भी हमें निम्नलिखित कथन (*भागवत* .८.२६ से) पर विचार करना चाहिए—

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोव्रजे।

अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा॥

"हे राजा परीक्षित! राम तथा कृष्ण अल्पकाल में ही गोकुल में बिना रेंगे ही पाँवों पर अपने बल पर आसानी से चलने-फिरने लगे।" कभी कभी हम देखते हैं कि राजा का पुत्र पौगण्ड अवस्था में ही असामान्य शारीरिक वृद्धि प्राप्त करके कैशोरावस्था के अनुकूल कार्य करने लगता है। तो फिर कृष्ण के विषय में क्या कहा जा सकता है जिनकी असाधारण शारीरिक वृद्धि *वैष्णवतोषणी, भक्तिरसामृतसिन्धु, आनन्दवृन्दावनचम्पू* तथा अन्य कृतियों द्वारा सिद्ध है?

महावन में भगवान् कृष्ण वर्ष ४ मास रहे जो सामान्य बालक के पाँच वर्षों के तुल्य थे। इस तरह उन्होंने अपनी कुमारावस्था पूर्ण की। तब से लेकर ६ वर्ष ८ मास की आयु तक, जब वे वृन्दावन में रहे उनकी पौगण्डावस्था है। ६ वर्ष ८ मास की आयु से लेकर दसवें वर्ष तक, जिसमें वे नंदीश्वर (नन्द-ग्राम) में रहे उनकी कैशोर अवस्था है। तत्पश्चात् वर्ष ७ मास की अवस्था में चैत्र मास के कृष्ण-पक्ष की एकादशी को वे मथुरा गये और उस के बाद चतुर्दशी को कंस का वध किया। इस तरह उन्होंने दस वर्ष की आयु में ही अपनी कैशोरावस्था पूरी कर ली और तब से वे उसी अवस्था में बने

हुए हैं। दूसरे शब्दों में, इससे हमें यह समझना चाहिए कि इसके बाद से भगवान् सदैव किशोर हैं।'' श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की गुत्थियों को इस प्रकार ही सुलझाया है।

न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके ।
यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; लब्धः—प्राप्त; दैव—भाग्य द्वारा; हतयोः—वंचित; वासः—आवास; नौ—हम दोनों के द्वारा; भवत्-अन्तिके—आपकी उपस्थिति में; याम्—जो; बालाः—बालक; पितृ—अपने माता-पिता के; गेह—घरमें; स्थः—रहकर; विन्दन्ते—अनुभव करते हैं; लालिताः—पाले गये, लाड़-प्यार किये गये; मुदम्—सुख।

भाग्य द्वारा वंचित हम दोनों न तो आपके साथ रह पाये, न ही अधिकांश बालकों को उनके माता-पिता के घर में मिलने वाले लाड़-प्यार के सुख को हम भोग सके।

तात्पर्य : यहाँ भगवान् कृष्ण यह बतलाते हैं कि उन दोनों के वियोग से न केवल उनके माता-पिता को कष्ट हुआ बल्कि उन दोनों बालकों को भी अपने माता-पिता से विलग होने के कारण कष्ट भोगना पड़ा।

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः ।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५॥

शब्दार्थ

सर्व—समस्त; अर्थ—जीवनलक्ष्य का; सम्भवः—स्रोत; देहः—शरीर; जनितः—उत्पन्न; पोषितः—पालित; यतः—जिससे; न—नहीं; तयोः—उन दोनों को; याति—मिलता है; निर्वेशम्—उऋण होना; पित्रोः—माता-पिता के प्रति; मर्त्यः—मरणशील; शत—एक सौ (वर्ष); आयुषा—आयु से।

मनुष्य अपने शरीर से जीवन के सारे लक्ष्य प्राप्त कर सकता है और उसके माता-पिता ही हैं जो इस शरीर को जन्म देते और उसका पोषण करते हैं। अतः कोई भी मर्त्यप्राणी, एक सौ वर्ष के पूरे जीवन-काल तक उनकी सेवा करके भी, मातृ-पितृ ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

तात्पर्य : ''आप दोनों तथा हम दोनों ने एक-दूसरे से वियोग के कारण कष्ट भोगा'' कहने के बाद अब कृष्ण यह कहते हैं कि अपने माता-पिता को तुष्ट करने में असफल होने से उनका तथा बलराम का धर्म दूषित हुआ है।

यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ।
वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥ ६॥

शब्दार्थ

यः—जो; तयोः—उन दोनों का; आत्म-जः—पुत्र; कल्पः—समर्थ; आत्मना—अपने शारीरिक साधनों से; च—तथा; धनेन—सम्पत्ति से; च—भी; वृत्तिम्—जीविका; न दद्यात्—नहीं देती; तम्—उसको; प्रेत्य—मरने के बाद; स्व—अपना; मांसम्—मांस; खादयन्ति—खिलवाते हैं; हि—निस्सन्देह।

जो पुत्र समर्थ होते हुए भी अपने माता-पिता को अपने शारीरिक साधन तथा सम्पत्ति दिलाने में विफल रहता है, उसे मृत्यु के बाद अपना ही मांस खाने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतम्शिशुम् ।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन्मृतः ॥७॥

शब्दार्थ

मातरम्—माता को; पितरम्—तथा पिता को; वृद्धम्—बूढ़े; भार्याम्—पत्नी को; साध्वीम्—सती-साध्वी; सुतम्—बेटे को; शिशुम्—अल्पायु वाले; गुरुम्—गुरु को; विप्रम्—ब्राह्मण को; प्रपन्नम्—शरण में आये हुए को; च—तथा; कल्पः—समर्थ; अबिभ्रत्—पालन न करके; श्वसन्—श्वास लेता हुआ; मृतः—मरा हुआ।

जो व्यक्ति समर्थ होकर भी अपने बूढ़े माता-पिता, साध्वी-पत्नी, छोटे पुत्र या गुरु का भरण-पोषण करने से चूकता है या किसी ब्राह्मण या शरण में आये हुए की उपेक्षा करता है, वह जीवित होते हुए भी मरा हुआ माना जाता है।

तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ।
मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ॥८॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; नौ—हम दोनों का; अकल्पयोः—असमर्थ; कंसात्—कंस के कारण; नित्यम्—सदैव; उद्विग्न—चिन्तित; चेतसोः—मनों वाले; मोघम्—व्यर्थ ही; एते—ये; व्यतिक्रान्ताः—बिताया; दिवसाः—दिन; वाम्—आपको; अनर्चतोः—सम्मान न देकर।

इस तरह हमने इतने सारे दिन आपका समुचित सम्मान करने में असमर्थ होने के कारण व्यर्थ में ही गँवा दिये, क्योंकि हमारे मन सदैव कंस के भय से विचलित थे।

तात्पर्य : कृष्ण अपने पिता वसुदेव तथा माता देवकी को अपने तथा अपने भाई बलराम के प्रति सामान्य वात्सल्य-प्रेम में लौटा लाने का प्रयास करते हैं। एक सामान्य बालक कंस जैसे क्रूर एवं अत्याचारी राजा से भयभीत रहेगा और कृष्ण यहाँ पर ऐसे ही बालक की भूमिका अदा करते हैं। इस तरह वे वसुदेव तथा देवकी की वत्सलता तथा करुणा को जगाते हैं।

तत्क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः ।

अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसे; क्षन्तुम्—क्षमा करें; अर्हथ:—आप चाहें तो; तात—हे पिता; मात:—हे माता; नौ—हम दोनों को; पर-तन्त्रयो:—अन्यों के अधीन; अकुर्वतो:—न करते हुए; वाम्—आपकी; शुश्रूषाम्—सेवा; क्लिष्टयो:—कष्ट पहुँचाया गया; दुर्हृदा—कठोर हृदय (कंस) द्वारा; भृशम्—अत्यधिक।

हे पिता तथा माता, आप हम दोनों को आपकी सेवा न कर पाने के लिए क्षमा कर दें। हम स्वतंत्र नहीं थे और क्रूर कंस द्वारा अत्यधिक त्रस्त कर दिये गये थे।

तात्पर्य : संस्कृत व्याकरण के अनुसार *परतन्त्रयो:* तथा *क्लिष्टयो:* शब्द वसुदेव तथा देवकी के लिए भी आ सकते हैं। वास्तव में वसुदेव तथा देवकी भाग्य के अधीन थे और कंस के कार्यों से उद्विग्न रहते थे, जबकि कृष्ण सदैव परमेश्वर हैं।

श्रीशुक उवाच
इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ।
मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; माया—अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा; मनुष्यस्य—मनुष्य के रूप में प्रकट होने वाले; हरे:—भगवान् हरि का; विश्व—ब्रह्माण्ड का; आत्मन:—आत्मा; गिरा—शब्दों से; मोहितौ—मोहग्रस्त; अङ्कम्—गोद में; आरोप्य—उठाकर; परिष्वज्य—आलिंगन करके; आपतु:—अनुभव किया; मुदम्—हर्ष।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार ब्रह्माण्ड के परमात्मा एवं अपनी अन्तरंगा भ्रामक शक्ति से मनुष्य-रूप में प्रकट होने वाले भगवान् हरि के वचनों से मोहित होकर उनके माता-पिता ने हर्षपूर्वक उन्हें अपनी गोद में उठाकर उनका आलिंगन किया।

सिञ्चन्तावश्रुधाराभि: स्नेहपाशेन चावृतौ ।
न किञ्चिदूचतू राजन्बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सिञ्चन्तौ—सिक्त करते हुए; अश्रु—आँसुओं की; धाराभि:—धाराओं से; स्नेह—प्रेममयी; पाशेन—रस्सी से; च—तथा; आवृतौ—घिरे; न—नहीं; किञ्चित्—कुछ भी; ऊचतु:—वे बोले; राजन्—हे राजा (परीक्षित); बाष्प—आँसुओं (से पूर्ण); कण्ठौ—गले; विमोहितौ—अवरुद्ध।

भगवान् के ऊपर अश्रुओं की धारा ढुलकाते हुए, स्नेह की रस्सी से बँधे उनके माता-पिता बोल न पाये। हे राजन्, वे भावविभोर थे और उनके गले अश्रुओं से अवरुद्ध हो चले थे।

एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुत: ।

मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; आश्वास्य—आश्वासन देकर; पितरौ—माता-पिता को; भगवान्—भगवान् ने; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र; मातामहम्—अपने नाना को; तु—तथा; उग्रसेनम्—उग्रसेन को; यदूनाम्—यदुओं का; अकरोत्—बना दिया; नृपम्—राजा।

अपने माता-पिता को इस तरह सान्त्वना देकर तथा देवकी-पुत्र के रूप में प्रकट हुए, भगवान् ने अपने नाना उग्रसेन को यदुओं का राजा बना दिया।

आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ।
ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥ १ ॥

शब्दार्थ

आह—उसने (कृष्ण ने) कहा; च—तथा; अस्मान्—हमको; महा-राज—हे महान् राजा; प्रजाः—आपकी प्रजा; च—भी; आज्ञप्तुम् अर्हसि—आदेश दें; ययाति—प्राचीन राजा ययाति द्वारा; शापात्—शाप से; यदुभिः—यदुओं के; न आसितव्यम्—नहीं बैठना चाहिए; नृप—शाही; आसने—सिंहासन पर।

भगवान् ने उनसे कहा : हे महाराज, हम आपकी प्रजा हैं, अतः आप हमें आदेश दें। दरअसल, ययाति के शाप के कारण कोई भी यदुवंशी राज-सिंहासन पर नहीं बैठ सकता।

तात्पर्य : उग्रसेन ने भगवान् से कहा होगा, ''हे प्रभु! सिंहासन पर तो आपको बैठना चाहिए।'' ऐसे कथन का अनुमान करते हुए ही भगवान् कृष्ण ने उग्रसेन से कहा होगा कि ययाति के पहले के शाप के कारण वैधानिक रूप से कोई यदुवंशी राजकुमार राज-सिंहासन पर नहीं बैठ सकता, अत: कृष्ण तथा बलराम उसके अयोग्य थे। वस्तुत:, उग्रसेन को भी यदुवंश का ही अंग माना जा सकता था किन्तु भगवान् के आदेश से वे राज-सिंहासन पर आसीन हो सकते थे। निष्कर्ष यह है कि मनुष्य की भूमिका अदा करते हुए भगवान् इन लीलाओं में लगे हुए थे।

मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ।
बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १४॥

शब्दार्थ

मयि—मुझमें; भृत्ये—सेवक रूप; उपासीने—सेवा में उपस्थित; भवतः—आपकी; विबुध—देवता; आदयः—इत्यादि; बलिम्—प्रशस्ति, भेंट; हरन्ति—लायेंगे; अवनताः—विनीत भाव से झुके हुए; किम् उत—तो फिर क्या कहा जाय; अन्ये—दूसरे; नर—मनुष्य का; अधिपाः—शासक।

चूँकि मैं आपके निजी सेवक के रूप में आपके पार्षदों के बीच उपस्थित हूँ अतः सारे देवता तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति आपको अभिवादन करने के लिए सिर झुकाते हुए आयेंगे। तो फिर मनुष्यों के शासकों के लिए क्या कहा जाय?

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण उग्रसेन को पुनः आश्वस्त करते हैं कि वे निर्भय होकर सिंहासन ग्रहण करें।

सर्वान्स्वाञ्ज्ञतिसम्बन्धान्दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ।
यदुवृष्ण्यन्धकमधु दाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥
सभाजितान्समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ।
न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः सन्तर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सर्वान्—समस्त; स्वान्—अपने; ज्ञाति—परिवार के लोग; सम्बन्धान्—तथा अन्य सम्बन्धी; दिग्भ्यः—सभी दिशाओं से; कंस-भय—कंस के डर से; आकुलान्—विचलित; यदु-वृष्णि-अन्धक-मधु-दाशार्ह कुकुर-आदिकान्—यदुओं, वृष्णियों, अन्धकों, मधुओं, दाशार्हों, कुकुरों तथा अन्य को; सभाजितान्—समादरित; समाश्वास्य—आश्वासन देकर; विदेश—विदेशी क्षेत्रों में; आवास—रहते हुए; कर्शितान्—थकाये गये; न्यवासयत्—बसा दिया; स्व—अपने; गेहेषु—घरों में; वित्तैः—बहुमूल्य भेंटों सहित; सन्तर्प्य—सत्कार करके; विश्व—ब्रह्माण्ड का; कृत्—निर्माता।

तत्पश्चात् भगवान् अपने सारे नजदिकी परिवार वालों को तथा अन्य सम्बन्धियों को उन विविध स्थानों से वापस लाये जहाँ वे कंस के भय से भाग कर गये थे। उन्होंने यदुओं, वृष्णियों, अन्धकों, मधुओं, दाशार्हों, कुकुरों इत्यादि जाति-पक्ष वालों को सम्मानपूर्वक बुलवाया और उन्हें सान्त्वना भी दी क्योंकि वे विदेशी स्थानों में रहते-रहते थक चुके थे। तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड के स्त्रष्टा भगवान् कृष्ण ने उन्हें उनके अपने घरों में फिर से बसाया और बहुमूल्य भेंटों से उनका सत्कार किया।

कृष्णसङ्कर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ।
गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥
वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् ।
नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-सङ्कर्षण—कृष्ण तथा बलराम के; भुजैः—बाहुओं से; गुप्ताः—सुरक्षित; लब्ध—प्राप्त करके; मनः-रथाः—अपनी इच्छाएँ; गृहेषु—अपने घरों में; रेमिरे—भोग किया; सिद्धाः—पूर्णकाम; कृष्ण-राम—कृष्ण तथा बलराम के कारण; गत—दूर हो गया; ज्वराः—ज्वर (भौतिक जीवन का); वीक्षन्तः—देखने से; अहः अहः—दिन-प्रतिदिन; प्रीताः—प्रिय; मुकुन्द—कृष्ण का; वदन—मुख; अम्बुजम्—कमल सदृश; नित्यम्—सदैव; प्रमुदितम्—प्रफुल्लित; श्रीमत्—सुन्दर; स-दय—दयालु; स्मित—मन्द हास युक्त; वीक्षणम्—चितवनों से।

इन वंशों के लोगों ने भगवान् कृष्ण तथा संकर्षण की बाहुओं का संरक्षण पाकर यह अनुभव किया कि उनकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गईं। इस तरह वे अपने परिवारों के साथ अपने

घरों में रहते हुए पूर्ण सुख का भोग करने लगे। कृष्ण तथा बलराम की उपस्थिति से अब उन्हें सांसारिक ज्वर नहीं सताता था। ये प्रेमी भक्त प्रतिदिन मुकुन्द के कमल सदृश नित्य प्रफुल्लित मुख को देख सकते थे, जो सुन्दर दयामय मन्द हास युक्त चितवनों से विभूषित था।

तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः ।
पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (मथुरा में); प्रवयसः—गुरुजन; अपि—भी; आसन्—थे; युवानः—युवक; अति—अत्यधिक; बल—शक्ति; ओजसः—तथा ओज से युक्त; पिबन्तः—पीते हुए; अक्षैः—अपने अपने नेत्रों से; मुकुन्दस्य—भगवान् कृष्ण के; मुख-अम्बुज—कमल सदृश मुख का; सुधाम्—अमृत; मुहुः—बारम्बार।

यहाँ तक कि उस नगरी के अत्यन्त वृद्धजन भी शक्ति तथा ओज से पूर्ण युवा लगने लगे क्योंकि वे अपनी आँखों से निरन्तर भगवान् मुकुन्द के कमल-मुख का अमृत-पान करते थे।

अथ नन्दं समसाद्य भगवान्देवकीसुतः ।
सङ्कर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; नन्दम्—नन्द महाराज के पास; समासाद्य—पहुँचकर; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र, कृष्ण; सङ्कर्षणः—बलराम; च—तथा; राज-इन्द्र—हे महान् राजा (परीक्षित); परिष्वज्य—उसका आलिंगन करके; इदम्—यह; ऊचतुः—उन्होंने कहा।

तत्पश्चात, हे महान् राजा परीक्षित, देवकी-पुत्र भगवान् कृष्ण भगवान् बलराम के साथ नन्द महाराज के पास पहुँचे। दोनों विभुओं ने उनका आलिंगन किया और उनसे इस प्रकार बोले।

पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ।
पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

पितः—हे पिताश्री; युवाभ्याम्—आप दोनों के द्वारा; स्निग्धाभ्याम्—स्नेहिल; पोषितौ—पालित-पोषित; लालितौ—दुलराये; भृशम्—भलीभाँति; पित्रोः—माता-पिता के लिए; अभ्यधिका—से बढ़कर; प्रीतिः—प्रेम; आत्मजेषु—अपनी सन्तानों के लिए; आत्मनः—अपनी अपेक्षा; अपि—भी; हि—निस्सन्देह।

[कृष्ण और बलराम ने कहा] : हे पिताश्री, आप तथा माता यशोदा ने हम दोनों को बड़े स्नेह से पाला-पोसा है और हमारी इतनी अधिक परवाह की है। निस्सन्देह माता-पिता अपनी सन्तानों को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं।

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ।
शिशून्बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२॥

शब्दार्थ

सः—वह; पिता—पिता; सा—वह; च—तथा; जननी—माता; यौ—जो; पुष्णीताम्—पालन-पोषण करते हैं; स्व—अपने; पुत्र—पुत्रों की; वत्—तरह; शिशून्—बालकों को; बन्धुभिः—अपने परिवार के द्वारा; उत्सृष्टान्—परित्यक्त; अकल्पैः—असमर्थ; पोष—पोषण करने के लिए; रक्षणे—तथा रक्षा करने के लिए।

वे ही असली माता-पिता हैं, जो पालन-पोषण और देख-रेख करने में असमर्थ सम्बन्धियों द्वारा परित्यक्त बालकों की देख-भाल अपने ही पुत्रों की तरह करते हैं।

यात यूयं व्रजंतात वयं च स्नेहदुःखितान् ।
ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

यत—कृपया जाइये; यूयम्—तुम सब (ग्वाले); व्रजम्—व्रज को; तात—हे पिता; वयम्—हम; च—तथा; स्नेह—स्नेह के कारण; दु:खितान्—दुखी; ज्ञातीन्—सम्बन्धियों को; वः—तुमको; द्रष्टुम्—देखने के लिए; एष्यामः—आयेंगे; विधाय—प्रदान करके; सुहृदाम्—आपके मित्रों को; सुखम्—सुख।

हे पिताश्री, अब आप सब व्रज लौट जाँय। हम आपके शुभचिन्तक मित्रों को कुछ सुख दे लेने के बाद तुरन्त ही आपको तथा अपने उन प्रिय सम्बन्धियों को देखने के लिए आयेंगे जो हमारे वियोग से दुखी हैं।

तात्पर्य : यहाँ भगवान् मथुरा के अपने प्रिय भक्तों—वसुदेव, देवकी तथा यदुवंश के अन्य सदस्यों—को संतुष्ट करने की इच्छा व्यक्त करते हैं क्योंकि वे लोग वृन्दावन में उनके निवासकाल से दीर्घ काल से विलग हो चुके हैं।

एवं सान्त्वय्य भगवान्नन्दं सव्रजमच्युतः ।
वासोऽलङ्कारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सान्त्वय्य—सान्त्वना देकर; भगवान्—भगवान्; नन्दम्—राजा नन्द को; स-व्रजम्—व्रज के अन्य लोगों सहित; अच्युतः—अच्युत भगवान्; वासः—वस्त्र समेत; अलङ्कार—आभूषण; कुप्य—धातुओं के बने पात्र; आद्यैः—इत्यादि से; अर्हयाम् आस—उनका सत्कार किया; स-आदरम्—आदरपूर्वक।

इस प्रकार नन्द महाराज तथा व्रज के अन्य लोगों को सान्त्वना देकर अच्युत भगवान् ने उन सबों का वस्त्र, आभूषण, घरेलू-पात्र इत्यादि उपहारों से आदर समेत सत्कार किया।

इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ।

पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—सम्बोधित; तौ—दोनों को; परिष्वज्य—आलिंगन करके; नन्दः—नन्द महाराज; प्रणय—स्नेहपूर्वक; विह्वलः—भावविभोर; पूरयन्—भरकर; अश्रुभिः—आँसुओं से; नेत्रे—अपने नेत्रों में; सह—साथ; गोपैः—ग्वालों के; व्रजम्—व्रज को; ययौ—चला गया।.

कृष्ण के शब्द सुनकर नन्द महाराज भावविह्वल हो गये और अश्रूपूरित नेत्रों से उन्होंने दोनों भाइयों को गले लगाया। तत्पश्चात् वे ग्वालजनों के साथ व्रज लौट गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक का विस्तृत तात्पर्य लिखा है, जिसमें कृष्ण की लीलाओं के इस अंश का विस्तृत विश्लेषण है। जिस प्रकार सोने की शुद्धता जानने के लिए उसे अग्नि में तपाया जाता है उसी तरह भगवान् ने उनके परम-प्रेम को प्रदर्शित करने की दृष्टि से वृन्दावन निवासी अपने प्रिय भक्तों को अपने वियोग की अग्नि में डाल दिया। आचार्य विश्वनाथ की टीका का यही सार है।

अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः समकारयत् ।
पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्द्विजसंस्कृतिम् ॥ २६॥

शब्दार्थ

अथ—तब; शूर-सुतः—शूरसेन के पुत्र (वसुदेव) ने; राजन्—हे राजा (परीक्षित); पुत्रयोः—दोनों पुत्रों के; समकारयत्—सम्पन्न कराया; पुरोधसा—पुरोहित द्वारा; ब्राह्मणैः—ब्राह्मणों द्वारा; च—तथा; यथा-वत्—उचित ढंग से; द्विज-संस्कृतिम्—ब्राह्मण की दीक्षा।.

हे राजन्, तब शूरसेन-पुत्र वसुदेव ने अपने दोनों पुत्रों का द्विज-संस्कार कराने के लिए एक पुरोहित तथा अन्य ब्राह्मणों की व्यवस्था की।

तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलङ्कृताः ।
स्वलङ्कृतेभ्यः सम्पूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७॥

शब्दार्थ

तेभ्यः—उनको (ब्राह्मणों को); अदात्—दिया; दक्षिणाः—दक्षिणा, भेंट; गावः—गौवें; रुक्म—सोने की; मालाः—गले का हार; सु—सुन्दर; अलङ्कृताः—सज्जित; सु-अलङ्कृतेभ्यः—अच्छे आभूषण पहने हुओं (ब्राह्मणों) को; सम्पूज्य—पूजा करके; स—सहित; वत्साः—बछड़े; क्षौम—रेशमी; मालिनीः—मालाएँ धारण किये।.

वसुदेव ने इन ब्राह्मणों की पूजा करते हुए तथा उन्हें सुन्दर आभूषण और सुन्दर आभूषणों से सजी बछड़ों युक्त गौवें भेंट करके सम्मानित किया। ये सभी गौवें सुनहरे हार तथा रेशमी मालाएँ धारण किये थीं।

याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ।
ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

याः—जो (गौवें); कृष्ण-राम—कृष्ण तथा बलराम के; जन्मऋक्षे—जन्मदिन पर; मनः—मन में; दत्ताः—दान में दी गईं; महा-मतिः—वदान्य (वसुदेव); ताः—उन्हें; च—तथा; आददात्—दिया; अनुस्मृत्य—स्मरण करके; कंसेन—कंस द्वारा; अधर्मतः—अधर्मपूर्वक; हृतः—छीन ली गई।.

तब महात्मा वसुदेव को कृष्ण तथा बलराम के जन्म के अवसर पर मन ही मन दान की गई गौवों का स्मरण हो आया। कंस ने वे गाएँ चुरा ली थीं किन्तु अब वसुदेव ने उन्हें फिर से प्राप्त किया था और उन्हें भी दान में दे डाला।

तात्पर्य : कृष्ण के आविर्भाव के समय वसुदेव कंस द्वारा बन्दी बनाकर रखे गये थे और कंस ने उनकी सारी गौवें चुरा ली थीं। फिर भी कृष्ण के जन्म के समय वसुदेव इतने हर्षित थे कि उन्होंने मन ही मन अपनी दस हजार गौवें ब्राह्मणों को दान में दे दी थीं।

अब कंस की मृत्यु हो जाने पर वसुदेव ने वे सारी गौवें मृत राजा के गौवों के झुंड से वापस मँगा लीं और धार्मिक नियमों के अनुसार उन दस हजार गौवों को सुपात्र ब्राह्मणों को दान में दे दिया।

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ।
गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; लब्ध—प्राप्त करके; संस्कारौ—दीक्षा (कृष्ण तथा बलराम की); द्विजत्वम्—द्विज बनने की; प्राप्य—प्राप्त करके; सु-व्रतौ—अपने व्रत में निष्ठावान; गर्गात्—गर्ग मुनि से; यदु-कुल—यदुवंश के; आचार्यात्—आध्यात्मिक गुरु से; गायत्रम्—ब्रह्मचर्य का; व्रतम्—व्रत; आस्थितौ—धारण किया।.

दीक्षा द्वारा द्विजत्व प्राप्त कर लेने के बाद व्रतनिष्ठ दोनों भाइयों ने यदुवंश के गुरु गर्ग मुनि से ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण किया।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर दोनों ने ही *गायत्रं व्रतम्* की व्याख्या ब्रह्मचर्य व्रत के रूप में की है। कृष्ण तथा बलराम आत्म-साक्षात्कार के पथ में पूर्ण छात्र की भूमिका अदा कर रहे थे। निस्सन्देह आज के पतित युग में छात्र-जीवन जंगली पाशविक व्यापार बन गया है, जो अवैध यौन तथा नशीली दवाओं से परिपूर्ण है।

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ।
नान्यसिद्धामलं ज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ० ॥
अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ।
काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

प्रभवौ—उद्गम स्वरूप; सर्व—समस्त विविधताओं के; विद्यानाम्—ज्ञान के; सर्व-ज्ञौ—सर्वज्ञाता; जगत्-ईश्वरौ—ब्रह्माण्ड के स्वामी; न—नहीं; अन्य—अन्य किसी स्रोत से; सिद्ध—प्राप्त; अमलम्—विशुद्ध; ज्ञानम्—ज्ञान; गूहमानौ—छिपाते हुए; नर—मनुष्य की तरह; ईहितैः—अपने कार्यों से; अथ उ—तब; गुरु—गुरु की; कुले—पाठशाला में; वासम्—आवास; इच्छन्तौ—चाहते हुए; उपजगतुः—पहुँचे; काश्यम्—काशी (वाराणसी) के वासी; सान्दीपनिम् नाम—सान्दीपनि नामक; हि—निस्सन्देह; अवन्ति-पुर—अवन्ती नगरी (वर्तमान उज्जैन) में; वासिनम्—रह रहे।

अपने मनुष्य जैसे कार्यों से अपने पूर्णज्ञान को भीतर ही भीतर रखते हुए, ब्रह्माण्ड के इन दो सर्वज्ञ भगवानों ने, ज्ञान की समस्त शाखाओं के उद्गम होते हुए भी, गुरुकुल में जाकर रहने की इच्छा व्यक्त की। इस तरह वे काशीवासी सान्दीपनि मुनि के पास पहुँचे जो अवन्ती नगरी में रह रहे थे।

यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ।
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ २ ॥

शब्दार्थ

यथा—विधिपूर्वक; उपसाद्य—प्राप्त करके; तौ—वे दोनों; दान्तौ—आत्मसंयमी; गुरौ—गुरु के लिए; वृत्तिम्—सेवा; अनिन्दिताम्—निन्दारहित; ग्राहयन्तौ—दूसरों को भी ग्रहण कराते हुए; उपेतौ—सेवा के लिए पहुँचे; स्म—निस्सन्देह; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; देवम्—भगवान् को; इव—मानो; आदृतौ—सम्मानित (गुरु द्वारा)।

सान्दीपनि इन दोनों आत्मसंयमी शिष्यों के प्रति बहुत ही उच्च विचार रखते थे जिन्हें उन्होंने अकस्मात प्राप्त किया था। दोनों ने गुरु की साक्षात् भगवान् जैसी ही भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए अन्यों के समक्ष अनिन्द्य उदाहरण प्रस्तुत किया कि किस तरह आध्यात्मिक गुरु की पूजा की जाती है।

तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ।
प्रोवाच वेदानखिलान्साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥ ॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों का; द्विज-वरः—ब्राह्मणों में श्रेष्ठ (सान्दीपनि); तुष्टः—सन्तुष्ट; शुद्ध—शुद्ध; भाव—प्रेम से; अनुवृत्तिभिः—विनीत कार्यों से; प्रोवाच—बतलाया; वेदान्—वेद; अखिलान्—समस्त; स—सहित; अङ्ग—छहो वेदांग; उपनिषदः—तथा उपनिषदों; गुरुः—गुरु ने।

ब्राह्मण-श्रेष्ठ गुरु सान्दीपनि उनके विनीत आचरण से सन्तुष्ट थे अतः उन्होंने दोनों को सारे

वेद छह वेदांगों सहित तथा उपनिषद् पढ़ाये।

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा ।
तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

स-रहस्यम्—गुह्य अंश समेत; धनुः-वेदम्—धनुर्विद्या; धर्मान्—मानवीय विधि के सिद्धान्त; न्याय—तर्क की; पथान्—विधियाँ; तथा—भी; तथा च—और इसी तरह से; आन्सीक्षिकीम्—दार्शनिक वाद-विवाद की; विद्याम्—ज्ञान की शाखा; राज-नीतिम्—राजनीति शास्त्र; च—तथा; षट्-विधाम्—छह पक्षों में।

उन्होंने दोनों को रहस्यों सहित धनुर्वेद की शिक्षा दी। साथ ही मानक विधि ग्रंथ, तर्क तथा दर्शन विषयक वाद-विवाद की विधियाँ और राजनीति शास्त्र के छह भेदों की भी शिक्षा दी।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर गोस्वामी ने व्याख्या की है कि धनुर्वेद के गुह्य अंश में उपयुक्त मंत्र तथा युद्ध के अधिष्ठाता देवों का ज्ञान निहित है। *धर्मान्* से *मनुसंहिता* तथा अन्य मानक विधि-ग्रंथों (धर्मशास्त्रों) का बोध होता है। *न्यायपथान्* सूचक है कर्ममीमांसा तथा अन्य ऐसे ही वादों का। *आन्वीक्षिकीम्* तर्क-विद्या है। राजनीति के छह भेद हैं (१) *सन्धि*—शान्ति स्थापित करना (२) *विग्रह*—युद्ध () *यान*—कूच करना (४) *आसन*—दृढ़तापूर्वक बैठे रहना (५) *द्वैध*—सेना का विभाजन (६) *संशय*—अधिक शक्तिशाली राजा का संरक्षण लेना।

सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ।
सकृन्निगदमात्रेण तौ सञ्जगृहतुर्नृप ॥ ५॥
अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः ।
गुरुदक्षिणयाचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ६॥

शब्दार्थ

सर्वम्—हर बात; नर-वर—प्रथम श्रेणी के पुरुषों की; श्रेष्ठौ—श्रेष्ठ; सर्व—सभी; विद्या—ज्ञान की शाखाओं के; प्रवर्तकौ—शुभारम्भ करने वाले; सकृत्—एक बार; निगद—बतलाया जाकर; मात्रेण—केवल; तौ—दोनों; सञ्जगृहतुः—आत्मसात् कर लेते; नृप—हे राजा (परीक्षित); अहः—दिन; रात्रैः—तथा रातों में; चतुः-षष्ट्या—चौंसठ; संयत्तौ—ध्यानमग्न रहकर; तावतीः—उतनी ही; कलाः—कलाएँ; गुरु-दक्षिणया—गुरु-दक्षिणा से; आचार्यम्—अपने गुरु को; छन्दयाम् आसतुः—प्रसन्न किया; नृप—हे राजा।

हे राजन, पुरुष-श्रेष्ठ कृष्ण तथा बलराम स्वयं ही सभी प्रकार की विद्याओं के आदि-प्रवर्तक होने के कारण किसी भी विषय की व्याख्या को एक ही बार में सुनकर तुरन्त आत्मसात कर सकते थे। इस तरह उन्होंने एकाग्र चित्त से चौंसठ कलाओं तथा चातुरियों को उतने ही दिनों तथा रातों में सीख लिया। तत्पश्चात् हे राजन्, उन्होंने गुरु-दक्षिणा देकर अपने गुरु को प्रसन्न

किया।

तात्पर्य : निम्नलिखित सूची में वे ६४ कलाएँ दी जा रही हैं, जिन्हें कृष्ण तथा बलराम ने ६४ दिनों में भली-भाँति सीख लिया था। अधिक जानकारी के लिए देखें श्रील प्रभुपाद कृत *भगवान् कृष्ण।*

भगवान् ने (१) *गीतम्*—गायन (२) *वाद्यम्*—वाद्य यंत्रों का वादन () *नृत्यम्*—नाचना (४) *नाट्यम्*—नाटक (५) *आलेख्यम्*—चित्रकारी (६) *विशेषकच्छेद्यम्*—मुख तथा शरीर को रंगीन उबटनों तथा प्रसाधनों से रँगना (७) *तण्डुल-कुसुम-बलि-विकारा:*—फर्श पर चावल तथा फूलों से शुभ आरेख बनाना (८) *पुष्पास्तरणम्*—फूलों की शय्या बनाना (९) *दशन-वसनांग-रागा:*—दाँत, कपड़े तथा अंगों को रँगना () *मणि-भूमिका-कर्म*—फर्श में मणियाँ जड़ना (११) *शय्यारचनाम्*—सेज तैयार करना (१२) *उदकवाद्यम्*—जलतरंग वाद्य (१) *उदकघाट:*—जल उछालना (१४) *चित्र-योगा:*—रंगों को मिलाना (१५) *माल्यग्रथनविकल्पा:*—मालाएँ तैयार करना (१६) *शेखरापीढ-योजनम्*—सिर पर मुकुट रखना (१७) *नेपथ्य-योगा:*—सजावट कक्ष में वस्त्र पहनाना (१८) *कर्णपत्रभंगा:*—कान के लटकते हिस्से (पत्तों) को सजाना (१९) *सुगन्धयुक्ति:*—सुगन्धित द्रव्य लगाना (२०) *भूषणयोजनम्*—गहनों से सजाना (२१) *ऐन्द्रजालम्*—जादूगरी (२२) *कौचुमारयोगा:*—बनावटी वेश बनाने की कला (२) *हस्तलाघवम्*—हाथ की सफाई (२४) *चित्र-शाकापूप-भक्ष्य-विकार-क्रिया:*—तरह-तरह की रोटियाँ, सलाद, केक तथा अन्य प्रकार के स्वादिष्ट भोजन तैयार करना (२५) *पानक-रस-रागासव-योजनम्*—विविध स्वादिष्ट पेयों को तैयार करना तथा पेयों में लाल रंग मिलाना(२६) *सूचीवायकर्म*—सिलने-बुनने का कार्य (२७) *सूत्रक्रीडा*—डोरे से चलाई जाने वाली कठपुतलियाँ नचाना (२८) *वीणाडमरुक वाद्यानि*—वीणा तथा डमरू बजाना (२९) *प्रहेलिका-प्रतिमाला*—पहेली बुझाना तथा अन्ताक्षरी योजना (०) *दुर्वचकयोगा:*—गूढ़ प्रश्न पूछना (१) *पुस्तकवाचनम्*—पुस्तक बाँचना (२) *नाटिकाख्यायिका दर्शनम्*—छोटे नाटकों का अभिनय तथा आख्यायिकाएँ लिखना सीखा।

इनके अतिरिक्त कृष्ण तथा बलराम ने () *काव्यसमस्यापूरणम्*—समस्यापूर्ति (४) *पट्टिका-वेत्र-बाण-विकल्पा:*—कपड़े की पट्टी तथा छड़ी से बाण बनाना (५) *तर्कु-कर्म*—तकली कातना (६) *तक्षणम्*—बढ़ईगिरी (७) *वास्तुविद्या*—वास्तु शिल्प (८) *रौप्य-रत्न-परीक्षा*—चाँदी तथा

रत्नों की परीक्षा करना (९) *धातुवाद:*—धातुकर्म विज्ञान (४०) *मणि-राग-ज्ञानम्*—विविध रंगों से मणियों को रँगना (४१) *आकर-ज्ञानम्*—खनिज विज्ञान (४२) *वृक्षायुर्वेद योगा:*—वनस्पति द्वारा चिकित्सा (४) *मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि:*—मेढ़े, मुर्गे तथा बटेर लड़ाने का प्रशिक्षण देना (४४) *शुक-सारिका प्रलापनम्*—तोता-मैना को बोलना तथा मनुष्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना सिखाना (४५) *उत्सादनम्*—लेपों द्वारा घावों का उपचार (४६) *केशमार्जनकौशलम्*—केश-सज्जा (४७) *अक्षरमुष्टिका कथनम्*—बिना देखे बताना कि पुस्तक में क्या लिखा है या कि दूसरे की मुट्ठी में क्या छिपा है (४८) *म्लेच्छितकुतर्कविकल्पा:*—बर्बर या विदेशी कूट-नीति का जानना (४९) *देशभाषा ज्ञानम्*—प्रान्तीय बोलियों का ज्ञान (५०) *पुष्पशकटिकानिर्मिति ज्ञानम्*—फूलों से खिलौना-खेलगाड़ी बनाने की कला (५१) *यन्त्रमात्रिका*—जादू के वर्ग, सभी दिशाओं में एक ही जोड़ वाली संख्याओं का तरतीबवार रखना (५२) *धारणमात्रिका*—ताबीज का प्रयोग(५) *संवाच्यम्*—वार्तालाप (५४) *मानसीकाव्य क्रिया*—मन में छंद बनाना (५५) *क्रिया विकल्पा:*—कोई साहित्यिक कृति या औषधि उपचार का आयोजन (५६) *छलितक योगा:*—मंदिर बनाना (५७) *अभिधानकोषच्छन्दोज्ञानम्*—शब्दकोश तथा छन्दों का ज्ञान(५८) *वस्त्रगोपनम्*—वस्त्रों को छिपाने या भेस बदलने की विद्या (५९) *द्यूतविशेषम्*—जुआ खेलने के विविध रूपों का ज्ञान (६०) *आकर्ष क्रीडा*—चौसर का खेल (६१) *बालक-क्रीडनकम्*—बच्चों के खिलौनों से खेलना (६२) *वैनायिकी विद्या*—योगशक्ति द्वारा अनुशासन (मंत्र विद्या) (६) *वैजयिकी विद्या*—विजय प्राप्त कराने की विद्या (६४) *वैतालिकी विद्या*—प्रात:काल संगीत द्वारा स्वामी को जगाने की कलाएँ भी सीखीं।

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं
संलोक्ष्य राजन्नतिमानुसीं मतिम् ।
सम्मन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं
बालं प्रभासे वरयां बभूव ह ॥७॥

शब्दार्थ

द्विजः—विद्वान ब्राह्मण; तयोः—उन दोनों की; तम्—उस; महिमानम्—महानता को; अद्भुतम्—अद्भुत; संलक्ष्य—भली-भाँति देखकर; राजन्—हे राजा; अति-मानुषीम्—मनुष्य की क्षमता से परे; मतिम्—बुद्धि; सम्मन्त्र्य—परामर्श करके; पत्न्या—अपनी पत्नी से; सः—उसने; महा-अर्णवे—महासागर में; मृतम्—मरे हुए; बालम्—अपने छोटे से पुत्र को; प्रभासे—प्रभास नामक पवित्र स्थान में; वरयाम् बभूव ह—चुना।

हे राजन्, विद्वान ब्राह्मण सान्दीपनि ने दोनों विभुओं के यशस्वी तथा अद्‌भुत गुणों एवं उनकी अति मानवीय बुद्धि के बारे में ध्यानपूर्वक विचार किया। तत्पश्चात् अपनी पत्नी से परामर्श करके उन्होंने गुरु-दक्षिणा के रूप में अपने नन्हे पुत्र की वापसी को चुना जो प्रभास क्षेत्र के समुद्र में मर चुका था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार इस बालक को शंखासुर ने तब पकड़ा था, जब वह महाशिव क्षेत्र में खेल रहा था।

तेथेत्यथारुह्य महारथौ रथं
प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ।
वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षनं
सिन्धुर्विदित्वार्हनमाहरत्तयोः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तथा—ऐसा ही हो, बहुत अच्छा; इति—ऐसा कहकर; अथ—तब; आरुह्य—चढ़कर; महा-रथौ—दो महारथी; रथम्—रथ पर; प्रभासम्—प्रभास तीर्थ; आसाद्य—पहुँचकर; दुरन्त—असीम; विक्रमौ—पराक्रम वाले; वेलाम्—समुद्र तट तक; उपव्रज्य—चलकर; निषीदतुः—बैठ गये; क्षणम्—क्षण-भर के लिए; सिन्धुः—सागर (का अधिष्ठाता देव); विदित्वा—पहचान कर; अर्हणम्—सादर भेंट; आहरत्—लाया; तयोः—दोनों के लिए।

असीम पराक्रम वाले दोनों महारथियों ने उत्तर दिया, ''बहुत अच्छा'' और तुरन्त ही अपने रथ पर सवार होकर प्रभास के लिए रवाना हो गये। जब वे उस स्थान पर पहुँचे तो वे समुद्र तट तक पैदल गये और वहाँ बैठ गये। क्षण-भर में समुद्र का देवता उन्हें भगवान् के रूप में पहचान कर श्रद्धा-रूप में भेंट लेकर उनके निकट आया।

तात्पर्य : कभी कभी पाश्चात्य विद्वान सोचते हैं कि प्राचीन ज्ञान-ग्रंथों में समुद्र के देवता, सूर्य के देवता इत्यादि जो सन्दर्भ आते हैं, वे सोचने की बहुत ही आदिम एवं पौराणिक शैली के द्योतक हैं। कभी कभी वे कहते हैं कि आदिम मनुष्य सोचता है कि समुद्र देवता है या कि सूर्य तथा चन्द्रमा देवता हैं। वास्तव में इस श्लोक में आगत सिन्धु शब्द, जिसका अर्थ ''सागर'' है, ऐसे व्यक्ति को सूचित करता है, जो भौतिक प्रकृति के उस पक्ष पर शासन चलाता है।

हम कई आधुनिक उदाहरण दे सकते हैं। मान लीजिए कि संयुक्त राष्ट्र में संयुक्त राज्य ''हाँ'' मतदान करता है और सोवियत संघ ''न।'' किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाता कि देश या इमारत ने मतदान किया। हमारा अभिप्राय होता है कि राजनीतिक तथा भौगोलिक सत्ता का प्रतिनिधित्व

करने वाला विशेष व्यक्ति मतदान करता है। फिर भी समाचार-पत्र तो इतना ही कहेंगे, ''संयुक्त राज्य ने मतदान किया, निर्णय किया इत्यादि'' और हर एक को पता होता है कि इसका क्या अर्थ है।

इसी तरह व्यापार में हम कह सकते हैं, ''एक बड़े समूह ने छोटी कम्पनी को निगल लिया।'' इससे हमारा अभिप्राय कदापि नहीं होता कि इमारत, कार्यालय उपकरण इत्यादि ने कर्मियों तथा कार्यालय उपकरणों समेत दूसरी इमारत को निगल लिया। हमारा अभिप्राय यही होता है कि शक्तिप्रदत्त अधिकारी ने अपनी सत्ता की ओर से कोई विशेष कार्य किया है।

दुर्भाग्यवश आधुनिक विद्वान अपने प्रिय वादों की पुष्टि करने के लिए उत्सुक रहते हैं कि प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान आदिम, पौराणिक है और अधिकांशतया सोचने की अपनी अधिक आधुनिक विधियों द्वारा उच्छेदित होता है। किन्तु कृष्णभावनामृत के प्रकाश में इस पर पुनः विचार किये जाने की आवश्यकता है।

तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ।
योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उससे; आह—कहा; भगवान्—भगवान् ने; आशु—तुरन्त; गुरु—मेरे गुरु का; पुत्रः—पुत्र; प्रदीयताम्—प्रस्तुत किया जाय; यः—जो; असौ—वह; इह—इस स्थान पर; त्वया—तुम्हारे द्वारा; ग्रस्तः—पकड़ा गया; बालकः—बालक; महता—बलशाली; ऊर्मिणा—तुम्हारी लहरों द्वारा।

भगवान् कृष्ण ने समुद्र के स्वामी से कहा, ''मेरे गुरु के पुत्र को तुरन्त उपस्थित किया जाये जिसे तुमने अपनी बलशाली लहरों से यहाँ जकड़ रखा है।''

श्रीसमुद्र उवाच
न चाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ।
अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्खरूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-समुद्रः उवाच—साक्षात् समुद्र ने कहा; न—नहीं; च—तथा; अहार्षम्—उसे ले गया; अहम्—मैं; देव—हे प्रभु; दैत्यः—दित वंशज; पञ्चजनः—पञ्चजन नामक; महान्—शक्तिशाली; अन्तः—भीतर; जल—जल के; चरः—चलने वाला; कृष्ण—हे कृष्ण; शङ्ख—शंख का; रूप—स्वरूप; धरः—धारण करके; असुरः—असुर।

समुद्र ने उत्तर दिया, ''हे भगवान् कृष्ण, उसका हरण मैंने नहीं अपितु दिति के वंशज पञ्चजन नामक एक दैत्य ने किया है, जो शंख के रूप में जल में विचरण करता रहता है।''

तात्पर्य : स्पष्ट है कि पञ्चजन अत्यन्त शक्तिशाली होने के कारण समुद्र के वश में नहीं था अन्यथा

समुद्र ने ऐसे अवैध कार्य को रोक दिया होता।

आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ।
जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

आस्ते—वह वहाँ है; तेन—उसके (पञ्चजन) द्वारा; आहृतः—हरण किया गया; नूनम्—निस्सन्देह; तत्—वह; श्रुत्वा—सुनकर; सत्वरम्—तेजी से; प्रभुः—प्रभु; जलम्—जल में; आविश्य—घुसकर; तम्—उसदैत्य को; हत्वा—मारकर; न अपश्यत्—नहीं देखा; उदरे—उसके पेट में; अर्भकम्—बालक को।

सागर ने कहा, "निस्सन्देह उसी दैत्य ने उस बालक को चुरा लिया है।" यह सुनकर भगवान् कृष्ण समुद्र में घुस गये, पञ्चजन को ढूँढ़ लिया और उसको मार डाला। किन्तु भगवान् को उस दैत्य के पेट के भीतर वह बालक नहीं मिला।

तदङ्गप्रभवं शङ्खमादाय रथमागमत् ।
ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ।
गत्वा जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ ४२ ॥
शङ्खनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ।
तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ॥ ४॥
उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ।
लीलामनुष्ययोर्विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

तत्—उस (दैत्य) के; अङ्ग—शरीर से; प्रभवम्—उत्पन्न; शङ्खम्—शंख को; आदाय—लेकर; रथम्—रथ पर; आगमत्—लौट आये; ततः—तब; संयमनीम् नाम—संयमनी नामक; यमस्य—यमराज की; दयिताम्—प्रिय; पुरीम्—नगरी में; गत्वा—जाकर; जन-अर्दनः—समस्त पुरुषों के धाम, भगवान् कृष्ण; शङ्खम्—शंख को; प्रदध्मौ—जोर से बजाया; स—सहित; हल-आयुधः—बलराम जिनका आयुध हल है; शङ्ख—शंख की; निर्ह्रादम्—गूँज; आकर्ण्य—सुनकर; प्रजा—जन्म लेने वाले का; संयमनः—संयमनी नामक; यमः—यमराज; तयोः—दोनों की; सपर्याम्—पूजा; महतीम्—विशद; चक्रे—सम्पन्न की; भक्ति—भक्ति के साथ; उपबृंहिताम्—उफनते; उवाच—कहा; अवनतः—झुककर; कृष्णम्—कृष्ण को; सर्व—समस्त; भूत—जीवित प्राणी; आशय—मन; आलयम्—आवास; लीला—आपकी लीला के रूप में; मनुष्ययोः—मनुष्यों के रूप में प्रकट हुए; विष्णो—हे विष्णु; युवयोः—तुम दोनों के लिए; करवाम—करूँ; किम्—क्या।

भगवान् जनार्दन ने वह शंख ले लिया जो उस दैत्य के शरीर के चारों ओर उगा हुआ था और रथ पर वापस चले गये। इसके पश्चात् वे यमराज की प्रिय राजधानी संयमनी गये। भगवान् बलराम के साथ वहाँ पहुँचकर उन्होंने तेजी से अपना शंख बजाया और उस गूँजती हुई आवाज को सुनते ही बद्धजीवों को नियंत्रण में रखने वाला यमराज वहाँ पहुँचा। यमराज ने दोनों विभुओं की अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा की और तब प्रत्येक हृदय में वास करने वाले भगवान् कृष्ण से

कहा, ''हे भगवान् विष्णु, मैं आप के लिए तथा भगवान् बलराम के लिए जो सामान्य मनुष्यों की भूमिका अदा कर रहे हैं, क्या करूँ?''

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने पञ्चजन से जो शंख लिया वह पाञ्चजन्य कहलाता है और यह वही शंख है, जिसे *भगवद्गीता* के शुभारम्भ में उन्होंने बजाया। आचार्यों के अनुसार पञ्चजन उसी तरह दैत्य बना जिस तरह जय तथा विजय बने थे। दूसरे शब्दों में, यद्यपि वह दैत्य रूप में प्रकट हुआ था किन्तु वास्तव में वह था भगवद्भक्त। *स्कन्द पुराण* के *अवन्ति खण्ड* में भगवान् कृष्ण द्वारा अपना शंख बजाने पर जो चमत्कार हुआ उसका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

असिपत्रवनं नाम शीर्णपत्रमजायत।

रौरवं नाम नरकमरौरवमभूत्तदा॥

अभैरवं भैरवाख्यं कुम्भीपाकमपाचकम्॥

''असिपत्रवन नामक नर्क के वृक्षों की नुकीली तलवार जैसी पत्तियाँ गिर गईं और रौरव नामक नर्क रुरु पशुओं से शून्य हो गया। भैरव नर्क की भयानकता जाती रही और कुम्भीपाक नर्क में भोजन बनना बन्द हो गया।''

स्कन्द पुराण में आगे वर्णन है कि—

पापक्षयात् ततः सर्वे विमुक्ता नारका नराः पदमव्ययमासाद्य।

''उनके पापपूर्ण कर्मफल समूल नष्ट हो गये, नर्क के सारे वासियों को मुक्ति मिल गई और वे वैकुण्ठ पहुँच गये।''

श्रीभगवानुवाच
गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् ।
आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; गुरु-पुत्रम्—मेरे गुरु के पुत्र को; इह—यहाँ; आनीतम्—लाया गया; निज—उसका अपना; कर्म—पूर्वकर्मों के फलों का; निबन्धनम्—बन्धन-भोग करता हुआ; आनयस्व—ले आओ; महा-राज—हे महान् राजा; मत्—मेरा; शासन—आदेश; पुरः-कृतः—प्राथमिकता देते हुए।

भगवान् ने कहा, ''अपने विगत कर्म-बन्धन का भोग करने से मेरे गुरु का पुत्र आपके पास यहाँ लाया गया है। हे महान् राजा, मेरे आदेश का पालन करो और अविलम्ब उस बालक को

मेरे पास ले आओ।''

तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ।
दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तथा—ऐसा ही हो; इति—(यमराज ने) ऐसा कहते हुए; तेन—उसके द्वारा; उपानीतम्—आगे लाया गया; गुरु-पुत्रम्—गुरु के पुत्र को; यदु-उत्तमौ—यदुओं में श्रेष्ठ कृष्ण तथा बलराम; दत्त्वा—देकर; स्व-गुरवे—अपने गुरु को; भूयः—फिर से; वृणीष्व—कृपया चुन लीजिए; इति—इस प्रकार; तम्—उससे; ऊचतुः—उन्होंने कहा।

यमराज ने कहा, ''जो आज्ञा'' और गुरु-पुत्र को सामने ला दिया। तत्पश्चात् यदुओं में श्रेष्ठ उन दोनों ने उस बालक को लाकर अपने गुरु को भेंट करते हुए उनसे कहा, ''कृपया दूसरा वर माँगिये।''

श्रीगुरुरुवाच
सम्यक्सम्पादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ।
को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

श्री-गुरुः उवाच—उनके गुरु सान्दीपनि मुनि ने कहा; सम्यक्—पूरी तरह; सम्पादितः—पूरा हुआ; वत्स—मेरे बालक; भवद्भ्याम्—तुम दोनों के द्वारा; गुरु-निष्क्रयः—गुरु-दक्षिणा; कः—जो; नु—निस्सन्देह; युष्मत्-विध—आप जैसे पुरुषों के; गुरोः—गुरु के लिए; कामानाम्—उसकी इच्छाओं का; अवशिष्यते—शेष रहता है।

गुरु ने कहा : मेरे प्रिय बालको, तुम दोनों ने अपने गुरु को दक्षिणा देने के शिष्य-दायित्व को पूरा कर लिया है। निस्सन्देह, तुम जैसे शिष्यों से गुरु को और क्या इच्छाएँ हो सकती हैं?

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

गच्छतम्—जाओ; स्व-गृहम्—अपने घर को; वीरौ—हे दोनों वीर; कीर्तिः—यश; वाम्—तुम्हारा; अस्तु—होए; पावनी—पावन बनाने वाला; छन्दांसि—वैदिक स्तुतियाँ; अयात-यामानि—नित नूतन; भवन्तु—होए; इह—इस जीवन में; परत्र—अगले जीवन में; च—तथा।

हे वीरो, अब तुम अपने घर लौट जाओ। तुम्हारा यश संसार को पवित्र बनाये और इस जन्म में तथा अगले जन्म में वैदिक स्तुतियाँ तुम्हारे मन में सदैव ताजी बनी रहें।

गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ।
आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

गुरुणा—उनके गुरु द्वारा; एवम्—इस तरह से; अनुज्ञातौ—विदा किये जाने पर; रथेन—अपने रथ में; अनिल—वायु की तरह; रंहसा—वेगवान; आयातौ—आये; स्व—अपने; पुरम्—नगर (मथुरा); तात—हे प्रिय (राजा परीक्षित); पर्जन्य—बादल की तरह; निनदेन—गर्जन; वै—निस्सन्देह।

इस तरह अपने गुरु से विदा होने की अनुमति पाकर दोनों भाई अपने रथ पर बैठ अपनी नगरी लौट आये। यह रथ वायु की तेजी से चल रहा था और बादल की तरह गूँज रहा था।

समनन्दन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ।
अपश्यन्त्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

समनन्दन्—खुशी मनाई; प्रजाः—नागरिकों ने; सर्वाः—सभी; दृष्ट्वा—देखकर; राम-जनार्दनौ—बलराम तथा कृष्ण को; अपश्यन्त्यः—न देख पाने से; बहु—अनेक; अहानि—दिन; नष्ट—खोया हुआ; लब्ध—पुनः प्राप्त; धनाः—सम्पत्ति वालों को; इव—सदृश।

सारे नागरिक, जिन्होंने अनेक दिनों से कृष्ण तथा बलराम को नहीं देखा था, उन्हें देखकर परम प्रसन्न हुए। लोगों को वैसा ही लगा, जिस तरह धन खोये हुओं को उनका धन वापस मिल जाय।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा अपने गुरु-पुत्र की रक्षा'' नामक पैंतालीसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter छियालिस

उद्धव की वृन्दावन यात्रा

इस अध्याय में यह वर्णन हुआ है कि श्रीकृष्ण ने किस तरह नन्द, यशोदा तथा तरुण गोपियों के दुख को दूर करने के लिए उद्धव को व्रज भेजा।

एक दिन कृष्ण ने अपने घनिष्ठ मित्र उद्धव से अपना सन्देश व्रज ले जाने और इस प्रकार उनके वियोग से उत्पन्न उनके माता-पिता तथा गोपियों के दुख को दूर करने के लिए कहा। उद्धव रथ पर चढ़कर सूर्यास्त के समय व्रज पहुँचे। उन्होंने गौवों को गोकुल लौटते और दूध के अत्यन्त भार के कारण मन्द गति से चल रहीं इन गौवों के आगे-आगे बछड़ों को इधर-उधर उछल-कूद करते देखा। ग्वाले तथा गोपियाँ कृष्ण तथा बलराम की महिमा का गायन कर रहे थे और सारा ग्राम जलती अगुरु

तथा दीपों की पंक्तियों से अच्छी तरह सजाया गया था। इससे अद्वितीय दिव्य सौन्दर्य का दृश्य प्रस्तुत हो रहा था।

नन्द महाराज ने अपने घर में उद्धव का हार्दिक स्वागत किया। फिर गोपनरेश ने भगवान् वासुदेव के ही समान उनकी पूजा की, उन्हें ठीक प्रकार से भोजन कराया, बिस्तर पर सुखपूर्वक बिठाया और तब वसुदेव तथा अपने पुत्र कृष्ण तथा बलराम की कुशल-क्षेम पूछी। नन्द ने पूछा, ''क्या कृष्ण अब भी अपने मित्रों की, अपने गोकुल-ग्राम की तथा गोवर्धन पर्वत की याद करते हैं? उन्होंने दावाग्नि, आँधी तथा वर्षा और अन्य अनेक विपदाओं से हमारी रक्षा की थी। हम उनकी लीलाओं का बारम्बार स्मरण करके अपने कर्म-पाश से मुक्त होते हैं और जब हम उनके चरणकमलों से अंकित स्थलों को देखते हैं, तो हमारे मन उनके विचारों में पूरी तरह लीन हो जाते हैं। गर्ग मुनि ने मुझे बतलाया था कि कृष्ण तथा बलराम दोनों ही सीधे वैकुण्ठ से अवतरित हुए हैं। देखो न! किस तरह उन्होंने कंस, मल्लों, कुवलयापीड (हाथी) तथा अनेक असुरों का सफाया कर दिया है।'' ज्यों-ज्यों नन्द को कृष्ण की लीलाएँ याद आती गईं उनका गला अश्रुओं से अवरुद्ध होता गया और वे इसके आगे बोल न सके। माता यशोदा ने अपने पति को ज्योंही कृष्ण के विषय में बोलते सुना, तो अपने पुत्र के उत्कट प्रेम के कारण उनके स्तनों से दूध की धारा बह चली और आँखों से अश्रुओं की झड़ी लग गई।

श्रीकृष्ण के प्रति नन्द तथा यशोदा के अद्वितीय स्नेह को देखकर उद्धव ने कहा, ''निस्सन्देह आप दोनों परम धन्य हैं। जिसने परम सत्य के मनुष्य-रूप के प्रति शुद्ध-प्रेम प्राप्त कर लिया हो, उसे फिर आगे कुछ भी प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। कृष्ण तथा बलराम सबों के हृदयों में उसी तरह विद्यमान हैं जिस तरह काठ के भीतर अग्नि सुसुप्त रहती है। ये दोनों, सबों को समभाव से देखते हैं, इनका न कोई विशेष मित्र है न शत्रु। ये अहंकार तथा स्वामित्व से मुक्त हैं, इनका न कोई पिता है, न माता, न पत्नी, न सन्तान। इनका न तो जन्म होता है न ही इनका कोई भौतिक शरीर है। केवल आध्यात्मिक सुख भोगने तथा अपने सन्त-भक्तों का उद्धार करने के लिए वे उच्च या निम्न सभी योनियों में, अपनी इच्छानुसार प्रकट होते हैं।''

''हे नन्द तथा यशोदा! कृष्ण केवल आपके ही पुत्र नहीं हैं अपितु समस्त लोगों के पुत्र हैं और उनके माता-पिता भी हैं। वस्तुत: वे हरएक के प्रियतम सम्बन्धी हैं क्योंकि भूत, वर्तमान तथा भविष्य

में जो कुछ भी देखा या सुना जाता है, वह उनसे स्वतंत्र नहीं है, चाहे वह चर हो या अचर।''

नन्द महाराज तथा उद्धव ने इस तरह कृष्ण के विषय में बातें करते करते रात बिता दी। तत्पश्चात् ग्वालिनों ने प्रात:कालीन पूजा करके दही मथना प्रारम्भ किया और मथने की डोरी को खींचने में व्यस्त रहते रहते बीच में वे कृष्ण की महिमा का गायन करती जा रही थीं। मथने तथा गीत गाने की ध्वनि आकाश में गूँजने लगी, जिससे संसार का सारा अशुभ दूर हो रहा था।

जब सूर्योदय हुआ तो गोपियों ने गाँव के कोने में उद्धव के रथ को देखा। उन्होंने सोचा कि हो न हो अक्रूर वापस आये हैं। किन्तु तभी उद्धव नित्यकर्म से निवृत्त होकर उनके समक्ष उपस्थित हुए।

श्रीशुक उवाच
वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; वृष्णीनाम्—वृष्णियों में से; प्रवरः—श्रेष्ठ; मन्त्री—सलाहकार; कृष्णस्य—कृष्ण का; दयितः—प्रिय; सखा—मित्र; शिष्यः—शिष्य; बृहस्पतेः—देवताओं के गुरु बृहस्पति का; साक्षात्—प्रत्यक्ष; उद्धवः—उद्धव; बुद्धि—बुद्धि वाला; सत्-तमः—सर्वोच्च गुण वाला।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अत्यन्त बुद्धिमान उद्धव वृष्णि वंश के सर्वश्रेष्ठ सलाहकार, भगवान् कृष्ण के प्रिय मित्र तथा बृहस्पति के प्रत्यक्ष शिष्य थे।

तात्पर्य : आचार्यगण भगवान् कृष्ण द्वारा उद्धव को वृन्दावन भेजे जाने के कई कारण बतलाते हैं। भगवान् ने वृन्दावनवासियों से वादा किया था—*आयास्ये*—मैं लौटूँगा (*भागवत* .९.५)। यही नहीं, पिछले अध्याय में भगवान् कृष्ण ने नन्द महाराज को वचन दिया था—*द्रष्टुम् एष्यामः*—हम आपका तथा माता यशोदा का दर्शन करने वापस आयेंगे (*भागवत* .४५.२)। साथ ही भगवान्, श्री वसुदेव तथा माता देवकी के साथ कुछ दिन रहने का वचन भी नहीं टाल सकते थे क्योंकि उन्होंने इतने वर्षों तक कष्ट झेले थे। इसलिए भगवान् ने अपने स्थान पर अपने अभिन्न प्रतिनिधि को भेजने का निश्चय किया।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि कृष्ण ने नन्द तथा यशोदा को मथुरा आने के लिए क्यों आमंत्रित नहीं किया? श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार जिस स्थान पर वे वसुदेव तथा देवकी से प्रेम-विनिमय कर रहे थे उसी स्थान पर और उसी समय नन्द तथा यशोदा के साथ ऐसा करने से भगवान् कृष्ण की

लीलाओं में विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती। इसीलिए उन्होंने नन्द तथा यशोदा को अपने साथ मथुरा में रहने के लिए नहीं बुलाया। वृन्दावनवासी अपने ही ढंग से कृष्ण को समझते थे अतः मथुरा के राजसी वातावरण में उनकी भावनाओं की समुचित अभिव्यक्ति स्थिर भाव से न हो पाती।

इस श्लोक में श्री उद्धव को *बुद्धिसत्तमः* "अत्यन्त बुद्धिमान" बतलाया गया है, अतः वे वृन्दावन के उन निवासियों को दक्षता से सान्त्वना दे सकते थे, जो कृष्ण के लिए तीव्र विछोह का अनुभव कर रहे थे। तत्पश्चात् मथुरा लौटकर उद्धव वृन्दावन में देखे गये असाधारण शुद्ध प्रेम का वर्णन सभी वृष्णिवंशियों से कर सकेंगे। निस्सन्देह कृष्ण के प्रति गोपों तथा गोपियों का प्रेम कृष्ण के अन्य भक्तों द्वारा अनुभूत प्रेम से बहुत बढ़ा हुआ था और इस प्रेम के विषय में सुनकर कृष्ण के सारे भक्त अपनी श्रद्धा तथा भक्ति में सम्वर्धन कर सकेंगे।

जैसाकि स्वयं भगवान् ने तृतीय स्कंध में कहा है—*नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनः*—उद्धव मुझसे तनिक भी भिन्न नहीं है। कृष्ण से समानता रखने वाले उद्धव कृष्ण का सन्देश वृन्दावन ले जाने के लिए सर्वथा उपयुक्त व्यक्ति थे। वस्तुतः *श्री हरिवंश* में कहा गया है कि उद्धव वसुदेव के भाई देवभाग के पुत्र थे—*उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्।* दूसरे शब्दों में, उद्धव कृष्ण के चचेरे भाई थे।

तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उससे; आह—बोले; भगवान्—भगवान्; प्रेष्ठम्—अपने अत्यन्त प्रिय; भक्तम्—भक्त; एकान्तिनम्—अनन्य; क्वचित्—एक अवसर पर; गृहीत्वा—पकड़कर; पाणिना—हाथ से; पाणिम्—(उद्धव का) हाथ को; प्रपन्न—शरणागत; आर्ति—दुखी; हरः—हरने वाले; हरिः—हरि ने।

भगवान् हरि ने जो अपने शरणागतों के सारे कष्टों को हरने वाले हैं, एक बार अपने भक्त एवं प्रियतम मित्र उद्धव का हाथ अपने हाथ में लेकर उससे इस प्रकार कहा।

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ।
गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ ॥

शब्दार्थ

गच्छ—जाओ; उद्धव—हे उद्धव; व्रजम्—व्रज को; सौम्य—हे भद्र; पित्रोः—माता-पिता तक; नौ—हमारे; प्रीतिम्—तुष्टि; आवह—ले जाओ; गोपीनाम्—गोपियों का; मत्—मुझसे; वियोग—वियोगजनित; आधिम्—मानसिक क्लेश का; मत्—मुझसे लाये गये; सन्देशैः—सन्देशों से; विमोचय—उन्हें छुटकारा दिलाओ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] हे भद्र उद्धव, तुम व्रज जाओ और हमारे माता-पिता को आनन्द प्रदान करो। यही नहीं, मेरा सन्देश देकर उन गोपियों को भी क्लेश-मुक्त करो जो मेरे वियोग के कारण कष्ट पा रही हैं।

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मतर्थे त्यक्तदैहिका: ।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गता: ।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

ता:—वे (गोपियाँ); मत्—मुझमें लीन; मनस्का:—उनके मन; मत्—मुझमें टिके; प्राणा:—उनके प्राण; मत्-अर्थे—मेरे लिए; त्यक्त—छोड़कर; दैहिका:—शारीरिक स्तर पर सारी वस्तुएँ; माम्—मुझको; एव—एकमात्र; दयितम्—अपने प्रिय; प्रेष्ठम्—सर्वाधिक प्रिय; आत्मानम्—आत्मा; मनसा गता:—समझ गईं; ये—जो (गोपियाँ या अन्य); त्यक्त—त्यागकर; लोक—यह जगत; धर्मा:—धार्मिकता; च—तथा; मत्-अर्थे—मेरे लिए; तान्—उनको; बिभर्मि—भरण-पोषण करता हूँ; अहम्—मैं।

उन गोपियों के मन सदैव मुझमें लीन रहते हैं और उनके प्राण सदैव मुझी में अनुरक्त रहते हैं। उन्होंने मेरे लिए ही अपने शरीर से सम्बन्धित सारी वस्तुओं को त्याग दिया है, यहाँ तक इस जीवन के सामान्य सुख के साथ साथ अगले जीवन में सुख-प्राप्ति के लिए जो धार्मिक कृत्य आवश्यक हैं, उन तक का परित्याग कर दिया है। मैं उनका एकमात्र परम प्रियतम हूँ, यहाँ तक कि उनकी आत्मा हूँ। अत: मैं सभी परिस्थितियों में उनका भरण-पोषण करने का दायित्व अपने ऊपर लेता हूँ।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण बतलाते हैं कि वे गोपियों के पास विशेष सन्देश क्यों भेजना चाहते हैं। वैष्णव आचार्यों के अनुसार *दैहिका:* शब्द जिसका अर्थ ''देह से सम्बन्धित'' है, पतियों, बच्चों, घरों इत्यादि का सूचक है। गोपियाँ कृष्ण से इतना प्रगाढ़ प्रेम करती थीं कि वे और कुछ सोच ही नहीं पाती थीं। चूँकि कृष्ण *साधनभक्ति* में लगे सामान्य भक्तों का भरण-पोषण करते हैं, अत: वे अपनी सर्वश्रेष्ठ भक्त, गोपियों का अवश्य ही भरण-पोषण करेंगे।

मयि ता: प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रिय: ।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वला: ॥ ५॥

शब्दार्थ

मयि—मुझमें; ता:—वे; प्रेयसाम्—समस्त प्रिय वस्तुओं में से; प्रेष्ठे—सर्वाधिक प्रिय; दूर-स्थे—दूर होने से; गोकुल-स्त्रिय:—गोकुल की स्त्रियाँ; स्मरन्त्य:—स्मरण करती हुई; अङ्ग—हे प्रिय (उद्धव); विमुह्यन्ति—स्तम्भित हो जाती हैं; विरह—वियोग की; औत्कण्ठ्य—चिन्ता से; विह्वला:—विह्वल।

हे उद्धव, गोकुल की उन स्त्रियों के लिए मैं सर्वाधिक स्नेहयोग्य प्रेम-पात्र हूँ। इस तरह जब वे दूर-स्थित मुझको स्मरण करती हैं, तो वे वियोग की उद्विग्नता से विह्वल हो उठती हैं।

तात्पर्य : जो भी वस्तु हमें प्रिय होती है, वह हमारी सम्पत्ति बन जाती है। अन्ततोगत्वा सबसे प्रिय वस्तु हमारी अपनी आत्मा या स्वयं हम हैं। इस तरह आत्मा से अनुकूल सम्बन्ध वाली वस्तुएँ भी हमें प्रिय लगने लगती हैं और हम उन्हें पाना चाहते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार ऐसी असंख्य प्रिय वस्तुओं में से श्रीकृष्ण सर्वाधिक प्रिय हैं, यहाँ तक कि अपने से भी। गोपियों को इस बात की अनुभूति हो चुकी थी, अतएव वे भगवान् के विछोह से स्तम्भित थीं क्योंकि वे उनसे प्रगाढ़ प्रेम करती थीं। वे अपना प्राण कभी त्याग चुकी होतीं किन्तु भगवान् अपनी दिव्य शक्ति से उन्हें जीवित रखे हुए थे।

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्राय: प्राणान्कथञ्चन ।
प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिका: ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

धारयन्ति—धारण करती हैं; **अति-कृच्छ्रेण**—बड़ी कठिनाई से; **प्राय:**—मुश्किल से; **प्राणान्**—अपने प्राणों को; **कथञ्चन**—किसी तरह; **प्रति-आगमन**—वापसी के; **सन्देशै:**—वादों से; **बल्लव्य:**—गोपियाँ; **मे**—मेरी; **मत्-आत्मिका:**—मेरे प्रति अनुरक्त।

चूँकि मैंने उनसे वापस आने का वादा किया है इसीलिए मुझमें पूर्णत: अनुरक्त मेरी गोपियाँ किसी तरह से अपने प्राणों को बनाये रखने के लिए संघर्ष कर रही हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार यद्यपि वृन्दावन की गोपियाँ कहने को तो विवाहिता थीं किन्तु उनके पति उनके रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श जैसे अति आकर्षक गुणों से कोई सम्पर्क नहीं रखते थे। उनके पतियों ने केवल मान रखा था कि "ये हमारी पत्नियाँ हैं।" दूसरे शब्दों में, भगवान् कृष्ण की आध्यात्मिक शक्ति से सारी गोपियाँ उन्हीं के आह्लाद के लिए थीं और कृष्ण उनसे परकीय प्रेम करते थे। वस्तुत: गोपियाँ कृष्ण की आन्तरिक प्रकृति, उनकी परम ह्लादिनी शक्ति की अभिव्यक्तियाँ थीं और आध्यात्मिक स्तर पर वे अपने शुद्ध-प्रेम से भगवान् कृष्ण को आकृष्ट कर रही थीं।

वृन्दावन में कृष्ण के माता-पिता नन्द महाराज तथा यशोदा को भी कृष्ण की सर्वोच्च प्रेम-दशा प्राप्त थी और वे भी कृष्ण की अनुपस्थिति में किसी तरह से जीवित थे। अत: उद्धव इनकी ओर भी विशेष ध्यान देंगे।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्त उद्धवो राजन्सन्देशं भर्तुराहृतः ।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहे गये; उद्धवः—उद्धव; राजन्—हे राजा (परीक्षित); सन्देशम्—सन्देश; भर्तुः—अपने स्वामी का; आहृतः—आदरपूर्वक; आदाय—लेकर; रथम्—अपने रथ पर; आरुह्य—सवार होकर; प्रययौ—चले गये; नन्द-गोकुलम्—नन्द महाराज के ग्राम गोकुल को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, इस तरह कहे जाने पर उद्धव ने आदरपूर्वक अपने स्वामी के सन्देश को स्वीकार किया। वे अपने रथ पर सवार होकर नन्द-गोकुल के लिए चल पड़े।

प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ ।
छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

प्राप्तः—पहुँचकर; नन्द-व्रजम्—नन्द महाराज की चरागाहों में; श्रीमान्—भाग्यशाली (उद्धव); निम्लोचति—जब अस्त हो रहा था; विभावसौ—सूर्य; छन्न—अदृश्य; यानः—जिसका जाना; प्रविशताम्—प्रवेश करने वाले; पशूनाम्—पशुओं के; खुर—खुर; रेणुभिः—धूल से।

भाग्यशाली उद्धव नन्द महाराज के चरागाहों में उस समय पहुँचे जब सूर्य अस्त होने वाला था और चूँकि लौटती हुई गौवें तथा अन्य पशु अपने खुरों से धूल उड़ा रहे थे अतः उनका रथ अनदेखे ही निकल गया।

वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुश्मिभिर्वृषैः ।
धावन्तीभिश्च वास्राभिरुधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥
इतस्ततो विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः ।
गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥ ॥
गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ।
स्वलङ्कृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥ ११ ॥
अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ।
धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥
सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मषण्डैश्च मण्डितम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

वासित—ऋतुमती (गौवें); अर्थे—के हेतु; अभियुध्यद्भिः—एक-दूसरे से लड़ रहे; नादितम्—नाँदते हुए; शुश्मिभिः—कामुक; वृषैः—साँड़ों से; धावन्तीभिः—दौड़ते हुए; च—तथा; वास्राभिः—गौवों समेत; उधः—अपने थनों के; भारैः—भार से; स्व—अपने ही; वत्सकान्—बछड़ों के पीछे; इतः ततः—इधर-उधर; विलङ्घद्भिः—कूदती; गो-वत्सैः—बछड़ों द्वारा; मण्डितम्—अलंकृत; सितैः—श्वेत; गो-दोह—गौवों के दुहने के; शब्द—शब्द से; अभिरवम्—गुञ्जायमान; वेणूनाम्—वंशियों की; निःस्वनेन—उच्च ध्वनि से; च—तथा; गायन्तीभिः—गाती हुईं; च—तथा; कर्माणि—कर्मों के विषय में; शुभानि—शुभ; बल-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण के; सु—सुन्दर; अलङ्कृताभिः—अलंकृत; गोपीभिः—गोपियों समेत; गोपैः—गोपजन; च—तथा; सु-विराजितम्—सुशोभित; अग्नि—यज्ञ की अग्नि; अर्क—सूर्य; अतिथि—मेहमान; गो—गाय; विप्र—ब्राह्मण; पितृ—पूर्वज; देव—तथा देवतागण की; अर्चन—पूजा से; अन्वितैः—पूरित; धूप—अगुरु; दीपैः—दीपकों से; च—तथा; माल्यैः—फूलों की मालाओं से; च—भी; गोप-आवासैः—ग्वालों के घरों के कारण; मनः-रमम्—अत्यन्त आकर्षक; सर्वतः—चारों ओर; पुष्पित—फूले हुए; वनम्—वन; द्विज—पक्षियों; अलि—तथा भौंरों के; कुल—झुंड से; नादितम्—प्रतिध्वनित; हंस—हंस; कारण्डव—विशेष प्रकार की बत्तखों से युक्त; आकीर्णैः—झुंडों से भरा; पद्म-षण्डैः—कमल के कुंजों से; च—तथा; मण्डितम्—सुशोभित।

ऋतुमती गौवों के लिए परस्पर लड़ रहे साँड़ों की ध्वनि से, अपने बछड़ों का पीछा कर रही अपने थनों के भार से रँभाती गौवों से, दुहने की तथा इधर-उधर कूद-फाँद कर रहे श्वेत बछड़ों की आवाज से, वंशी बजाने की ऊँची गूँज से, उन गोपों तथा गोपिनों द्वारा, जो गाँव को अपनी अद्‌भुत रीति से अलंकृत वेशभूषा से सुशोभित कर रहे थे, कृष्ण तथा बलराम के शुभ कार्यों के गुणगान से गोकुलग्राम सभी दिशाओं में गुंजायमान था। गोकुल में ग्वालों के घर यज्ञ-अग्नि, सूर्य, अचानक आए अतिथियों, गौवों, ब्राह्मणों, पितरों तथा देवताओं की पूजा के लिए प्रचुर सामग्रियों से युक्त होने से अतीव आकर्षक प्रतीत हो रहे थे। सभी दिशाओं में पुष्पित वन फैले थे, जो पक्षियों तथा मधुमक्खियों के झुण्डों से गुँजायमान हो रहे थे और हंस, कारण्डव तथा कमल-कुंजों से भरे-पूरे सरोवरों से सुशोभित थे।

तात्पर्य : यद्यपि गोकुल कृष्ण के विरह से जनित शोक में डूबा था किन्तु भगवान् ने अपनी अन्तरंगा शक्ति का विस्तार कर दिया जिससे व्रज का वह विशेष दृश्य छिप जाय और उद्धव को सूर्यास्त के समय व्रज की सामान्य हलचल तथा हर्ष दिख सके।

तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ।
नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियार्चयत् ॥ १४॥

शब्दार्थ

तम्—उसके (उद्धव के) पास तक; आगतम्—आया हुआ; समागम्य—पहुँचकर; कृष्णस्य—कृष्ण का; अनुचरम्—अनुयायी; प्रियम्—प्रिय; नन्दः—नन्द महाराज; प्रीतः—सुखी; परिष्वज्य—आलिंगन करके; वासुदेव-धिया—वासुदेव के बारे में ध्यान करते हुए; आर्चयत्—पूजा की।

ज्योंही उद्धव नन्द महाराज के घर पहुँचे, नन्द उनसे मिलने के लिए आगे आ गये। गोपों के राजा ने अत्यन्त सुखपूर्वक उनका आलिंगन किया और वासुदेव की ही तरह उनकी पूजा की।

तात्पर्य : उद्धव नन्द के पुत्र कृष्ण के ही समान दिख रहे थे और जिसने भी उन्हें देखा उसे आनन्द प्राप्त हुआ। इस तरह कृष्ण के वियोग-विचारों में डूबे हुए भी नन्द ने जब उद्धव को अपने घर की ओर आते देखा तो वे बाहरी घटनाओं के बारे में सचेत हो गये अत: अपने सम्मान्य अतिथि का आलिंगन करने बाहर निकल आये।

भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ।
गतश्रमं पर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभि: ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

भोजितम्—खिलाया; परम-अन्नेन—उत्तम कोटि के भोजन से; संविष्टम्—बैठाया; कशिपौ—सुन्दर सेज पर; सुखम्—सुखपूर्वक; गत—दूर किया; श्रमम्—थकान; पर्यपृच्छत्—पूछा; पाद—पाँव की; संवाहन—मालिश; आदिभि:—इत्यादि के द्वारा।

जब उद्धव उत्तम भोजन कर चुके और उन्हें सुखपूर्वक बिस्तर पर बिठा दिया गया तथा पाँवों की मालिश तथा अन्य साधनों से उनकी थकान दूर कर दी गई तो नन्द ने उनसे इस प्रकार पूछा।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी उल्लेख करते हैं कि नन्द ने एक नौकर से उद्धव के पाँवों की मालिश कराई क्योंकि उद्धव नन्द के भतीजे थे।

कच्चिदङ्ग महाभाग सखा न: शूरनन्दन: ।
आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्त: सुहृद्व्रत: ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; अङ्ग—प्रिय; महा-भग—हे अत्यन्त भाग्यशाली; सखा—मित्र; न:—हमारा; शूर-नन्दन:—शूर का पुत्र (वसुदेव); आस्ते—रहता है; कुशली—कुशलपूर्वक; अपत्य-आद्यै:—अपने बच्चों आदि समेत; युक्त:—मिल कर; मुक्त:—मुक्त; सुहृत्—अपने मित्रों से; व्रत:—अनुरक्त।

[नन्द महाराज ने कहा]: हे परम भाग्यशाली, अब शूर का पुत्र मुक्त हो चुकने और अपने बच्चों तथा अन्य सम्बन्धियों से पुन: मिल जाने के बाद कुशल से है न?

दिष्ट्या कंसो हत: पाप: सानुग: स्वेन पाप्मना ।
साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि य: सदा ॥ १७॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—सौभाग्य से; कंसः—कंस; हतः—मारा जा चुका है; पापः—पापी; स—सहित; अनुगः—अपने अनुयायियों (भाइयों); स्वेन—अपने से; पाप्मना—पापमयता; साधूनाम्—सन्त; धर्म-शीलानाम्—धर्मात्मा; यदूनाम्—यदुओं से; द्वेष्टि—द्वेष करता है; यः—जो; सदा—सदैव।

सौभाग्यवश, अपने ही पापों के कारण पापात्मा कंस अपने समस्त भाइयों सहित मारा जा चुका है। वह सदैव सन्त तथा धर्मात्मा यदुओं से घृणा करता था।

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।
गोपान्व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अपि—शायद; स्मरति—स्मरण करता है; नः—हमको; कृष्णः—कृष्ण; मातरम्—अपनी माता को; सुहृदः—उसके शुभचिन्तक; सखीन्—तथा सारे मित्र; गोपान्—ग्वालों को; व्रजम्—व्रज के गाँव; च—तथा; आत्म—स्वयं; नाथम्—स्वामी; गावः—गौवें; वृन्दावनम्—वृन्दावन के जंगल को; गिरिम्—गोवर्धन पर्वत को।

क्या कृष्ण हमारी याद करता है? क्या वह अपनी माता तथा अपने मित्रों एवं शुभचिन्तकों की याद करता है? क्या वह ग्वालों तथा उनके गाँव व्रज को, जिसका वह स्वामी है, स्मरण करता है? क्या वह गौवों, वृन्दावन के जंगल तथा गोवर्धन पर्वत की याद करता है?

अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् ।
तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; आयास्यति—वापस आयेगा; गोविन्दः—कृष्ण; स्व-जनान्—अपने सम्बन्धियों को; सकृत्—एक बार; ईक्षितुम्—देखने के लिए; तर्हि—तब; द्रक्ष्याम—हम देख सकते हैं; तत्—उसका; वक्त्रम्—मुख; सु-नसम्—सुन्दर नाक से युक्त; सु—सुन्दर; स्मित—हँसी; ईक्षणम्—तथा नेत्र।

क्या गोविन्द अपने परिवार को देखने एक बार भी वापस आयेगा? यदि वह कभी आयेगा तो हम उसके सुन्दर नेत्र, नाक तथा मुसकाते सुन्दर मुख को देख सकेंगे।

तात्पर्य : चूँकि अब कृष्ण मथुरा जैसी महानगरी के राजकुमार बन चुके थे अत: नन्द को आशा नहीं रह गई थी कि वे कभी वृन्दावन जैसे सामान्य गोप-ग्राम में वापस आयेंगे। तो भी उन्हें निराशा के होते हुए भी इतनी आशा थी कि वे उन सरल ग्वालजनों को देखने एक बार अवश्य आयेंगे, जिन्होंने बचपन से उन्हें पाल-पोस कर बड़ा किया था।

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ।
दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥

शब्दार्थ

दाव-अग्नेः—जंगल की आग से; वात—तेज हवा से; वर्षात्—तथा वर्षा से; च—भी; वृष—बैल से; सर्पात्—सर्प से; च—तथा; रक्षिताः—रक्षा किये गये की; दुरत्ययेभ्यः—दुर्लंघ्य; मृत्युभ्यः—मानवीय संकटों से; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; सु-महा-आत्मना—बहुत बड़े महात्मा।

उस महान-आत्मा कृष्ण द्वारा हम जंगल की आग, तेज हवा तथा वर्षा, साँड़ तथा सर्प रूपी असुरों जैसे दुर्लंघ्य घातक संकटों से बचा लिये गये थे।

स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम् ।
हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

स्मरताम्—स्मरण करने वाले; कृष्ण-वीर्याणि—कृष्ण के पराक्रमपूर्ण कार्यों को; लीला—क्रीड़ापूर्ण; अपाङ्ग—चितवन से; निरीक्षितम्—उनका देखना; हसितम्—हँसना; भाषितम्—बोलना; च—तथा; अङ्ग—हे प्रिय (उद्धव); सर्वाः—सभी; नः—हमारे लिए; शिथिलाः—शिथिल; क्रियाः—भौतिक कार्यकलाप।

जब हम कृष्ण द्वारा सम्पन्न किये गये अद्‌भुत कार्यों, उसकी चपल चितवन, उसकी हँसी तथा उसकी वाणी का स्मरण करते हैं, तो हे उद्धव, हम अपने सारे भौतिक कार्यों को भूल जाते हैं।

सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुन्दपदभूषितान् ।
आक्रीडानीक्ष्यमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सरित्—नदियाँ; शैल—पर्वत; वन—जंगल के; उद्देशान्—तथा विभिन्न भाग; मुकुन्द—कृष्ण के; पद—पाँवों से; भूषितान्—सुशोभित; आक्रीडान्—उनके खेल के स्थान; ईक्ष्यमाणानाम्—देखने वालों के लिए; मनः—मन; याति—प्राप्त करता है; तत्-आत्मताम्—उनमें पूर्ण तल्लीनता।

जब हम उन स्थानों को—यथा नदियों, पर्वतों तथा जंगलों को—देखते हैं, जिन्हें उसने अपने पैरों से सुशोभित किया और जहाँ उसने क्रीड़ाएँ तथा लीलाएँ कीं तो हमारे मन उसमें पूर्णतया लीन हो जाते हैं।

मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ।
सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २ ॥

शब्दार्थ

मन्ये—मैं सोचता हूँ; कृष्णम्—कृष्ण को; च—तथा; रामम्—राम को; च—तथा; प्राप्तौ—प्राप्त कर लिया; इह—इस लोक में; सुर—देवताओं के; उत्तमौ—दो सर्वश्रेष्ठ; सुराणाम्—देवताओं के; महत्—महान्; अर्थाय—हेतु; गर्गस्य—गर्ग मुनि का; वचनम्—कथन; यथा—जैसा।

मेरे विचार से कृष्ण तथा बलराम अवश्य ही दो श्रेष्ठ देवता हैं, जो इस लोक में देवताओं का

कोई महान् उद्देश्य पूरा करने आये हैं। गर्ग ऋषि ने ऐसी ही भविष्यवाणी की थी।

**कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं यथा ।
अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥ २४॥**

शब्दार्थ

कंसम्—कंस को; नाग—हाथियों की; अयुत—दस हजार; प्राणम्—प्राण-शक्ति वाले; मल्लौ—दो पहलवान (चाणूर तथा मुष्टिक); गज-पतिम्—हाथियों के राजा (कुवलयापीड) को; यथा—जिस तरह; अवधिष्टाम्—दोनों ने मार डाला; लीलया—खेल-खेल में; एव—केवल; पशून्—पशुओं को; इव—सदृश; मृग-अधिपः—पशुओं का राजा सिंह।

अन्ततः कृष्ण तथा बलराम ने दस हजार हाथियों जितने बलशाली कंस को और साथ ही साथ चाणूर और मुष्टिक पहलवानों एवं कुवलयापीड हाथी को मार डाला। उन्होंने इन सबों को उसी तरह खेल-खेल में आसानी से मार डाला जिस तरह सिंह छोटे पशुओं का सफाया कर देता है।

तात्पर्य : यहाँ पर नन्द यह कहना चाहते हैं कि "न केवल गर्ग मुनि ने यह घोषित किया था कि ये बालक दैवी हैं किन्तु जरा देखो न! उन्होंने क्या कर दिखाया है! सारे लोग इसी की चर्चा चला रहे हैं।"

**तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ।
बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५॥**

शब्दार्थ

ताल-त्रयम्—तीन ताड़ों जितना लम्बा; महा-सारम्—अत्यन्त ठोस; धनुः—धनुष; यष्टिम्—डंडा; इव—सदृश; इभ-राट्—शाही हाथी; बभञ्ज—तोड़ दिया; एकेन—एक; हस्तेन—हाथ से; सप्त-अहम्—सात दिनों तक; अदधात्—पकड़े रहे; गिरिम्—पर्वत को।

जिस आसानी से कोई तेजस्वी हाथी किसी छड़ी को तोड़ देता है उसी तरह से कृष्ण ने तीन ताल जितने लम्बे एवं सुदृढ़ धनुष को तोड़ डाला। वे सात दिनों तक पर्वत को केवल एक हाथ से ऊपर उठाये रहे।

तात्पर्य : आचार्य विश्वनाथ के अनुसार, *ताल* का वृक्ष लगभग ६० हाथ या ९० फुट की माप के बराबर होता है। इस तरह कृष्ण ने २७० फुट लम्बा धनुष तोड़ डाला।

**प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ।
दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६॥**

शब्दार्थ

प्रलम्बः धेनुकः अरिष्टः—प्रलम्ब, धेनुक तथा अरिष्ट; तृणावर्तः—तृणावर्त; बक-आदयः—बक इत्यादि; दैत्याः—असुर; सुर-असुर—देवता तथा असुर दोनों; जितः—जीता; हताः—मारा; येन—जिसके द्वारा; इह—यहाँ (वृन्दावन में); लीलया—आसानी से।

इसी वृन्दावन में कृष्ण तथा बलराम ने बड़ी ही आसानी से प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त तथा बक जैसे उन असुरों का वध किया जो स्वयं देवताओं तथा अन्य असुरों को पराजित कर चुके थे।

श्रीशुक उवाच
इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ।
अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; संस्मृत्य संस्मृत्य—बार बार उत्कट भाव से स्मरण करके; नन्दः—नन्द महाराज; कृष्ण—कृष्ण के प्रति; अनुरक्त—पूर्णतया समर्पित; धीः—मन; अति—अत्यन्त; उत्कण्ठः—उत्सुक; अभवत्—हो गये; तूष्णीम्—मौन; प्रेम—अपने शुद्ध-प्रेम के; प्रसर—वेग से; विह्वलः—अभिभूत।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह बारम्बार कृष्ण को उत्कटता से स्मरण करते हुए, भगवान् में पूर्णतया अनुरक्त मन वाले नन्द महाराज को अत्यधिक उद्विग्नता का अनुभव हुआ और वे अपने प्रेम के वेग से अभिभूत होकर मौन हो गये।

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ।
शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८॥

शब्दार्थ

यशोदा—माता यशोदा; वर्ण्यमानानि—वर्णन किये जाते हुए; पुत्रस्य—अपने पुत्र के; चरितानि—कार्यकलापों को; च—तथा; शृण्वन्ती—ज्योंही सुना; अश्रूणि—आँसू; अवास्राक्षीत्—ढारने लगीं; स्नेह—स्नेह के कारण; स्नुत—गीले; पयोधरा—उनके स्तन।

ज्योंही माता यशोदा ने अपने पुत्र के कार्यकलापों का वर्णन सुना त्योंही उनके आँखों से आँसू बहने लगे और प्रेम के कारण उनके स्तनों से दूध बहने लगा।

तात्पर्य : जिस दिन कृष्ण ने मथुरा के लिए प्रस्थान किया था उस दिन से यद्यपि सैकड़ों नर-नारी यशोदा को सान्त्वना देते और समझाते रहे किन्तु उन्हें अपने पुत्र के मुखड़े के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखता था। वे सबों से अपनी आँखें फेर करके निरन्तर विलाप करती रहती थीं। इस तरह वे उद्धव को न तो पहचान पाईं, न उन्हें वात्सल्य-प्रेम प्रदर्शित कर सकीं, न ही अपने पुत्र के विषय में

उनसे कोई प्रश्न पूछ पाईं और न ही अपने पुत्र के लिए कोई संदेश दे पाईं। वे केवल कृष्ण–प्रेम में विह्वल थीं।

तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ।
वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों का; इत्थम्—इस प्रकार से; भगवति—भगवान् के लिए; कृष्णे—कृष्ण; नन्द-यशोदयोः—नन्द तथा यशोदा का; वीक्ष्य—स्पष्ट देखकर; अनुरागम्—प्रेममय आकर्षण; परमम्—परम; नन्दम्—नन्द से; आह—बोले; उद्धवः—उद्धव; मुदा—हर्षपूर्वक।

तब भगवान् कृष्ण के प्रति नन्द तथा यशोदा के परम अनुराग को स्पष्ट देखकर उद्धव ने हर्षपूर्वक नन्द से कहा।

तात्पर्य : यदि उद्धव ने नन्द तथा यशोदा को कष्ट भोगते देखा होता तो वे हर्ष व्यक्त न करते। किन्तु वास्तव में आध्यात्मिक स्तर पर सारी भावनाएँ दिव्य आनन्द होती हैं। शुद्ध–भक्तों का तथाकथित रोष प्रेम–भाव का दूसरा रूप है। उद्धव ने इसे स्पष्ट देखा था इसीलिए वे इस प्रकार बोले।

श्रीउद्धव उवाच
युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ।
नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ० ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; युवाम्—तुम दोनों; श्लाघ्यतमौ—सर्वाधिक प्रशंसनीय; नूनम्—निश्चय ही; देहिनाम्—देहधारी जीवों का; इह—इस संसार में; मन-द—हे सम्माननीय; नारायणे—भगवान् नारायण के लिए; अखिल-गुरौ—सबों के गुरु; यत्—क्योंकि; कृता—उत्पन्न; मतिः—मानसिकता; ईदृशी—इस प्रकार की।

श्री उद्धव ने कहा : हे माननीय नन्द, सम्पूर्ण जगत में निश्चय ही आप तथा माता यशोदा सर्वाधिक प्रशंसनीय हैं क्योंकि आपने समस्त जीवों के गुरु भगवान् नारायण के प्रति ऐसा प्रेम–भाव उत्पन्न कर रखा है।

तात्पर्य : नन्द के इस भाव को समझते हुए जो उन्होंने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया था कि *मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ* (मैं सोचता हूँ कि कृष्ण तथा राम दो श्रेष्ठ देवता हैं) उद्धव ने यहाँ कृष्ण को भगवान् नारायण कहा है।

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी

रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ।
अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य
ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ १ ॥

शब्दार्थ

एतौ—ये दोनों; हि—निस्सन्देह; विश्वस्य—ब्रह्माण्ड के; च—तथा; बीज—बीज; योनी—तथा गर्भ; रामः—बलराम; मुकुन्दः—कृष्ण; पुरुषः—सृजन करने वाले भगवान्; प्रधानम्—उनकी सृजन शक्ति; अन्वीय—प्रवेश करके; भूतेषु—सारे जीवों के भीतर; विलक्षणस्य—भ्रमित या अनुभव करते; ज्ञानस्य—ज्ञान का; च—तथा; ईशाते—नियंत्रण करते हैं; इमौ—दोनों; पुराणौ—प्राचीन, आदि।

मुकुन्द तथा बलराम—ये दोनों विभु ब्रह्माण्ड के बीज तथा योनि, स्रष्टा तथा उनकी सृजन शक्ति हैं। ये जीवों के हृदयों में प्रवेश करके उनकी बद्ध जागरूकता को नियंत्रित करते हैं। ये आदि परम पुरुष हैं।

तात्पर्य : *विलक्षण* शब्द का अर्थ या तो ''स्पष्ट अनुभव करते'' या ''दिग्भ्रमित है जो प्रसंग के अनुसार 'वि' उपसर्ग को समझकर निकाला जाता है।'' प्रबुद्ध जीवों के पक्ष में *विलक्षण* का अर्थ है ''शरीर तथा आत्मा के सही अन्तर की अनुभूति।'' इस तरह से जैसाकि *ईशाते* शब्द से सूचित है भगवान् कृष्ण आध्यात्मिक रूप से प्रगति करने वाले व्यक्ति का मार्गदर्शन करते हैं। *विलक्षण* का दूसरा अर्थ ''दिग्भ्रमित'' या ''मोहग्रस्त'' है, जो उन पर स्पष्ट रूप से लागू होता है जिन्होंने आत्मा तथा शरीर के अन्तर को या जीवात्मा तथा परमात्मा के अन्तर को ठीक से नहीं समझा है। ऐसे मोहग्रस्त जीव भगवान् के धाम को—नित्य वैकुण्ठ लोक को—नहीं जाते अपितु प्रकृति के नियमानुसार क्षणिक गन्तव्य प्राप्त करते हैं।

वैष्णव साहित्य से ज्ञात होता है कि श्रीराम बलराम हैं, जो कृष्ण के स्वांश होने से उनके संग रहते हैं और उनसे सर्वथा अभिन्न हैं। भगवान् एक हैं फिर भी वे अपना विस्तार करते हैं और इस तरह बलराम एकेश्वरवाद से समझौता नहीं करते।

यस्मिन्जनः प्राणवियोगकाले
क्षनं समावेश्य मनोऽविशुद्धम् ।
निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति
परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ २ ॥
तस्मिन्भवन्तावखिलात्महेतौ
नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ।
भावं विधत्तां नितरां महात्मन्

किं वावशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसमें; जनः—कोई व्यक्ति; प्राण—अपने प्राण से; वियोग—विरह के; काले—समय पर; क्षणम्—क्षण-भर के लिए; समावेश्य—लीन करके; मनः—अपना मन; अविशुद्धम्—अशुद्ध; निर्हृत्य—समूल नष्ट करके; कर्म—कर्मों के फलों का; आशयम्—सारे चिह्न; आशु—तुरन्त; याति—जाता है; पराम्—परम; गतिम्—गन्तव्य को; ब्रह्म-मयः—शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप में; अर्क—सूर्य की तरह; वर्णः—रंग; तस्मिन्—उसमें; भवन्तौ—आप दोनों; अखिल—समस्त; आत्म—परमात्मा; हेतौ—तथा कारण; नारायणे—भगवान् नारायण में; कारण—हर वस्तु का कारण; मर्त्य—मनुष्य के; मूर्तौ—रूप में; भावम्—शुद्ध-प्रेम; विधत्ताम्—दिया है; नितराम्—अत्यधिक; महा-आत्मन्—पूर्ण को; किम् वा—तो क्या; अवशिष्टम्—शेष; युवयोः—तुम दोनों के लिए; सु-कृत्यम्—आवश्यक शुभ कर्म।

कोई भी व्यक्ति, चाहे वह अशुद्ध अवस्था में ही क्यों न हो, यदि मृत्यु के समय क्षण-भर के लिए भी अपने मन को उन (भगवान्) में लीन कर देता है, तो उसके सारे पापमय कर्मों के फल भस्म हो जाते हैं जिससे उनका नाम-निशान भी नहीं रह जाता और वह सूर्य के समान तेजस्वी शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप में परम दिव्य गन्तव्य को प्राप्त करता है। आप दोनों ने उन मनुष्य-रूप भगवान् नारायण की अद्वितीय प्रेमाभक्ति की है, जो सबों के परमात्मा हैं और सारे प्राणियों के कारण-स्वरूप हैं और जो सबों के मूल कारण हैं। भला अब भी आपको कौन-से शुभ कर्म करने की आवश्यकता है?

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ।
प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

आगमिष्यति—वापस आयेगा; अदीर्घेण—अल्प; कालेन—समय में; व्रजम्—व्रज में; अच्युतः—अच्युत कृष्ण; प्रियम्—तुष्टि; विधास्यते—देगा; पित्रोः—अपने माता-पिता को; भगवान्—भगवान्; सात्वताम्—भक्तों का; पतिः—स्वामी तथा रक्षक।

भक्तों के स्वामी अच्युत कृष्ण शीघ्र ही अपने माता-पिता को तुष्टि प्रदान करने के लिए व्रज लौटेंगे।

तात्पर्य : अब यहाँ से उद्धव कृष्ण का सन्देश सुनाते हैं।

हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् ।
यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

हत्वा—मारकर; कंसम्—कंस को; रङ्ग—रंगभूमि के; मध्ये—बीच में; प्रतीपम्—शत्रु; सर्व-सात्वताम्—समस्त यदुओं का; यत्—जो; आह—कहा; वः—तुमसे; समागत्य—वापस आकर; कृष्णः—कृष्ण ने; सत्यम्—सत्य; करोति—करेगा; तत्—वही।

रंगभूमि में समस्त यदुओं के शत्रु कंस का वध कर चुकने के बाद अब कृष्ण वापस आकर

आपको दिये गये वचन को अवश्य ही पूरा करेंगे।

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथ: कृष्णमन्तिके ।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मा खिद्यतम्—आप शोक न करें; महा-भागौ—हे दोनों भाग्यशाली जन; द्रक्ष्यथ:—देखेंगे; कृष्णम्—कृष्ण को; अन्तिके—निकट भविष्य में; अन्त:—भीतर; हृदि—हृदयों में; स:—वह; भूतानाम्—सारे जीवों के; आस्ते—उपस्थित है; ज्योति:—अग्नि; इव—सदृश; एधसि—काठ के भीतर।

हे भाग्यशालीजनो, आप शोक मत करें। आप शीघ्र ही कृष्ण को देख सकेंगे। वे समस्त जीवों के हृदयों में उसी तरह विद्यमान हैं जिस तरह काष्ठ में अग्नि सुप्त रहती है।

तात्पर्य : उद्धव समझ गये थे कि नन्द तथा यशोदा कृष्ण को देखने के लिए अधीर थे, अत: उन्होंने उन्हें विश्वास दिलाया कि कृष्ण शीघ्र ही आयेंगे।

न ह्यस्यास्ति प्रिय: कश्चिन्नाप्रियो वास्त्यमानिन: ।
नोत्तमो नाधमो वापि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अस्य—उसके लिए; अस्ति—है; प्रिय:—प्रिय; कश्चित्—कोई; न—नहीं; अप्रिय:—अप्रिय; वा—अथवा; अस्ति—है; अमानिन:—सम्मान पाने की इच्छा से रहित; न—नहीं; उत्तम:—श्रेष्ठ; न—नहीं; अधम:—निम्न; वा—अथवा; अपि—भी; समानस्य—अन्यों का आदर करने वाले के लिए; आसम:—नितान्त सामान्य; अपि—भी; वा—अथवा।

उनके लिए कोई न तो विशेष प्रिय है, न अप्रिय; न तो श्रेष्ठ है न निम्न है; फिर भी वे किसी से अन्यमनस्क नहीं हैं। वे सम्मान पाने की सारी इच्छा से रहित हैं फिर भी वे सबों का सम्मान करते हैं।

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादय: ।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं है; माता—माता; न—न तो; पिता—पिता; तस्य—उनका; न—नहीं; भार्या—पत्नी; न—न तो; सुत-आदय:—पुत्र इत्यादि; न—न कोई; आत्मीय:—अपने से सम्बद्ध; न—न तो; पर:—बाहरी, पराया; च अपि—भी; न—नहीं; देह:—शरीर; जन्म—जन्म; एव—या तो; च—तथा।

न तो उनके माता है, न पिता, न पत्नी, न पुत्र या अन्य कोई सम्बन्धी। उनसे किसी का सम्बन्ध नहीं है फिर भी उनका कोई पराया नहीं है। न तो उनका भौतिक शरीर है, न कोई जन्म।

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ।
क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ९॥

शब्दार्थ

न—नहीं है; च—तथा; अस्य—इसका; कर्म—कर्म; वा—अथवा; लोके—इस जगत में; सत्—शुद्ध; असत्—अशुद्ध; मिश्र—या मिश्रित; योनिषु—योनियों में; क्रीडा—खिलवाड़ के; अर्थम्—लिए; सः—वह; अपि—भी; साधूनाम्—अपने साधु-भक्तों की; परित्राणाय—रक्षा करने के लिए; कल्पते—प्रकट होता है।

उन्हें इस जगत में ऐसा कोई कर्म करना शेष नहीं जो उन्हें शुद्ध, अशुद्ध या मिश्रित योनियों में जन्म लेने के लिए बाध्य कर सके। फिर भी अपनी लीलाओं का आनन्द लेने और अपने साधु-भक्तों का उद्धार करने के लिए वे स्वयं प्रकट होते हैं।

सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ।
क्रीडन्नतीतोऽपि गुणैः सृजत्यवन्हन्त्यजः ॥ ४०॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतो गुण; रजः—रजो गुण; तमः—तथा तमो गुण; इति—इस प्रकार कहे जाने वाले; भजते—स्वीकार करता है; निर्गुणः—भौतिक गुणों से परे; गुणान्—गुणों को; क्रीडन्—क्रीड़ा करते हुए; अतीतः—परे; अपि—यद्यपि; गुणैः—गुणों के द्वारा; सृजति—सृजन करता है; अवति—पालन-पोषण करता है; हन्ति—तथा संहार करता है; अजः—अजन्मा भगवान्।

यद्यपि दिव्य भगवान् भौतिक प्रकृति के तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों—से परे हैं फिर भी क्रिड़ा के रूप में वे इनकी संगति स्वीकार करते हैं। इस तरह अजन्मा भगवान् इन भौतिक गुणों का उपयोग सृजन, पालन तथा संहार के लिए करते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि *ब्रह्मसूत्र* (२.१.४) में कहा गया है— *लोकवत् लीलाकैवल्यम्*—भगवान् अपनी आध्यात्मिक लीलाएँ इस तरह करते हैं मानो वे इस जगत के वासी हों।

यद्यपि भगवान् न किसी का पक्ष लेते हैं न ही किसी के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, तो भी इस जगत में हमें सुख तथा दुख दिख जाते हैं। *गीता* (१.२२) में कहा गया है— *कारणं गुणसंगोऽस्य*—हम प्रकृति के विभिन्न गुणों के साथ संगति चाहते हैं अतः हमें परिणामों को स्वीकार करना ही पड़ता है। भगवान् हमें प्रकृति रूपी क्षेत्र प्रदान करते हैं जिसमें हम पूरी स्वच्छन्दता बरत सकते हैं। मूर्ख अभक्तजन भगवान् की प्रकृति का दुरुपयोग करते हुए भगवान् को ठगने की कोशिश करते हैं किन्तु जब उन्हें कर्म-फल भोगना पड़ता है, तो वे अपने दुष्कर्मों के लिए भगवान् को कोसते हैं। जो लोग ईश्वर से ईर्ष्या करते हैं उनकी ऐसी लज्जाजनक स्थिति होती है।

यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ।
चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; भ्रमरिका—घुमरी के कारण; दृष्ट्या—किसी की दृष्टि में; भ्राम्यति—घूमते हुए; इव—मानो; मही—पृथ्वी; ईयते—प्रकट होता है; चित्ते—मन में; कर्तरि—कर्ता होने से; तत्र—वहाँ; आत्मा—आत्मा; कर्ता—कर्ता; इव—सदृश; अहम्-धिया—मिथ्या अहंकार से; स्मृतः—सोचा जाता है।

जिस तरह चक्री में घूमने वाला व्यक्ति धरती को घूमता देखता है उसी तरह जो व्यक्ति मिथ्या अहंकार के वशीभूत होता है, वह अपने को कर्ता मानता है, जबकि वास्तव में उसका मन कार्य करता होता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने एक समानान्तर विचार प्रस्तुत किया है—यद्यपि हमारे सुख-दुख प्रकृति के साथ हमारी क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं किन्तु हम भगवान् को ही उनका कारण मानते हैं।

युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान्हरिः ।
सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

युवयोः—तुम दोनों का; एव—अकेले; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अयम्—यह; आत्म-जः—पुत्र; भगवान्—भगवान्; हरिः—कृष्ण; सर्वेषाम्—सबों का; आत्म-जः—पुत्र; हि—निस्सन्देह; आत्मा—आत्मा; पिता—पिता; माता—माता; सः—वह; ईश्वरः—नियन्ता।

निश्चय ही भगवान् हरि एकमात्र आपके पुत्र नहीं हैं, प्रत्युत भगवान् होने के कारण वे हर एक के पुत्र, आत्मा, पिता तथा माता हैं।

दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्
स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ।
विनाच्युताद्वस्तु तरां न वाच्यं
स एव सर्वं परमात्मभूतः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

दृष्टम्—देखा हुआ; श्रुतम्—सुना हुआ; भूत—भूतकाल; भवत्—वर्तमान्; भविष्यत्—भविष्य; स्थास्नुः—अचल; चरिष्णुः—चल; महत्—विशाल; अल्पकम्—क्षुद्र; च—तथा; विना—के बिना; अच्युतात्—अच्युत कृष्ण से; वस्तु—वस्तु; तराम्—तनिक भी; न—नहीं है; वाच्यम्—नाम लेने के योग्य; सः—वह; एव—अकेले; सर्वम्—हर वस्तु; परम-आत्म—परमात्मा रूप में; भूतः—प्रकट।

भगवान् अच्युत से किसी भी वस्तु का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है—चाहे वह भूत से या वर्तमान से अथवा भविष्य से सम्बन्धित हो, वह देखी हो या सुनी हो, चर हो या अचर हो, विशाल हो या

क्षुद्र। दरअसल वे ही सर्वस्व हैं क्योंकि वे परमात्मा हैं।

तात्पर्य : श्री उद्धव नन्द तथा यशोदा को उच्चतर दार्शनिक धरातल पर लाकर उनके दुख को दूर कर रहे हैं। वे बता रहे हैं कि क्योंकि कृष्ण सर्वस्व हैं और हर एक के भीतर उपस्थित हैं अत: उनके शुद्ध-भक्त सदैव उनके साथ रहते हैं।

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता
नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ।
गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्
वास्तून्समभ्यर्च्य दौधीन्यमन्थुन् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; निशा—रात; सा—वह; ब्रुवतोः—दोनों के बातचीत करते; व्यतीता—बीत गई; नन्दस्य—नन्द महाराज का; कृष्ण-अनुचरस्य—तथा कृष्ण का दास (उद्धव); राजन्—हे राजा (परीक्षित); गोप्यः—गोपियाँ; समुत्थाय—नींद से उठ कर; निरूप्य—जलाकर; दीपान्—दीपकों को; वास्तून्—घरेलू अर्चाविग्रहों को; समभ्यर्च्य—पूजा करके; दधीनि—दही; अमन्थन्—मथने लगीं।

हे राजन् जब कृष्ण के दूत उद्धव नन्द महाराज से बातें करे जा रहे थे तो रात बीत गई। गोकुल की स्त्रियाँ तब नींद से जग गई और उन्होंने दीपक जलाकर अपने अपने घरों के अर्चाविग्रहों की पूजा की। इसके बाद वे दही मथने लगीं।

ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू
रज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः ।
चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डल-
त्विषत्कपोलारुणकुङ्कुमाननाः ॥ ४५॥

शब्दार्थ

ताः—वे स्त्रियाँ; दीप—दीपकों द्वारा; दीप्तैः—दीपित; मणिभिः—मणियों से; विरेजुः—चमक रही थीं; रज्जूः—रस्सियाँ; विकर्षत्—खींचते हुए; भुज—अपनी भुजाओं में; कङ्कण—चूड़ियों की; स्रजः—पंक्तियाँ; चलन्—हिलाती; नितम्ब—कटि के नीचे का भाग; स्तन—वक्षस्थल; हार—तथा गले की दुलरी; कुण्डल—कान की बालियों के कारण; त्विषत्—चमचमाते; कपोल—गाल; अरुण—लाल; कुङ्कुम—कुंकुम चूर्ण से; आननाः—उनके मुखमंडल।

जब व्रज की स्त्रियाँ कंगन पहने हुए हाथों से मथानी की रस्सियाँ खींच रही थीं तो वे दीपक के प्रकाश से प्रतिबिम्बित मणियों की चमक से दीपित हो रही थीं। उनके नितम्ब, स्तन तथा गले के हार हिल-डुल रहे थे और लाल कुंकुम से पुते उनके मुखमण्डल, गालों पर पड़ी कान की बालियों की चमक से चमचमा रहे थे।

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं
व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो
निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

उद्गायतीनाम्—जोर से गाती हुईं; अरविन्द—कमलों की तरह; लोचनम्—नेत्र; व्रज-अङ्गनानाम्—व्रज की स्त्रियों के; दिवम्—आकाश; अस्पृशत्—स्पर्श किया; ध्वनिः—ध्वनि, गूँज; दध्नः—दही का; च—तथा; निर्मन्थन—मथने का; शब्द—शब्द से; मिश्रितः—मिश्रित; निरस्यते—दूर हो जाती है; येन—जिससे; दिशाम्—सभी दिशाओं का; अमङ्गलम्—अमंगल।

जब व्रज की स्त्रियाँ कमल-नेत्र कृष्ण की महिमा का गायन जोर-जोर से करने लगीं तो उनके गीत उनके मथने की ध्वनि से मिल कर आकाश तक उठ गये और उन्होंने सारी दिशाओं के अमंगल को दूर कर दिया।

तात्पर्य : गोपियाँ कृष्ण के विचार में लीन थीं अतः वे उनकी उपस्थिति का अनुभव कर रही थीं। इसीलिए वे हर्षित होकर गा सकीं।

भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः ।
दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

भगवति—देव; उदिते—उदय होने पर; सूर्ये—सूर्य के; नन्द-द्वारि—नन्द महाराज के दरवाजे; व्रज-ओकसः—व्रज के निवासी; दृष्ट्वा—देखकर; रथम्—रथ को; शातकौम्भम्—स्वर्ण से बने; कस्य—किसका; अयम्—यह; इति—इस प्रकार; च—तथा; अब्रुवन्—वे बोले।

जब सूर्यदेव उदित हो चुके तो व्रजवासियों ने नन्द महाराज के दरवाजे के सामने एक सुनहरा रथ देखा। (अतः) उन्होंने पूछा, "यह किसका रथ है?"

अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ।
येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अक्रूरः—अक्रूर; आगतः—आया है; किम् वा—शायद; यः—जो; कंसस्य—कंस के; अर्थ—कार्य के लिए; साधकः—सम्पन्न करने वाला; येन—जिससे; नीतः—लाया गया; मधु-पुरीम्—मथुरा नगरी में; कृष्णः—कृष्ण; कमल—कमल सदृश; लोचनः—आँखों वाले।

"शायद अक्रूर लौट आया है—वही जिसने कमल-नेत्र कृष्ण को मथुरा ले जाकर कंस की इच्छा पूरी की थी।

तात्पर्य : गोपियाँ क्रुद्ध होकर यह कह रही थीं।

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ।
ततः स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; साधयिष्यति—सम्पन्न करेगा; अस्माभिः—हमसे; भर्तुः—स्वामी का; प्रीतस्य—तुष्ट रहने वाले का; निष्कृतिम्—पिण्डदान; ततः—तत्पश्चात्; स्त्रीणाम्—स्त्रियाँ; वदन्तीनाम्—बोलती हुईं; उद्धवः—उद्धव; अगात्—वहाँ आया; कृत—करके; अह्निकः—प्रातःकालीन धार्मिक कृत्य।

जब स्त्रियाँ इस तरह बोल ही रही थीं कि, ''क्या वह अपनी सेवाओं से प्रसन्न हुए अपने स्वामी के पिण्डदान के लिए हमारे मांस को अर्पित करने जा रहा है?'' तभी प्रातःकालीन कृत्यों से निवृत्त हुए उद्धव दिखलाई पड़े।

तात्पर्य : इस श्लोक में अक्रूर द्वारा कृष्ण को ले जाये जाने से उत्पन्न गोपियों की घोर निराशा प्रकट होती है। किन्तु उन्हें आश्चर्य होगा जब वे देखेंगी कि यह अनपेक्षित अतिथि उद्धव है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''उद्धव की वृन्दावन यात्रा'' नामक छियालिसवें अध्याय के श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सैंतालीस

भ्रमर गीत

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह भगवान् श्रीकृष्ण के आदेश से उद्धव ने गोपियों को भगवान् का सन्देश दिया, उन्हें ढाढ़स बँधाया और फिर मथुरा लौट गये।

जब व्रज की तरुणियों ने पीतवस्त्र तथा आकर्षक कुण्डल पहने कमल जैसे नेत्रों वाले उद्धव को देखा तो वे चकित थीं कि यह कृष्ण से कितना मिलता-जुलता रहा है। यह सोचते हुए कि यह कौन है, वे उद्धव के पास गईं और उन्हें घेर लिया। जब उन्हें लगा कि कृष्ण ने ही उन्हें भेजा होगा तो वे उन्हें एकान्त स्थान में ले गईं जहाँ उद्धव उनसे गोपनीय ढंग से अपने मन की बात कह सकें।

तत्पश्चात् गोपियाँ कृष्ण के साथ खेली गईं लीलाओं का स्मरण करने लगीं और सारी लाज-हया छोड़कर जोर जोर से रोने लगीं। एक गोपी कृष्ण के साथ अपने सान्निध्य के विषय में गम्भीर ध्यान लगाने लगी तो उसने अपने समक्ष एक भौंरा देखा। इस भौंरे को कृष्ण का दूत समझ कर उसने कहा, ''जिस तरह भौंरे विभिन्न फूलों के बीच मँडराते रहते हैं उसी तरह कृष्ण ने व्रज की तरुणियों को छोड़

दिया है और अन्य स्त्रियों से स्नेह उत्पन्न कर लिया है।'' यह गोपी ऐसे ही अपने कल्पित दुर्भाग्य एवं अपनी प्रतिद्वन्द्विनी प्रेमिका के सौभाग्य के बारे में प्रलाप करती रही और पूरे समय भगवान् कृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं का गुणगान करती रही। तत्पश्चात् उसने घोषित किया कि भले ही कृष्ण ने गोपियों का परित्याग कर दिया हो किन्तु गोपियाँ उन्हें क्षण-भर के लिए भी नहीं भुला सकतीं।

उद्धव ने व्रज की इन गोपियों को जो कृष्ण को एक बार पुन: देखने के लिए उत्सुक थीं, ढाढ़स बँधाने का प्रयास किया। उद्धव ने बतलाया, ''जहाँ भगवान् कृष्ण का दास बनने के लिए सामान्य पुरुषों को अनेक पुण्य करने पड़ते हैं वहाँ हे सीधी-सादी गोपियो! तुम इतनी भाग्यशालिनी हो कि भगवान् ने तुम सबों को अपनी शुद्धभक्ति प्रदान करने की कृपा की है।'' तत्पश्चात् उद्धव ने उनसे भगवान् का सन्देश कह सुनाया।

उद्धव ने कृष्ण का उद्धरण देते हुए कहा, ''मैं परमात्मा हूँ और सबों का परम आश्रय हूँ। मैं अपनी शक्तियों से ब्रह्माण्डों का सृजन, पालन तथा संहार करता हूँ। मैं तुम गोपियों को अत्यन्त प्रिय हूँ किन्तु अपने प्रति तुम सबों का आकर्षण बढ़ाने और तुम्हारी स्मृति को प्रखर बनाने के लिए ही मैंने तुम सबों को छोड़ा है। आखिर, जब किसी स्त्री का प्रेमी उससे दूर रहता है, तो वह सदा उसी पर चित्त टिकाये रखती है। निरन्तर मेरा स्मरण करते रहने से तुम पुन: अविलम्ब मेरा सान्निध्य प्राप्त कर सकोगी।''

तब गोपियों ने उद्धव से पूछा, ''अब कंस के मरने से कृष्ण प्रसन्न तो हैं और अपने परिवार वालों तथा मथुरा की स्त्रियों की संगति का आनंद उठा सकते हैं न? क्या वे अब भी हमारे साथ खेली गयी सारी लीलाओं जैसे रासनृत्य का स्मरण करते हैं? क्या वे पुन: हमारे समक्ष प्रकट होकर हमें उसी तरह आनन्दित कर सकेंगे जिस तरह इन्द्र अपनी वर्षा से ग्रीष्म के ताप से पीड़ित जंगलों को पुन: जीवन प्रदान करते हैं? यद्यपि हम जानती हैं कि त्याग से ही सर्वोच्च सुख प्राप्त होता है किन्तु हम कृष्ण को पाने की आशा इसलिए नहीं त्याग पातीं क्योंकि सारी व्रजभूमि में उनके चरणकमलों के चिह्न अब भी अंकित हैं, जो हमें उनकी मन्द चाल, उदार मुस्कानों तथा मधुर बातों का स्मरण कराते हैं। इन सबों ने हमारे चित्त को चुरा लिया है।''

ऐसा कहकर गोपियाँ जोर जोर से कृष्ण के नामों का उच्चारण यह कहकर करने लगीं, ''हे गोविन्द! आकर हमारे कष्टों को दूर करो।'' तब उद्धव ने ऐसे कथनों द्वारा उन्हें सान्त्वना दी जिनसे

उनकी वियोग-पीड़ा दूर हो गई और वे उद्धव को श्रीकृष्ण से अभिन्न मानकर उनकी पूजा करने लगीं।

उद्धव व्रज प्रदेश में कई मास रुके रहे और वहाँ के वासियों को कृष्ण के विषय में तरह तरह से स्मरण कराकर उन्हें आनन्दित करते रहे। कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम का विस्तार देखकर अत्यन्त प्रसन्न-मन उद्धव ने घोषित किया, ''इन गोपियों ने कृष्ण के प्रति अनन्यप्रेम का पद प्राप्त कर अपने अपने जीवन को सफल बना लिया है। निस्सन्देह इनके आगे ब्रह्मा भी निकृष्ट लगते हैं। कृष्ण के वक्षस्थल पर निवास करने वाली साक्षात् लक्ष्मी जी भी वह कृपा प्राप्त नहीं कर सकीं जो इन गोपियों ने रासनृत्य के समय प्राप्त की थी जिसमें कृष्ण ने अपनी विशाल भुजाओं से उनका आलिंगन किया था। तो भला अन्य स्त्रियों के बारे में क्या कहा जा सकता है? निस्सन्देह मैं एक झाड़ी या लता का भी जन्म लेकर अपने को परम धन्य मानूँगा जिससे इन गोपियों की चरण-रज से स्पर्श प्राप्त कर सकूँ।''

अन्त में उद्धव ने मथुरा वापस जाने के लिए नन्द महाराज तथा अन्य गोपों से अनुमति माँगी। नन्द ने उन्हें अनेक उपहार दिये और कृष्ण का सदैव स्मरण करने की शक्ति प्रदान करने के लिए उद्धव से प्रार्थना की। मथुरा लौट कर उद्धव ने बलराम, कृष्ण तथा राजा उग्रसेन को नन्द महाराज द्वारा भेजे गये उपहार प्रदान किये और उन सबों से व्रज के सारे अनुभव कह सुनाये।

श्रीशुक उवाच

तं वीक्ष्य कृषानुचरं व्रजस्त्रियः
प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ।
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्-
मुखारविन्दं परिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥
सुविस्मिताः कोऽयमपीव्यदर्शनः
कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।
इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुका-
स्तमुत्तमःश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तम्—उस; वीक्ष्य—देखकर; कृष्ण-अनुचरम्—भगवान् कृष्ण के अनुचर (उद्धव) को; व्रज-स्त्रियः—व्रज की स्त्रियाँ; प्रलम्ब—नीचे तक; बाहुम्—बाँहों को; नव—नवीन; कञ्ज—कमल सदृश; लोचनम्—आँखों को; पीत—पीला; अम्बरम्—वस्त्र पहने; पुष्कर—कमल की; मालिनम्—माला पहने; लसत्—शोभायमान; मख—मुख; अरविन्दम्—कमल सदृश; परिमृष्ट—परिष्कृत किया; कुण्डलम्—कान का कुण्डल; सु-विस्मिताः—अत्यधिक चकित; कः—कौन; अयम्—यह; अपीव्य—सुन्दर; दर्शनः—दर्शन; कुतः—कहाँ से; च—तथा; कस्य—किसका; अच्युत—कृष्ण का; वेष—वस्त्र धारण किये; भूषणः—तथा आभूषण; इति—इस प्रकार; स्म—निस्सन्देह; सर्वाः—सभी; परिवव्रुः—

घिरे हुए; उत्सुकाः—उत्सुक; तम्—उसको; उत्तमः-श्लोक—भगवान् कृष्ण का, जिनकी प्रशंसा सुन्दर श्लोकों द्वारा की जाती है; पद-अम्बुज—चरणकमल की; आश्रयम्—शरण में आये हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : व्रज की ललनाएँ कृष्ण के अनुचर को देखकर चकित हो गईं। उसके हाथ लम्बे लम्बे थे और आँखें नये खिले कमल जैसी थीं। वह पीत वस्त्र धारण किये था, गले में कमल की माला थी तथा अत्यन्त परिष्कृत किये हुए कुण्डलों से चमकता उसका मुखमण्डल कमल जैसा था। गोपियों ने पूछा, ''यह सुन्दर पुरुष कौन है? यह कहाँ से आया है? यह किसकी सेवा करता है? यह तो कृष्ण के वस्त्र और आभूषण पहने है!'' यह कहकर गोपियाँ उद्धव के चारों ओर उत्सुकता से एकत्र हो गईं जिनका आश्रय भगवान् उत्तमश्लोक श्रीकृष्ण के चरणकमल थे।

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं
सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने
विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; प्रश्रयेण—विनयपूर्वक; अवनताः—झुककर (गोपियाँ); सु—उचित रीति से; सत्-कृतम्—आदर किया; स-व्रीड—लज्जा सहित; हास—तथा हँसते हुए; ईक्षण—चितवनों; सूनृत—मधुर शब्द; आदिभिः—इत्यादि से; रहसि—एकान्त में; अपृच्छन्—पूछा; उपविष्टम्—बैठा हुआ; आसने—आसन पर; विज्ञाय—समझ कर; सन्देश-हरम्—संदेशवाहक; रमा-पतेः—लक्ष्मी के स्वामी का।

विनयपूर्वक अपना शीश झुकाते हुए गोपियों ने अपनी लजीली मुसकराती चितवनों तथा मधुर शब्दों से उद्धव का उचित रीति से सम्मान किया। वे उन्हें एकान्त स्थान में ले गईं, उन्हें आराम से बैठाया और तब उन्हें लक्ष्मीपति कृष्ण का सन्देशवाहक मान कर उनसे प्रश्न करने लगीं।

तात्पर्य : साध्वी गोपियाँ कृष्ण के यहाँ से संदेशवाहक आया देखकर सजीव हो उठीं। जैसाकि वृन्दावन के प्रवास काल में उद्धव पाएँगे, ये अनुपम गोपियाँ अपने प्रिय कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सोच सकीं।

जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ।
भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान्प्रियचिकीर्षया ॥ ४॥

शब्दार्थ

जानीमः—हम जानती हैं; त्वाम्—तुमको; यदु-पतेः—यदुओं के प्रमुख का; पार्षदम्—निजी संगी; समुपागतम्—यहाँ आया; भर्त्रा—अपने स्वामी द्वारा; इह—यहाँ; प्रेषितः—भेजा हुआ; पित्रोः—अपने माता-पिता का; भवान्—आप; प्रिय—सन्तोष, सुख; चिकीर्षया—देने के लिए इच्छुक।

[गोपियों ने कहा] : हम जानती हैं कि आप यदुश्रेष्ठ कृष्ण के निजी पार्षद हैं और अपने उस श्रेष्ठ स्वामी के आदेश से यहाँ आये हैं, जो अपने माता-पिता को सुख प्रदान करने के इच्छुक हैं।

**अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ।
स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥**

शब्दार्थ

अन्यथा—नहीं तो; गो-व्रजे—चरागाह में; तस्य—उसका; स्मरणीयम्—स्मरण करने योग्य; न चक्ष्महे—हम नहीं देखतीं; स्नेह—स्नेह की; अनुबन्धः—आसक्ति; बन्धूनाम्—सम्बन्धियों के लिए; मुनेः—मुनियों के लिए; अपि—भी; सु-दुस्त्यजः—छोड़ पाना मुश्किल।

अन्यथा हमें और कुछ भी ऐसा नहीं दीखता जिसे वे व्रज के इन चरागाहों में स्मरणीय समझते होंगे। निस्सन्देह एक मुनि के लिए भी अपने पारिवारिक जनों का स्नेह-बंधन तोड़ पाना कठिन होता है।

**अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् ।
पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत्सुमनःस्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥**

शब्दार्थ

अन्येषु—अन्यों के प्रति; अर्थ—किसी उद्देश्य से; कृता—प्रकट; मैत्री—मित्रता; यावत्—जब तक; अर्थ—उद्देश्य (जिसे कोई पूरा करता है); विडम्बनम्—बहाना; पुम्भिः—मनुष्यों द्वारा; स्त्रीषु—स्त्रियों के लिए; कृता—दिखलाया गया; यद्वत्—जितना; सुमनःसु—फूलों के लिए; इव—सदृश; षट्-पदैः—भौंरे द्वारा।

किसी अन्य के प्रति, जो पारिवारिक सदस्य नहीं है, दिखलाई जाने वाली मित्रता स्वार्थ से प्रेरित होती है। अतः यह तो एक बहाना होता है, जो तब तक चलता है जबतक किसी का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। ऐसी मित्रता वैसी ही है, जिस तरह कि स्त्रियों के प्रति पुरुषों की या फूलों के प्रति भौंरों की रुचि।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यहाँ व्याख्या करते हैं कि फूलों की ही तरह आकर्षक स्त्रियों में सौन्दर्य, सुगन्ध, सकोमलता, लावण्य इत्यादि होता है। जिस तरह भौंरे एक फूल का मधु एक ही बार पीकर उसे छोड़कर दूसरे फूल पर चले जाते हैं उसी तरह मनचले व्यक्ति सुन्दर तथा पतिपरायणा स्त्रियों को छोड़कर अन्य विषय-भोग में लग जाते हैं। यहाँ पर गोपियाँ ऐसी प्रवृत्ति की

निन्दा करती हैं क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना मन पूर्णतया दे डाला था। गोपियाँ तो भगवान् कृष्ण के सुख के लिए ही अपना आकर्षण दिखलाना चाहती थीं और विरहपीड़ा में वे अपने साथ कृष्ण की मित्रता के उद्देश्यों पर प्रश्न-चिन्ह लगा रही थीं।

ये तो भगवान् की दिव्य लीलाएँ हैं। भगवान् कृष्ण तथा गोपियाँ दोनों ही आध्यात्मिक प्रेम-व्यापार में संलग्न पूर्ण मुक्तात्माएँ हैं। इसके विपरीत हमारे तथाकथित प्रेम-व्यापार, जो कि आध्यात्मिक जगत में पूर्ण प्रेम सम्बन्ध के विकृत प्रतिबिम्ब हैं, काम, लोभ, मद इत्यादि के द्वारा दूषित होते रहते हैं। समस्त मुक्तात्माओं की तरह गोपियाँ तथा निस्संदेह भगवान् कृष्ण स्वयं भी इन अधम गुणों से नित्य मुक्त हैं और उनके प्रखर प्रेम-व्यापार केवल अनन्य भक्ति द्वारा प्रेरित हैं।

नि:स्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ।
अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

नि:स्वम्—सम्पत्तिविहीन को; त्यजन्ति—छोड़ देती हैं; गणिकाः—वेश्याएँ; अकल्पम्—अदक्ष; नृ-पतिम्—राजा को; प्रजः—नागरिक; अधीत-विद्याः—जिन्होंने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है; आचार्यम्—शिक्षक को; ऋत्विजः—पुरोहितगण; दत्त—(यज्ञकर्त्ता द्वारा) दे चुकने पर; दक्षिणम्—दक्षिणा, भेंट।

वेश्याएँ निर्धन व्यक्ति को, प्रजा अयोग्य राजा को, शिक्षा पूरी होने पर विद्यार्थी अपने शिक्षक को तथा पुरोहितगण दक्षिणा पाने के बाद यज्ञ करने वाले व्यक्ति को छोड़ जाते हैं।

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ।
दग्धं मृगास्तथारण्यं जारा भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८॥

शब्दार्थ

खगाः—पक्षीगण; वीत—रहित; फलम्—फलों से; वृक्षम्—वृक्षको; भुक्त्वा—खाने के बाद; च—तथा; अतिथयः—अतिथिगण; गृहम्—घर को; दग्धम्—जले हुए; मृगाः—पशुगण; तथा—उसी प्रकार; अरण्यम्—जंगल को; जाराः—उपपति; भुक्त्वा—भोग करने के बाद; रताम्—आकृष्ट; स्त्रियम्—स्त्री को।

फल न रहने पर पक्षी वृक्ष को, भोजन करने के बाद अतिथि घर को, जंगल जल जाने पर पशु जंगल को तथा प्रेमी के प्रति आकृष्ट रहने के बावजूद भी स्त्री का भोग कर लेने पर प्रेमी उसका परित्याग कर देते हैं।

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ।
कृष्णदूते समायाते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९॥

**गायन्त्यः प्रीयकर्माणि रुदन्त्यश्च गतह्रियः ।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ ॥**

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; गोप्यः—गोपियाँ; हि—निस्सन्देह; गोविन्दे—गोविन्द में; गत—केन्द्रित करके; वाक्—वाणी; काय—शरीर; मानसः—तथा अपने मन; कृष्ण-दूते—कृष्ण के दूत; समायाते—आकर उनके साथ हो लेने वाले; उद्धवे—उद्धव में; त्यक्त—छोड़कर; लौकिकाः—सांसारिक कार्य; गायन्त्यः—गाती हुई; प्रिय—अपने प्रिय के; कर्माणि—कार्यकलापों के विषय में; रुदन्त्यः—फूट फूट कर रोती हुई; च—तथा; गत-ह्रियः—सारी लाज छोड़कर; तस्य—उसकी; संस्मृत्य संस्मृत्य—बार-बार याद करके; यानि—जो; कैशोर—किशोरावस्था; बाल्ययोः—तथा बालपन की।

इस तरह बोलती हुई गोपियों ने जिनके वचन, शरीर तथा मन भगवान् गोविन्द के प्रति पूर्णतया समर्पित थे, अपना नैत्यिक कार्य करना छोड़ दिया क्योंकि अब कृष्णदूत श्री उद्धव उनके बीच आया था। वे अपने प्रिय कृष्ण के बाल्यकाल तथा किशोरावस्था की लीलाओं का अविरत स्मरण करके उनका गुणगान करने लगीं और लाज छोड़कर फूट-फूटकर रोने लगीं।

तात्पर्य : यहाँ *बाल्ययोः* शब्द सूचित करता है कि गोपियाँ अपने बचपन से कृष्ण से प्रेम करती थीं। अतः यद्यपि सामाजिक रीति के अनुसार वे अन्य किसी से अपना प्रेम प्रकट नहीं कर सकती थीं फिर भी वे सारी बाहरी बातें भूल गईं और कृष्णदूत उद्धव के समक्ष खुलकर रोने लगीं।

**काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥**

शब्दार्थ

काचित्—कोई (एक गोपी); मधु-करम्—भौंरे को; दृष्ट्वा—देखकर; ध्यायन्ती—ध्यान में मग्न; कृष्ण-सङ्गमम्—कृष्ण के साथ अपने सान्निध्य के विषय में; प्रिय—अपने प्रिय द्वारा; प्रस्थापितम्—भेजे गये; दूतम्—दूत को; कल्पयित्वा—कल्पना करते हुए; इदम्—यह; अब्रवीत्—बोली।

कोई एक गोपी जब कृष्ण के साथ अपने पूर्व सान्निध्य का ध्यान कर रही थी, तो उसने अपने सामने एक भौंरा देखा और उसे लगा कि यह उसके प्रियतम द्वारा भेजा गया कोई दूत है। अतः वह इस प्रकार बोली।

तात्पर्य : इस श्लोक में श्रीमती राधारानी को *काचित्* ''कोई एक गोपी'' कहकर उल्लेख हुआ है। यह सिद्ध करने के लिए कि यह ''कोई'' वास्तव में श्रीमती राधारानी ही हैं, श्रील जीव गोस्वामी *अग्नि पुराण* से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं।

गोप्यः प्रपच्छुरूषसि कृष्णानुचरमुद्धवम्।

हरिलीला विहारांश्च तत्रैकां राधिकां विना॥

राधा तद्भावसंलीना वासनाया विरामिता।

सखीभिः साभ्यधाच्छुद्धविज्ञानगुणजृम्भितम्॥

इज्यान्तेवासिनां वेदचरमांशविभावनै।

"भोर में गोपियों ने कृष्णदास उद्धव से भगवान् की लीलाओं एवं आमोद–प्रमोद के विषय में पूछताछ की। कृष्ण के विचार में लीन एकमात्र श्रीमती राधारानी ही इस बातचीत से अलग–थलग बनी रही। तब वृन्दावनवासियों द्वारा पूजित राधा अपनी सखियों के बीच बोलीं। उनके शब्द विशुद्ध दिव्य ज्ञान से पूर्ण थे और वेदों के सर्वश्रेष्ठ अंश को व्यक्त करने वाले थे।

भगवद्गीता (१५.१५) में भगवान् कृष्ण कहते हैं—*वेदैश्च् सर्वैरहमेव वेद्यः*—सभी वेदों द्वारा मुझे ही जानना चाहिए। कृष्ण को जानना कृष्ण से प्रेम करना है। इस तरह राधारानी ने अपने ही दृष्टान्त तथा शब्दों से कृष्ण के प्रति अपना चरम प्रेम उद्घाटित किया।

अग्नि पुराण से उपर्युक्त श्लोक उद्धृत करने के बाद श्रील जीव गोस्वामी *नृसिंह–तापनी उपनिषद* से भी (*पूर्व खण्ड* २.४) उद्धृत करते हैं—*यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्म–वादिनश्च*—सारे देवता तथा मुक्ति के इच्छुक सारे दिव्य दार्शनिक भगवान् को ही नमस्कार करते हैं। हमें चाहिए कि हम भी ऐसा ही करें।

गोप्युवाच
मधुप कितवबन्धो मा स्पृशङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

गोपी उवाच—गोपी ने कहा; मधुप—हे भौंरे; कितव—ठग के; बन्धो—हे मित्र; मा स्पृश—मत छूना; अङ्घ्रिम्—पाँवों को; सपत्न्याः—हमारी प्रतियोगिनी प्रेमिका का; कुच—स्तन; विलुलित—गिरी हुई; माला—माला से; कुङ्कुम—लाल रंग का अंगराग; श्मश्रुभिः—मूछों से; नः—हमारे; वहतु—लाने दो; मधु-पतिः—मधुवंश के स्वामी; तत्—उसका; मानिनीनाम्—स्त्रियों के लिए; प्रसादम्—कृपा या दया; यदु-सदसि—यदुओं की राजसभा में; विडम्ब्यम्—उपहास का पात्र; यस्य—जिसका; दूतः—दूत; त्वम्—तुम; ईदृक्—ऐसा।

गोपी ने कहा : हे भौंरे, हे छलिये के मित्र, अपनी उन मूछों से मेरे पाँवों को मत छूना जो उस कुंकुम से लेपित हैं, जो कृष्ण की माला में तब लग जाता था जब वह मेरी सौत के स्तनों द्वारा मर्दित होती थी। कृष्ण अब मथुरा की स्त्रियों को तुष्ट करें। जो व्यक्ति तुम जैसे दूत को भेजेगा

वह यदुओं की सभा में निश्चित रूप से उपहास का पात्र बनेगा।

तात्पर्य : श्रीमती राधारानी भौंरे को कृष्ण का दूत समझकर उसे उलाहना देते हुए परोक्षत: कृष्ण को उलाहना दे रही थीं। उन्होंने भौंरे को *मधुप* अर्थात् ''फूलों के मधु को पीने वाला'' कहा और कृष्ण को *मधुपति* अर्थात् ''मधु का राजा।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि यह श्लोक तथा आगे के नौ श्लोक प्रेमिका द्वारा कहे गये दस प्रकार के उपालम्भों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस श्लोक में *प्रजल्प* के गुणों का वर्णन है जैसाकि श्रील रूप गोस्वामी ने *उज्ज्वल नीलमणि* से(१४.१८२) उदाहरण देते हुए निम्नलिखित श्लोक में बतलाया है—

असूयेर्ष्यामदयुजा योऽवधीरणमुद्रया।

प्रियस्याकौशलोद्‌गार: प्रजल्प: स तु कीर्त्यते॥

''प्रजल्प वह कथन है, जो किसी प्रेमी की कार्य-अकुशलता की निन्दा करता है, जिसमें अनादर व्यक्त होता है। यह ईर्ष्या, द्वेष तथा अभिमान के भाव में कहा जाता है।'' श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि *कितवबन्धो* ईर्ष्या का; *सपत्न्य: से लेकर न: तक का पद* द्वेष का; *मा स्पृश अंघ्रिम* अभिमान का; *वहतु से लेकर प्रसादम्* तक का पद अनादर का और *यदु सदसि* से लेकर श्लोक के अंत तक का पद कृष्ण द्वारा राधारानी के साथ अकुशलतापूर्ण व्यवहार को सूचित करते हैं।

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भवादृक् ।
परिचरति कथं तत्पादपद्मं नु पद्मा
ह्यपि बत हृतचेता ह्युत्तम:श्लोकजल्पै: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सकृत्—एक बार; अधर—होठों का; सुधाम्—अमृत; स्वाम्—अपने; मोहिनीम्—मोहते हुए; पाययित्वा—पिलाकर; सुमनस:—फूल; इव—सदृश; सद्य:—एकाएक; तत्यजे—परित्याग कर दिया; अस्मान्—हमको; भवादृक्—तुम्हारी तरह; परिचरति—सेवा करता है; कथम्—क्यों; तत्—उसका; पद-पद्मम्—चरणकमल; नु—मुझे आश्चर्य होता है; पद्मा—लक्ष्मी; हि अपि—निस्सन्देह, क्योंकि; बत—हाय; हृत—चुराया गया; चेता:—उसका मन; हि—निश्चय ही; उत्तम:-श्लोक—कृष्ण के; जल्पै:—झूठे वचनों से।

केवल एक बार अपने होठों का मोहक अमृत पिलाकर कृष्ण ने सहसा उसी तरह हमारा परित्याग कर दिया है, जिस तरह तुम किसी फूल को तुरन्त छोड़ देते हो। तो फिर यह कैसे

सम्भव है कि देवी पद्मा स्वेच्छा से उनके चरणकमलों की सेवा करती हैं? हाय! इसका उत्तर यही हो सकता है कि उनका चित्त उनके छलपूर्ण शब्दों द्वारा चुरा लिया गया है।

तात्पर्य : इस श्लोक में भी श्रीमती राधारानी श्रीकृष्ण की तुलना भौंरे से करती जा रही हैं और दुखी होने के कारण वे कहती हैं कि लक्ष्मी द्वारा उनके चरणकमलों की निरन्तर सेवा किये जाने का कारण यही हो सकता है कि वे कृष्ण के बहकावे में आ गई हों। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार श्रीमती राधारानी का यह कथन *परिजल्प* का उदाहरण है, जैसाकि *श्री उज्ज्वल-नीलमणि* (१४.१८४) में वर्णित है—

प्रभोर्निर्दयताशाठ्यचापल्याद्युपपादनात् ।

स्वविचक्षणताव्यक्तिर्भंग्या स्यात् परिजल्पितम् ॥

"*परिजल्प* वह कथन है, जो विविध युक्तियों द्वारा किसी की चतुरता को दिखलाता है और जिससे उसके स्वामी की क्रूरता, द्वैतता, अविश्वसनीयता इत्यादि का पता चलता है।"

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूना-
मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ।
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४॥

शब्दार्थ

किम्—क्यों; इह—यहाँ; बहु—अधिक; षट्-अङ्घ्रे—हे षटपद; गायसि—गा रहे हो; त्वम्—तुम; यदूनाम्—यदुओं के; अधिपतिम्—स्वामी के विषय में; अगृहाणाम्—बिना घर-बार वाले; अग्रतः—समक्ष; नः—हमारे; पुराणम्—पुरानी; विजय—अर्जुन के; सख—मित्र का; सखीनाम्—मित्रों के लिए; गीयताम्—गाया जाना चाहिए; तत्—उसकी; प्रसङ्गः—कथाएँ; क्षपित—दूर हुई; कुच—जिनके स्तनों की; रुजः—पीड़ा; ते—वे; कल्पयन्ति—प्रदान करेंगी; इष्टम्—मनवांछित दान; इष्टाः—अपनी प्रियाओं को।

हे भौंरे, तुम घर-बार से रहित हम लोगों के समक्ष यदुओं के स्वामी के विषय में इतना अधिक क्यों गाये जा रहे हो? ये कथाएँ हमारे लिए अब पुरानी हो चुकी हैं। अच्छा हो कि तुम अर्जुन के उस मित्र के विषय में उसकी उन नई सखियों के समक्ष जाकर गाओ जिनके स्तनों की दाहक इच्छा(कामेच्छा) को उसने शान्त कर दिया है। वे स्त्रियाँ अवश्य ही तुम्हें मनवांछित भिक्षा-दान देंगी।

तात्पर्य : राधारानी *अगृहाणारम् अग्रतो नः* शब्दों से शोक प्रकट करती हैं कि यद्यपि उन्होंने तथा

अन्य गोपियों ने माधुर्य भाव में कृष्ण से प्रेम करने के लिए अपने घरों का परित्याग कर दिया किन्तु भगवान् उन्हें छोड़कर यदुओं की महानगरी के राजकुमार बन गये। *विजय* शब्द का अर्थ ''विजयी अर्जुन'' के अतिरिक्त श्रीकृष्ण का भी सूचक है क्योंकि वे सदैव विजयी होते रहे हैं। इसी तरह *पुराणम्* शब्द ''पुराना'' अर्थ बतलाने के अतिरिक्त यह भी सूचित करता है कि इसी नाम के प्राचीन वैदिक शास्त्रों में श्रीकृष्ण का गुणगान होता है।

इस श्लोक में राधारानी के भाव में द्वेषपूर्ण क्रोध का बीज पाया जाता है, जो कृष्ण के प्रति दिखने वाली उपेक्षा तथा कृष्ण की ओर लगी हुई व्यंग्यात्मक तिरछी चितवन से उत्पन्न होता है। इस तरह यह श्लोक *उज्ज्वल नीलमणि* (१४.१८६) में आये *विजल्प* के वर्णन से मेल खाता है—

व्यक्तयासूयया गूढमानमुद्रान्तरालया।

अघद्विषि कटाक्षोक्तिर्विजल्पो विदुषां मत: ॥

''विद्वानों के अनुसार विजल्प कटूक्ति है, जो अघ का वध करने वाले को सम्बोधित है, जो स्पष्ट रूप से द्वेष को व्यक्त करती है और उसी के साथ ही क्रोधयुक्त अभिमान को भी इंगित करती है।''

दिवि भुवि च रसायां का: स्त्रियस्तद्दुरापा:
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य या: स्यु: ।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तम:श्लोकशब्द: ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

दिवि—स्वर्ग में; भुवि—पृथ्वी में; च—तथा; रसायाम्—तथा रसातल में; का:—क्या; स्त्रिय:—स्त्रियाँ; तत्—उसके द्वारा; दुरापा:—अप्राप्य; कपट—छल; रुचिर—आकर्षक; हास—हँसी से युक्त; भ्रू—भौंहें; विजृम्भस्य—टेढ़ी; या:—जो; स्यु:—बन जाती हैं; चरण—पैरों की; रज:—धूल; उपास्ते—पूजा करती है; यस्य—जिसकी; भूति:—लक्ष्मी, नारायण-पत्नी; वयम्—हम; का—कौन; अपि च—फिर भी; कृपण-पक्षे—बेचारे दीनों के लिए; हि—निस्सन्देह; उत्तम:-श्लोक—भगवान् जिनका गुणगान उत्तम स्तुतियों द्वारा किया जाता है; शब्द:—नाम।

उन्हें स्वर्ग, पृथ्वी या पाताल में कौन-सी स्त्रियाँ अनुपलब्ध हैं? वे केवल अपनी भौंहों को तिरकी करके छलपूर्ण आकर्षण से हँसते हैं, तो वे सब उनकी हो जाती हैं। लक्ष्मीजी तक उनके चरण-रज की पूजा करती हैं, तो उनकी तुलना में हमारी क्या बिसात है? किन्तु जो दीन-दुखियारी हैं, वे कम से कम उनका उत्तमश्लोक नाम तो ले ही सकती हैं!

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि एक निराश प्रेमिका की भावनाओं को व्यक्त करने

वाली राधारानी की उक्ति श्रीकृष्ण के प्रति उस प्रेम-प्रगाढ़ता को व्यक्त करने वाली है, जो लक्ष्मीजी को भी मात करने वाली है। जहाँ सारी गोपियाँ अपने सौन्दर्य, स्वभाव इत्यादि में श्रीकृष्ण से पूर्ण सामञ्जस्य प्राप्त करने वाली हैं वहाँ श्रीमती राधारानी का विशिष्ट स्थान है। त्यक्त अवस्था में राधारानी कृष्ण को संकेत करती हैं, ''तुम इसलिए उत्तमश्लोक कहलाते हो क्योंकि दीनों तथा पतितों पर दयालु हो किन्तु जब तुम मुझ पर दयालु होगे तभी तुम इस प्रतिष्ठित नाम के योग्य होगे।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी संकेत करते हैं कि इस श्लोक में श्रीमती राधारानी अभिमान से जनित ईर्ष्या (डाह) व्यक्त करती हैं, वे कृष्ण पर छलिया होने का आरोप करती हैं और उनके आचरण में खोट निकालती हैं। इस तरह इस श्लोक में *उज्जल्प* का प्रयोग हुआ है, जिसका वर्णन *उज्ज्वल नीलमणि* के निम्नलिखित श्लोक (१४.१८८) में पाया जाता है—

हरेः कुहकताख्यानं गर्वगर्भितयेर्ष्यया।

सासूयश्च तदाक्षेपो धीरैरुज्जल्प ईर्यते॥

''गर्वजनित ईर्ष्या के भाव में भगवान् हरि के द्वैतपूर्ण स्वभाव की घोषणा और साथ में उनके प्रति द्वेषपूर्ण कहे गये अपमानजनक शब्दों को विद्वानजन *उज्जल्प* कहते हैं।''

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चातुकारै-
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।
स्वकृत इह विषृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

विसृज—जाने दें; शिरसि—तुम्हारे सिर पर; पादम्—मेरा पाँव; वेद्मि—जानती हूँ; अहम्—मैं; चाटु-कारैः—चापलूसी भरे शब्दों से; अनुनय—समझौता करने की कला में; विदुषः—प्रवीण; ते—तुम्हारा; अभ्येत्य—जानकर; दौत्यैः—दूत की तरह कार्य करके; मुकुन्दात्—कृष्ण से; स्व—उनके अपने; कृते—लिए, हेतु; इह—इस जीवन में; विसृष्ट—परित्यक्त; अपत्य—बच्चे; पती—पति; अन्य-लोकाः—अन्य सारे लोग; व्यसृजत्—उसने छोड़ दिया है; अकृत-चेताः—कृतघ्न; किम् नु—क्योंकि; सन्धेयम्—क्या मैं समझौता कर लूँ; अस्मिन्—उससे।

तुम अपने सिर को मेरे पैरों से दूर ही रखो। मुझे पता है कि तुम क्या कर रहे हो। तुमने बहुत ही दक्षतापूर्वक मुकुन्द से कूटनीति सीखी है और अब चापलूसी भरे शब्द लेकर उनके दूत बनकर आये हो। किन्तु उन्होंने तो उन बेचारियों को ही छोड़ दिया है जिन्होंने उनके लिए अपने बच्चों, पतियों तथा अन्य सम्बन्धियों का परित्याग किया है। वे निपट कृतघ्न हैं। तो मैं अब उनसे

समझौता क्यों करूँ?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार इस श्लोक में *सञ्जल्प* के गुणों का उदाहरण प्रस्तुत हुआ है, जिसका वर्णन श्रील रूप गोस्वामी ने *उज्ज्वल नीलमणि* (१४.१९०) में निम्नवत् किया है—

सोल्लुण्ठया गहनया कयाप्याक्षेपमुद्रया।

तस्यकृतज्ञाताद्युक्तिः सञ्जल्पः कथितो बुधै॥

''विद्वानजन सञ्जल्प को वह उक्ति बतलाते हैं जिसमें प्रेमी की अकृतज्ञता आदि के प्रति व्यंग्यात्मक आक्षेप तथा अपमानसूचक संकेत द्वारा भर्त्सना की जाती है।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि *आदि* शब्द प्रेमी की कठोर हृदयता, शत्रुतापूर्ण मनोभाव तथा प्रेम के पूर्ण अभाव की अनुभूतियों का सूचक है।

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद्ध्वाङ्क्षवद्य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ १७॥

शब्दार्थ

मृगयुः—शिकारी; इव—सदृश; कपि—बन्दरों के; इन्द्रम्—राजा; विव्यधे—बींध दिया; लुब्ध-धर्मा—क्रूर शिकारी जैसा आचरण करते हुए; स्त्रियम्—स्त्री (शूर्पणखा) को; अकृत—बना दिया; विरूपाम्—विकृत; स्त्री—स्त्री (सीता देवी) द्वारा; जितः—जीता गया; कामयानाम्—कामेच्छा से प्रेरित; बलिम्—राजा बलि को; अपि—भी; बलिम्—उसका सम्मान, भाग; अत्त्वा—खाकर; अवेष्टयत्—बाँध लिया; ध्वाङ्क्षवत्—कौवे की तरह; यः—जो; तत्—इसलिए; अलम्—जाने भी दो; असित—श्याम कृष्ण से; सख्यैः—सभी प्रकार की मित्रता से; दुस्त्यजः—छोड़ पाना असम्भव; तत्—उसके विषय में; कथा—कथा का; अर्थः—विस्तार।

शिकारी की तरह उन्होंने कपिराज को बाणों से निर्दयतापूर्वक बींध दिया। चूँकि वे एक स्त्री द्वारा जीते जा चुके थे इसलिए उन्होंने एक दूसरी स्त्री को, जो उनके पास कामेच्छा से आई थी कुरूप कर दिया। यही नहीं, बलि महाराज की बलि खाकर भी उन्होंने उन्हें रस्सियों से बाँध दिया मानो वे कोई कौवा हों। अतः हमें इस श्यामवर्ण वाले लड़के से सारी मित्रता छोड़ देनी चाहिए भले ही हम उसके विषय में बातें करना बन्द न कर पायें।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद *भगवान् कृष्ण* में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार बतलाते हैं, ''[श्रीमती राधारानी ने भौंरे से कहा] : ''रे दीन-दूत! तुम तो अल्पज्ञ दास हो। तुम कृष्ण के विषय में अधिक नहीं जानते—वे न केवल इस जीवन में अपितु अपने पूर्वजन्मों में भी कितने कृतघ्न तथा कठोर-हृदय

रहे हैं। हमने अपनी दादी पौर्णमासी से यह सुना है। उसने हमें बताया है कि कृष्ण इस जन्म से पूर्व क्षत्रियकुल में जन्मे थे और रामचन्द्र कहलाते थे। उस जन्म में इन्होंने अपने मित्र के शत्रु बाली का वध एक क्षत्रिय की तरह न करके एक शिकारी की तरह किया। शिकारी सुरक्षित स्थान में छिपे रहकर पशु का सामना किये बिना ही उसका वध करता है। अत: एक क्षत्रिय होने के नाते भगवान् रामचन्द्र को बाली से आमने-सामने युद्ध करना चाहिए था। किन्तु अपने मित्र के उकसाने पर उन्होंने एक पेड़ के पीछे से उसे मार डाला। इस तरह वे क्षत्रिय-धर्म से विचलित हुए। यही नहीं, वे सीता के सौन्दर्य के प्रति इतने आकृष्ट थे कि उन्होंने रावण की बहन शूर्पणखा के नाक-कान काटकर उसे कुरूप बना दिया। शूर्पणखा ने उनसे *घनिष्ट सम्बन्ध* का प्रस्ताव रखा था और क्षत्रिय होने के नाते उन्हें उसको तुष्ट करना चाहिए था। किन्तु वे ऐसे पत्नी-दास थे कि वे सीतादेवी को नहीं भुला पाये और शूर्पणखा को कुरूप कर दिया। क्षत्रिय रूप में इस जन्म के पूर्व उन्होंने वामनदेव नामक ब्राह्मण बालक के रूप में जन्म लिया था और बलि महाराज से दान माँगा था। बलि इतने वदान्य थे कि उन्होंने अपना सर्वस्व दे डाला फिर भी वामनदेव के रूप में कृष्ण ने कृतघ्नतापूर्वक उन्हें कौवे की तरह बन्दी बनाकर पाताल लोक में धकेल दिया। हम सभी जानती हैं कि कृष्ण कितने कृतघ्न हैं। किन्तु एक कठिनाई है—इतना क्रूर तथा पाषाण-हृदय होने पर भी हमारे लिए उनके विषय में बातें करना छोड़ पाना अतीव कठिन है।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि राधारानी की यह *वक्तृता अवजल्प* है जैसाकि रूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि के निम्नलिखित श्लोक (१४.१९२) में वर्णन किया है—

हरौ काठिन्य कामित्वधौर्त्याद् आसक्त्ययोग्यता।
यत्र सेर्ष्याभियेवोक्ता सोऽवजल्प: सतां मत: ॥

''साधु पुरुष इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जब कोई प्रेमिका ईर्ष्या तथा भय से बाध्य होकर घोषित करती है कि भगवान् हरि अपनी रुक्षता, कामुकता तथा बेईमानी के कारण उसकी आसक्ति (रति) के अयोग्य हैं, तो यह *उक्ति अवजल्प* कहलाती है।''

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-

सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके; अनुचरित—निरन्तर किये गये कार्य; लीला—ऐसी लीलाओं के; कर्ण—कानों के लिए; पीयूष—अमृत की; विप्रुट्—एक बूँद का; सकृत्—केवल एक बार; अदन—पान; विधूत—पूर्णतया विलग; द्वन्द्व—द्वैत का; धर्माः—उनकी रुचियाँ; विनष्टाः—नष्ट-भ्रष्ट; सपदि—तुरन्त; गृह—अपने घर; कुटुम्बम्—तथा परिवार को; दीनम्—बेचारी; उत्सृज्य—त्याग कर; दीनाः—स्वयं दीन बनकर; बहवः—अनेक व्यक्ति; इह—यहाँ (वृन्दावन में); विहङ्गाः—पक्षियों (की तरह); भिक्षु—भीख माँगने की; चर्याम्—आजीविका; चरन्ति—अपनाते हैं।

कृष्ण द्वारा नियमित रूप से की जाने वाली लीलाओं के विषय में सुनना कानों के लिए अमृत के समान है। जो लोग इस अमृत की एक बूँद का एक बार भी आस्वादन करते हैं, उनकी भौतिक द्वैत के प्रति अनुरक्ति विनष्ट हो जाती है। ऐसे अनेक लोगों ने एकाएक अपने भाग्यहीन घरों तथा परिवारों को त्याग दिया है और वे स्वयं दीन बनकर पक्षियों की तरह इधर-उधर घूमते-फिरते हुए जीवन-निर्वाह के लिए भीख माँग-माँग कर वृन्दावन आये हैं।

तात्पर्य : भौतिक द्वन्द्व इस गलत सोच पर आधारित है, ''यह मेरा है और वह तेरा है'' या ''यह हमारा देश है और वह तेरा है।'' अथवा ''यह मेरा परिवार है और वह तेरा है।'' वस्तुतः परम सत्य तो एक है, जिसमें हम सभी स्थित हैं और जिनकी ये सारी वस्तुएँ हैं। उनका सौन्दर्य तथा आनन्द भी परम तथा असीम है और यदि कोई कृष्ण कहलाने वाले इस परम सत्य के विषय में सुनता है, तो सांसारिक द्वन्द्व के मोह के प्रति उसकी आसक्ति नष्ट हो जाती है।

आचार्यों के अनुसार तथा निश्चित रूप से संस्कृत व्याकरण के अनुसार इस श्लोक की द्वितीय पंक्ति में आये दो शब्दों का *धर्म-अविनष्टाः* के रूप में विश्लेषण किया जा सकता है। तब पूरी पंक्ति का अर्थ इस तरह होगा—कृष्ण के विषय में सुनने से अधार्मिक द्वन्द्व दूर हो जाता है और मनुष्य भौतिक मोह से विनष्ट नहीं होता (अविनष्ट)। तब *दीनाः* का वैकल्पिक पाठ है *धीराः,* जिसका अर्थ है कि मनुष्य आध्यात्मिक रूप से गम्भीर बन जाता है और नाशवान भौतिक सम्बन्धों से अपनी अनुरक्ति छोड़ देता है। इस प्रसंग में *विहङ्गाः* शब्द से हंसों का बोध होगा जो नीर-क्षीर विवेक के प्रतीक हैं।

इस श्लोक के सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने रूप गोस्वामी का यह उद्धरण (*उज्ज्वल नीलमणि* (१४.१९४) में दिया है—

भंग्या त्यागौचिती तस्य खगानामपि खेदनात्।

यत्र सानुशयं प्रोक्ता तद्‌भवेद् अभिजल्पितम् ॥

''जब कोई प्रेमिका अपरोक्ष में पछतावे के रूप में कहती है कि उसका प्रेमी त्यागने योग्य है, तो ऐसी उक्ति दुखपूर्ण पक्षी की चीख के समान होती है और *अभिजल्प* कहलाती है।''

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ।
ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र-
स्मररुज उपमन्त्रिन्भण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; ऋतम्—सच्ची; इव—सदृश; जिह्म—धोखेबाज, छलिया; व्याहृतम्—उसकी वाणी; श्रद्दधानाः—विश्वास करके; कुलिक—शिकारी; रुतम्—गीत; इव—मानो; अज्ञाः—मूर्ख; कृष्ण—काले हिरन की; वध्वः—पत्नियाँ; हरिण्यः—हिरनी; ददृशुः—अनुभव किया; असकृत्—बारम्बार; एतत्—यह; तत्—उसका; नख—नाखुनों के; स्पर्श—स्पर्श से; तीव्र—तेज; स्मर—कामदेव की; रुजः—वेदना; उपमन्त्रिन्—हे दूत; भण्यताम्—बोलो; अन्य—दूसरी; वार्ता—कथा, बात।

उनके छलपूर्ण शब्दों को सच मानकर हम उस काले हिरन की मूर्ख पत्नियों के समान बन गईं जो निष्ठुर शिकारी के गीत में भरोसा कर बैठती हैं। इस तरह हम उनके नाखुनों के स्पर्श से उत्पन्न काम की तीव्र पीड़ा का बारम्बार अनुभव करती रहीं। हे दूत, अब कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई बात कहो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती श्रीमती राधारानी के इस कथन को *अजल्प* की कोटि में रखते हैं जिसकी परिभाषा रूप गोस्वामी ने *उज्ज्वल नीलमणि* (१४.१९६) में दी है—

जैह्म्यं तस्यार्तिदत्वं च निर्वेदाद् यत्र कीर्तितम्।

भंग्यान्यसुखदत्वं च स आजल्प उदीरितः ॥

''घृणा में किया गया वर्णन कि किस तरह प्रेमी पुरुष धोखेबाज होता है और किसी को कष्ट देता है किन्तु ऐसा दिखलाता है मानो अन्यों को सुख देता है, *आजल्प* कहालाता है।''

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं
वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।
नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं
सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥

शब्दार्थ

प्रिय—मेरे प्यारे; सख—हे मित्र; पुनः—एक बार फिर; आगाः—आये हो; प्रेयसा—मेरे प्रेमी; प्रेषितः—भेजा गया; किम्—क्या; वरय—चुन लो; किम्—क्या; अनुरुन्धे—जो चाहो; माननीयः—सम्मान के योग्य; असि—हो; मे—मेरे द्वारा; अङ्ग—हे प्रिय; नयसि—लाये हो; कथम्—क्यों; इह—यहाँ; अस्मान्—हमको; दुस्त्यज—छोड़ पाना मुश्किल; द्वन्द्व—जिसके साथ माधुर्य सम्बन्ध हो; पार्श्वम्—बगल में; सततम्—निरन्तर; उरसि—वक्षस्थल पर; सौम्य—हे भद्र; श्रीः—लक्ष्मीजी; वधूः—उनकी प्रेयसी; साकम्—उनके साथ; आस्ते—उपस्थित है।

हे मेरे प्रियतम के मित्र, क्या मेरे प्रेमी ने फिर से तुम्हें यहाँ भेजा है? हे मित्र, मुझे तुम्हारा सम्मान करना चाहिए, अतः जो चाहो वर माँग सकते हो। किन्तु तुम हमें उसके पास फिर से ले जाने के लिए यहाँ क्यों आये हो जिसके मधुर प्रेम को छोड़ पाना इतना कठिन है? कुछ भी हो, हे भद्र भौंरे, उनकी प्रेयसी तो लक्ष्मीजी हैं और वे उनके साथ सदैव ही उनके वक्षस्थल पर विराजमान रहती हैं।

तात्पर्य : *भगवान् कृष्ण* नामक पुस्तक में श्रील प्रभुपाद ने इस श्लोक के प्रसंग की व्याख्या इस प्रकार की है : ''जब राधारानी भौंरे से बातें कर रही थीं और भौंरा इधर-उधर उड़ रहा था तभी वह सहसा दृष्टि से ओझल हो गया। वे कृष्ण से बिछुड़ने के कारण पूर्णतया शोकमग्न थीं और भौंरे से बातें करके आनन्द का अनुभव कर रही थीं, किन्तु ज्योंही भौंरा अदृश्य हो गया वे यह सोचकर पागल सी हो गईं कि हो सकता है यह भौंरा कृष्ण को यह सूचित करने के लिए उनके पास लौट गया हो कि राधारानी तो उनके विरुद्ध बातें कर रही है। उन्होंने सोचा, ''कृष्ण यह सुनकर बहुत ही दुखी हुए होंगे।'' इस तरह वे अन्य प्रकार के आनन्द से अभिभूत थीं।

तभी भौंरा इधर-उधर उड़ता हुआ पुनः उनके समक्ष प्रकट हुआ। उन्होंने सोचा, ''कृष्ण अब भी मुझ पर दयालु हैं। दूत द्वारा हृदय-विदारक सन्देश ले जाने पर भी वे इतने दयालु हैं कि उन्होंने मुझे फिर से उनके पास ले जाने के लिए उसे भेजा है।'' इस बार श्रीमती राधारानी अत्यन्त सतर्क थीं कि वे कृष्ण के विरुद्ध कुछ भी न कहें।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती व्याख्या करते हैं कि श्री अर्थात् लक्ष्मीजी में विविध रूप धारण करने की शक्ति है। इसलिए जब कृष्ण अन्य स्त्रियों के साथ रमण करते हैं, तो वे स्वर्णरेखा के रूप में उनके वक्षस्थल पर रहती हैं। जब वे अन्य स्त्रियों के साथ रमण नहीं करते होते तो वे इस रूप को एक ओर रख कर तरुणी के प्राकृतिक सुन्दर रूप में उन्हें आनन्द प्रदान करती हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार श्रीमती राधारानी का यह कथन *प्रतिजल्प* का उदाहरण है जैसा कि *उज्ज्वल नीलमणि* (१४.१९८) में श्रील रूप गोस्वामी वर्णन करते हैं—

दुस्त्यजद्वन्द्वभावेऽस्मिन् प्राप्तिर्नार्हेत्यनुद्धतम्।

दूत सम्माननेनोक्तं यत्र स प्रतिजल्पकः॥

''जब प्रेमिका दीन वचन कहती है कि वह प्रेमी को प्राप्त करने के अयोग्य होते हुए भी उसके साथ मधुर सम्बन्ध की आशा नहीं छोड़ पाती, तो अपने प्रेमी के सन्देश के सम्मान में कहे गये ऐसे शब्द प्रतिजल्प कहलाते हैं।''

यहाँ श्रीमती राधारानी अपने कटु-भावों को त्यागकर श्रीकृष्ण की महानता को दीन भाव से स्वीकार करती हैं।

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनास्ते
स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बन्धूंश्च गोपान्।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु॥ २१॥

शब्दार्थ

अपि—निश्चय ही; बत—खेद है; मधु-पुर्याम्—मथुरा नगरी में; आर्य-पुत्रः—नन्द महाराज का पुत्र; अधुना—इस समय; आस्ते—रहता है; स्मरति—स्मरण करता है; सः—वह; पितृ-गेहान्—अपने पिता के घरेलू काम-काज को; सौम्य—हे महात्मा (उद्धव); बन्धून्—अपने मित्रगण को; च—तथा; गोपान्—ग्वालबालों को; क्वचित्—कभी कभी; अपि—अथवा; सः—वह; कथाः—बातें; नः—हम; किङ्करीणाम्—दासियों की; गृणीते—कहकर सुनाता है; भुजम्—हाथ; अगुरु-सु-गन्धम्—अगुरु की सुगंध वाला; मूर्ध्नि—सिर पर; अधास्यत्—रखेगा; कदा—कब; नु—हो सकता है।

हे उद्धव, दरअसल यह बहुत ही खेदजनक है कि कृष्ण मथुरा में वास करते हैं। क्या वे अपने पिता के गृहकार्यों तथा अपने ग्वालबाल मित्रों की याद करते हैं? हे महात्मा, क्या वे कभी अपनी इन दासियों की भी बातें चलाते हैं? वे कब अपने अगुरु-सुगन्धित हाथ को हमारे सिरों पर रखेंगे?

तात्पर्य : इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य चरितामृत* (आदि ६.६८) से लिये गये हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस श्लोक में तथा पिछले नौ श्लोकों में अभिव्यक्त भावों की व्याख्या गहन आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि से काव्यात्मक रूप में करते हैं। वे राधारानी की भावनाओं की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

श्रीमती राधारानी ने सोचा: चूँकि कृष्ण कभी व्रज से संतुष्ट थे किन्तु फिर भी वे मथुरा चले गये तो

क्या वे उस स्थान को भी छोड़कर दूसरे स्थान को नहीं जाना चाहेंगे? मथुरा वृन्दावन से इतना निकट है कि वे संभवत: यहाँ भी वापस आ सकते हैं।

''कृष्ण एक सम्मानित व्यक्ति नन्द महाराज के पुत्र हैं अतएव वे अपने पिता के प्रति कृतज्ञता दिखाने के लिए ही मथुरा में रह रहे होंगे क्योंकि उन्होंने उन्हें वहाँ जाने का अधिकार दिया था। दूसरी ओर, नन्द का पूरा जीवन कृष्ण को ही समर्पित हैं और नन्द इतने नादान हैं कि वे यदुओं की चाल में आ गये और वे कृष्ण को मथुरा ले आये। कृष्ण सोचते होंगे, ''हाय! जब मेरे पिता तक मुझे व्रज वापस नहीं ला सकते तो मैं वहाँ वापस जाने के लिए क्या कर सकता हूँ? अत: कृष्ण यहाँ आने के लिए अधीर होंगे अत: उन्होंने तुम्हें दूत बनाकर भेजा है।

''नादान होने से ही नन्द ने अपने पुत्र को जाने दिया। यदि नन्द व्रज-रानी, कृष्ण की माता, को ऐसा करने देते तो वे अक्रूर के रथ पर चढ़ गई होतीं और अपने पुत्र को गलेसे लगाये हुए उसके साथ मथुरा तक जातीं और सारी गोपियाँ उनका पीछा कर लेतीं। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं था।

''जब से कृष्ण गये हैं नन्द महाराज उनके वियोग से स्तम्भित हैं और नन्द का कोषागार, भंडार, रसोई, शयनागार ऐश्वर्यपूर्ण घर आदि अब खाली हैं। न तो उनमें झाड़ू लगती है, न सफाई होती है, जिससे उनमें घास, पत्तियाँ, धूल तथा मकड़ी के जाले लगे हैं। क्या कृष्ण कभी अपने पिता के घरों की याद करते हैं? क्या वे कभी सुबल तथा अन्य मित्रों की याद करते हैं, जो अन्य उपेक्षित घरों में हतप्रभ होकर लेटे हुए हैं?

''कृष्ण के साथ मथुरा में रह रही स्त्रियाँ यह जान नहीं सकतीं कि कृष्ण को किस तरह सेवा करवाना सबसे अच्छा लगता है। जब वे देखतीं हैं कि कृष्ण प्रसन्न नहीं हैं और उनसे पूछती हैं कि वे उन्हें किस तरह प्रसन्न कर सकती हैं, तो क्या वे हम गोपियों का नाम लेते हैं?

''कृष्ण को उन्हें बता देना चाहिए कि ''हे शहरी स्त्रियो! तुम मुझे व्रज की गोपियों जैसा प्रसन्न नहीं कर सकतीं। वे फूलों की माला गूँथने, अपने शरीरों पर अंगराग लगाने, तार-वाद्यों पर ताल लय और राग बजाने, रास में नाचने तथा गाने, अपना सौन्दर्य, आकर्षण तथा चतुरता प्रदर्शन करने और पहेलियाँ बुझाने में निपुण हैं। वे अपने प्रेमी से मिलने और द्वेषजनित क्रोध एवं शुद्ध प्रेम के अन्य चिह्न प्रदर्शित करने की लीलाओं में विशेष रूप से पटु हैं। निस्संदेह कृष्ण यह सब जानते हैं। इसलिए

सम्भवतया वे मथुरा की स्त्रियों से कहेंगे, ''हे यदुकुल की स्त्रियो! तुम लोग अपने घर वापस जाओ। मैं और अधिक तुम्हारी संगति नहीं चाहता। मैं कल प्रातःकाल ही व्रज वापस जा रहा हूँ।

''कब कृष्ण ऐसा कहेंगे और वे अपने अगुरु-वासित हाथ को हमारे सिरों के ऊपर रखने के लिये यहाँ वापस आएँगे? तब वे हमें यह कहकर सान्त्वना देंगे, ''मेरी प्राण-प्रियाओ! मैं शपथ खाता हूँ कि अब तुम लोगों को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा। निस्सन्देह तुम जैसे लेशमात्र गुणों वाली स्त्रियाँ तीनों लोकों में ढूँढ़े भी मुझे नहीं मिल पाईं।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती श्रीमती राधारानी के मनोभावों की इस प्रकार व्याख्या करते हैं। वे यह भी बतलाते हैं कि इस श्लोक में सुजल्प का उदाहरण प्राप्त है, जो रूप गोस्वामी द्वारा *उज्ज्वल नीलमणि* (१४.२००) में इस प्रकार वर्णित है—

यत्रार्जवात् सगाम्भीर्यं सदैन्यं सहचापलम्।

सोत्कण्ठं च हरिः पृष्टः स सुजल्पो निगद्यते॥

''जब कोई प्रेमिका निष्ठावश गम्भीरता, दीनता, चपलता तथा उत्सुकतापूर्वक श्रीहरि से प्रश्न करती है, तो उस उक्ति को *सुजल्प* कहते हैं।''

सैंतालीसवें अध्याय के इस अनुभाग का समापन करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि दैव उन्माद (दिव्योन्माद) के दस विभाग होते हैं, जिन्हें *चित्रजल्प* के दस विभागों के रूप में व्यक्त किया जाता है। ऐसा दिव्योन्माद मोह की विशेष लीला में प्रदर्शित किया जाता है, जो कि श्रीमती राधारानी के महाभाव का ही अंश है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इन भावों की व्याख्या के लिए रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* (१४.१७४, १७८-८०) से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

प्रायो वृन्दावनेश्वर्यां मोहनोऽयमुदञ्चति।

एतस्य मोहनाख्यस्य गतिं कामप्युपेयुषः॥

भ्रमाभा कापि वैचित्री दिव्योन्माद इतीर्यते।

उद्घूर्णा चित्रजल्पाद्यास्तद्भेदा बहवो मताः॥

प्रेष्ठस्य सुहृदालोके गूढरोषाभिजृम्भितः।

भूरिभावमयो जल्पो यस्तीव्रोत्कण्ठितान्तिमः॥

चित्रजल्पो दशांगोऽयं प्रजल्पः परिजल्पितः।

विजल्पोऽज्जल्पसंजल्पः अवजल्पोऽभिजल्पितम्॥

आजल्पः प्रतिजल्पश्च सुजल्पश्चेति कीर्तितः।

"एक तरह से वृन्दावन की राजकुमारी (श्रीमती राधारानी) के मन में ही मोह के भाव उठते हैं। उसने इस मोह की विशेष अवस्था प्राप्त कर ली है, जो भ्रम जैसी आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। यह दिव्योन्माद कहलाती है और इसके कई पक्ष हैं, जो चंचल होकर आते जाते रहते हैं। इनमें से एक *चित्रजल्प* है। अपने प्रेमी के मित्र को देखकर की गई यह वार्ता प्रच्छन्न क्रोध से पूर्ण रहती है और कई विभिन्न भावों से युक्त होती हैं। इसका अन्त उनकी तीव्र उत्सुकता में होता है।

इस चित्रजल्प के दस विभाग हैं, जिन्हें प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, सञ्जल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प तथा सुजल्प कहते हैं।"

कुछ विद्वानों का कहना है कि अपनी प्रियतमा की वाणी की मधुरता का पान करने के लिए ही कृष्ण ने भ्रमर दूत का रूप धारण किया।

श्रीशुक उवाच

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ।
सान्त्वयन्प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; उद्धवः—उद्धव ने; निशम्य—सुनकर; एवम्—इस प्रकार; कृष्ण-दर्शन—कृष्ण को देखने के पश्चात; लालसाः—लालायित; सान्त्वयन्—ढाढ़स बँधाते हुए; प्रिय—उनके प्रेमी के; सन्देशैः—संदेशों से; गोपीः—गोपियों से; इदम्—यह; अभाषत—उसने कहा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह सुनकर उद्धव ने गोपियों को ढाढ़स बँधाने का प्रयास किया जो कृष्ण का दर्शन पाने के लिए अत्यन्त लालायित थीं। इस तरह वे उनके प्रेमी का सन्देश उनसे बताने लगे।

श्रीउद्धव उवाच

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; अहो—निस्सन्देह; यूयम्—तुम सभी; स्म—निश्चय ही; पूर्ण—पूरे हो चुके; अर्थाः—प्रयोजन; भवत्यः—तुम लोग; लोक—सभी लोगों द्वारा; पूजिताः—पूजित; वासुदेवे भगवति—भगवान् वासुदेव कृष्ण में; यासाम्—जिनका; इति—इस प्रकार से; अर्पितम्—अर्पित किया हुआ; मनः—मन।

श्री उद्धव ने कहा : निश्चय ही तुम सारी गोपियाँ सभी प्रकार से सफल हो और विश्व-भर में पूजित हो क्योंकि तुमने इस तरह से भगवान् वासुदेव में अपने मन को समर्पित कर रखा है।

तात्पर्य : यद्यपि अन्य भक्त निश्चय ही अपना मन भगवान् में समर्पित कर चुके होते हैं किन्तु अपने प्रेम की प्रखरता में गोपियाँ अद्वितीय हैं।

दानव्रततपोहोम जपस्वाध्यायसंयमैः ।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४॥

शब्दार्थ

दान—दान; व्रत—कठिन व्रत; तपः—तपस्या; होम—अग्नि यज्ञ; जप—मंत्रों का गुप्त उच्चारण; स्वाध्याय—वैदिक ग्रंथों का अध्ययन; संयमैः—तथा विधि-विधानों से; श्रेयोभिः—शुभ साधनों द्वारा; विविधैः—विविध; च—भी; अन्यैः—अन्य; कृष्णे—कृष्ण के प्रति; भक्तिः—भक्ति; हि—निस्सन्देह; साध्यते—सम्पन्न की जाती है।

दान, कठिन व्रत, तपस्या, अग्नि यज्ञ, जप, वैदिक ग्रंथों का अध्ययन, विधि-विधानों का पालन तथा अन्य अनेक शुभ साधनों द्वारा भगवान् कृष्ण की भक्ति प्राप्त की जाती है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने यहाँ पर वर्णित विधियों की व्याख्या की है। *दान*—भगवान् विष्णु तथा उनके भक्तों को दान दिया जाता है। *व्रत*—एकादशी जैसे व्रत रखना। *तपस्*—कृष्ण के निमित्त इन्द्रिय-तृप्ति का परित्याग। *होम*—विष्णु को समर्पित अग्नि यज्ञ। *जप*—भगवान् के नामों का मन में उच्चारण करना। *स्वाध्याय*—वैदिक ग्रंथों यथा *गोपाल तापनी* उपनिषद् का अध्ययन एवं वाचन।

भगवत्युत्तमःश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ।
भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५॥

शब्दार्थ

भगवति—भगवान् में; उत्तमः-श्लोके—उत्तम काव्य द्वारा जिनका यशोगान किया जाये; भवतीभिः—अपने द्वारा; अनुत्तमा—अद्वितीय; भक्तिः—भक्ति; प्रवर्तीता—स्थापित; दिष्ट्या—(बधाई है तुम्हारे) सौभाग्य की; मुनीनाम्—बड़े बड़े मुनियों के लिए; अपि—भी; दुर्लभा—प्राप्त करना कठिन।

अपने सौभाग्य से तुम सबों ने भगवान् उत्तमश्लोक के प्रति शुद्ध-भक्ति का अद्वितीय मानदण्ड स्थापित किया है—यह मानदण्ड ऐसा है, जिसे मुनि भी कठिनाई से प्राप्त कर सकते हैं।

तात्पर्य : *प्रवर्तिता* शब्द इसका सूचक है कि इस जगत में गोपियाँ ही ईश्वर के शुद्ध प्रेम का

मानदण्ड लाईं जो इसके पूर्व पृथ्वी पर अज्ञात था। इस तरह उद्धव उन्हें धार्मिक जीवन में अद्वितीय योगदान के लिए बधाई देते हैं।

दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान्स्वजनान्भवनानि च ।
हित्वावृनीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—सौभाग्य से; पुत्रान्—पुत्रों को; पतीन्—पतियों को; देहान्—शरीरों को; स्व-जनान्—सम्बन्धियों को; भवनानि—घरों को; च—तथा; हित्वा—छोड़कर; अवृणीत—चुना; यूयम्—तुम सबों ने; यत्—यह तथ्य कि; कृष्ण-आख्यम्—कृष्ण नामक; पुरुषम्—पुरुष को; परम्—परम।

सौभाग्य से तुम लोगों ने अपने पुत्रों, पतियों, शारीरिक सुविधाओं, सम्बन्धियों तथा घरों का परित्याग उस परम पुरुष के लिए किया है, जो कृष्ण नाम से जाना जाता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि गोपियों ने इन वस्तुओं के प्रति अपने स्वामित्व-भाव को त्याग दिया। इतिहास बतलाता है कि गोपियाँ अपने घरों में अपने परिवारों के साथ वृन्दावन में ही रहती रहीं। किन्तु सामान्य पुरुषों से सर्वथा भिन्न उन्होंने पुत्रों, पतियों आदि के प्रति स्वामित्व के गर्व का पूर्णतया त्याग कर दिया। उन्होंने कभी भी इनको भोगने का प्रयास नहीं किया अपितु उन्होंने अपने मन तथा हृदय पूर्णतया परमेश्वर को सौंप दिये जैसी कि संसार के महान् धार्मिक शास्त्रों में संस्तुति की गई है। हमें चाहिए कि गोपियों के उदाहरण का अनुसरण करते हुए तन-मन और अपनी शक्ति से भगवान् से प्रेम करें।

सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ।
विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७॥

शब्दार्थ

सर्व-आत्म—सर्वतोभावेन; भावः—प्रेम; अधिकृतः—अधिकार प्राप्त; भवतीनाम्—आपके द्वारा; अधोक्षजे—दिव्य स्वामी के लिए; विरहेण—विरह भाव से; महा-भागाः—हे अत्यन्त भाग्यशालिनी; महान्—महान्; मे—मुझको; अनुग्रहः—दया; कृतः—की गई।

हे परम भाग्यशालिनी गोपियो, तुम लोगों ने दिव्य स्वामी के लिए अनन्य प्रेम का अधिकार ठीक ही प्राप्त किया है। निस्सन्देह, कृष्ण के विरह में उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करके तुम लोगों ने मुझ पर महती कृपा दिखलाई है।

तात्पर्य : गोपियों ने उद्धव को ही नहीं अपितु सारे जगत के समक्ष भगवत्प्रेम के सुख को प्रदर्शित

किया और इस तरह उन्होंने हर व्यक्ति पर अपनी कृपा प्रदान की। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार, क्योंकि गोपियों ने अपनी प्रेमाभक्ति सही ढंग से सम्पन्न की थी इसलिए भगवान् उनके प्रेम के वशीभूत हो सके। फिर भी उनके प्रेम की उत्कटता दिखाने के लिए भगवान् ने बाह्य रूप से उन्हें छोड़ दिया। किन्तु अब वे पुन: उनके बीच उनकी उत्कट भक्ति के माध्यम से आध्यात्मिक रूप में उपस्थित हो गये।

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ।
यमादायागतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्रूयताम्—कृपया सुनें; प्रिय—अपने प्रेमी का; सन्देशः—सन्देश; भवतीनाम्—तुम लोगों के लिए; सुख—सुख; आवहः—लाकर; यम्—जो; आदाय—ढोकर; आगतः—आया हूँ; भद्राः—उत्तम स्त्रियो; अहम्—मैं; भर्तुः—मेरे स्वामी का; रहः—गुह्य कार्यों का; करः—करने वाला।

हे भद्र-देवियो, अब तुम सब अपने प्रेमी का सन्देश सुनो जिसे अपने स्वामी का विश्वसनीय दास होने से मैं तुम लोगों के पास लेकर आया हूँ।

श्रीभगवानुवाच
भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ।
तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; भवतीनाम्—तुम स्त्रियों का; वियोगः—विरह; मे—मुझसे; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; सर्व-आत्मना—सारे जीवों की आत्मा से; क्वचित्—कभी; यथा—जिस तरह; भूतानि—भौतिक तत्त्व; भूतेषु—सारे सृजित प्राणियों में; खम्—आकाश; वायु-अग्निः—वायु तथा अग्नि; जलम्—जल; मही—पृथ्वी; तथा—अतः; अहम्—मैं; च—तथा; मनः—मन; प्राण—प्राण-वायु; भूत—भौतिक तत्त्व; इन्द्रिय—शारीरिक इन्द्रियाँ; गुण—तथा प्रकृति के आदि गुण के; आश्रयः—आश्रय के रूप में उपस्थित।

भगवान् ने कहा है, ''तुम वास्तव में कभी भी मुझसे विलग नहीं हो क्योंकि मैं सारी सृष्टि का आत्मा हूँ। जिस तरह प्रकृति के तत्त्व—आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी—प्रत्येक सृजित वस्तु में उपस्थित रहते हैं उसी तरह मैं हर एक के मन, प्राण तथा इन्द्रियों में और भौतिक तत्त्वों के भीतर तथा प्रकृति के गुणों में उपस्थित रहता हूँ।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार भगवान् के कथन की दार्शनिक दिखने वाली इस भाषा में गूढ़ अर्थ छिपा है। भगवान् गुप्त रूप से गोपियों को बतला रहे थे कि वे अपने प्रेम के बदले उन सबों में समस्त सृष्टि के आत्मारूप में ही नहीं अपितु उनके विशेष प्रेमी

के रूप में भी उपस्थित थे। इस सन्दर्भ में *गुण* शब्द गोपियों के विशिष्ट दैवी गुणों का सूचक है, जिससे श्रीकृष्ण आकृष्ट हुए। *सर्वात्मना* शब्द को जिसका यहाँ हमने स्वयं भगवान् कृष्ण के संदर्भ में लिया है (मैं शब्द के अनुरूप होते हुए, जो करण कारक में उपयुक्त हुआ है) *सर्वथा* अथवा ''पूर्णतया'' के रूप में भी समझा जाता है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि एक अर्थ के अनुसार भगवान् कृष्ण अनुपस्थित थे किन्तु वे कभी भी पूरी तरह अनुपस्थित नहीं रह सकते क्योंकि अपने आध्यात्मिक रूप में वे गोपियों के हृदयों तथा मन में सदैव विद्यमान रहते हैं।

श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* तथा अन्य कृतियों में विस्तार से बतलाया है कि गोपियों से अपने को विलग करने का कारण यह था कि कृष्ण अपने प्रति उनके प्रेम को प्रखर बनाना चाहते थे और, जैसाकि उद्धव ने देखा, वे गोपियों के प्रेम की प्रखरता को प्रकट करके अन्य भक्तों को आशीर्वाद देना चाहते थे। तथ्य तो यह है कि भगवान् आध्यात्मिक रूप से गोपियों के साथ थे क्योंकि वे उनकी नित्य संगिनियाँ हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी इंगित करते हैं कि मूर्खजन यह निष्कर्ष निकालेंगे कि कृष्ण द्वारा दार्शनिक भाषा के प्रयोग का अर्थ था कि भगवान् गोपियों को कृष्णभावनाभावित दर्शन की मूलभूत बातें बतलाकर उन्हें मुक्ति तक पहुँचाना चाह रहे थे। सच तो यह है कि गोपियाँ सर्वोच्च मुक्तात्माएँ हैं और श्रीकृष्ण के साथ उनकी लीलाओं को प्रामाणिक आचार्यों की सहायता से ही समझा जा सकता है। जब गोपियाँ रास-नृत्य के लिए आईं तो कृष्ण ने उन्हें सामान्य नीति तथा नैतिकता पर बल देते हुए *कर्मयोग* का उपदेश देना चाहा किन्तु गोपियाँ तो उससे आगे थीं। इसी तरह कृष्ण अब उन्हें *ज्ञान योग* प्रदान कर रहे हैं किन्तु गोपियों के लिए यह भी अपर्याप्त है क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति स्वैच्छिक शुद्ध प्रेम प्राप्त कर रखा है।

आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ।
आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥ ० ॥

शब्दार्थ

आत्मनि—अपने में; एव—निस्सन्देह; आत्मना—अपने से; आत्मानम्—स्वयं; सृजे—उत्पन्न करता हूँ; हन्मि—नष्ट करता हूँ; अनुपालये—पालनपोषण करता हूँ; आत्म—निजी; माया—योग शक्ति के; अनुभावेन—बल से; भूत—भौतिक तत्त्व; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; गुण—तथा गुण; आत्मना—से युक्त।

मैं ही अपनी निजी शक्ति के द्वारा भौतिक तत्त्वों, इन्द्रियों तथा प्रकृति के गुणों का सृजन

करता हूँ, उन्हें बनाये रखता हूँ और फिर अपने भीतर समेट लेता हूँ।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् परम पुरुष हैं किन्तु उनमें तथा उनकी सृष्टि में कोई द्वैत नहीं है क्योंकि सृजन तो उनका विस्तार मात्र है। इसी एकत्व पर यहाँ भगवान् बल देते हैं।

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ।
सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ १ ॥

शब्दार्थ

आत्मा—आत्मा; ज्ञान-मयः—दिव्य ज्ञान से युक्त; शुद्धः—शुद्ध; व्यतिरिक्तः—पृथक्; अगुण-अन्वयः—भौतिक गुणों के कर्मफलों से अलिप्त; सुषुप्ति—प्रगाढ़ निद्रा में; स्वप्न—सामान्य नींद; जाग्रद्भिः—तथा जागृत चेतना; माया—माया को; वृत्तिभिः—कार्यों से; ईयते—अनुभव किया जाता है।

शुद्ध चेतना या ज्ञान से युक्त होने से आत्मा प्रत्येक भौतिक वस्तु से पृथक् है और प्रकृति के गुणों के पाश से अलिप्त है। आत्मा का अनुभव भौतिक प्रकृति के तीन कार्यों के माध्यम से किया जा सकता है—ये हैं जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति।

तात्पर्य : यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि आत्मा शुद्ध ज्ञान या शुद्ध चेतना से बना है अतएव भौतिक प्रकृति से तात्विक रूप में सर्वथा पृथक् है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि *आत्मा* का अर्थ "परमात्मा, भगवान् कृष्ण" भी लगाया जा सकता है। चूँकि पिछले श्लोकों में भगवान् बतला चुके हैं कि सारे भौतिक विषय उनके अंश हैं अतः *माया वृत्तिभिरीयते* पद सूचित करता है कि इस जगत का गहन अध्ययन करने से हमें ईश्वर की अनुभूति होगी। इस दृष्टि से भी गोपियों को सलाह दी गई कि वे शोक न करें।

येनेन्द्रियार्थान्ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः ।
तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥

शब्दार्थ

येन—जिस (मन) से; इन्द्रिय—इन्द्रियों के; अर्थान्—विषयों पर; ध्यायेत—ध्यान करता है; मृषा—झूठा; स्वप्न-वत्—सपने की तरह; उत्थितः—नींद से जगा; तत्—उस (मन); निरुन्ध्यात्—वश में करे; इन्द्रियाणि—इन्द्रियों को; विनिद्रः—सोता हुआ नहीं (सतर्क); प्रत्यपद्यत—प्राप्त करते हैं।

जिस तरह तुरन्त का जगा हुआ व्यक्ति स्वप्न के विषय में सोचता रह सकता है यद्यपि वह भ्रामक होता है उसी तरह मन के द्वारा मनुष्य इन्द्रियविषयों का ध्यान करता है जिन्हें बाद में इन्द्रियाँ प्राप्त कर सकती हैं। इसलिए मनुष्य को पूर्णतया सतर्क रहना चाहिए और मन को वश

में लाना चाहिए।

तात्पर्य : *प्रतिपद* क्रिया का अर्थ है "अनुभूति होना या पूर्वावस्था को प्राप्त होना।" जो आत्मा *विनिद्र* है अर्थात् भौतिक चेतना की स्वप्नवत अवस्था से मुक्त है, वह भगवान् श्रीकृष्ण के नित्य सेवक के रूप में अपनी स्वाभाविक स्थिति को फिर से प्राप्त कर लेता है। इस तरह शुद्ध चेतना से आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है।

एतदन्तः समाम्नायो योगः साङ्ख्यं मनीषिणाम् ।
त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; अन्तः—निष्कर्ष रूप में; समाम्नायः—सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय; योगः—योग पद्धति; साङ्ख्यम्—सांख्य ध्यान की विधि जिससे मनुष्य आत्मा तथा पदार्थ के अन्तर को जान सकता है; मनीषिणाम्—बुद्धिमानों का; त्यागः—त्याग; तपः—तपस्या; दमः—इन्द्रिय संयम; सत्यम्—तथा ईमानदारी; समुद्र-अन्ताः—समुद्र में जाने वाली; इव—सदृश; आप-गाः—नदियाँ।

बुद्धिमान अधिकारी जनों के अनुसार यही सारे वेदों तथा योगाभ्यास, सांख्य, त्याग, तपस्या, इन्द्रिय संयम तथा सचाई का चरम निष्कर्ष है, जिस तरह कि सारी नदियों का चरम गन्तव्य समुद्र है।

तात्पर्य : भगवान् कहते हैं कि सारे वैदिक वाङ्मय का उद्देश्य आत्मा को मन तथा इन्द्रियों के नियंत्रण तक ले आना और उन्हें दिव्य आत्म-साक्षात्कार में स्थिर करना है। इस तरह तथाकथित योग या धर्म की विधियाँ जिनमें अनियंत्रित इन्द्रियतृप्ति निहित होती है, वास्तव में आध्यात्मिक विधियाँ न होकर मूर्खों के लिए सुगम तरीके हैं जिनसे वे अपने पाशविक आचरण की पुष्टि कर सकते हैं।

यहाँ पर भगवान् कृष्ण गोपियों को आश्वस्त करते हैं कि आत्म-साक्षात्कार में अपने मन को स्थिर करने से उन्हें भगवान् से आध्यात्मिक तादात्म्य की अनुभूति होगी। इस तरह उन्हें वियोग की पीड़ा नहीं गुजरना पड़ेगा।

यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ।
मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ४॥

शब्दार्थ

यत्—तथ्य यह है; तु—किन्तु; अहम्—मैं; भवतीनाम्—तुम सबों से; वै—निस्सन्देह; दूरे—बहुत दूर; वर्ते—स्थित हूँ; प्रियः—प्रिय; दृशाम्—आँखों के लिए; मनसः—मन का; सन्निकर्ष—आकर्षण; अर्थम्—के लिए; मत्—मुझ पर; अनुध्यान.—तुम्हारे ध्यान के लिए; काम्यया—कामना करते हुए।

किन्तु जिस असली कारण से तुम सबों की आँखों की प्रिय वस्तुरुप, मैं, तुम लोगों से अति दूर रह रहा हूँ, वह यह है कि मैं अपने प्रति तुम सबों के चिंतन को प्रगाढ़ करना चाहता था और इस तरह तुम्हारे मनों को अपने अधिक निकट लाना चाहता था।

तात्पर्य : कभी कभी जो वस्तु हमारी आँखों के पास होती है, वही हमारे हृदय तथा मन से दूर होती है और इसके विपरीत उसकी अनुपस्थिति से हृदय उसे अधिक चाहने लगता है। यद्यपि भगवान् कृष्ण गोपियों से दूर होते जा रहे प्रतीत होते हैं किन्तु वे उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर अपने अधिक निकट ला रहे थे।

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ।
स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षिगोचरे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; दूर-चरे—दूर स्थित होने पर; प्रेष्ठे—प्रेमी; मनः—मन; आविश्य—लीन होकर; वर्तते—रहता है; स्त्रीणाम्—स्त्रियों का; च—तथा; न—नहीं; तथा—अतः; चेतः—उनके मन; सन्निकृष्टे—पास होने पर; अक्षि-गोचरे—उनकी आँखों के सामने मौजूद।

जब प्रेमी दूर होता है, तो स्त्री उसके विषय में अधिक सोचती है बजाय इसके कि जब वह उसके समक्ष उपस्थित होता है।

तात्पर्य : श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार पुरुषों के साथ भी ऐसा ही होता है। वे उस प्रेमिका के विषय में सोचते हुए अधिकाधिक लीन होते जाते हैं जब वह काफी दूर रहती है बजाय इसके कि जब वह उनके आँखों के समक्ष उपस्थित होती है।

मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ।
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मयि—मुझमें; आवेश्य—लीन होकर; मनः—अपने मन; कृत्स्नम्—सम्पूर्ण; विमुक्त—छोड़ने के बाद; अशेष—समस्त; वृत्ति—अपना (भौतिक) कार्य; यत्—क्योंकि; अनुस्मरन्त्यः—स्मरण कर करके; माम्—मुझको; नित्यम्—निरन्तर; अचिरात्—शीघ्र ही; माम्—मुझको; उपैष्यथ—तुम प्राप्त करोगी।

चूँकि तुम्हारे मन पूर्णतया मुझमें लीन रहते हैं और अन्य सारे कार्यों से मुक्त रहते हैं, तुम सदैव मेरा स्मरण करती हो और इसीलिए तुम लोग शीघ्र ही मुझे पुनः अपने सामने पा सकोगी।

या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन्व्रज आस्थिता: ।
अलब्धरासा: कल्याण्यो मापुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

या:—जो स्त्रियाँ; मया—मेरे साथ; क्रीडता—खेल रही थीं; रात्र्याम्—रात में; वने—जंगल में; अस्मिन्—इस; व्रजे—व्रज के ग्राम में; आस्थिता:—रह गईं; अलब्ध—अनुभव न करते हुए; रासा:—रास-नृत्य; कल्याण्य:—भाग्यशाली; मा—मुझको; आपु:—उन्होंने प्राप्त किया; मत्-वीर्य—मेरी शक्तिशाली लीलाओं पर; चिन्तया—एकाग्रता द्वारा।

यद्यपि कुछ गोपियों को ग्वाल-ग्राम में ही रह जाना पड़ा था जिससे वे रात में जंगल में रचाये गये रास-नृत्य में मेरे साथ क्रीड़ा नहीं कर पाईं, तो भी वे परम भाग्यशालिनी थीं। दरअसल वे मेरी शक्तिशाली लीलाओं का ध्यान करके ही मुझे प्राप्त कर सकीं।

श्रीशुक उवाच
एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषित: ।
ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशागतस्मृती: ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह से; प्रिय-तम—अपने प्रेमी (कृष्ण) द्वारा दिये; आदिष्टम्—आदेशों को; आकर्ण्य—सुनकर; व्रज-योषित:—व्रज की स्त्रियाँ; ता:—वे; ऊचु:—बोली; उद्धवम्—उद्धव से; प्रीत:—प्रसन्न; तत्—उस; सन्देश—सन्देश; आगत—वापस आयी हुईं; स्मृती:—स्मृतियाँ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : व्रज की स्त्रियाँ अपने प्रियतम कृष्ण से यह सन्देशा सुनकर प्रसन्न हुईं। उनके शब्दों से उनकी स्मृतियाँ ताजी हो गईं अत: उन्होंने उद्धव से इस प्रकार कहा।

गोप्य ऊचु:
दिष्ट्याहितो हत: कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ।
दिष्ट्याप्तैर्लब्धसर्वार्थै: कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

गोप्य: ऊचु:—गोपियों ने कहा; दिष्ट्या—सौभाग्य से; अहित:—शत्रु; हत:—मारा जा चुका है; कंस:—राजा कंस; यदूनाम्—यदुओं का; स-अनुग:—अपने अनुयायियों सहित; अघ—कष्ट का; कृत्—कारण; दिष्ट्या—सौभाग्य से; आप्तै:—अपने शुभचिन्तकों सहित; लब्ध—प्राप्त हुए; सर्व—समस्त; अर्थै:—अपनी इच्छाओं से; कुशली—सुखपूर्वक; आस्ते—रह रहा है; अच्युत:—कृष्ण; अधुना—इस समय।

गोपियों ने कहा : यह अच्छी बात है कि यदुओं का शत्रु एवं उन्हें सताने वाला कंस अब अपने अनुयायियों सहित मारा जा चुका है। और यह भी अच्छी बात है कि भगवान् अच्युत अपने शुभैषी मित्रों तथा सम्बन्धियों के साथ सुखपूर्वक रह रहे हैं जिनकी हर इच्छा अब पूरी हो रही है।

कच्चिद्गदाग्रज: सौम्य करोति पुरयोषिताम् ।
प्रीतिं न: स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चित: ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—शायद; गद-अग्रजः—गद के बड़े भाई, कृष्ण; सौम्य—हे भद्र (उद्धव); करोति—दे रहा है; पुर—नगर की; योषिताम्—स्त्रियों का; प्रीतिम्—प्रेमपूर्ण सुख; नः—हमारा; स्निग्ध—वत्सल; स-व्रीड—तथा लज्जालु; हास—हँसी से; उदार—उदार; ईक्षण—चितवनों से; अर्चितः—पूजित।

हे भद्र उद्धव, क्या गद का बड़ा भाई नगर की स्त्रियों को वह आनन्द प्रदान कर रहा है, जो वास्तव में हमारा है? हम ऐसा समझती हैं कि वे स्त्रियाँ उदार चितवनों तथा प्यारी लजीली मुसकानों से उनकी पूजा करती होंगी।

तात्पर्य : *गदाग्रज* नाम कृष्ण का सूचक है—देवरक्षिता के पहले पुत्र गद का बड़ा भाई (अग्रज)। देवरक्षिता देवकी की बहन थी और देवकी वसुदेव को ब्याही थीं। कृष्ण को इस प्रकार सम्बोधित करके गोपियाँ इंगित करती हैं कि कृष्ण अब अपने को देवकी का ही पुत्र मानते हैं जिसका अर्थ यह होता है कि अब वृन्दावन से उनका सम्बन्ध शिथिल पड़ रहा है। प्रगाढ़ प्रेम के कारण गोपियाँ क्षण-भर भी कृष्ण के विषय में सोचने से अपने को रोक न पाती थीं।

कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च पुरयोषिताम् ।
नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभाजितः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कथम्—कैसे; रति—माधुर्य व्यापार का; विशेष—विशेष रूप से; ज्ञः—ज्ञाता; प्रियः—प्रिय; च—तथा; पुर-योषिताम्—नगर की स्त्रियों का; न अनुबध्येत—बँधा नहीं होगा; तत्—उनके; वाक्यैः—शब्दों से; विभ्रमैः—मोह में डालने वाले संकेतों से; च—तथा; अनुभाजितः—निरन्तर पूजित।

श्रीकृष्ण सभी प्रकार के माधुर्य व्यापार में दक्ष हैं और नगर की स्त्रियों के प्रिय हैं। चूँकि अब वे उनके मोहक शब्दों तथा इशारों से निरन्तर पूजित हैं, तो भला फिर वे उनके पाश में क्योंकर नहीं बँधेंगे?

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार इनमें से प्रत्येक श्लोक भिन्न भिन्न गोपियों द्वारा कहा गया है।

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् ।
गोष्ठिमध्ये पुरस्त्रीणाम्ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अपि—यही नहीं; स्मरति—स्मरण करता है; नः—हमको; साधो—हे पवित्रात्मा; गोविन्दः—कृष्ण; प्रस्तुते—बातचीत के दौरान; क्वचित्—कभी; गोष्ठि—सभा; मध्ये—में; पुर-स्त्रीणाम्—नगर की स्त्रियों के; ग्राम्याः—ग्रामीण बालिकाएँ; स्वैर—स्वतंत्र; कथा—बातचीत; अन्तरे—के दौरान।

हे साधु-पुरुष, नगर की स्त्रियों से बातचीत के दौरान क्या गोविन्द कभी हमारी याद करते

हैं? क्या वे उनसे खुल कर वार्ता करते समय कभी हम ग्रामीण बालाओं का भी स्मरण करते हैं?

तात्पर्य : गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में बिना किसी स्वार्थ के इस तरह मग्न थीं कि घोर निराशा के क्षणों में भी उन्होंने अन्य किसी को अपना प्रेम-दान करने की बात सोची ही नहीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती उनकी भावनाओं की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

गोपियों ने कहा होगा, ''कृष्ण ने हमें अवश्य ही त्याग दिया होगा क्योंकि हम इसी लायक हैं। निस्सन्देह, हम इस विश्व में सबसे महत्त्वहीन स्त्रियाँ हैं और भोगी जाने के बाद त्यागी हुई हैं। फिर भी क्या कभी हम अपने किसी सद्गुण के कारण या इसलिए कि हमने कुछ गलती की है उनकी स्मृति में प्रवेश पाती हैं या नहीं? कृष्ण तो नगर की स्त्रियों से खुलकर बातें करते होंगे। वे उनके साथ गाते, परिहास करते, पहेलियाँ बुझाते तथा न जाने कितनी बातें करते होंगे। क्या कभी कृष्ण यह कहते हैं, 'हे नगर की स्त्रियो! तुम्हारा जैसे परिष्कृत गाना तथा बोलना मेरे ग्राम की गोपियों में नहीं पाया जाता। वे इन बातों को समझ नहीं सकेंगी।' क्या वे कभी इस तरह से भी हमारे विषय में कहते हैं?''

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभि-
वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये ।
रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्याम्
अस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४॥

शब्दार्थ

ताः—वे; किम्—क्या; निशाः—रातें; स्मरति—स्मरण करता है; यासु—जिनमें; तदा—तब; प्रियाभिः—अपनी प्रेयसियों के साथ; वृन्दावने—वृन्दावन के जंगल में; कुमुद—कमलों; कुन्द—तथा चमेली के कारण; शशाङ्क—तथा चन्द्रमा के कारण; रम्ये—आकर्षक; रेमे—विहार या रमण किया; क्वणत्—बजते हुए; चरण-नूपुर—पाँव के घुँघरू; रास-गोष्ठ्याम्—रास-नृत्य की गोष्ठी में; अस्माभिः—हमारे साथ; ईडित—प्रशंसित; मनोज्ञ—सुहावनी; कथः—कथाएँ; कदाचित्—कभी।

क्या वे वृन्दावन के जंगल में उन रातों का स्मरण करते हैं, जो कमल, चमेली तथा प्रकाशमान चन्द्रमा से सुन्दर लगती थीं? जब हम उनकी मनमोहिनी लीलाओं का गुणगान करतीं तो वे रास-नृत्य के घेरे में जो कि घुँघरुओं के संगीत से गुंजायमान होता था, हम प्रेयसियों के साथ आनन्द विहार करते थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस श्लोक की गहन अनुभूति का वर्णन इस प्रकार करते हैं, ''गोपियाँ जानती थीं कि वृन्दावन के समान कोई दूसरा रमणीक स्थान नहीं हो सकता। ब्रह्माण्ड के

किसी कोने में वृन्दावन के जंगल के समान आकर्षक दृश्य नहीं मिल सकता। वह पवित्र फूलों से सुगन्धित था और पवित्र यमुना नदी की शान्त तरंगों से प्रतिबिम्बित पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित था। कृष्ण को गोपियों जितना कोई प्यार नहीं करता था, अतः उन्हें पूरी तरह से अन्य कोई जान भी नहीं सकता था। गोपियों ने कृष्ण के प्रति निजी भाव से पूर्णतया सेवा की थी जो और कोई नहीं कर सकता था। इस तरह गोपियाँ सोच सोचकर किंकर्तव्यविमूढ़ थीं कि कृष्ण अब वृन्दावन से तथा उनकी सेवाओं से विहीन हैं। वे समस्त कामवासनाओं से रहित होकर निराशा से पराभूत थीं क्योंकि वे प्रेमपूर्ण सेवा से उन्हें सुख नहीं दे पा रही थीं। वे इसकी कल्पना भी नहीं कर पा रही थीं कि जिस तरह वे उनके संग वृन्दावन में विहार करते थे उस तरह अन्यत्र कर सकते हैं।''

अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ।
सञ्जीवयन्नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; एष्यति—आयेगा; इह—यहाँ; दाशार्हः—दशार्हवंशी कृष्ण; तप्ताः—संतप्त; स्व-कृतया—अपनी ही करनी से; शुचा—शोक से युक्त; सञ्जीवयन्—जीवनदान दिलाते हुए; नु—शायद; नः—हमको; गात्रैः—अपने अंगों के (स्पर्श) द्वारा; यथा—जिस तरह; इन्द्रः—इन्द्र; वनम्—जंगल को; अम्बुदैः—बादलों से।

क्या वह दाशार्ह वंशज यहाँ फिर से आयेगा और अपने अंगों के स्पर्श से उन सबों को फिर से जिलायेगा जो अब उन्हीं के द्वारा उत्पन्न किए गए शोक से जल रहे हैं? क्या वह हमें उसी प्रकार बचा लेगा जिस तरह भगवान् इन्द्र जलधारी बादलों से जंगल को पुनः जीवनदान देते हैं?

कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ।
नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

कस्मात्—क्यों; कृष्णः—कृष्ण; इह—यहाँ; आयाति—आयेगा; प्राप्त—पाकर; राज्यः—राज्य; हत—मारकर; अहितः—अपने शत्रुओं को; नर-इन्द्र—राजाओं की; कन्याः—पुत्रियों को; उद्वाह्य—विवाह कर; प्रीतः—सुखी; सर्व—सभी; सुहृत्—शुभचिन्तकों से; वृतः—घिरा हुआ।

भला राज्य जीत लेने, अपने शत्रुओं का वध कर लेने और राजाओं की पुत्रियों के साथ विवाह कर लेने के बाद कृष्ण यहाँ क्यों आने लगे? वे वहाँ अपने सारे मित्रों तथा शुभचिन्तकों से घिरेरहकर प्रसन्न हैं।

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ।
श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; अस्माभिः—हम सबों के साथ; वन—जंगल; ओकोभिः—जिनका आवास; अन्याभिः—अन्य स्त्रियों के साथ; वा—अथवा; महा-आत्मनः—महापुरुष (कृष्ण) के लिए; श्री—लक्ष्मी के; पतेः—पति के लिए; आप्त-कामस्य—जिनकी इच्छाएँ पूरी हो चुकी हैं; क्रियेत—सेवा की जानी है; अर्थः—प्रयोजन; कृत-आत्मनः—जो पूर्ण है उसके लिए।

महापुरुष कृष्ण लक्ष्मी के स्वामी हैं और वे जो भी चाहते हैं वह स्वतः पा लेते हैं। जब वे अपने में पहले से पूर्ण हैं, तो हम वनवासिनियाँ या अन्य स्त्रियाँ उनके प्रयोजन को कैसे पूरा कर सकती हैं?

तात्पर्य : यद्यपि गोपियाँ पछता रही थीं कि कृष्ण मथुरा की स्त्रियों से मेल-जोल कर रहे हैं किन्तु अब उनकी समझ में आने लगा कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण उन्हें किसी स्त्री की आवश्यकता नहीं थी। यह तो उनकी अहैतुकी कृपा है कि वे अपने प्रिय भक्तों को अपनी संगति प्रदान करते हैं।

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला ।
तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्याशा दुरत्यया ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

परम्—सर्वोच्च; सौख्यम्—सुख; हि—निस्सन्देह; नैराश्यम्—अन्यमनस्कता; स्वैरिणी—व्यभिचारिणी; अपि—यद्यपि; आह—कहा; पिङ्गला—पिंगला नामक वेश्या; तत्—उस; जानतीनाम्—जानने वालों का; नः—हमारे लिए; कृष्णे—कृष्ण पर केन्द्रित; तथा अपि—फिर भी; आसा—आशा; दुरत्यया—पार करना असम्भव।

दरअसल सर्वोच्च सुख तो समस्त इच्छाओं का परित्याग करने में है जैसा कि पिंगला नामक वेश्या तक ने भी कहा है। यह जानते हुए भी हम कृष्ण को पाने की अपनी आशाएँ नहीं छोड़ सकतीं।

तात्पर्य : पिंगला की कहानी *श्रीमद्भागवत्* के ग्यारहवें स्कंध के आठवें अध्याय में आई है।

क उत्सहेत सन्त्यक्तुमुत्तमःश्लोकसंविदम् ।
अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गान्न च्यवते क्वचित् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; उत्सहेत—सहन कर सकता है; सन्त्यक्तुम्—त्याग कर पाना; उत्तमःश्लोक—भगवान् कृष्ण से; संविदम्—घनिष्ट बातें; अनिच्छतः—न चाहते हुए; अपि—भी; यस्य—जिसके; श्रीः—लक्ष्मीजी; अङ्गात्—शरीर से; न च्यवते—विलग नहीं होने देते; क्वचित्—कभी।

भला भगवान् कृष्ण से घुल-मिल कर बातें करने को छोड़ पाना कौन सहन कर सकता है?

यद्यपि वे श्रीदेवी में तनिक भी रुचि नहीं दर्शाते किन्तु वे उनके वक्षस्थल पर बने स्थान से कभी इधर-उधर नहीं होती।

सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ।
सङ्कर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

सरित्—नदियाँ; शैल—पर्वत; वन-उद्देशाः—जंगली क्षेत्र; गावः—गौवें; वेणु-रवाः—वंशी की ध्वनि; इमे—ये सब; सङ्कर्षण—बलराम; सहायेन—जिनके साथी; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; आचरिताः—उपभोग की गई; प्रभो—हे स्वामी (उद्धव)।

हे उद्धव प्रभु, जब यहाँ कृष्ण बलराम के साथ थे तो वे इन सारी नदियों, पर्वतों, जंगलों, गौवों तथा वंशी की ध्वनियों का आनन्द लिया करते थे।

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत ।
श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

पुनः पुनः—बारम्बार; स्मारयन्ति—याद दिलाती हैं; नन्द-गोप-सुतम्—ग्वालों के राजा नन्द के पुत्र की; बत—निश्चय ही; श्री—दैवी; निकेतैः—चिह्नों से युक्त; तत्—उसका; पदकैः—चरण-चिह्नों के कारण; विस्मर्तुम्—भुलाने के लिए; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; शक्नुमः—हम सक्षम हैं।

ये सब हमें नन्द के पुत्र की सदैव याद दिलाते हैं। निस्सन्देह चूँकि हम दैवी-चिन्हों से अंकित कृष्ण के चरण-चिन्हों को देखती हैं अतः हम उन्हें कभी भी नहीं भुला सकतीं।

गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ।
माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मराम हे ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

गत्या—अपनी चाल से; ललितया—आकर्षक; उदार—उदार; हास—हँसी; लीला—क्रीड़ापूर्ण; अवलोकनैः—चितवनों से; माध्व्या—मधु जैसी; गिरा—वाणी से; हृत—चुराये गये; धियः—चित्त; कथम्—कैसे; तम्—उसको; विस्मराम—हम भूल सकती हैं; हे—हे (उद्धव)।

हे उद्धव, हम उन्हें कैसे भुला सकती हैं जब उनकी मनोहर चाल, उनकी उदार हँसी, चपल चितवनों एवं मधुर शब्दों से हमारे चित्त चुराये जा चुके हैं?

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

हे नाथ—हे स्वामी; हे रमा-नाथ—हे लक्ष्मीपति; व्रज-नाथ—हे व्रज के स्वामी; आर्ति—कष्ट के; नाशन—हे नष्ट करने वाले; मग्नम्—डूबी हुई; उद्धर—उबारो; गोविन्द—हे गोविन्द; गोकुलम्—गोकुल को; वृजिन—दुख के; अर्णवात्—समुद्र से।

हे नाथ, हे रमानाथ, हे व्रजनाथ! हे समस्त कष्टों के विनाशक गोविन्द! कृपया अपने गोकुल को व्यथा के उस सागर से उबार लें, जिसमें वह डूबा जा रहा है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस दृश्य की गहराई में जाकर कहते हैं—कोई गोपियों के समक्ष प्रस्ताव कर सकता है "आप लोग अन्यत्र क्यों नहीं चली जातीं। वृन्दावन छोड़ दीजिये तो फिर आपको ये नदियाँ, पर्वत तथा जंगल नहीं देखने पड़ेंगे। अपने आँचल से आँखें ढक लीजिये, अपनी बुद्धि से किसी अन्य विचार में मन को ले जाइये और इस तरह कृष्ण को भूल जाइये।" इस प्रस्ताव का उत्तर गोपियाँ पिछले श्लोक में यह कहकर देती हैं, "अब हममें अपनी बुद्धि नहीं रही क्योंकि कृष्ण अपने चरम सौन्दर्य तथा आकर्षण से उसे हर ले गये हैं।"

इस श्लोक में गोपियों की भावनाएँ इतनी प्रबल हो उठती हैं कि वे उद्धव की परवाह नहीं करतीं और वे मथुरा की ओर मुख करके अपने रोदन से कृष्ण को सम्बोधित करती हैं। वे कृष्ण को व्रजनाथ कहती हैं क्योंकि भूतकाल में कृष्ण ने अपने प्रिय ग्रामवासियों की रक्षा करने के लिए अनेक अचिन्त्य लीलाएँ की थीं—यथा गोवर्धन पर्वत को धारण करना तथा अनेक भयावने असुरों का वध करना। इस हृदय विदारक श्लोक में गोपियाँ चिल्लाकर कृष्ण से कहती हैं कि वे अपने अबोध ग्रामवासियों के साथ भोगे गये मधुर अद्भुत सम्बन्ध को स्मरण करें। दरअसल श्रीकृष्ण अपने पिता की गौवों की देखभाल करते थे और गोपियाँ उनसे याचना करती हैं कि वे इन कार्यों का स्मरण करके उन्हें फिर से करने के लिए लौट आयें।

श्रीशुक उवाच
ततस्ताः कृष्णसन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः ।
उद्धवं पूजयां चक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; ततः—तब; ताः—वे; कृष्ण-सन्देशैः—कृष्ण के संदेशों से; व्यपेत—हटा दिया; विरह—वियोग का; ज्वराः—ज्वर; उद्धवम्—उद्धव को; पूजयाम् चक्रुः—पूजा की; ज्ञात्वा—जान कर; आत्मानम्—अपने आपको; अधोक्षजम्—परमेश्वर के रूप में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कृष्ण के सन्देशों से विरह का ज्वर हट जाने पर गोपियों ने उद्धव को अपने प्रभु कृष्ण से अभिन्न जान कर, उनकी पूजा की।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि *ज्ञात्वात्मानम् अधोक्षजम्* शब्दों से यह भी सूचित होता है कि गोपियाँ कृष्ण को अपने जीवनों की आत्मा और इस तरह आध्यात्मिक रूप में उनसे अपने को एकाकार मानती हैं।

उवास कतिचिन्मासान्गोपीनां विनुदन्शुचः ।
कृष्णलीलाकथां गायन्रमयामास गोकुलम् ॥ ५४॥

शब्दार्थ

उवास—रहते थे; कतिचित्—कुछ; मासान्—महीनों तक; गोपीनाम्—गोपियों के; विनुदन्—दूर करते हुए; शुचः—दुख; कृष्ण-लीला—कृष्ण लीलाओं की; कथाम्—कथाएँ; गायन्—गाते हुए; रमयाम् आस—आनन्द दिया; गोकुलम्—गोकुल को।.

उद्धव वहाँ पर कृष्ण की लीलाओं की कथाएँ कहकर गोपियों का दुख दूर करते हुए कई महीनों तक रहे। इस तरह वे सभी गोकुलवासियों के लिए आनन्द ले आये।

तात्पर्य : इस प्रसंग में महान् आचार्य जीव गोस्वामी की टीका है कि वृन्दावन के प्रवासकाल में उद्धव ने कृष्ण के पोष्य माता-पिता, नन्द तथा यशोदा, को प्रोत्साहित करने की विशेष सतर्कता बरती।

यावन्त्यहानि नन्दस्य व्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः ।
व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५॥

शब्दार्थ

यावन्ति—जितने; अहानि—दिन; नन्दस्य—राजा नन्द के; व्रजे—व्रज में; अवात्सीत्—रहे; सः—वह; उद्धवः—उद्धव; व्रज-ओकसाम्—व्रजवासियों को; क्षण-प्रायाणि—एक क्षण बीतने जैसे; आसन्—थे; कृष्णस्य—कृष्ण की; वार्तया—वार्ताओं के कारण।.

उद्धव जितने दिनों तक नन्द के व्रज ग्राम में रहे वे सारे दिन व्रजवासियों को एक क्षण के तुल्य प्रतीत हुए क्योंकि उद्धव सदा कृष्ण की वार्ताएँ करते रहते थे।

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् ।
कृष्णं संस्मारयन्रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ ५६॥

शब्दार्थ

सरित्—नदियाँ; वन—जंगल; गिरि—पर्वत; द्रोणीः—घाटियाँ; वीक्षन्—देखते हुए; कुसुमितान्—फूले हुए; द्रुमान्—वृक्षों को; कृष्णम्—कृष्ण के विषय में; संस्मारयन्—याद दिलाते हुए; रेमे—आनन्द लिया; हरि-दासः—भगवान् हरि के सेवक ने; व्रज-ओकसाम्—व्रजवासियों के लिए।.

हरि के दास (उद्धव) ने व्रज की नदियों, जंगलों, पर्वतों, घाटियों तथा पुष्पित वृक्षों को देख देखकर और भगवान् कृष्ण के विषय में स्मरण करा-कराकर वृन्दावनवासियों को प्रेरणा

देने में आनन्द का अनुभव किया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि जब उद्धव वृन्दावन में घूमते थे तो वे व्रजवासियों से उन प्रत्येक स्थलों में जैसे नदियों, जंगलों, पर्वतों तथा घाटियों में भगवान् द्वारा की गई लीलाओं के विषय में प्रश्न पूछपूछ करके उन्हें कृष्ण की याद दिलाते रहते थे। इस तरह उद्धव ने उनके सान्निध्य में अगाध दिव्य आनन्द प्राप्त किया।

दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णावेशात्मविक्लवम् ।
उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; एवम्—इस तरह; आदि—तथा अधिक; गोपीनाम्—गोपियों के; कृष्ण-आवेश—कृष्ण के विचारों में उनकी तल्लीनता; आत्म—से युक्त; विक्लवम्—मानसिक क्षोभ; उद्धवः—उद्धव ने; परम—परम; प्रीतः—प्रसन्न; ताः—उनको; नमस्यन्—नमस्कार करते हुए; इदम्—यह; जगौ—गाया।

इस तरह यह देखकर कि गोपियाँ किस तरह कृष्ण में पूर्णतया तल्लीन रहने से सदैव विक्षुब्ध रहती हैं, उद्धव अत्यधिक प्रसन्न थे। उन्हें नमस्कार करने की इच्छा से उन्होंने यह गीत गाया।

तात्पर्य : *विक्लव* का अर्थ ''मानसिक क्षोभ'' है और इसे सामान्य भौतिक क्लेश से नहीं मिलाना चाहिए। यह स्पष्ट कहा गया है कि उद्धव अत्यधिक प्रसन्न थे और इसका कारण था कि वे देख चुके थे कि गोपियों को सर्वोच्च भाव-दशा प्राप्त हो चुकी है। उद्धव द्वारका दरबार के माननीय सदस्य थे और राजनैतिक मामलों के महत्त्वपूर्ण मंत्री थे फिर भी उनके मन में यशस्विनी गोपियों को नमस्कार करने की इच्छा उत्पन्न हुई—यद्यपि बाह्य रूप से ये गोपियाँ वृन्दावन नामक क्षुद्र ग्राम की ग्वाल-कन्याएँ मात्र थीं। इस तरह अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उन्होंने निम्नलिखित श्लोक गाये। श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि वृन्दावन के प्रवास में उद्धव नित्य ही इन श्लोकों को गाया करते थे।

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥ ५८॥

शब्दार्थ

एताः—ये स्त्रियाँ; परम्—अकेले; तनु—अपने शरीर; भृतः—ठीक से पालती हैं; भुवि—पृथ्वी पर; गोप-वध्वः—ये युवती गोपियाँ; गोविन्दे—गोविन्द में; एव—एकान्त रूप से; निखिल—सबों के; आत्मनि—आत्मा; रूढ—पूर्ण; भावाः—प्रेमपूर्ण आकर्षण; वाञ्छन्ति—चाहती हैं; यत्—जो; भव—भौतिक जगत; भियः—भयभीत; मुनयः—मुनिगण; वयम्—हम; च—भी; किम्—क्या लाभ; ब्रह्म—ब्राह्मण के रूप में या ब्रह्मा के रूप में; जन्मभिः—जन्म लेने से; अनन्त—अनन्त भगवान् की; कथा—कथा के; रसस्य—रसिक के लिए।

[उद्धव ने गाया] : पृथ्वी के समस्त व्यक्तियों में ये गोपियाँ ही वास्तव में अपने देहधारी जीवनों को सफल बना पाई हैं क्योंकि इन्होंने भगवान् गोविन्द के लिए शुद्ध प्रेम की पूर्णता प्राप्त कर ली है। इस संसार से डरने वालों, बड़े-बड़े मुनियों तथा हम सबों को इनके शुद्ध प्रेम की लालसा बनी रहती है। जिसने अनन्त भगवान् की कथाओं का आस्वाद कर लिया है उसके लिए उच्च ब्राह्मण के रूप में या साक्षात् ब्रह्मा के रूप में भी जन्म लेने से क्या लाभ?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि यहाँ पर *ब्रह्मजन्मभिः* शब्द तीन बार जन्म लेने का सूचक है १) वीर्य द्वारा २) जनेऊ संस्कार द्वारा तथा) यज्ञ-दीक्षा द्वारा। ये सभी शुद्ध कृष्णभावनामृत की बराबरी नहीं कर सकते। निस्सन्देह इस श्लोक को कहने वाले उद्धव शुद्ध ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे किन्तु वे महान् गोपियों की तुलना में इस पद की अवमानना करते हैं।

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

क्व—कहाँ तो; इमाः—ये; स्त्रियः—स्त्रियाँ; वन—वनों में; चरीः—विचरण करने वाली; व्यभिचार—अनुचित आचरण से; दुष्टाः—दूषित; कृष्णे—कृष्ण के लिए; क्व च—और कहाँ; एषः—यह; परम-आत्मनि—परमात्मा में; रूढ-भावः—पूर्ण-प्रेम की अवस्था (महाभाव); ननु—निश्चय ही; ईश्वरः—भगवान्; अनुभजतः—निरन्तर पूजा करने वाले के लिए; अविदुषः—विद्वान नहीं; अपि—यद्यपि; साक्षात्—साक्षात; श्रेयः—कल्याण; तनोति—प्रदान करता है; अगद—औषधियों का; राजः—राजा (अमृत, जिसे देवता अमर होने के लिए पीते थे); इव—मानो; उपयुक्तः—लिया हुआ।

यह कितना आश्चर्यजनक है कि जंगल में विचरण करने वाली एवं अनुपयुक्त आचरण के कारण दूषित सी प्रतीत होने वाली इन सीधी-सादी स्त्रियों ने परमात्मा कृष्ण के लिए शुद्ध प्रेम की पूर्णता प्राप्त कर ली है। तो भी यह सच है कि भगवान् एक अज्ञानी पूजक को भी अपना आशीर्वाद देते हैं जिस प्रकार कि अज्ञानी व्यक्ति द्वारा किसी उत्तम औषधि के अवयवों से अनजान होते हुए पी लेने पर भी वह अपना प्रभाव दिखलाती है।

तात्पर्य : प्रथम दो पंक्तियों में *क्व* शब्द दो अनमेल वस्तुओं में तीव्र विरोध दिखलाता है—प्रथम

पंक्ति में गोपियों की ऊपर से तुच्छ तथा अशुद्ध दिखने वाली स्थिति का वर्णन है और दूसरी पंक्ति में जीवन की चरम सिद्धि की प्राप्ति का वर्णन है। इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती तीन प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्रियों का वर्णन करते हैं। पहला प्रकार उन स्त्रियों का है, जो अपने पति तथा प्रेमी दोनों के साथ संभोग करती हैं और दोनों में से किसी की भी विश्वासपात्र नहीं होतीं। इस आचरण की भर्त्सना समाज तथा शास्त्र दोनों करते हैं। दूसरा प्रकार उन व्यभिचारिणियों का है, जो अपने पति को त्याग कर केवल प्रेमी के साथ संभोग करती हैं। समाज तथा शास्त्र दोनों इस आचरण की भी निन्दा करते हैं यद्यपि ऐसी स्त्री में यह गुण तो होता ही है कि पतित होने पर भी वह एक व्यक्ति के प्रति समर्पित रहती है। तीसरी प्रकार की व्यभिचारिणी वह है, जो अपने पति को त्याग कर भगवान् को ही एकमात्र प्रेमी मानकर आनंद भोगती है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि यद्यपि सामान्य मूर्ख लोग इस तीसरी दशा की आलोचना करते हैं किन्तु जो अध्यात्मविज्ञान में समुन्नत हैं, वे इस आचरण की प्रशंसा करते हैं। इसीलिए समाज तथा शास्त्र भगवान् के प्रति एकान्तिक भक्ति की प्रशंसा करते हैं। गोपियों का आचरण ऐसा ही था। अत: *व्यभिचारदुष्टा* ''विचलन के कारण दूषित'' शब्द गोपियों के आचरण तथा सामान्य व्यभिचारिणियों में आभासी सादृश्य को दर्शाता है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरते: प्रसाद:
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्या: ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्लभीनाम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अयम्—यह; श्रिय:—लक्ष्मी का; अङ्गे—वक्षस्थल पर; उ—हाय; नितान्त-रते:—घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित; प्रसाद:—अनुग्रह; स्व:—स्वर्गलोक की; योषिताम्—स्त्रियों का; नलिन—कमल के फूल की; गन्ध—सुगन्ध वाला; रुचाम्—तथा शारीरिक कान्ति; कुत:—काफी कम; अन्या:—अन्य; रस-उत्सवे—रास-नृत्य के उत्सव में; अस्य—भगवान् कृष्ण की; भुज-दण्ड—भुजाओं से; गृहीत—आलिंगित; कण्ठ—गले; लब्ध-आशिषाम्—ऐसा आशीर्वाद प्राप्त; य:—जो; उदगात्—प्रकट हुआ; व्रज-वल्लभीनाम्—व्रजभूमि की दिव्य बालाओं का, सुन्दरी गोपियों का।

जब श्रीकृष्ण रासलीला में गोपियों के साथ नाच रहे थे तो भगवान् की भुजाएँ गोपियों का आलिंगन कर रही थीं। यह दिव्य अनुग्रह न तो कभी लक्ष्मीजी को प्राप्त हुआ न वैकुण्ठ की ललनाओं (अंगनाओं) को। निस्सन्देह कमल के फूल जैसी शारीरिक कान्ति तथा सुगंध से युक्त स्वर्गलोक की सबसे सुन्दर बालाओं ने भी कभी इस तरह की कल्पना तक नहीं की थी। तो फिर

उन संसारी स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाय जो भौतिक दृष्टि से अतीव सुन्दर हैं?

तात्पर्य : इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्यचरितामृत* (मध्य ८.८०) से लिये गये हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका इस प्रकार है; अवतारों में श्रेष्ठ भगवान् कृष्ण शुद्धता तथा नैतिकता के उच्चतम पद पर आसीन हैं अत: वे अपने गोचारण, जंगल में विचरण, नन्हें बन्दरों के साथ भोजन करने, दही चुराने, अन्यों की स्त्रियों को बरगलाने इत्यादि के विषय में सांसारिक आलोचना स्वीकार करते हुए भी सबों के प्रशंसापात्र बने रहे। इसी तरह गोपियों ने जो भगवान् की ह्लादिनी शक्ति से बनी हैं लक्ष्मीजी की तुलना में शुद्धता तथा मांगलिकता का सर्वोच्च मानदण्ड प्राप्त किया। इस तरह गोपियाँ सर्वाधिक गौरवान्वित हैं, यद्यपि संसारी लोगों के द्वारा उनकी आलोचना होती रही क्योंकि वे जंगल में रहने वाली तथा ऊपरी तौर पर अनुचित लगने वाले आचरण करने वाली ग्वाल-स्त्रियाँ थीं।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

आसम्—गोपियों की; अहो—ओह; चरण-रेणु—चरणकमलों की धूलि; जुषाम्—अनुरक्त; अहम् स्याम्—मैं बनूँ; वृन्दावने—वृन्दावन में; किम् अपि—कोई एक; गुल्म-लता-ओषधीनाम्—झाड़ियों, लताओं तथा वनौषधियों में से; या—जो; दुस्त्यजम्—छोड़ पाना अतीव कठिन; स्व-जनम्—पारिवारिक सदस्यों को; आर्य-पथम्—सतीत्व-मार्ग; च—तथा; हित्वा—त्यागकर; भेजु:—पूजा किया; मुकुन्द-पदवीम्—मुकुन्द या कृष्ण के चरणकमलों की; श्रुतिभि:—वेदों के द्वारा; विमृग्याम्—खोजे जाने के लिए।

वृन्दावन की गोपियों ने अपने पतियों, पुत्रों तथा अन्य परिवार वालों का साथ त्याग दिया है जिनको त्याग पाना अतीव कठिन होता है। उन्होंने मुकुन्द कृष्ण के चरणकमलों की शरण पाने के लिए सतीत्व मार्ग का परित्याग कर दिया है, जिसे वैदिक ज्ञान द्वारा खोजा जाता है। ओह! मैं वृन्दावन की इन झाड़ियों, लताओं तथा जड़ी-बूटियों में से कोई एक भी होने का सौभाग्य प्राप्त करूँ क्योंकि गोपियाँ उन्हें अपने चरणों से रौंदती हैं और अपने चरणकमलों की धूल से उन्हें आशीर्वाद देती हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्यचरितामृत* (अन्त्य ७.४७)

से लिए गये हैं।

यहाँ पर श्री उद्धव एक पूर्ण वैष्णव की उदारता की मनोवृत्ति दिखलाते हैं। वे उच्च प्रेमावस्था में गोपियों की बराबरी करने की प्रार्थना नहीं करते अपितु वृन्दावन में एक झाड़ी या लता के रूप में जन्म लेना चाहते हैं जिससे जब गोपियाँ उनके ऊपर से चलें तो वे उनकी चरण-रज पाकर धन्य हो जाँय। लजीली गोपियाँ उद्धव जैसे महापुरुष को ऐसे आशीर्वाद देने के लिए कभी तैयार नहीं होंगी इसलिए उद्धव ने होशियारी से वृन्दावन में एक पौधे के रूप में जन्म लेकर ऐसी कृपा प्राप्त करनी चाही।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।
कृष्णस्य तद्भगवतः चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

याः—जो (गोपियाँ); वै—निस्सन्देह; श्रिया—लक्ष्मी द्वारा; अर्चितम्—पूजित; अज—अजन्मा ब्रह्मा; आदिभिः—तथा अन्य देवताओं द्वारा; आप्त-कामैः—जिनकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं; योग-ईश्वरैः—योगशक्ति के स्वामियों द्वारा; अपि—यद्यपि; यत्—जो; आत्मनि—मन में; रास—रास-नृत्य की; गोष्ठ्याम्—गोष्ठी में; कृष्णस्य—कृष्ण की; तत्—वे; भगवतः—भगवान् के; चरण-अरविन्दम्—चरणकमलों को; न्यस्तम्—रखा हुआ; स्तनेषु—अपने स्तनों पर; विजहुः—उन्होंने त्याग दिया; परिरभ्य—आलिंगन करके; तापम्—अपनी जलन।

स्वयं लक्ष्मीजी तथा ब्रह्मा एवं अन्य सारे देवता जो योग सिद्धि के स्वामी हैं, भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की पूजा अपने मन के भीतर ही कर सकते हैं। किन्तु रास-नृत्य के समय कृष्ण ने तो इन गोपियों के स्तनों पर अपने चरण रखे और गोपियों ने उन्हीं चरणों का आलिंगन करके सारी व्यथाएँ त्याग दी।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

वन्दे—मैं वन्दना करता हूँ; नन्द-व्रज—नन्द महाराज के गोप-ग्राम को; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; पाद—चरणों की; रेणुम्—धूल को; अभीक्ष्णशः—निरन्तर; यासाम्—जिनकी; हरि—कृष्ण की; कथा—कथा के विषय में; उद्गीतम्—जोर से उच्चारण करते हुए; पुनाति—पवित्र करती है; भुवन-त्रयम्—तीनों लोकों को।

मैं नन्द महाराज के गोप-ग्राम की स्त्रियों की चरण-रज की बारम्बार वन्दना करता हूँ। जब ये गोपियाँ श्रीकृष्ण के यश का जोर जोर से कीर्तन करती हैं, तो वह ध्वनि तीनों लोकों को पवित्र कर देती है।

तात्पर्य : पिछले श्लोकों में गोपियों की महिमा की स्थापना करने के बाद श्री उद्धव अब उन्हें प्रत्यक्षत: नमस्कार करते हैं। *श्री वैष्णव तोषणी* के अनुसार उद्धव ने द्वारका में भगवान् कृष्ण की पटरानियों को भी इस तरह से नमस्कार नहीं किया था।

श्रीशुक उवाच
अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च ।
गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; गोपी:—गोपियों की; अनुज्ञाप्य—अनुमति लेकर; यशोदाम्—माता यशोदा को; नन्दम्—राजा नन्द को; एव च—भी; गोपान्—ग्वालों को; आमन्त्र्य—विदा लेकर; दाशार्ह:—दशार्हवंशी उद्धव; यास्यन्—जाने ही वाले; आरुरुहे—चढ़ गये; रथम्—अपने रथ में।

शुकदेव गोस्वमी ने कहा : तत्पश्चात् दशार्हवंशी उद्धव ने गोपियों तथा माता यशोदा एवं नन्द महाराज से विदा होने की अनुमति ली। उन्होंने सारे ग्वालों से विदा ली और प्रस्थान करने के लिए वे अपने रथ पर सवार हो गये।

तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणय: ।
नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचना: ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (उद्धव को); निर्गतम्—गया हुआ; समासाद्य—पास आकर; नाना—विविध; उपायन—पूजा की वस्तुएँ; पाणय:—अपने हाथों में; नन्द-आदय:—नन्द तथा अन्य लोग; अनुरागेण—स्नेहपूर्वक; प्रावोचन्—बोले; अश्रु—आँसुओं सहित; लोचना:—आँखें।

जब उद्धव प्रस्थान करने वाले थे तो नन्द तथा अन्य लोग पूजा की विविध वस्तुएँ लेकर उनके पास पहुँचे। उन लोगों ने अश्रुपूरित नेत्रों से उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि नन्द तथा ग्वाले किसी शिष्टाचारवश उद्धव के पास नहीं गये, अपितु कृष्ण के प्रिय मित्र के प्रति स्वैच्छिक अनुराग के कारण ही गये।

मनसो वृत्तयो न: स्यु: कृष्ण पादाम्बुजाश्रया: ।
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ

मनस:—मन के; वृत्तय:—कार्य; न:—हमारे; स्यु:—होयें; कृष्ण—कृष्ण के; पाद-अम्बुज—चरणकमलों की; आश्रया:—शरण लेकर; वाच:—हमारे शब्द; अभिधायिनी:—व्यक्त करते हुए; नाम्नाम्—उनके नामों को; काय:—हमारे शरीर; तत्—उसके प्रति; प्रह्वण-आदिषु—नमस्कार इत्यादि में (व्यस्त)।

[नन्द तथा अन्य ग्वालों ने कहा] : हमारे मानसिक कार्य सदैव कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करें, हमारे शब्द सदैव उन्हीं के नामों का कीर्तन करें और हमारे शरीर सदैव उन्हीं को नमस्कार करें तथा उनकी ही सेवा करें।

तात्पर्य : वृन्दावनवासियों को दृढ़ विश्वास था कि भले ही उनकी प्रत्यक्ष संगति अपने प्यारे कृष्ण से न हो सकी हो किन्तु वे कभी भी उनसे विमुख नहीं होंगे। वे सभी भगवान् के सर्वोच्च शुद्ध भक्त थे।

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ।
मङ्गलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७॥

शब्दार्थ

कर्मभिः—सकाम कर्मों द्वारा; भ्राम्यमाणानाम्—घुमाये जाने वालों का; यत्र क्व अपि—जहाँ कभी भी; ईश्वर—भगवान् की; इच्छया—इच्छा से; मङ्गल—शुभ; आचरितैः—कार्यों से; दानैः—दान से; रतिः—आसक्ति; नः—हमारी; कृष्णे—कृष्ण में; ईश्वरे—भगवान्।

भगवान् की इच्छा से हमें अपने सकाम कर्मों के फलस्वरूप इस संसार में जहाँ भी घूमना पड़े हमारे सत्कर्म तथा दान हमें सदा भगवान् कृष्ण का प्रेम प्रदान करें।

एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ।
उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सभाजितः—सम्मान प्रदर्शित; गोपैः—ग्वालों द्वारा; कृष्ण-भक्त्या—कृष्ण के प्रति भक्ति से; नर-अधिप—हे मनुष्यों के शासक (परीक्षित); उद्धवः—उद्धव; पुनः—फिर; आगच्छत्—लौट आया; मथुराम्—मथुरा; कृष्ण-पालिताम्—कृष्ण द्वारा सुरक्षित।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : हे नृपति, इस तरह कृष्ण के प्रति भक्ति की अभिव्यक्ति द्वारा ग्वालों से सम्मानित होकर उद्धव मथुरा नगरी वापस चले गये जो कृष्ण के संरक्षण में थी।

तात्पर्य : *कृष्णपालिताम्* शब्द सूचित करता है कि यद्यपि उद्धव वृन्दावन भूमि से अत्यधिक अनुरक्त हो चुके थे, वे मथुरा लौट गये क्योंकि श्रीकृष्ण वहाँ पर स्वयं अपनी दिव्य लीलाएँ प्रदर्शित कर रहे थे।

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ।
वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ

कृष्णाय—कृष्ण को; प्रणिपत्य—सम्मान जताने के लिए गिर कर; आह—कहा; भक्ति—शुद्ध भक्ति की; उद्रेकम्—प्रचुरता; व्रज-ओकसाम्—व्रजवासियों की; वसुदेवाय—वसुदेव को; रामाय—बलराम को; राज्ञे—राजा (उग्रसेन) को; च—तथा; उपायनानि—भेंट के रूप में प्राप्त वस्तुएँ; अदात्—दिया।

गिर कर प्रणाम करने के बाद उद्धव ने कृष्ण से व्रजवासियों की महती भक्ति का वर्णन किया। उद्धव ने इसका वर्णन वसुदेव, बलराम तथा राजा उग्रसेन से भी किया और उन्हें वे वस्तुएँ भेंट कीं जिन्हें वे अपने साथ लाये थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''भ्रमर गीत'' नामक सैंतालीसवें अध्याय के श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter अड़तालीस

कृष्ण द्वारा अपने भक्तों की तुष्टि

इस अध्याय में बतलाया गया है कि श्रीकृष्ण सर्वप्रथम त्रिवक्रा (जो कुब्जा भी कहलाती थी) के यहाँ जाते हैं और उसके साथ संभोग करते हैं। तत्पश्चात् अक्रूर के यहाँ जाते हैं। भगवान् पाण्डवों को प्रसन्न करने के लिए अक्रूर को हस्तिनापुर भेजते हैं।

जब उद्धव ने आकर श्रीकृष्ण से व्रज के समाचार बतला दिये तो भगवान् त्रिवक्रा के घर गये जो संभोग-सुख के उपयुक्त विविध अलंकारों से सजाया गया था। त्रिवक्रा ने बड़े ही आदर के साथ कृष्ण का स्वागत किया, उन्हें उच्च आसन दिया और अपनी सखियों के साथ उनकी पूजा की। उसने उद्धव को भी उनके पद के अनुसार आसन दिया किन्तु उद्धव ने उसका केवल स्पर्श ही किया और फिर जमीन पर बैठ गये।

तब श्रीकृष्ण ऐश्वर्यशाली शय्या में लेट गये और दासी त्रिवक्रा ने अपने को खूब सजाया-सँवारा था। तत्पश्चात् वह उनके पास आई। कृष्ण ने त्रिवक्रा को शय्या में बुलाया और विविध प्रकार से उसके साथ रमण किया। कृष्ण का आलिंगन पाकर त्रिवक्रा काम-पीड़ा से मुक्त हो गई। उसने कृष्ण से कुछ काल तक रहने के लिए कहा और सबका मन रखने वाले भगवान् ने कालान्तर में उसकी प्रार्थना को पूरा करने का वचन दिया। तत्पश्चात् वे उद्धव सहित अपने घर लौट आये। त्रिवक्रा ने कृष्ण को चन्दन-लेप अर्पित करने के अलावा कभी कोई अन्य पवित्र कर्म नहीं किया था फिर भी इस एकमात्र कर्म की पवित्रता के बल पर उसने श्रीकृष्ण की दुर्लभ संगति प्राप्त की।

इसके बाद श्रीकृष्ण बलदेव तथा उद्धव समेत अक्रूर के घर गये। अक्रूर ने तीनों को नमस्कार करने के बाद उपयुक्त आसन प्रदान करते हुए उनका सम्मान किया। तत्पश्चात् उसने राम तथा कृष्ण की पूजा की, उनके चरण पखारे और उस जल को सिर पर धारण किया। अक्रूर ने भी उनकी अनेक प्रकार से स्तुतियाँ कीं।

भगवान् कृष्ण अक्रूर की स्तुतियों से प्रसन्न थे। उन्होंने उनसे कहा कि चूँकि आप हमारे चाचा (ताऊ) लगते हैं अत: कृष्ण तथा बलराम को उनका संरक्षण तथा अनुग्रह मिलते रहना चाहिए। तत्पश्चात् कृष्ण ने अक्रूर की प्रशंसा एक सन्त तथा पापियों को पवित्र करने वाले के रूप में की और उनसे कहा कि वे हस्तिनापुर जाकर पता लगायें कि अपने पिता से वंचित होकर पाण्डव किस तरह रह रहे हैं। अन्त में कृष्ण बलराम तथा उद्धव को अपने साथ लेकर अपने घर लौट आये।

श्रीशुक उवाच
अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; **अथ**—तब; **विज्ञाय**—जानकर; **भगवान्**—भगवान्; **सर्व**—सबों के; **आत्मा**—आत्मा; **सर्व**—सबों के; **दर्शनः**—द्रष्टा; **सैरन्ध्र्याः**—सेवा करने वाली लड़की त्रिवक्रा के; **काम**—कामवासना से; **तप्तायाः**—संतप्त; **प्रियम्**—तुष्टि; **इच्छन्**—चाहने वाली; **गृहम्**—घर; **ययौ**—गये।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : उद्धव के सन्देश को आत्मसात करने के बाद समस्त प्राणियों के सर्वज्ञ आत्मा भगवान् कृष्ण ने सेवा करने वाली लड़की त्रिवक्रा को तुष्ट करना चाहा जो कामवासना से पीड़ित थी। अत: वे उसके घर गये।

तात्पर्य : इस श्लोक से भगवान् की लीलाओं की एक रोचक झाँकी प्राप्त होती है। प्रथम पद में कहा गया है *अथ विज्ञाय भगवान्* "(उद्धव की सूचना) को जान लेने के बाद भगवान् इस तरह...।" द्वितीय पद में कहा गया है कि भगवान् कृष्ण *सर्वात्मा* और *सर्वदर्शनः* हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि वे दूतों के द्वारा कही गई खबरों पर आश्रित नहीं हैं किन्तु वे मनुष्य की तरह कार्य करते हैं और दूत का सन्देश सुनते हैं इसलिए नहीं कि उन्हें आवश्यकता है जैसा हम लोग करते हैं अपितु अपने शुद्ध-भक्त से प्रेम का आदान-प्रदान करने की अपनी दिव्य लीला के आनंद के कारण वे ऐसा करते हैं। *सर्वदर्शनः* शब्द यह भी बताता है कि भगवान् व्रज के वासियों की भावनाओं को पूरी तरह समझते थे और मन ही मन

आदान-प्रदान कर रहे थे। अपनी बहिरंगा लीलाओं में वे श्रीमती त्रिवक्रा को आशीर्वाद देना चाहते थे क्योंकि उन्हें उसे भौतिक काम के रोग से मुक्त करना था।

महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ।
मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ।
धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम् ॥ २॥

शब्दार्थ

महा-अर्ह—महँगे; उपस्करैः—साज-सामान से; आढ्यम्—सम्पन्न; काम—कामवासना का; उपाय—साज-सामान; उपबृंहितम्—भरा-पुरा; मुक्ता-दाम—मोतियों की लड़ियों से; पताकाभिः—तथा झंडों से; वितान—चँदोवों से; शयन—पलँग; आसनैः—तथा आसनों से; धूपैः—अगुरु से; सुरभिभिः—सुगन्धित; दीपैः—दीपकों से; स्रक्—फूल की मालाओं से; गन्धैः—तथा सुगन्धित चन्दन-लेप से; अपि—भी; मण्डितम्—सजाया हुआ।

त्रिवक्रा का घर ऐश्वर्ययुक्त साज-सामान से बड़ी शान से सजाया हुआ था और कामोत्तेजना उभाड़ने वाली साज-सामग्री से भरा-पूरा था। उसमें झंडियाँ, मोती की लड़ें, चँदोवा, सुन्दर सेज तथा बैठने के आसन थे और सुगन्धित अगुरु, दीपक, फूल-मालाएँ तथा सुगन्धित चन्दन-लेप भी था।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार त्रिवक्रा के घर में कामोत्तेजक साज-सामग्री में विशिष्ट तरह के कामवासना सम्बन्धी चित्र भी थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि उसकी साज-सामग्री में कामोत्तेजक जड़ी-बूटियाँ भी थीं। इन सबसे त्रिवक्रा के मनोभाव का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। फिर भी भगवान् कृष्ण उसे भौतिक जगत से बचाने के लिए गये।

गृहं तमायान्तमवेक्ष्य सासनात्
सद्यः समुत्थाय हि जातसम्भ्रमा ।
यथोपसङ्गम्य सखीभिरच्युतं
सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ॥

शब्दार्थ

गृहम्—अपने घर पर; तम्—उसको; आयान्तम्—आया हुआ; अवेक्ष्य—देखकर; सा—वह; आसनात्—आसन से; सद्यः—तुरन्त; समुत्थाय—उठकर; हि—निस्सन्देह; जात-सम्भ्रमा—हड़बड़ाकर; यथा—समुचित ढंग से; उपसणगम्य—आगे आकर; सखीभिः—अपनी सखियों सहित; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; सभाजयाम् आस—आदरपूर्वक सत्कार किया; सत्-आसन—उत्तम आसन; आदिभिः—इत्यादि से।

जब त्रिवक्रा ने उन्हें अपने घर की ओर आते देखा तो वह हड़बड़ाकर तुरन्त ही अपने आसन से उठ खड़ी हुई। अपनी सखियों समेत आगे आकर उसने भगवान् अच्युत को उत्तम आसन तथा

पूजा की अन्य सामग्रियाँ अर्पित करते हुए उनका सत्कार किया।

तथोद्धवः साधुतयाभिपूजितो
न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ।
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं
विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४॥

शब्दार्थ

तथा—भी; उद्धवः—उद्धव; साधुतया—साधु-पुरुष की तरह; अभिपूजितः—पूजित; न्यषीदत्—बैठ गये; उर्व्याम्—जमीन पर; अभिमृश्य—स्पर्श करके; च—तथा; आसनम्—आसन का; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; अपि—तथा; तूर्णम्—अविलम्ब; शयनम्—सेज पर; महा-धनम्—अत्यन्त वैभवशाली; विवेश—लेट गये; लोक—मानव समाज का; आचरितानि—आचरणों का; अनुव्रतः—अनुकरण करते हुए।

उद्धव को भी सम्मानयुक्त आसन प्राप्त हुआ। चुँकि वे साधु सदृश पुरुष थे अतः उन्होंने उसका स्पर्श ही किया और फिर फर्श पर बैठ गये। तब भगवान् कृष्ण मानव समाज के आचारों (लोकाचार) का अनुकरण करते हुए ऐश्वर्यशाली शय्या पर लेट गये।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार उद्धव अपने स्वामी के प्रति सम्मान व्यक्त करने की दृष्टि से उनके समक्ष ऐश्वर्यशाली आसन पर नहीं बैठे प्रत्युत उसे अपने हाथ से छुआ और फर्श पर बैठ गये। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि भगवान् कृष्ण त्रिवक्रा के घर के भीतरी कक्ष में स्थित शय्या पर लेटे।

सा मज्जनालेपदुकूलभूषण-
स्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं
सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५॥

शब्दार्थ

सा—वह, त्रिवक्रा; मज्जन—स्नान करके; आलेप—लेप लगाकर; दुकूल—सुन्दर वस्त्र पहनकर; भूषण—आभूषणों से; स्रक्—मालाओं से; गन्ध—सुगन्ध; ताम्बूल—पान; सुधा-आसव—सुगन्धित पेय; आदिभिः—आदि से; प्रसाधित—तैयार किया; आत्मा—अपना शरीर; उपससार—पास आई; माधवम्—भगवान् कृष्ण के; स-व्रीड—सलज्ज; लीला—खिलवाड़-भरी, लीलामयी; उत्स्मित—अपनी हँसी का; विभ्रम—लुभाने वाली; ईक्षितैः—चितवनों से।

त्रिवक्रा नहाकर, अपने शरीर में लेप लगाकर तथा सुन्दर वस्त्र पहनकर और तब आभूषण और मालाएँ पहन कर और सुगन्ध लगाने के बाद पान-सुपारी चबाकर और सुगन्धित पेय पीकर तैयार हुई। तब वह लजीली, लीलामयी हँसी तथा लुभाने वाली चितवनों से माधव के पास पहुँची।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि हजारों वर्षों के बाद भी स्त्रियों द्वारा काम-भोग की तैयारी की

विधियों में कोई परिवर्तन नहीं आया।

आहूय कान्तां नवसङ्गमह्रिया
विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे ।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया
रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

आहूय—बुलाकर; कान्ताम्—अपनी प्रियतमा को; नव—नवीन; सङ्गम—संसर्ग का; ह्रिया—लाज से युक्त; विशङ्किताम्—सशंकित; कङ्कण—चूड़ियों से; भूषिते—आभूषित; करे—दोनों हाथों में; प्रगृह्य—पकड़े; शय्याम्—सेज पर; अधिवेश्य—बैठकर; रामया—सुन्दरी स्त्री के साथ; रेमे—रमण किया; अनुलेप—लेप का; अर्पण—अर्पण; पुण्य—पवित्रता का; लेशया—तनिक भी।

इस नवीन सम्पर्क (मिलन) की प्रत्याशा से सशंकित तथा लजीली प्रेमिका को आगे आने के लिए बुलाते हुए भगवान् ने कंगन से सुशोभित उसके हाथों को पकड़कर अपनी सेज पर खींच लिया। इस तरह उन्होंने उस सुन्दरी के साथ रमण किया जिसकी एकमात्र पवित्रता इतनी ही थी कि उसने पहले किसी समय भगवान् को लेप अर्पित किया था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की व्याख्या है कि *नवसंगमह्रिया* शब्द सूचित करते हैं कि त्रिवक्रा अभी तक कुमारी थी। वह कुबड़ी थी और भगवान् ने उसे हाल ही में सुन्दर बाला का रूप प्रदान किया था। अत: वह श्रीकृष्ण पर कामासक्त तो थी किन्तु सहज भाव से वह लजीली तथा सशंकित थी।

सानङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णो-
र्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती ।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्त-
मानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

स—वह; अनङ्ग—कामदेव द्वारा; तप्त—जलती हुई; कुचयो:—अपने स्तनों के; उरस:—अपनी छाती के; तथा—और; अक्ष्णो:—अपनी आँखों के; जिघ्रन्ती—सूँघती; अनन्त—अनन्त भगवान् कृष्ण के; चरणेन—चरणों से; रुज:—पीड़ा; मृजन्ती—पोंछती हुई; दोर्भ्याम्—अपनी बाहुओं से; स्तन—स्तनों के; अन्तर-गतम्—बीच; परिरभ्य—आलिंगन करके; कान्तम्—प्रेमी को; आनन्द—समस्त आनन्द की; मूर्तिम्—साक्षात् अभिव्यक्तिको; अजहात्—त्याग दिया; अति—अत्यधिक; दीर्घ—दीर्घकालीन; तापम्—कष्ट को।

भगवान् के चरणकमलों की सुगन्धि से ही त्रिवक्रा ने अपने स्तनों, छाती तथा आँखों में कामदेव द्वारा उत्पन्न जलती हुई कामवासना को धो दिया। अपनी दोनों बाँहों से उसने अपने स्तनों

के मध्य स्थित अपने प्रेमी श्रीकृष्ण का आलिंगन किया जो आनन्द की मूर्ति हैं और इस तरह उसने अपने दीर्घकालीन व्यथा को त्याग दिया।

सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्राप्यमीश्वरम् ।
अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

स—उसने; एवम्—इस प्रकार; कैवल्य—मुक्ति के; नाथम्—नियन्ता; तम्—उस; प्राप्य—प्राप्त करके; दुष्प्राप्यम्—प्राप्त न हो सकने वाले; ईश्वरम्—भगवान् को; अङ्ग-राग—शरीर का लेप; अर्पणेन—प्रदान करने से; अहो—ओह; दुर्भगा—अभागी; इदम्—यह; अयाचत—उसने माँगा।

केवल शरीर का लेप प्रदान करने से ही अलभ्य भगवान् को इस प्रकार पाकर उस अभागी त्रिवक्रा ने स्वतंत्रता (मोक्ष) के उन स्वामी से निम्नलिखित याचना की।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार श्रीमती त्रिवक्रा ने भगवान् से प्रार्थना की, ''कृपया एकमात्र मेरे साथ रमण करें, अन्य किसी स्त्री से नहीं।'' चूँकि कृष्ण ऐसा वर देने को राजी न थे इसलिए त्रिवक्रा को अभागी कहा गया है। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि यद्यपिसामान्य दृष्टि से वह भौतिक काम-सुख की याचना करती प्रतीत हो रही थी, किन्तु वास्तव में वह अब तक मुक्तात्मा हो चुकी थी।

सहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ।
रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सह—साथ में; उष्यताम्—ठहरें; इह—यहाँ; प्रेष्ठ—हे प्रिय; दिनानि—दिन; कतिचित्—कुछ; मया—मेरे साथ; रमस्व—रमण करें; न उत्सहे—सहन नहीं कर सकती; त्यक्तुम्—छोड़ पाना; सङ्गम्—साथ; ते—तुम्हारा; अम्बुरुह-ईक्षण—हे कमल-नेत्र।

[त्रिवक्रा ने कहा] : हे प्रियतम! आप यहाँ पर मेरे साथ कुछ दिन और रुकें और रमण करें। हे कमल-नेत्र! मैं आपका साथ छोड़कर नहीं रह सकती।

तात्पर्य : *अम्बु* का अर्थ है ''जल'' और *रुह* का अर्थ है ''उठते हुए।'' इस तरह *अम्बुरुह* का अर्थ है ''जल से ऊपर उठने वाला, कमल का फूल।'' भगवान् कृष्ण *अम्बुरुहेक्षण* ''कमलनेत्र'' कहलाते हैं। वे समस्त सौन्दर्य के स्रोत तथा मूर्ति हैं इसीलिए स्वाभाविक था कि त्रिवक्रा उनके प्रति आकृष्ट थी। किन्तु भगवान् का सौन्दर्य आध्यात्मिक एवं विशुद्ध है और उनका मन्तव्य त्रिवक्रा के साथ अपनी तृप्ति करना नहीं था अपितु उसे शुद्ध कृष्णभावनामृत तक ले आना था।

तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः ।
सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदृद्धिमत् ॥ ॥

शब्दार्थ

तस्यै—उसको; काम—भौतिक इच्छा का; वरम्—वर; दत्त्वा—देकर; मानयित्वा—अपना आदर दिखलाकर; च—तथा; मान-दः—अन्यों का आदर करने वाले; सह उद्धवेन—उद्धव के साथ; सर्व-ईशः—सभी जीवों के प्रभु; स्व—अपने; धाम—वासस्थान; अगमत्—चले गये; ऋद्धि-मत्—अत्यन्त समृद्धिवान।

इस काम-इच्छा को पूरा करने का वचन देकर, समस्त जीवों के स्वामी, सबका मान रखने वाले कृष्ण ने त्रिवक्रा का अभिवादन किया और तब उद्धव समेत अपने अत्यन्त समृद्धिशाली धाम को लौट आये।

तात्पर्य : सारे आचार्य मानते हैं कि *कामवरं दत्त्वा* शब्द यह सूचित करता है कि कृष्ण ने त्रिवक्रा को वचन दिया कि वे उसकी कामेच्छाओं को पूरा करेंगे।

दुराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दुराराध्यम्—विरले ही पूजित; समाराध्य—पूरी तरह पूजा करके; विष्णुम्—विष्णु की; सर्व—सबों के; ईश्वर—नियन्ता के; ईश्वरम्—परम नियन्ता; यः—जो; वृणीते—वर के रूप में चुनता है; मनः—मन तक; ग्राह्यम्—पहुँच रखने वाला, अर्थात् इन्द्रिय तृप्ति; असत्त्वात्—तुच्छता के कारण; कुमनीषी—बुद्धिहीन; असौ—वह व्यक्ति।

सामान्यतया समस्त ईश्वरों के परम ईश्वर भगवान् विष्णु तक पहुँच पाना कठिन है। अतः जो व्यक्ति उनकी समुचित पूजा करने के बाद उनसे इन्द्रियतृप्ति का वर माँगता है, वह निश्चित रूप से कम बुद्धि वाला (दुर्बुद्धि) है क्योंकि वह तुच्छ फल से तुष्ट हो जाता है।

तात्पर्य : आचार्यों की टीकाओं से यह स्पष्ट है कि त्रिवक्रा की कथा को दो स्तरों पर समझना होगा। एक ओर भगवान् की प्रत्यक्ष संगति एवं उनकी लीलाओं में भाग लेने के कारण वह मुक्तात्मा मानी जाती है, तो दूसरी ओर उसका आचरण यह शिक्षा प्रदान करने के निमित्त प्रस्तुत हुआ है कि कृष्ण का साथ होने पर क्या नहीं करना चाहिए। चूँकि कृष्ण की सारी लीलाएँ न केवल आनन्दमय हैं अपितु उपदेशात्मक हैं अतः इस लीला में कोई वास्तविक विरोध नहीं है क्योंकि त्रिवक्रा की पवित्रता तथा उसका बुरा उदाहरण दो भिन्न स्तरों पर उपस्थित होते हैं। अर्जुन भी शुद्ध-भक्त माना जाता है फिर भी प्रारम्भ में युद्ध करने की कृष्ण की आज्ञा का उल्लंघन करके उसने भी जो नहीं करना चाहिए

उसका उदाहरण प्रस्तुत किया। किन्तु ऐसे बुरे उदाहरणों का अन्त सदा सुखमय होता है परम सत्य कृष्ण के आनन्दमय सान्निध्य में।

अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ।
किञ्चिच्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रीयकाम्यया ॥ १२॥

शब्दार्थ

अक्रूर-भवनम्—अक्रूर के घर; कृष्णः—कृष्ण के; सह—साथ; राम-उद्धवः—बलराम तथा उद्धव; प्रभुः—परमेश्वर; किञ्चित्—कुछ-कुछ; चिकीर्षयन्—कराने की इच्छा से; प्रागात्—गये; अक्रूर—अक्रूर की; प्रिय—तुष्टि; काम्यया—इच्छा से।.

तत्पश्चात् भगवान् कृष्ण कुछ कार्य कराने की इच्छा से अक्रूर के घर बलराम और उद्धव के साथ गये। भगवान् अक्रूर को भी तुष्ट करना चाहते थे।

तात्पर्य : त्रिवक्रा के घर भगवान् के जाने की पिछली घटना और अब अक्रूर के घर जाना ये मथुरा नगरी में श्रीकृष्ण की दैनिक-चर्याओं की मनोहर झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

स तान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबान्धवान् ।
प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ १॥
ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ।
पूजयामास विधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४॥

शब्दार्थ

सः—वह (अक्रूर); तान्—उनको (कृष्ण, बलराम तथा उद्धव को); नर-वर—श्रेष्ठ पुरुषों में; श्रेष्ठान्—सबसे बड़ा; आरात्—दूर से; वीक्ष्य—देखकर; स्व—अपने (अक्रूर के); बान्धवान्—सम्बन्धियों को; प्रत्युत्थाय—उठकर; प्रमुदितः—प्रसन्न; परिष्वज्य—आलिंगन करके; अभिनन्द्य—स्वागत करके; च—तथा; ननाम—नमस्कार किया; कृष्णम् रामम् च—कृष्ण तथा बलराम को; सः—वह; तैः—उनके द्वारा; अपि—तथा; अभिवादितः—स्वागत किया; पूजयाम् आस—पूजा की; विधि-वत्—शास्त्रीय आदेशों के अनुसार; कृत—किया हुआ; आसन—बैठने के आसनों का; परिग्रहान्—स्वीकार करना।.

जब अक्रूर ने अपने ही सम्बन्धियों एवं पुरुष शिरोमणियों को दूर से आते देखा तो वे हर्षपूर्वक उठकर खड़े हो गये। उनको गले मिलने आलिंगन और स्वागत करने के बाद अक्रूर ने कृष्ण और बलराम को नमस्कार किया और बदले में उन दोनों ने उनका अभिवादन किया। फिर जब उनके अतिथि आसन ग्रहण कर चुके तो उन्होंने शास्त्रीय नियमों के अनुसार उनकी पूजा की।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी संकेत करते हैं कि श्रीकृष्ण तथा अन्य लोग मित्र के रूप में अक्रूर के पास पहुँचे थे। सर्वप्रथम अक्रूर ने बदले में मित्र-भाव प्रदर्शित किया और तब आतिथ्य करते हुए

उन्होंने भगवान् की ओर स्वाभाविक भक्ति-भाव दर्शाया और श्रीकृष्ण तथा बलराम को सादर नमस्कार किया।

पादावनेजनीरापो धारयन्शिरसा नृप ।
अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥
अर्चित्वा शिरसानम्य पादावङ्कगतौ मृजन् ।
प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

पाद—उनके पाँव; अवनेजनीः—स्नान के काम आने वाला; आ—सर्वत्र; आपः—जल; धारयन्—धारण करते हुए; शिरसा—सिर पर; नृप—हे राजा (परीक्षित); अर्हणेन—भेंटों से; अम्बरैः—वस्त्रों से; दिव्यैः—स्वर्गिक; गन्ध—सुगन्धित चन्दन का लेप; स्रक्—फूल-मालाएँ; भूषण—तथा आभूषण; उत्तमैः—उत्तम; अर्चित्वा—पूजा करके; शिरसा—सिर के बल; आनम्य—झुककर; पादौ—(कृष्ण के) पाँव; अङ्क—अपनी गोद में; गतौ—रख लिए; मृजन्—दबाते हुए; प्रश्रय—दीनतापूर्वक; अवनतः—सिर झुकाकर; अक्रूरः—अक्रूर; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम से; अभाषत—बोला।

हे राजन्, अक्रूर ने भगवान् कृष्ण तथा बलराम के चरण पखारे और तब उस चरणोदक को अपने सिर पर छिड़का। उन्होंने उन दोनों को उत्तम वस्त्र, सुगन्धित चन्दन-लेप, फूल-मालाएँ तथा उत्तम आभूषण भेंट में दिये। इस तरह दोनों विभुओं की पूजा करने के बाद उन्होंने अपने शिर से फर्श को स्पर्श करके नमस्कार किया। फिर वे कृष्ण के चरणों को अपनी गोद में लेकर दबाने लगे और नम्रभाव से अपना सिर नीचे किये कृष्ण तथा बलराम से इस प्रकार बोले।

दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ।
भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद्दुरन्ताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्य से; पापः—पापी; हतः—मारा गया; कंसः—कंस; स-अनुगः—अपने भाइयों तथा अन्य अनुयायियों सहित; वाम्—आपके; इदम्—इस; कुलम्—वंश को; भवद्भ्याम्—आप दोनों के द्वारा; उद्धृतम्—उद्धार किया गया; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; दुरन्तात्—अन्तहीन; च—तथा; समेधितम्—सम्पन्न बनाया।

[अक्रूर ने कहा] : यह तो हमारा सौभाग्य है कि आप दोनों ने दुष्ट कंस तथा उसके अनचरों का वध कर दिया है। इस तरह आपने अपने वंश को अन्तहीन कष्ट से उबारकर उसे समृद्ध बनाया है।

युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ।
भवद्भ्यां न विना किञ्चित्परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

युवाम्—तुम दोनों; प्रधान-पुरुषौ—आदि-पुरुषों ने; जगत्—ब्रह्माण्ड के; हेतू—कारण; जगत्-मयौ—ब्रह्माण्ड से अभिन्न; भवद्भ्याम्—आपकी अपेक्षा; न—नहीं; विना—के अतिरिक्त; किञ्चित्—कुछ भी; परम्—कारण; अस्ति—है; न च—न तो; अपरम्—फल।

आप दोनों आदि परम पुरुष, ब्रह्माण्ड के कारण तथा इसके सार हैं। जरा सा भी सूक्ष्म कारण या सृष्टि की कोई भी अभिव्यक्ति आपसे पृथक् नहीं रह सकती।

तात्पर्य : अपने वंश की रक्षा करने के लिए कृष्ण तथा बलराम की प्रशंसा करने के बाद अक्रूर यह बतलाते हैं कि भगवान् का किसी सामाजिक संस्था या राजनीतिक संस्था से कोई भौतिक सम्बन्ध नहीं है। वे आदि-भगवान् हैं और समग्र ब्रह्माण्ड के लाभ हेतु अपनी लीलाएँ सम्पन्न करते हैं।

**आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ।
ईयते बहुधा ब्रह्मन्श्रु तप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥**

शब्दार्थ

आत्म-सृष्टम्—आपके द्वारा सृजित; इदम्—यह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; अन्वाविश्य—बाद में प्रवेश करके; स्व—अपनी; शक्तिभिः—शक्तियों से; ईयते—अनुभव किये जाते हो; बहुधा—विविध; ब्रह्मन्—हे परब्रह्म; श्रुत—शास्त्रों से सुनकर; प्रत्यक्ष—तथा प्रत्यक्ष अनुभूति से; गोचरम्—ज्ञेय।

हे परम सत्य आप अपनी निजी शक्तियों से इस ब्रह्माण्ड का सृजन करते हैं और तब उसमें प्रवेश करते हैं। इस तरह महाजनों से सुनकर तथा प्रत्यक्ष अनुभव करके मनुष्य आपको अनेक विभिन्न रूपों में अनुभव कर सकता है।

तात्पर्य : *श्रुतप्रत्यक्षगोचरम्* तथा *आत्मसृष्टमिदं विश्वम्* में नपुंसक लिंग का जो व्याकरणिक साम्य है। उससे सूचित होता है कि भगवान् अपनी शक्तियों द्वारा अपनी सृष्टि में प्रविष्ट होकर ब्रह्माण्ड के भीतर अपने को ज्ञेय बनाते हैं। *भागवत* में तथा अन्य प्रामाणिक वैदिक साहित्य में हमें भगवान् के प्रायः तमाम विवरण मिलते हैं जिनमें अन्य सारी वस्तुओं से उनकी श्रेष्ठता तथा उनसे अभिन्नता देखी जाती है। हम वैदिक साहित्य से यदि कोई निष्कर्ष निकाल सकते हैं, तो वह यही है, जिसका उपदेश श्री चैतन्य महाप्रभु ने दिया वह है *अचिन्त्य भेदाभेदतत्त्व*। अर्थात् परम सत्य हर वस्तु से बड़े और पृथक् हैं (क्योंकि वे सर्वशक्तिमान स्रष्टा तथा सबों के नियन्ता हैं) और उसी के साथ साथ हर वस्तु से एकाकार हैं (क्योंकि जो कुछ भी विद्यमान है, वह उनकी शक्ति का विस्तार है)।

हमें भी *श्रीमद्भागवत* के इन सारे अध्यायों में इस महान् ग्रंथ की एक अद्वितीय असाधारण

विशेषता दिखती है। कृष्ण चाहे गोपियों के पास सन्देश भेज रहे हों या अक्रूर की प्रार्थना स्वीकार कर रहे हों इन सब में निरन्तर दार्शनिक बातचीत चलती है। पूरे *भागवत* में मनोहारी लीलाओं के साथ आध्यात्मिक दर्शन का जो संगम मिलता है, वह इसकी असामान्य विशेषता है। हमें भगवान् तथा उनके मुक्त पार्षदों की आध्यात्मिक भावनाओं में झाँकने तथा उनका आस्वाद लेने की अनुमति है फिर भी हमें बारम्बार उनकी तात्विक स्थिति का स्मरण कराया जाता है, जिससे हम सस्ती मानववादी दृष्टिकोण में फँस न जाँय। अत: इस ग्रंथ की प्रकृति के अनुसार ही अक्रूर प्रसन्नतावश भगवान् की संक्षिप्त दार्शनिक स्तुति करते हैं।

यथा हि भूतेषु चराचरेषु
मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना ।
एवं भवान्केवल आत्मयोनि-
ष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; हि—निस्सन्देह; भूतेषु—प्रकट जीवों में; चर—चेतन; अचरेषु—तथा जड़ में; मही-आदय:—पृथ्वी इत्यादि (सृष्टि के मूलभूत तत्त्व); योनिषु—योनियों में; भान्ति—प्रकट होते हैं; नाना—विविध प्रकार से; एवम्—इस तरह; भवान्—आप; केवल:—एकमात्र; आत्म—स्वयं; योनिषु—योनियों में; आत्मा—परमात्मा; आत्म-तन्त्र:—आत्म-निर्भर; बहुधा—कई प्रकार से; विभाति—प्रकट होता है।

जिस प्रकार जड़ तथा चेतन जीव-योनियों में मूलभूत तत्त्व अपने को पृथ्वी इत्यादि अनेकानेक किस्मों के रूप में प्रकट करते हैं उसी तरह आप एक स्वतंत्र परमात्मा के रूप में अपनी सृष्टि के विविधतापूर्ण पदार्थों में अनेक रूपों में प्रकट होते हैं।

सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं
रजस्तम:सत्त्वगुणै: स्वशक्तिभि: ।
न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा
ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतु: ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

सृजसि—सृजन करते हो; अथ उ—और तब; लुम्पसि—संहार करते हो; पासि—रक्षा करते हो; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; रज:—रजो; तम:—तमो; सत्त्व—तथा सतो; गुणै:—गुणों के द्वारा; स्व-शक्तिभि:—अपनी शक्तियों से; न बध्यसे—बँधते नहीं हो; तत्—इस जगत के; गुण—गुणों से; कर्मभि:—भौतिक कार्यकलापों द्वारा; वा—अथवा; ज्ञान-आत्मन:—साक्षात् ज्ञान हैं; ते—तुम्हारे लिए; क्व च—जहाँ कोई भी; बन्ध—बन्धन का; हेतु:—कारण।

आप अपनी निजी शक्तियों रजो, तमो तथा सतो गुणों से इस ब्रह्माण्ड का सृजन, संहार और पालन भी करते हैं। फिर भी आप इन गुणों द्वारा या इनसे उत्पन्न कर्मों द्वारा बाँधे नहीं जाते।

चूँकि आप समस्त ज्ञान के आदि-स्रोत हैं, तो फिर मोह द्वारा आपके बंधन का कारण क्या हो सकता है?

तात्पर्य : *ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतु:* यह वाक्यांश स्पष्ट बतलाता है कि सर्वज्ञ भगवान् कभी भी मोह में नहीं रहते। इसलिए इस निर्विशेषवादी सिद्धान्त का कि हम सभी ईश्वर हैं किन्तु हम भूल चुके हैं और अब मोह में हैं, श्रीमद्भागवत के इन पृष्ठों में इसका निराकरण किया गया है।

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्
भवो न साक्षान्न भिदात्मनः स्यात् ।
अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः
स्याताम्निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२॥

शब्दार्थ

देह—शरीर; आदि—इत्यादि की; उपाधेः—उपाधियों के रूप में; अनिरूपितत्वात्—निश्चित न हो पाने से; भवः—जन्म; न—नहीं; साक्षात्—शाब्दिक; न—न तो; भिदा—द्वैत; आत्मनः—परमात्मा के लिए; स्यात्—विद्यमान है; अतः—इसलिए; न—नहीं; बन्धः—बन्धन; तव—तुम्हारा; न एव—न तो, वास्तव में; मोक्षः—मुक्ति; स्याताम्—यदि हो; निकामः—तुम्हारी स्वयं की इच्छा से; त्वयि—तुममें; नः—हमारा; अविवेकः—त्रुटिपूर्ण विवेक।

चूँकि यह कभी प्रदर्शित नहीं हुआ है कि आप भौतिक शारीरिक उपाधियों से प्रच्छन्न हैं अतः यह निष्कर्ष रूप में यह समझना होगा कि शाब्दिक अर्थ में न तो आपका जन्म होता है न ही कोई द्वैत है। इसलिए आपको बन्धन या मोक्ष का सामना नहीं करना होता। और यदि आप ऐसा करते प्रतीत होते हैं, तो यह आपकी इच्छा के कारण ही है कि हम आपको इस रूप में देखते हैं या कि हममें विवेक का अभाव है इसलिए ऐसा है।

तात्पर्य : यहाँ अक्रूर उन दो कारणों को बतलाते हैं जिससे भगवान् भौतिक स्वरूप से आच्छादित दिखते हैं या मनुष्य की तरह जन्म लेते प्रतीत होते हैं। पहला कारण जब भगवान् कृष्ण अपनी लीलाएँ सम्पन्न करते हैं, तो उनके प्रेमी भक्त उन्हें अपने प्रिय पुत्र, मित्र, प्रेमी इत्यादि के रूप में मानते हैं। इस प्रेम-विनिमय के आनन्द के कारण ही वे कृष्ण को ईश्वर नहीं मानते। उदाहरणार्थ, कृष्ण के प्रति असामान्य प्रेम के कारण ही माता यशोदा को चिन्ता होती है कि जंगल में कृष्ण को चोट लग जायेगी। वे इस तरह इसलिए अनुभव करती हैं क्योंकि भगवान् की ऐसी इच्छा होती है, जिसे यहाँ *निकाम:* शब्द द्वारा इंगित किया गया है। दूसरा कारण जिससे भगवान् भौतिक प्रतीत होते हैं वह *अविवेक:* शब्द से इंगित होता है अज्ञान या अविवेक के कारण ही मनुष्य भगवान् की स्थिति को ठीक से समझ नहीं

पाता। *भागवत* के ग्यारहवें स्कन्ध में उद्धव से बातें करते हुए भगवान् कृष्ण विस्तार से बन्धन तथा मोक्ष के परे अपनी दिव्य स्थिति की विवेचना करते हैं। जैसाकि वैदिक साहित्य में कहा गया है *देहदेहिविभागोऽयं नेश्वरे विद्यते क्वचित्* भगवान् के शरीर तथा आत्मा में कभी कोई अन्तर नहीं होता। दूसरे शब्दों में, श्रीकृष्ण का शरीर नित्य, आध्यात्मिक, सर्वज्ञ तथा समस्त आनन्द का आगार है।

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय
यदा यदा वेदपथः पुराणः ।
बाध्येत पाषण्डपथैरसद्भि-
स्तदा भवान्सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥ २॥

शब्दार्थ

त्वया—तुम्हारे द्वारा; उदितः—कहा गया है; अयम्—यह; जगतः—ब्रह्माण्ड के; हिताय—लाभ के लिए; यदा यदा—जब जब; वेद—वैदिक शास्त्रों का; पथः—(धार्मिकता का) मार्ग; पुराणः—प्राचीन; बाध्येत—रोका जाता है; पाषण्ड—नास्तिकता का; पथैः—मार्ग का अनुसरण करने वालों के द्वारा; असद्भिः—दुष्ट पुरुष द्वारा; तदा—तब; भवान्—आप; सत्त्व-गुणम्—शुद्ध सतो गुण; बिभर्ति—धारण करते हैं।

आपने समस्त विश्व के लाभ के लिए प्रारम्भ में वेदों के प्राचीन धार्मिक पथ की व्याख्या की थी। जब भी दुष्ट व्यक्तियों द्वारा नास्तिकता का मार्ग ग्रहण करने के फलस्वरूप यह पथ अवरुद्ध होता है, तो आप दिव्य सतोगुण से युक्त कोई न कोई रूप में अवतरित होते हैं।

स त्वम्प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः
स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ।
अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांश-
राज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—तुम; प्रभो—हे स्वामी; अद्य—अब; वसुदेव-गृहे—वसुदेव के घर में; अवतीर्णः—अवतरित; स्व—अपने ही; अंशेन—प्रत्यक्ष अंश (बलराम); भरम्—भार; अपनेतुम्—हटाने के लिए; इह—यहाँ; असि—हो; भूमेः—पृथ्वी का; अक्षौहिणी—सेनाओं का; शत—सौ; वधेन—मारकर; सुर-इतर—देवताओं के विपक्षियों का; अंश—अंश रूप; राज्ञाम्—राजाओं का; अमुष्य—इसका; च—तथा; कुलस्य—कुल का (यदुकुल का); यशः—ख्याति; वितन्वन्—विस्तार करते हुए।

हे प्रभु, आप वही परम पुरुष हैं और अब आप अपने अंश समेत वसुदेव के घर में प्रकट हुए हैं। आपने देवताओं के शत्रुओं के अंश रूप राजाओं के नेतृत्व वाली हजारों सेनाओं का वध करके पृथ्वी का भार हटाने तथा हमारे कुल की ख्याति का विस्तार करने के लिए ऐसा किया है।

तात्पर्य : *सुरेतरांशराज्ञाम्* पद सूचित करता है कि कृष्ण ने जिन असुर राजाओं का वध किया वे

वास्तव में देवताओं के शत्रुओं के अंश या अवतार थे। इस तथ्य की विस्तृत व्याख्या *महाभारत* में की गई है, जिससे असुर राजाओं की विशिष्ट पहचान उद्घाटित होती है।

अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा
यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ।
यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति
स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; ईश—हे भगवन्; नः—हमारे; वसतयः—निवासस्थान; खलु—निस्सन्देह; भूरि—अत्यन्त; भागाः—भाग्यशाली; यः—जो; सर्व-देव—परमेश्वर; पितृ—पूर्वज, पितरगण; भूत—सारे जीव; नृ—मनुष्य; देव—तथा देवता; मूर्तिः—देहधारी; यत्—जिसके; पाद—पाँवों को; शौच—धोने वाला है; सलिलम्—जल (गंगाजल); त्रि-जगत्—तीनों लोक; पुनाति—पवित्र करता है; सः—वह; त्वम्—तुम; जगत्—ब्रह्माण्ड के; गुरुः—गुरु; अधोक्षज—भौतिक इन्द्रियों के क्षेत्र से परे रहने वाले, इन्द्रियातीत; याः—जो; प्रविष्टः—प्रविष्ट होकर।

हे प्रभु, आज मेरा घर अत्यन्त भाग्यशाली बन गया है क्योंकि आपने इसमें प्रवेश किया है। परम सत्य के रूप में आप पितरों, सामान्य प्राणियों, मनुष्यों एवं देवताओं की मूर्ति हैं और जिस जल से आपके पाँवों को प्रक्षालित किया गया है, वह तीनों लोकों को पवित्र बनाता है। निस्सन्देह हे इन्द्रियातीत, आप ब्रह्माण्ड के आध्यात्मिक गुरु हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने अक्रूर की भावनाओं का निम्नलिखित शब्दों में बहुत ही सुन्दर विश्लेषण किया है—

अक्रूर ने कहा: ''हे प्रभु! यद्यपि मैं गृहस्थ हूँ किन्तु आज यह मेरा घर उन जंगलों से भी अधिक पवित्र बन गया है जहाँ मुनिगण तपस्या करते हैं। ऐसा क्यों? वह केवल इसलिए क्योंकि आपने मेरे घर में प्रवेश किया है। निस्सन्देह आप उन देवों के साक्षात् रूप हैं, जो गृहस्थों द्वारा घर में जीवों के प्रति न चाहने पर भी की गई हिंसा का प्रायश्चित्त करने के लिए प्रतिदिन सम्पन्न किये जाने वाले पाँच यज्ञों के अधिष्ठाता हैं। आप इन सृष्टियों की पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक सत्य हैं और अब आप मेरे घर पधारे हैं।''

गृहस्थ के लिए जिन पाँच यज्ञों के किये जाने का आदेश है वे हैं—१) वेदाध्ययन द्वारा ब्रह्म का यज्ञ २) पितृ-यज्ञ) अपने भोजन का एक अंश अलग रखने से समस्त जीव-यज्ञ ४) आतिथ्य द्वारा मनुष्य-यज्ञ ५) अग्नि-हव्य द्वारा देव-यज्ञ।

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्
भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
सर्वान्ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा-
नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; पण्डितः—विद्वान; त्वत्—आपसे बढ़कर; अपरम्—दूसरा; शरणम्—शरण के लिए; समीयात्—जाये; भक्त—अपने भक्त के लिए; प्रियात्—स्नेहिल; ऋत—सदैव सच; गिरः—शब्द; सुहृदः—शुभचिन्तक; कृत-ज्ञात्—कृतज्ञ; सर्वान्—सभी; ददाति—आप देते हैं; सुहृदः—अपने शुभचिन्तक भक्तों को; भजतः—आपकी पूजा करने वाले; अभिकामान्—इच्छाएँ; आत्मानम्—अपने आपको; अपि—भी; उपचय—वृद्धि; अपचयौ—या ह्रास; न—कभी नहीं; यस्य—जिसका।

जब आप अपने भक्तों के प्रति इतने स्नेहिल, कृतज्ञ तथा सच्चे शुभचिन्तक हैं, तो फिर कौन ऐसा विद्वान होगा जो आपको छोड़कर किसी दूसरे के पास जायेगा? जो लोग सच्चे साख्यभाव से आपकी पूजा करते हैं उन्हें आप मुँहमाँगा वरदान, यहाँ तक कि अपने आपको भी, दे देते हैं फिर भी आपमें न तो वृद्धि होती है न ह्रास।

तात्पर्य : इस श्लोक में भगवान् तथा उनके भक्त—दोनों को ही *सुहृदः* (शुभचिन्तक) कहा गया है। भगवान् अपने भक्त के शुभचिन्तक हैं और भक्त भी भगवान् के लिए सारे सुख की प्रेमपूर्वक कामना करता है। इस जगत में भी अत्यधिक प्रेम से कभी कभी अनावश्यक चिन्ता उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ, हम प्राय: देखते हैं कि माता द्वारा अपनी प्रौढ़ सन्तान के प्रति यह चिन्ता कि वह वास्तव में किसी आपत्ति में होगा न्यायसंगत नहीं है। प्रौढ़ सन्तान धनी, दक्ष तथा स्वस्थ हो तो भी माता की प्रेममयी चिन्ता बनी रहती है। इसी प्रकार शुद्ध-भक्त कृष्ण के प्रति सदैव प्रेममयी चिन्ता का अनुभव करता है जैसाकि माता यशोदा के उदाहरण से स्पष्ट है, जो कृष्ण के प्रति अपने सुन्दर पुत्र के रूप में ही चिंतित रहती हैं।

भगवान् कृष्ण ने अक्रूर से वादा किया था कि कंस का वध करने के बाद वे उनके घर जायेंगे और अब भगवान् वही वादा निभाने आये थे। अक्रूर इसे जानते हैं इसीलिए भगवान् की महिमा का गायन *ऋतगिरः* (वचन के प्रति सच्चा) कहकर करते हैं। भक्त द्वारा भगवान् की जो भी थोड़ी-बहुत पूजा होती है उसके लिए भगवान् उसके कृतज्ञ रहते हैं। भक्त भले ही भूल जाय किन्तु भगवान् उसे नहीं भूलते।

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो
योगेश्वैररपि दुरापगतिः सुरेशैः ।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेह-
देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्य से; जनार्दन—हे कृष्ण; भवान्—आप; इह—यहाँ; नः—हमारे द्वारा; प्रतीतः—अनुभवगम्य; योग-ईश्वैरः—योग के स्वामियों द्वारा; अपि—भी; दुराप-गतिः—लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन; सुर-ईशैः—तथा देवताओं के शासकों द्वारा; छिन्धि—काट दें; आशु—तुरन्त; नः—हमारे; सुत—सन्तान; कलत्र—पत्नी; धन—सम्पत्ति; आप्त—योग्य मित्र; गेह—घर; देह—शरीर; आदि—इत्यादि; मोह—मोह की; रशनाम्—रस्सियों को; भवदीय—अपनी; मायाम्—माया को।

हे जनार्दन, हमारे बड़े भाग्य हैं कि हमें आपके दर्शन हो रहे हैं क्योंकि बड़े बड़े योगेश्वर तथा अग्रणी देवता भी इस लक्ष्य को बड़ी मुश्किल से प्राप्त कर पाते हैं। कृपया शीघ्र ही सन्तान, पत्नी, धन, समृद्ध मित्र, घर तथा शरीर के प्रति हमारी मायामयी आसक्ति की रस्सियों को काट दें। ऐसी सारी आसक्ति आपकी भ्रामक एवं भौतिक माया का ही प्रभाव है।

इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान्हरिः ।
अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः सम्मोहयन्निव ॥ २८॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अर्चितः—पूजित; संस्तुतः—अत्यधिक स्तुति किये गये; च—तथा; भक्तेन—अपने भक्त द्वारा; भगवान्—भगवान्; हरिः—कृष्ण; अक्रूरम्—अक्रूर से; स-स्मितम्—हँसते हुए; प्राह—बोले; गीर्भिः—वाणी से; सम्मोहयन्—पूरी तरह मोहित करते हुए; इव—प्रायः।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : अपने भक्त द्वारा इस तरह पूजित तथा संस्तुत होकर भगवान् हरि ने हँसते हुए अपनी वाणी से अक्रूर को पूर्णतया मोहित करके सम्बोधित किया।

श्रीभगवानुवाच
त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा ।
वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥ २९॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; त्वम्—तुम; नः—हमारे; गुरुः—गुरु; पितृव्यः—चाचा (ताऊ); च—तथा; श्लाघ्यः—प्रशंसनीय; बन्धुः—मित्र; च—तथा; नित्यदा—सदैव; वयम्—हम; तु—तो; रक्ष्याः—रक्षा किये जाने के लिए; पोष्याः—पालन किये जाने के लिए; च—तथा; अनुकम्प्याः—दया दिखाये जाने के लिए; प्रजाः—आश्रित; हि—निस्सन्देह; वः—आपके।

भगवान् ने कहा : आप हमारे गुरु, चाचा तथा श्लाघ्य मित्र हैं और हम आपके पुत्रवत् हैं; अतः हम सदैव आपकी रक्षा, पालन तथा दया पर आश्रित हैं।

भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ।
श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ० ॥

शब्दार्थ

भवत्-विधाः—आपके समान; महा-भागाः—अत्यन्त विख्यात; निषेव्याः—सेवा किये जाने के योग्य; अर्ह—पूज्य; सत्-तमाः—अतीव साधु; श्रेयः—सर्वोच्च शुभ, मंगल; कामैः—चाहने वाले; नृभिः—पुरुषों के द्वारा; नित्यम्—सदैव; देवः—देवतागण; स्व-अर्थाः—निजी लाभ के लिए; न—ऐसे नहीं; साधवः—साधु भक्तगण।

आप जैसे महात्मा ही सेवा के असली पात्र हैं और जीवन में सर्वोच्च मंगल के इच्छुक लोगों के लिए अत्यन्त पूज्य महाजन हैं। देवतागण सामान्यतया अपने स्वार्थों में लगे रहते हैं किन्तु साधु-भक्त ऐसे नहीं होते।

तात्पर्य : देवतागण भले ही भौतिक लाभ प्रदान कर दें किन्तु भगवान् के साधु-भक्तों में जीवन की असली सिद्धि कृष्णभावनामृत प्रदान करने की शक्ति होती है। इस तरह कृष्ण द्वारा अपने चाचा अक्रूर के प्रति अपनाए गए आदर-भाव की पुष्टि होती है।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अप्-मयानि—जल से बना; तीर्थानि—पवित्र स्थान; न—ऐसा नहीं है; देवाः—अर्चाविग्रह; मृत्—मिट्टी; शिला—तथा पत्थर से; मयाः—निर्मित; ते—वे; पुनन्ति—पवित्र बनाते हैं; उरु-कालेन—दीर्घकाल के बाद; दर्शनात्—दर्शन से; एव—केवल; साधवः—साधु-सन्त।

इससे कोई इनकार नहीं करेगा कि अनेक तीर्थस्थानों में पवित्र नदियाँ होती हैं या कि देवताओं के अर्चाविग्रह मिट्टी तथा पत्थर से बने होते हैं। किन्तु ये सब दीर्घकाल के बाद ही आत्मा को पवित्र करते हैं जबकि सन्त-पुरुषों के दर्शनमात्र से आत्मा पवित्र हो जाती है।

स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयान्श्रेयश्चिकीर्षया ।
जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सः—वह व्यक्ति; भवान्—आप; सुहृदाम्—शुभचिन्तकों का; वै—निश्चय ही; नः—हमारा; श्रेयान्—सर्वश्रेष्ठ में से; श्रेयः—मंगल के लिए; चिकीर्षया—नियोजित करने की इच्छा से; जिज्ञासा—पूछताछ के; अर्थम्—लिए; पाण्डवानाम्—पाण्डु के पुत्रों की; गच्छस्व—जाओ; त्वम्—तुम; गज-आह्वयम्—गजाह्वय (कुरुवंश की राजधानी, हस्तिनापुर)।

दरअसल आप हमारे सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं अतः आप हस्तिनापुर जाँय और पाण्डवों के शुभचिन्तक के रूप में पता लगायें कि वे कैसे हैं।

तात्पर्य : संस्कृत में आज्ञार्थ ‘जाओ’ शब्द ‘गच्छस्व’ या ‘गच्छ’ से अभिव्यक्त किया जा सकता

है। *गच्छस्व* में जो *स्व* लगा है, वह सम्बोधन कारक का द्योतक है और अपनत्व का सूचक है। यह कृष्ण तथा उनके चाचा अक्रूर के घनिष्ठ सम्बन्ध के लिए प्रयुक्त है।

पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ।
आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥ ॥

शब्दार्थ

पितरि—पिता के; उपरते—देहान्त होने पर; बालाः—छोटे बालक; सह—साथ; मात्रा—माता के; सु—अत्यन्त; दुःखिताः—दुखी; आनीताः—लाये गये; स्व—अपने; पुरम्—राजधानी में; राज्ञा—राजा द्वारा; वसन्ते—रह रहे हैं; इति—इस प्रकार; शुश्रुम—हमने सुना है।

हमने सुना है कि अपने पिता के दिवंगत हो जाने के बाद बालक पाण्डवों को उनकी दुखी माता समेत राजा धृतराष्ट्र द्वारा राजधानी में लाये गए थे और अब वे वहीं रह रहे हैं।

तेषु राजाम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ।
समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥ ४॥

शब्दार्थ

तेषु—उनके प्रति; राजा—राजा (धृतराष्ट्र); अम्बिका—अम्बिका का; पुत्रः—पुत्र; भ्रातृ—अपने भाई के; पुत्रेषु—पुत्रों के प्रति; दीन-धीः—दुष्ट बुद्धि; समः—समभाव; न वर्तते—नहीं बरतता; नूनम्—निश्चय ही; दुः—दुष्ट; पुत्र—अपने पुत्रों का; वश-गः—अधीन; अन्ध—अन्धा; दृक्—दृष्टि।

असल में अम्बिका का दुर्बल चित्त वाला पुत्र धृतराष्ट्र अपने दुष्ट पुत्रों के वश में आ चुका है अतएव वह अन्धा राजा अपने भाई के पुत्रों के साथ ठीक व्यवहार नहीं कर रहा है।

गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ।
विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ५॥

शब्दार्थ

गच्छ—जाओ; जानीहि—पता लगाओ; तत्—उस (धृतराष्ट्र) की; वृत्तम्—करतूत; अधुना—इस समय; साधु—अच्छा; असाधु—बुरा; वा—अथवा; विज्ञाय—जान कर; तत्—ऐसी; विधास्यामः—हम व्यवस्था करेंगे; यथा—जिससे; शम्—लाभ; सुहृदाम्—हमारे प्रियजनों का; भवेत्—हो सके।

जाइये और देखिये कि धृतराष्ट्र ठीक से कार्य कर रहा है या नहीं। पता लग जाने पर हम अपने प्रिय मित्रों की सहायता करने की आवश्यक व्यवस्था करेंगे।

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ।
सङ्कर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ६॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों से; अक्रूरम्—अक्रूर को; समादिश्य—आदेश देकर; भगवन्—भगवान्; हरिः ईश्वरः—भगवान् हरि; सङ्कर्षण—बलराम; उद्धवाभ्याम्—तथा उद्धव के साथ; वै—निस्सन्देह; ततः—तब; स्व—अपने; भवनम्—घर; ययौ—चले गये।.

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : इस प्रकार से अक्रूर को पूरी तरह से आदेश देकर संकर्षण एवं उद्धव के साथ भगवान् हरि अपने घर लौट आये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा अपने भक्तों की तुष्टि'' नामक अड़तालीसवें अध्याय के श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter उनचास

अक्रूर का हस्तिनापुर जाना

इस अध्याय में बतलाया गया है कि अक्रूर किस तरह हस्तिनापुर गये, वहाँ धृतराष्ट्र द्वारा अपने भतीजे पाण्डवों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार को देखा और फिर मथुरा लौट आये।

भगवान् कृष्ण के आदेश से अक्रूर हस्तिनापुर गये जहाँ वे कौरवों तथा पाण्डवों से मिले। फिर वे यह पता लगाने में लग गए कि धृतराष्ट्र पाण्डवों के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं। इस कार्य के लिए अक्रूर को हस्तिनापुर में कई मास रहना पड़ा।

विदुर तथा कुन्तीदेवी ने अक्रूर को विस्तार में बतलाया कि धृतराष्ट्र के पुत्र, पाण्डवों के उच्च गुणों के कारण उनके प्रति ईर्ष्या रखने से, उन्हें अनेक दुष्ट साधनों द्वारा विनष्ट करने का प्रयास कर चुके हैं और आगे भी सताने का विचार कर रहे हैं। अश्रुपूरित नेत्रों से कुन्तीदेवी ने अक्रूर से पूछा, ''क्या कृष्ण, बलराम आदि मेरे सम्बन्धी तथा माता-पिता कभी मुझे तथा मेरे पुत्रों को याद करते हैं और क्या कृष्ण हमारी विपदा में सान्त्वना देने के लिए कभी आयेंगे?'' तब कुन्तीदेवी अपनी रक्षा के लिए कृष्ण का नाम-कीर्तन करने लगीं और उन्होंने उनके शरणागति सम्बन्धी मंत्रों का भी उच्चारण किया। अक्रूर ने कुन्तीदेवी को आश्वासन दिया, ''चूँकि आपके पुत्र धर्म तथा वायु जैसे देवताओं से उत्पन्न हैं अत: उन पर किसी प्रकार की विपदा आने की आशंका करने का कोई कारण नहीं है; प्रत्युत आपको विश्वस्त होना चाहिए कि उन्हें शीघ्र ही उत्तम सौभाग्य मिलने वाला है।''

तत्पश्चात् अक्रूर ने धृतराष्ट्र को कृष्ण तथा बलराम का सन्देश दिया। अक्रूर ने राजा से कहा,

''आपने पाण्डु की मृत्यु के बाद सिंहासन ग्रहण किया है। राजा का धर्म है कि वह सबों को समान दृष्टि से देखे अतः आपको चाहिए कि आप अपनी सारी प्रजा तथा अपने सभी सम्बन्धियों की रक्षा करें। किन्तु यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपको इस जीवन में केवल अपयश हाथ लगेगा और अगले जीवन में नरक की यातना सहनी होगी। जीव अकेला ही जन्मता है और अकेले ही प्राण त्यागता है। अकेले ही वह अपने पुण्यों तथा पापों का फल भोगता है। यदि वह अपनी सही सही पहचान नहीं कर पाता है और उसके स्थान पर वह अपनी सन्तान को दुष्कर्मों में लग कर पालता है, तो वह नरक अवश्य जायेगा। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि जगत की अस्थिरता को समझे। यह जगत स्वप्नवत, जादूगर के भ्रमजाल या कल्पना की उड़ान जैसा है। मनुष्य को चाहिए कि शान्त तथा समभाव बने रहने के लिए, अपने मन को वश में रखे।''

इस पर धृतराष्ट्र ने कहा, ''हे अक्रूर! मैं तुम्हारे लाभप्रद शब्दों को और आगे नहीं सुन सकता जो अमरत्व के लिए अमृत तुल्य हैं। किन्तु अपने पुत्रों के प्रति प्रेम की कस कर बँधी गाँठ ने मुझे उनके प्रति पक्षपाती बना दिया है, जिससे तुम्हारे शब्द मेरे मन में स्थिर नहीं हो पा रहे। कोई भी प्राणी परमेश्वर की व्यवस्था को लाँघ नहीं सकता। यदुवंश में उनके अवतरित होने का प्रयोजन अवश्य ही पूरा होगा।''

धृतराष्ट्र की मनोवृत्ति जानकर अक्रूर ने उनके सम्बन्धियों तथा मित्रों से अनुमति ली और मथुरा लौट आये जहाँ उन्होंने कृष्ण तथा बलराम को सारी बातें कह सुनाईं।

श्रीशुक उवाच

स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ।
ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥
सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ।
कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान्सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; **सः**—वह (अक्रूर); **गत्वा**—जाकर; **हास्तिन-पुरम्**—हस्तिनापुर में; **पौरव-इन्द्र**—पुरुवंश के शासकों का; **यशः**—यश से; **अङ्कितम्**—अलंकृत; **ददर्श**—देखा; **तत्र**—वहाँ; **आम्बिकेयम्**—अम्बिका का पुत्र (धृतराष्ट्र); **स**—सहित; **भीष्मम्**—भीष्म; **विदुरम्**—विदुर को; **पृथाम्**—पृथा (पाण्डु की विधवा, कुन्ती); **सह-पुत्रम्**—अपने पुत्र सहित (सोमदत्त); **च**—तथा; **बाह्लीकम्**—महाराज बाह्लीक; **भारद्वाजम्**—द्रोण; **स**—तथा; **गौतमम्**—कृप; **कर्णम्**—कर्ण; **सुयोधनम्**—दुर्योधन; **द्रौणिम्**—द्रोण का पुत्र (अश्वत्थामा); **पाण्डवान्**—पाण्डु के पुत्रों को; **सुहृदः**—मित्र; **अपरान्**—अन्य।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अक्रूर पौरव शासकों की ख्याति से प्रसिद्ध नगरी हस्तिनापुर गये। वहाँ वे धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर तथा कुन्ती के साथ साथ बाह्लीक तथा उसके पुत्र सोमदत्त से मिले। उन्होंने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाण्डवगण तथा अन्य घनिष्ट मित्रों से भी भेंट की।

यथावदुपसङ्गम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः ।
सम्पृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥ ॥

शब्दार्थ

यथा-वत्—भलीभाँति; उपसङ्गम्य—मिलकर; बन्धुभिः—अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से; गान्दिनी-सुतः—गान्दिनी-पुत्र, अक्रूर; सम्पृष्टः—पूछा; तैः—उनसे; सुहृत्—उनके प्रियजनों को; वार्ताम्—समाचार के लिए; स्वयम्—स्वयं; च—साथ ही; अपृच्छत्—पूछा; अव्ययम्—उनकी कुशलता के बारे में।

जब गान्दिनी-पुत्र अक्रूर अपने समस्त सम्बन्धियों तथा मित्रों से भलीभाँति मिल चुके तो उन लोगों ने अपने परिवार वालों के समाचार पूछे और प्रत्युत्तर में अक्रूर ने उनकी कुशलता पूछी।

उवास कतिचिन्मासान्राज्ञो वृत्तविवित्सया ।
दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४॥

शब्दार्थ

उवास—रहे; कतिचित्—कुछ; मासान्—महीने; राज्ञः—राजा (धृतराष्ट्र) का; वृत्त—कार्यकलाप; विवित्सया—जानने की इच्छा से; दुष्प्रजस्य—जिसके पुत्र दुष्ट थे; अल्प—निर्बल; सारस्य—जिसका संकल्प; खल—दुष्ट पुरुषों (यथा कर्ण) की; छन्द—इच्छाएँ; अनुवर्तिनः—अनुगमन करने वाला।

वे हस्तिनापुर में दुर्बल-इच्छा शक्ति वाले राजा के आचरण की छानबीन करने के लिए कई मास रहे जिसके पुत्र बुरे थे और जो अपने दुष्ट सलाहकारों की इच्छानुसार कार्य करता रहता था।

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ।
प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥
कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् ।
आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तेजः—प्रभाव; ओजः—चातुरी; बलम्—बल; वीर्यम्—बहादुरी; प्रश्रय—दीनता, विनय; आदीन्—इत्यादि; च—तथा; सत्—उत्तम; गुणान्—गुणों को; प्रजा—नागरिकों का; अनुरागम्—महान् स्नेह; पार्थेषु—पृथा के पुत्रों के लिए; न सहद्भिः—सहन न कर सकने वालों के; चिकीर्षितम्—मनोभाव; कृतम्—किया जा चुका; च—भी; धार्तराष्ट्रैः—धृतराष्ट्र के पुत्रों द्वारा; यत्—जो; गर—विष का; दान—दान; आदि—इत्यादि; अपेशलम्—अशोभनीय; आचख्यौ—बताया; सर्वम्—हर बात; एव—निस्सन्देह; अस्मै—उसको (अक्रूर को); पृथा—कुन्ती; विदुरः—विदुर; एव च—दोनों ने।

अक्रूर से कुन्ती तथा विदुर ने धृतराष्ट्र के पुत्रों की दुर्भावनाओं का विस्तार से वर्णन किया। वे कुन्ती के पुत्रों के महान् गुणों—यथा उनके शक्तिशाली प्रभाव, सैन्य-कौशल, शारीरिक बल, बहादुरी तथा विनयशीलता—या उनके प्रति नागरिकों के अगाध स्नेह को सहन नहीं कर सकते थे। कुन्ती तथा विदुर ने अक्रूर को यह भी बतलाया कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने किस तरह पाण्डवों को विष देने तथा ऐसे ही अन्य षड्यंत्रों को रचने का प्रयास किया था।

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ।
उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७॥

शब्दार्थ

पृथा—कुन्ती; तु—तथा; भ्रातरम्—अपने भाई (वृष्णि का पौत्र, कुन्ती तथा वसुदेव की दसवीं पीढ़ी का पूर्वज); प्राप्तम्—पाकर; अक्रूरम्—अक्रूर को; उपसृत्य—पास जाकर; तम्—उससे; उवाच—बोलीं; जन्म—अपने जन्म; निलयम्—घर (मथुरा); स्मरन्ती—स्मरण करती हुई; अश्रु—आँसुओं के; कला—अवशेषों से; ईक्षणा—जिसकी आँखें।

अपने भाई अक्रूर के आने का लाभ उठाकर कुन्तीदेवी उनके पास चुपके से पहुँचीं। अपनी जन्मभूमि (मायका) का स्मरण करते हुए वे अपनी आँखों में आँसू भरकर बोलीं।

अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ।
भगिन्यौ भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; स्मरन्ति—स्मरण करते हैं; नः—हमको; सौम्य—हे भद्र; पितरौ—माता-पिता; भ्रातरः—भाई; च—तथा; मे—मेरी; भगिन्यौ—बहनें; भ्रातृ-पुत्राः—भाइयों के बेटे; च—तथा; जामयः—परिवार की स्त्रियाँ; सख्यः—सखियाँ; एव च—भी।

[महारानी कुन्ती ने कहा] : हे भद्र पुरुष, क्या मेरे माता-पिता, भाई, बहनें, भतीजे, परिवार की स्त्रियाँ तथा बचपन की सखियाँ अब भी हमें याद करती हैं?

भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
पैतृष्वस्रेयान्स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९॥

शब्दार्थ

भ्रात्रेयः—भाई का पुत्र, भतीजा; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; शरण्यः—शरण देने वाला; भक्त—अपने भक्तों को; वत्सलः—दयालु; पैतृ-स्वस्रेयान्—अपने पिता की बहन के लड़कों को; स्मरति—स्मरण करता है; रामः—बलराम; च—तथा; अम्बुरुह—कमल की पंखड़ियों जैसे; ईक्षणः—आँखें।

क्या मेरा भतीजा कृष्ण, जो भगवान् है और अपने भक्तों की कृपालु शरण रूप है, अब भी अपनी बुआ के पुत्रों को स्मरण करता है? क्या कमल जैसी आँखों वाला राम भी उन्हें स्मरण

करता है?

सपत्नमध्ये शोचन्तीं वृकानां हरिणीमिव ।
सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ ॥

शब्दार्थ

सपत्न—शत्रुओं के; मध्ये—मध्य में; शोचन्तीम्—शोच करती; वृकानाम्—भेड़ियों के; हरिणीम्—हिरनी; इव—सदृश; सान्त्वयिष्यति—क्या वह सान्त्वना दिलायेगा; माम्—मुझको; वाक्यैः—अपने शब्दों से; पितृ—उनके पिता; हीनान्—वंचित; च—तथा; बालकान्—बालकों को।

इस समय जब मैं अपने शत्रुओं के बीच में उसी तरह कष्ट भोग रही हूँ जिस तरह एक हिरनी भेड़ियों के बीच में पाती है, तो क्या कृष्ण मुझे तथा पितृविहीन मेरे पुत्रों को अपनी वाणी से सान्त्वना देने आयेंगे?

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महा-योगिन्—महान् आध्यात्मिक शक्ति के स्वामी; विश्व-आत्मन्—हे ब्रह्माण्ड के परमात्मा; विश्व-भावन—हे ब्रह्माण्ड के रक्षक; प्रपन्नाम्—शरणागत स्त्री की; पाहि—रक्षा करो; गोविन्द—हे गोविन्द; शिशुभिः—मेरे बच्चों समेत; च—तथा; अवसीदतीम्—दुख में डूब रही।

हे कृष्ण, हे कृष्ण! हे महान् योगी! हे परमात्मा तथा ब्रह्माण्ड के रक्षक! हे गोविन्द! मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण में हूँ। मैं तथा मेरे पुत्र दुख से अभिभूत हैं।

तात्पर्य : कुन्तीदेवी ने सोचा, ''चूँकि भगवान् कृष्ण सारे ब्रह्माण्ड का पालन करते हैं अतः वे हमारे परिवार की रक्षा निश्चय ही कर सकते हैं।'' *अवसीदतीम्* शब्द बतलाता है कि कुन्तीदेवी पर कष्टों का पहाड़ टूट पड़ा था। इस तरह निराश, वे असहाय बनकर कृष्ण की शरण ले रही थीं। *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कंध में कुन्ती यह स्वीकार करती हैं कि वास्तव में ये विपदाएँ तो आशीर्वाद थीं क्योंकि इनसे बाध्य होकर वे सदैव प्रगाढ़ रूप से कृष्णभावनाभावित रहती थीं।

नान्यत्तव पदाम्भोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् ।
बिभ्यतां मृत्युसंसारादीस्वरस्यापवर्गिकात् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अन्यत्—अन्य; तव—तुम्हारे; पद-अम्भोजात्—चरणकमल की अपेक्षा; पश्यामि—देख रही हूँ; शरणम्—शरण; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; बिभ्यताम्—डरे हुए; मृत्यु—मृत्यु का; संसारात्—तथा पुनर्जन्म से; ईश्वरस्य—भगवान् का; आपवर्गिकात्—मोक्ष देने वाले।

जो लोग मृत्यु तथा पुनर्जन्म से भयभीत हैं, उनके लिए मैं आपके मोक्षदाता चरणकमलों के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं देखती, क्योंकि आप परमेश्वर हैं।

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; कृष्णाय—कृष्ण को; शुद्धाय—शुद्ध; ब्रह्मणे—ब्रह्म, परम सत्य; परम-आत्मने—परमात्मा; योग—शुद्ध-भक्ति के; ईश्वराय—नियन्ता को; योगाय—समस्त ज्ञान के उद्गम को; त्वाम्—तुमको; अहम्—मैं; शरणम्—शरण के लिए; गता—पास आई हूँ।

मैं परम शुद्ध, परम सत्य, परमात्मा, शुद्ध-भक्ति के स्वामी तथा समस्त ज्ञान के उद्गम को नमस्कार करती हूँ। मैं आपकी शरण में आई हूँ।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने *योगाय* शब्द का भावार्थ ''ज्ञान के स्रोत कृष्ण को'' किया है। *योग* शब्द का अर्थ ''सम्बन्ध जुड़ना'' तथा ''कोई वस्तु प्राप्त करना'' भी है। चेतन-प्राणी होने के कारण हमारा भक्ति के माध्यम से परमात्मा से सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध के माध्यम से हमें परमात्मा के पूर्ण ज्ञान का अनुभव होता है। चूँकि परमात्मा परम सत्य हैं अतएव उनके पूर्ण ज्ञान का अर्थ होता है प्रत्येक वस्तु का पूर्ण ज्ञान। जैसाकि *मुण्डक उपनिषद्* (१.) में कहा गया है— *कस्मिन् भगवतो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति*—जब ब्रह्म को जान लिया जाता है, तो हर वस्तु समझ में आ जाती है। इस तरह भगवान् कृष्ण अपनी आध्यात्मिक शक्ति से अपने साथ हमारा सम्बन्ध स्वयं स्थापित करते हैं और यही सम्बन्ध समस्त आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत है। इस तरह आचार्य श्रीधर अपने विवेकपूर्ण भावार्थ द्वारा हमें कृष्णभावनाभावित दर्शन के विषय में गहनतर चिन्तन के लिए अभिप्रेरित करते हैं।

श्रीशुक उवाच
इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ।
प्रारुदद्दु:खिता राजन्भवतां प्रपितामही ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इन शब्दों के साथ; अनुस्मृत्य—स्मरण करके; स्व-जनम्—अपने सगे-सम्बन्धियों को; कृष्णम्—कृष्ण को; च—तथा; जगत्—ब्रह्माण्ड के; ईश्वरम्—भगवान् को; प्रारुदत्—जोर से रोने लगीं; दु:खिता—दुखी; राजन्—हे राजन् (परीक्षित); भवताम्—आपकी; प्रपितामही—परदादी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, इस तरह अपने परिवार वालों का तथा ब्रह्माण्ड के स्वामी कृष्ण का स्मरण करके आपकी परदादी कुन्तीदेवी शोक में रोने लगीं।

समदु:खसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशा: ।
सान्त्वयामासतु: कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभि: ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सम—समान; दु:ख—दुख में; सुख:—तथा सुख में; अक्रूर:—अक्रूर; विदुर:—विदुर; च—तथा; महा-यशा:—अत्यन्त विख्यात; सान्त्वयाम् आसतु:—दोनों ने सान्त्वना दी; कुन्तीम्—श्रीमती कुन्तीदेवी को; तत्—उसके; पुत्र—पुत्रों के; उत्पत्ति—जन्मों के; हेतुभि:—कारणों के विषय में व्याख्या समेत।

महारानी कुन्ती के सुख-दुख में हिस्सा बँटाने वाले अक्रूर तथा सुविख्यात विदुर दोनों ने ही कुन्ती को उनके पुत्रों के जन्म की असाधारण घटना की याद दिलाते हुए सान्त्वना दी।

तात्पर्य : अक्रूर तथा विदुर ने महारानी कुन्ती को स्मरण दिलाया कि उनके पुत्र देवताओं द्वारा उत्पन्न हुए थे अत: उनको सामान्य मनुष्यों की तरह विनष्ट नहीं किया जा सकता। वस्तुत: इस अत्यन्त पवित्र कुल को असाधारण विजय प्राप्त होने वाली थी।

यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ।
अवदत्सुहृदां मध्ये बन्धुभि: सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यास्यन्—जब वह जाने ही वाला था; राजानम्—राजा (धृतराष्ट्र) के; अभ्येत्य—पास जाकर; विषमम्—ईर्ष्यालु; पुत्र—पुत्रों के प्रति; लालसम्—लाड़-प्यार से; अवदत्—बोला; सुहृदाम्—सम्बन्धियों के; मध्ये—बीच में; बन्धुभि:—शुभचिन्तक सम्बन्धियों (कृष्ण तथा बलराम) द्वारा; सौहृद—मैत्री में; उदितम्—जो कहा जा चुका है।

राजा धृतराष्ट्र के अपने पुत्रों के प्रति अत्यधिक स्नेह ने उसे पाण्डवों के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार करने के लिए बाध्य किया था। प्रस्थान करने के पूर्व अक्रूर राजा के पास गये जो उस समय अपने मित्रों तथा समर्थकों के बीच बैठा था। अक्रूर ने उसे वह सन्देश दिया जो उनके सम्बन्धी कृष्ण तथा बलराम ने मैत्रीवश भेजा था।

अक्रूर उवाच

भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन ।
भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनासनमास्थित: ॥ १७॥

शब्दार्थ

अक्रूरः उवाच—अक्रूर ने कहा; भोः भोः—हे प्रिय, हे प्रिय; वैचित्रवीर्य—विचित्रवीर्य के पुत्र; त्वम्—तुम; कुरूणाम्—कुरुओं की; कीर्ति—यश; वर्धन—हे बढ़ाने वाले; भ्रातरि—अपने भाई के; उपरते—दिवंगत हो जाने के बाद; पाण्डौ—महाराज पाण्डु के; अधुना—अब; आसनम्—सिंहासन पर; आस्थितः—आसीन।

अक्रूर ने कहा : हे प्रिय विचित्रवीर्य के पुत्र, हे कुरुओं की कीर्ति को बढ़ाने वाले, आपने अपने भाई पाण्डु के दिवंगत होने के बाद राज-सिंहासन ग्रहण किया है।

तात्पर्य : अक्रूर व्यंग्य-वचन बोल रहे थे क्योंकि वास्तव में उस सिंहासन पर पाण्डु के युवा पुत्रों को आसीन होना चाहिए था। चूँकि पाण्डु की मृत्यु के समय अभी उनके पुत्र आयु में छोटे होने के कारण शासन करने योग्य न थे, अतः उन्हें धृतराष्ट्र के संरक्षण में रखा गया था। किन्तु तब से काफी समय व्यतीत हो चुका था अतः उनके न्यायसंगत अधिकार को अब मान लिया जाना चाहिए था।

धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् ।
वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धर्मेण—धर्मपूर्वक; पालयन्—रक्षा करते हुए; उर्वीम्—पृथ्वी को; प्रजाः—नागरिकजन; शीलेन—सच्चरित्रता से; रञ्जयन्—प्रसन्न करते हुए; वर्तमानः—रहते हुए; समः—समभाव; स्वेषु—अपने सम्बन्धियों के प्रति; श्रेयः—सफलता; कीर्तिम्—कीर्ति; अवाप्स्यसि—प्राप्त करोगे।

धर्मपूर्वक पृथ्वी की रक्षा करते हुए, अपनी सच्चरित्रता से अपनी प्रजा को प्रसन्न रखते हुए तथा अपने सारे सम्बन्धियों के साथ एकसमान व्यवहार करते हुए आप अवश्य ही सफलता तथा कीर्ति प्राप्त करेंगे।

तात्पर्य : अक्रूर ने धृतराष्ट्र से कहा कि यद्यपि उन्होंने सिंहासन हड़प रखा था किन्तु यदि वे अब धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार शासन करेंगे और अपना व्यवहार ठीक रखेंगे तो सफल हो सकेंगे।

अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ।
तस्मात्समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अन्यथा—नहीं तो; तु—फिर भी; आचरन्—कर्म करते हुए; लोके—इस जगत में; गर्हितः—निन्दनीय; यास्यसे—प्राप्त करोगे; तमः—अंधकार; तस्मात्—इसलिए; समत्वे—समभाव में; वर्तस्व—स्थित रहो; पाण्डवेषु—पाण्डवों के प्रति; आत्म-जेषु—अपने पुत्रों के प्रति; च—तथा।

किन्तु यदि आप अन्यथा आचरण करेंगे तो लोग इसी लोक में आपकी निन्दा करेंगे और अगले जन्म में आपको नारकीय अंधकार में प्रवेश करना होगा। अतः आप पाण्डु के पुत्रों तथा अपने पुत्रों के प्रति एक-सा बर्ताव करें।

तात्पर्य : धृतराष्ट्र की सारी समस्या थी अपने दुष्ट पुत्रों के प्रति अत्यधिक लगाव। इसी घातक दोष के कारण उसका पतन हुआ। उसके चारों ओर अच्छी सलाह देने वालों की कमी नहीं थी और धृतराष्ट्र ने स्वीकार भी किया कि यद्यपि यह सलाह ठीक थी किन्तु वह उसका पालन नहीं कर सका। जब मन तथा हृदय शुद्ध होते हैं तभी मनुष्य में स्वच्छ व्यावहारिक बुद्धि आ सकती है।

नेह चात्यन्तसंवासः कस्यचित्केनचित्सह ।
राजन्स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; इह—इस जगत में; च—तथा; अत्यन्त—शाश्वत; संवासः—संगति (एक साथ निवास); कस्यचित्—किसी का; केनचित् सह—किसी के साथ; राजन्—हे राजन्; स्वेन—अपने; अपि—भी; देहेन—शरीर से; किम् उ—तो फिर क्या कहा जा सकता है; जाया—पत्नी; आत्म-ज—सन्तान; आदिभिः—इत्यादि से।

हे राजन्, इस जगत में किसी का किसी अन्य से कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं है। हम अपने ही शरीर के साथ जब सदा के लिए नहीं रह सकते तो फिर हमारी पत्नी, सन्तान तथा अन्यों के लिए क्या कहा जा सकता है?

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एकः—अकेला; प्रसूयते—जन्म लेता है; जन्तुः—जीव; एकः—अकेला; एव—भी; प्रलीयते—विनष्ट हो जाता है; एकः—अकेला; अनुभुङ्क्ते—भोग करता है; सुकृतम्—अपने अच्छे कर्म-फलों को; एकः—अकेला; एव च—तथा निश्चय ही; दुष्कृतम्—बुरे कर्म-फलों को।

हर प्राणी अकेला उत्पन्न होता है और अकेला मरता है। अकेला ही वह अपने अच्छे और बुरे कर्मों के फलों का भी अनुभव करता है।

तात्पर्य : यहाँ पर *अनुभुङ्क्ते* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *भुङ्क्ते* का अर्थ है, "(प्राणी) अनुभव करता है" और *अनु* का अर्थ है "पीछे पीछे" या "क्रम में।" दूसरे शब्दों में, हम अपने कर्मों के नैतिक तथा आध्यात्मिक गुण के अनुसार दुख तथा सुख का अनुभव करते हैं। हम अपनी करनी के लिए जिम्मेदार हैं। धृतराष्ट्र झूठे ही अपने दुष्ट-बुद्धि पुत्रों से अत्यधिक लगाव रखता था। वह भूल गया था कि उसे अकेले ही अपने इस अविवेकपूर्ण आचरण के लिए कष्ट भोगना होगा।

अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः ।
सम्भोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २२॥

शब्दार्थ

अधर्म—अधर्म से; उपचितम्—जोड़ी गई; वित्तम्—सम्पत्ति; हरन्ति—चुरा लेते हैं; अन्ये—अन्य लोग; अल्प-मेधसः—अल्पज्ञ की; सम्भोजनीय—मदद चाहने वाला; अपदेशैः—झूठी उपाधियों से; जलानि—जल; इव—सदृश; जल-ओकसः—जल के निवासियों का।.

प्रिय आश्रितों के वेश में अनजाने लोग मूर्ख व्यक्ति द्वारा पाप से अर्जित सम्पत्ति को उसी तरह चुरा लेते हैं जिस तरह मछली की सन्तानें उस जल को पी जाती हैं, जो उनका पालन करने वाला है।

तात्पर्य : सामान्य लोग अनुभव करते हैं कि अपनी सम्पत्ति के बिना वे जीवित नहीं रह सकते यद्यपि उनकी यह सम्पत्ति परिस्थितिजन्य एवं क्षणिक है। जिस तरह सम्पत्ति एक सामान्य व्यक्ति को जीवन देती है उसी तरह जल मछली को जीवन देता है। किन्तु उस व्यक्ति के प्रिय आश्रितजन उसकी सम्पत्ति चुरा लेते हैं जिस तरह मछलियों के बच्चे उसी जीवनदायी जल को पी जाते हैं जिसके कारण वे जीते हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के शब्दों में यह संसार ''भाग्य का धाम'' है।

पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम् ।
तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २॥

शब्दार्थ

पुष्णाति—पोषण करता है; यान्—जो वस्तुएँ; अधर्मेण—पाप-कर्म से; स्व-बुद्ध्या—उन्हें अपनी सोचकर; तम्—उसको; अपण्डितम्—अशिक्षित; ते—वे; अकृत-अर्थम्—मनोरथ का निष्फल होना; प्रहिण्वन्ति—छोड़ देते हैं; प्राणाः—प्राण; रायः—सम्पत्ति; सुत-आदयः—सन्तान इत्यादि।.

मूर्ख व्यक्ति अपने जीवन, सम्पत्ति तथा सन्तान एवं अन्य सम्बन्धियों का भरण-पोषण करने के लिए पाप-कर्म में प्रवृत्त होता है क्योंकि वह सोचता है ''ये वस्तुएँ मेरी हैं।'' किन्तु अन्त में ये ही वस्तुएँ उसे कुंठित अवस्था में छोड़ जाती हैं।

तात्पर्य : इन श्लोकों में अक्रूर धृतराष्ट्र को स्पष्ट सलाह देते हैं। जो लोग *महाभारत* की कथा जानते हैं, वे अनुभव करेंगे कि ये उपदेश कितने प्रासंगिक तथा भविष्यसूचक हैं और इन्हें न मानने के कारण धृतराष्ट्र को कितना कष्ट भोगना पड़ा। यद्यपि मनुष्य अपनी सम्पत्ति से चिपका रहता है किन्तु अन्त में सब कुछ नष्ट हो जाता है और भूल करने वाली आत्मा जन्म-मृत्यु के चक्र में बहा ले जायी जाती है।

स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ।
असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४॥

शब्दार्थ

स्वयम्—अपने लिए; किल्बिषम्—पापपूर्ण कर्म-फल; आदाय—लेकर; तैः—उनके द्वारा; त्यक्तः—छोड़ा हुआ; न—नहीं; अर्थ—अपने जीवन के लिए; कोविदः—ठीक से जानते हुए; असिद्ध—अपूर्ण; अर्थः—लक्ष्य; विशति—प्रवेश करता है; अन्धम्—गहन, घोर; स्व—निजी; धर्म—धर्म से; विमुखः—उदासीन; तमः—अंधकार (नर्क का)।

अपने तथाकथित आश्रितों से परित्यक्त होकर, जीवन के वास्तविक लक्ष्य से अनजान, अपने असली कर्तव्य से उदासीन तथा अपने उद्देश्यों को पूरा करने में असफल होकर, वह मूर्ख व्यक्ति अपने पाप-कर्मों को अपने साथ लेकर नर्क के अंधकार में प्रवेश करता है।

तात्पर्य : यह दुखपूर्ण विडम्बना है कि वे भौतिकतावादी व्यक्ति जो विश्वास, सुरक्षा, धन, परिवार इत्यादि का संग्रह करने के लिए कठिन श्रम करते हैं, अपने साथ केवल अपने पापों के दुखदायी फलों की गठरी के सिवा और कुछ न लेकर नरक के अंधकार में प्रवेश करते हैं। इसके विपरीत, जो लोग सम्पत्ति, बड़े परिवार इत्यादि का संग्रह करने की परवाह न करते हुए कृष्णभावनामृत अर्थात् आध्यात्मिक जीवन का अनुशीलन करते हैं, वे आध्यात्मिक सम्पदा से समृद्ध होकर अगले जीवन में प्रवेश करते हैं और आत्मा के गहन आनन्द का भोग करते हैं।

तस्माल्लोकमिमं राजन्स्वप्नमायामनोरथम् ।
वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानं समः शान्तो भव प्रभो ॥ २५॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; लोकम्—संसार को; इमम्—इस; राजन्—हे राजन्; स्वप्न—स्वप्न; माया—जादूगरी; मनः-रथम्—या मन की कल्पना के रूप में; वीक्ष्य—देखकर; आयम्य—वश में करके; आत्मना—बुद्धि से; आत्मानम्—मन को; समः—समभाव; शान्तः—शान्त; भव—बनो; प्रभो—हे स्वामी।

अतः हे राजन्, इस संसार को स्वप्नवत, जादूगर का मायाजाल या मन की उड़ान समझ कर, बुद्धि से अपने मन को वश में कीजिये और हे स्वामी! आप समभाव तथा शान्त बनिये।

धृतराष्ट्र उवाच
यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ।
तथानया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम् ॥ २६॥

शब्दार्थ

धृतराष्ट्रः उवाच—धृतराष्ट्र ने कहा; यथा—जिस तरह; वदति—बोलते हैं; कल्याणीम्—शुभ, मंगल; वाचम्—शब्द; दान—दान के; पते—हे स्वामी; भवान्—आप; तथा—उसी तरह; अनया—इससे; न तृप्यामि—मैं तृप्त नहीं हूँ; मर्त्यः—मरणशील; प्राप्य—प्राप्त करके; यथा—मानो; अमृतम्—अमृत।

धृतराष्ट्र ने कहा : हे दानपति, मैं आपके शुभ-वचनों को सुनते हुए कभी भी तृप्त नहीं हो सकता। निस्सन्देह, मैं उस मर्त्य प्राणी की तरह हूँ जिसे देवताओं का अमृत प्राप्त हो चुका है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के मत से धृतराष्ट्र को इस बात का गर्व था कि जो कुछ अक्रूर कह रहे हैं वह उसे पहले से ज्ञात है किन्तु कूटनीतिक गम्भीरता बनाये रखने के लिए ही वह साधु-पुरुष की तरह बोल रहा था।

तथापि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ।
पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २७॥

शब्दार्थ

तथा अपि—फिर भी; सूनृता—मोहक शब्द; सौम्य—हे भद्र; हृदि—मेरे हृदय में; न स्थीयते—स्थिर नहीं रहते; चले—जो चलायमान है; पुत्र—मेरे पुत्रों के लिए; अनुराग—स्नेह से; विषमे—पक्षपातपूर्ण; विद्युत्—बिजली; सौदामनी—बादल में; यथा—जिस तरह।

फिर भी, हे भद्र अक्रूर, क्योंकि मेरा अस्थिर हृदय अपने पुत्रों के स्नेह से पक्षपातयुक्त है इसलिए आपके ये मोहक शब्द हृदय में स्थिर नहीं टिक पाते, जिस तरह बिजली बादल में स्थिर नहीं रह सकती।

ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ।
भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८॥

शब्दार्थ

ईश्वरस्य—भगवान् के; विधिम्—कानून को; कः—क्या; नु—तनिक भी; विधुनोति—हटा सकता है; अन्यथा—नहीं तो; पुमान्—पुरुष; भूमेः—पृथ्वी का; भार—बोझ; अवताराय—कम करने के लिए; यः—जो; अवतीर्णः—अवतरित हुआ है; यदोः—यदु के; कुले—परिवार में।

भला उन भगवान् के आदेशों का उल्लंघन कौन कर सकता है, जो पृथ्वी का भार कम करने के लिए अब यदुवंश में अवतार ले चुके हैं?

तात्पर्य : स्वाभाविक है कि हम धृतराष्ट्र से पूछें, "यदि तुम यह सब जानते हो तो ठीक से आचरण क्यों नहीं करते?" वस्तुतः, धृतराष्ट्र की भी यही स्थिति है : वह अनुभव करता है कि क्योंकि घटनाएँ पहले से गतिशील हो चुकी हैं, वह उन्हें बदलने में अक्षम है। असल में उसके अनुराग तथा उसकी पापपूर्ण लालसाओं से घटनाएँ गतिशील थीं अतएव उसे अपने कर्मों का उत्तरदायित्व लेना

चाहिए था। भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (५.१५) में स्पष्ट कहा है— *नादत्ते कस्यचित् पापम्*—भगवान् किसी के पापपूर्ण कृत्यों का जिम्मा नहीं लेते। यह दावा करना एक घातक नीति है कि हम ''विधाता अथवा भाग्य'' के कारण अनुचित कर्म कर रहे हैं। हमें चाहिए कि गम्भीरतापूर्वक कृष्णभावनामृत को ग्रहण करें और अपने तथा अपने संगियों के लिए मंगलमय भविष्य का निर्माण करें।

अन्त में, कोई यह तर्क कर सकता है कि जो भी हो, धृतराष्ट्र तो भगवान् की लीलाओं में सम्मिलित हैं और वास्तव में वह उनका नित्य-संगी है। इसके उत्तर में हम इतना ही कह सकते हैं कि भगवान् की लीलाएँ न केवल मनोरंजन कराने वाली हैं अपितु उपदेशात्मक भी हैं और यहाँ यही शिक्षा मिलती है कि धृतराष्ट्र को उचित कर्म करना चाहिए था। भगवान् यही शिक्षा देना चाहते थे। धृतराष्ट्र कहता है कि कृष्ण पृथ्वी का भार उतारने के लिए आये हैं किन्तु पृथ्वी का भार असल में इसके निवासियों का अनुचित आचरण ही है। अत: भगवान् यहाँ जो शिक्षा देना चाहते हैं उसे हम अपने हित के लिए ग्रहण करें।

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं
सृष्ट्वा गुणान्विभजते तदनुप्रविष्टः ।
तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र-
संसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; दुर्विमर्श—अचिन्त्य; पथया—जिसका मार्ग; निज—अपनी; मायया—सृजनात्मक शक्ति से; इदम्—इस ब्रह्माण्ड को; सृष्ट्वा—सृजित करके; गुणान्—इसके गुणों को; विभजते—बाँट देता है; तत्—उसी के भीतर; अनुप्रविष्टः—प्रवेश करते हुए; तस्मै—उसको; नमः—नमस्कार; दुरवबोध—अथाह; विहार—लीला; तन्त्र—तात्पर्य; संसार—जन्म तथा मृत्यु का; चक्र—चक्कर; गतये—तथा मोक्ष; परम-ईश्वराय—परम नियन्ता के प्रति।

मैं उन भगवान् को नमस्कार करता हूँ जो अपनी भौतिक शक्ति की अचिन्त्य क्रियाशीलता से इस ब्रह्माण्ड का सृजन करते हैं और फिर सृष्टि के भीतर प्रविष्ट होकर प्रकृति के विभिन्न गुणों को वितरित कर देते हैं। जिनकी लीलाओं का अर्थ अगाध है, उन्हीं से यह जन्म-मृत्यु का बन्धनकारी चक्र तथा उससे मोक्ष पाने की विधि उत्पन्न हुए हैं।

तात्पर्य : इतना सब कुछ कहने पर भी धृतराष्ट्र सामान्य व्यक्ति न होकर भगवान् कृष्ण का संगी था। निश्चय ही भगवान् के प्रति ऐसी विद्वत्तापूर्ण स्तुति कोई सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता था।

श्रीशुक उवाच
इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ।
सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; अभिप्रेत्य—निश्चित करके; नृपतेः—राजा की; अभिप्रायम्—मनोवृत्ति; सः—वह; यादवः—राजा यदु का वंशज, अक्रूर; सुहृद्भिः—अपने शुभचिन्तकों द्वारा; समनुज्ञातः—विदा होने की अनुमति दिया हुआ; पुनः—फिर; यदु-पुरीम्—यदुवंश की नगरी में; अगात्—गया।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, इस तरह राजा के अभिप्राय को समझकर यदुवंशी अक्रूर ने अपने शुभचिन्तक सम्बन्धियों तथा मित्रों से अनुमति ली और यादवों की राजधानी लौट आये।

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ।
पाण्दवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

शशंस—सूचित किया; राम-कृष्णाभ्याम्—बलराम तथा कृष्ण को; धृतराष्ट्र-विचेष्टितम्—धृतराष्ट्र के आचरण; पाण्डवान् प्रति—पाण्डु के पुत्रों के प्रति; कौरव्य—हे कुरुवंशी (परीक्षित); यत्—जिस; अर्थम्—प्रयोजन के लिए; प्रेषितः—भेजा गया; स्वयम्—स्वयं।.

अक्रूर ने बलराम तथा कृष्ण को यह सूचित किया कि धृतराष्ट्र का पाण्डवों के प्रति कैसा बर्ताव है। इस तरह हे कुरुवंशी, उन्होंने उस अभिप्राय की पूर्ति कर दी जिसके लिए वे भेजे गये थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ‘‘अक्रूर का हस्तिनापुर जाना’’ नामक उनचासवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पचास

कृष्ण द्वारा द्वारकापुरी की स्थापना

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण ने जरासन्ध को युद्ध में सत्रह बार हराकर द्वारकापुरी का निर्माण किया।

कंस के मारे जाने के बाद उसकी दोनों रानियाँ—अस्ति तथा प्राप्ति अपने पिता जरासन्ध के घर चली गईं और शोकसन्तप्त होकर उससे बतलाया कि किस तरह कृष्ण ने उन्हें विधवा बना दिया है। यह सुनकर राजा जरासन्ध क्रुद्ध हुआ। उसने पृथ्वी से यदुओं का सफाया करने का व्रत लिया और

मथुरा पर घेरा डाल देने के लिए विशाल सेना एकत्र की। जब कृष्ण ने जरासन्ध को हमला करते देखा तो उन्होंने इस विश्व में अपने अवतार लेने के कारणों पर विचार किया और पृथ्वी के भारस्वरूप जरासन्ध की सेना का संहार करने का निश्चय किया।

तभी दो तेजस्वी रथ प्रकट हुए जो सारथियों तथा साज–सामान से युक्त थे और उनमें भगवान् के निजी आयुध थे। यह देखकर कृष्ण ने बलदेव से कहा, "हे भ्राता! अब जरासन्ध मथुरापुरी पर आक्रमण कर रहा है, अत: अपने रथ पर सवार हो जाइये और चलिये, हम दोनों शत्रु की सेना का विध्वंस करें।" दोनों भाई अपने अपने हथियार लेकर अपने अपने रथों पर सवार हुए और नगर से बाहर चले गए।

भगवान् कृष्ण ने अपने प्रतिद्वन्द्वी की सेना के सामने पहुँचकर अपना शंख बजाया जिससे शत्रुओं के हृदय में भय व्याप्त हो गया। राजा जरासन्ध ने अपने सैनिकों, रथों इत्यादि से कृष्ण तथा बलराम को घेर लिया। नगर की स्त्रियाँ अपने अपने घरों की छतों पर चढ़ गईं और दोनों प्रभुओं को न देखकर अत्यन्त दुखी हुईं। तब कृष्ण अपने धनुष में टंकार देकर शत्रु–सैनिकों पर बाण बरसाने लगे। जरासन्ध की अपार सेना शीघ्र ही विनष्ट हो गई।

बलदेव ने जरासन्ध को बन्दी बना लिया और उसे रस्सियों से बाँधने ही जा रहे थे कि कृष्ण ने बलदेव को ऐसा करने से रोक दिया। उन्होंने तर्क किया कि जरासन्ध फिर से सेना एकत्र करके फिर से लड़ाई करने आयेगा। इससे पृथ्वी का भार दूर करने का कृष्ण का लक्ष्य पूरा हो सकेगा। बन्धन से मुक्त किये जाने पर जरासन्ध मगध लौट गया और अपनी हार का बदला लेने के लिए उसने तपस्या करने की ठानी। अन्य राजाओं ने उसे सलाह दी कि यह हार उसके कर्म का फल है। इस तरह कहे जाने पर जरासन्ध बोझिल मन किये अपने साम्राज्य में लौट आया।

जब श्रीकृष्ण मथुरावासियों से मिले तो वे सब मिलकर प्रसन्नता व्यक्त करने लगे और विजय–गीत गाने तथा उत्सव मनाने की तैयारी करने लगे। भगवान् ने वे सारे आभूषण तथा बहुमूल्य सामान, जिन्हें युद्ध–क्षेत्र से एकत्र किया गया था, लाकर महाराज उग्रसेन को भेंट कर दिये।

जरासन्ध ने मथुरा के यादवों पर सत्रह बार आक्रमण किया और हर बार उसकी सेना का विध्वंस होता रहा। जब जरासन्ध ने अठारहवीं बार आक्रमण करने की तैयारी की तो कालयवन नामक एक

योद्धा, जो अपने योग्य प्रतिद्वन्द्वी की तलाश में था, नारद मुनि द्वारा भेजा जा कर यादवों से लड़ने के लिए आया। कालयवन ने तीन करोड़ सैनिक लेकर यादवों की राजधानी पर घेरा डाल दिया। भगवान् कृष्ण इस आक्रमण से चिन्तित हुए क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि जरासन्ध का आगमन आसन्न है और एक ही साथ दो शत्रुओं के आक्रमण से यादवगण संकट में पड़ सकते हैं। अत: भगवान् ने यादवों के लिए समुद्र के भीतर एक सुरक्षित अद्भुत नगरी का निर्माण कराया और तब योगशक्ति से उन सबों को वहाँ पहुँचा दिया। इस नगरी में चारों वर्णों के लोग बसे थे और किसी को भी भूख-प्यास नहीं सताती थी। इन्द्र आदि सारे देवताओं ने भगवान् कृष्ण को वे ही ऐश्वर्य भेंट किये जो उन्हें अपना पद प्राप्त करते समय कृष्ण से प्राप्त हुए थे।

जब कृष्ण ने देख लिया कि सारी प्रजा सुरक्षित ढंग से बस गई है, तो उन्होंने बलराम से विदा ली और नि:शस्त्र होकर मथुरा से बाहर चले गये।

श्रीशुक उवाच
अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ।
मृते भर्तरि दु:खार्ते ईयतु: स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अस्तिः प्राप्तिः च—अस्ति तथा प्राप्ति; कंसस्य—कंस की; महिष्यौ—दो पटरानियाँ; भरत-ऋषभ—हे भरतवंशी के वीर (परीक्षित); मृते—मार डाले जाने पर; भर्तरि—अपने पति के; दु:ख—दुख से; आर्ते—शोकमग्न; ईयतु: स्म—चली गईं; पितु:—अपने पिता के; गृहान्—घरों।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब कंस मार डाला गया तो हे भरतर्षभ, उसकी दो पटरानियाँ अस्ति तथा प्राप्ति अत्यन्त दुखी होकर अपने पिता के घर चली गईं।

पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दु:खिते ।
वेदयां चक्रतु: सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

पित्रे—अपने पिता; मगध-राजाय—मगध के राजा; जरासन्धाय—जरासंध से; दु:खिते—दुखी; वेदयाम् चक्रतु:—उन्होंने कह सुनाया; सर्वम्—सारे; आत्म—अपने; वैधव्य—विधवा होने का; कारणम्—कारण।

दुखी रानियों ने अपने पिता मगध के राजा जरासन्ध से सारा हाल कह सुनाया कि वे किस तरह विधवा हुईं।

स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ।
अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, जरासन्ध; तत्—उस; अप्रियम्—बुरे समाचार को; आकर्ण्य—सुनकर; शोक—शोक; अमर्ष—तथा असह्य क्रोध; युतः—अनुभव करते हुए; नृप—हे राजा; अयादवीम्—यादवों से विहीन; महीम्—पृथ्वी को; कर्तुम्—करने के लिए; चक्रे—किया; परमम्—अत्यधिक; उद्यमम्—प्रयत्न।

हे राजन्, यह अप्रिय समाचार सुनकर जरासन्ध शोक तथा क्रोध से भर गया और पृथ्वी को यादवों से विहीन करने के यथासम्भव प्रयास में जुट गया।

अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ।
यदुराजधानीं मथुरां न्यरुधत्सर्वतो दिशम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

अक्षौहिणीभिः—अक्षौहिणियों से (एक अक्षौहिणी में २१,८७० हाथी, २१,८७० रथ, ६५,६ घुड़सवार तथा १,०९,५० पैदल सैनिक होते हैं); विंशत्या—बीस; तिसृभिः च अपि—तीन और; संवृतः—घेर लिया; यदु—यदुवंश की; राजधानीम्—राजधानी; मथुराम्—मथुरा को; न्यरुधत्—घेरा डाल दिया; सर्वतः दिशम्-ओन् अल्ल् सिदेस्.

उसने तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर यदुओं की राजधानी मथुरा के चारों ओर घेरा डाल दिया।

तात्पर्य : एक अक्षौहिणी की संख्या ऊपर 'शब्दार्थ' में दी गई है। प्राचीन काल में अक्षौहिणी सेना की मानक इकाई थी।

निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ।
स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५॥
चिन्तयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः ।
तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६॥

शब्दार्थ

निरीक्ष्य—देखकर; तत्—उस (जरासन्ध) के; बलम्—सैनिक-शक्ति; कृष्णः—कृष्ण; उद्वेलम्—सीमाओं को लाँघकर; इव—सदृश; सागरम्—समुद्र; स्व—अपनी; पुरम्—नगरी, मथुरा को; तेन—उससे; संरुद्धम्—घिरी; स्व-जनम्—अपनी प्रजा को; च—तथा; भय—भय से; आकुलम्—व्याकुल; चिन्तयाम् आस—सोचा; भगवान्—भगवान्; हरिः—हरि ने; कारण—सभी के कारण; मानुषः—मनुष्य रूप में प्रकट होकर; तत्—उस; देश—स्थान; काल—तथा समय के; अनुगुणम्—उपयुक्त; स्व-अवतार—इस संसार में अपने अवतरण के; प्रयोजनम्—कारण के विषय में।

यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण इस संसार के आदि-कारण हैं किन्तु जब वे इस पृथ्वी पर अवतरित हुए तो उन्होंने मनुष्य की भूमिका निबाही। अतः जब उन्होंने देखा कि जरासन्ध की सेना ने उनकी नगरी को उसी तरह घेर लिया है, जिस तरह महासागर अपने किनारों को तोड़कर बहने लगता है और जब उन्होंने देखा कि यह सेना उनकी प्रजा में भय उत्पन्न कर रही है, तो

भगवान् ने विचार किया कि देश, काल तथा उनके वर्तमान अवतार के विशिष्ट प्रयोजन के अनुकूल उनकी उपयुक्त प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए।

तात्पर्य : आचार्यों ने इंगित किया है कि भगवान् को जरासन्ध तथा उसके सैनिकों के आक्रमण की परवाह करने की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु जैसाकि यहाँ पर कहा गया है, श्रीकृष्ण मनुष्य का अभिनय कर रहे थे (*कारण-मानुष:*) और उन्होंने यह अभिनय अच्छी तरह निबाहा। यह अभिनय *लीला* कहलाता है, जो कि अपने भक्तों के आनन्द के हेतु भगवान् द्वारा आध्यात्मिक लीलाओं का अभिनय है। यद्यपि भगवान् की लीलाओं से सामान्य व्यक्ति हक्के-बक्के रह जाते हैं किन्तु भक्तों को उनके इस अननुकरणीय आचरण से बेहद प्रसन्नता होती है। इस प्रकार श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि श्रीकृष्ण ने सोचा कि "मैं जरासन्ध को किस तरह परास्त करूँ? क्या मैं उसकी सेना को मार डालूँ और जरासन्ध को न मारूँ? या फिर जरासन्ध को मारकर उसकी सेना स्वयं ले लूँ? या शायद इन दोनों का वध कर दूँ?" भगवान् कृष्ण जिस निर्णय पर पहुँचे वह अगले श्लोकों में वर्णित है।

हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् ।
मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७॥
अक्षौहिणीभिः सङ्ख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः ।
मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥ ८॥

शब्दार्थ

हनिष्यामि—मैं मार डालूँगा; बलम्—सेना को; हि—निश्चय ही; एतत्—इस; भुवि—पृथ्वी पर; भारम्—भार को; समाहितम्—एकत्र; मागधेन—मगध के राजा, जरासन्ध द्वारा; समानीतम्—लाया गया; वश्यानाम्—अधीन; सर्व—सभी; भू-भुजाम्—राजाओं को; अक्षौहिणीभि:—अक्षौहिणियों में; सङ्ख्यातम्—गिनी जाने वाली; भट—पैदल सैनिकों; अश्व—घोड़े; रथ—रथ; कुञ्जरै:—तथा हाथियों से युक्त; मागधः—जरासन्ध; तु—किन्तु; न हन्तव्यः—नहीं मारा जाना चाहिए; भूयः—फिर से; कर्ता—करेगा; बल—सेना (एकत्र करने के लिए); उद्यमम्—प्रयास।

[भगवान् ने सोचा] : चूँकि पृथ्वी पर इतना भार है, अतः मैं जरासन्ध की इस सेना को विनष्ट कर दूँगा जिसमें अक्षौहिणियों पैदल सैनिक, घोड़े, रथ तथा हाथी हैं, जिसे मगध के राजा ने अपने अधीनस्थ राजाओं से बटोरकर यहाँ ला खड़ा किया है। किन्तु मुझे जरासंध को नहीं मारना चाहिए क्योंकि भविष्य में वह निश्चित रूप से दूसरी सेना जोड़ लेगा।

तात्पर्य : काफी विचार करने के बाद कृष्ण ने तय किया कि चूँकि वे असुरों को विनष्ट करने के लिए पृथ्वी में अवतरित हुए हैं और चूँकि जरासन्ध सारे असुरों को भगवान् के समक्ष लाने के लिए

उत्साहित था, इसलिए जरासन्ध को जीवित और व्यस्त किये रखना अधिक उपयुक्त होगा।

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

एतत्—इस; अर्थः—प्रयोजन के लिए; अवतारः—अवतार; अयम्—यह; भू—पृथ्वी का; भार—बोझ; हरणाय—हटाने के लिए; मे—मेरे द्वारा; संरक्षणाय—पूरी सुरक्षा के लिए; साधूनाम्—साधुओं की; कृतः—किया गया; अन्येषाम्—अन्यों (असाधुओं) का; वधाय—मारने के लिए; च—तथा।

मेरे इस अवतार का यही प्रयोजन है—पृथ्वी के भार को दूर करना, साधुओं की रक्षा करना और असाधुओं का वध करना।

अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ ॥

शब्दार्थ

अन्यः—दूसरा; अपि—भी; धर्म—धर्म की; रक्षायै—रक्षा के लिए; देहः—शरीर; संभ्रियते—धारण किया जाता है; मया—मेरे द्वारा; विरामाय—रोकने के लिए; अपि—भी; अधर्मस्य—अधर्म का; काले—समय के साथ; प्रभवतः—प्रधान बनने पर; क्वचित्—जब भी।

मैं धर्म की रक्षा करने तथा जब जब समय के साथ अधर्म की प्रधानता होती है, तो उसका अन्त करने के लिए भी अन्य शरीर धारण करता हूँ।

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात्सूर्यवर्चसौ ।
रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; ध्यायति—विचार करते हुए; गोविन्दे—भगवान् कृष्ण द्वारा; आकाशात्—आकाश से; सूर्य—सूर्य जैसे; वर्चसौ—तेज वाले; रथौ—दो रथ; उपस्थितौ—प्रकट हो गये; सद्यः—सहसा; स—सहित; सूतौ—सारथियों; स—सहित; परिच्छदौ—साज-सामान।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : जब भगवान् गोविन्द इस तरह सोच रहे थे तो सूर्य के समान तेज वाले दो रथ आकाश से सहसा नीचे उतरे। वे सारथियों तथा साज-सज्जा से युक्त थे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती मानते हैं कि ये रथ भगवान् के ही धाम, वैकुण्ठ-लोक से नीचे आये थे। भगवान् के श्रद्धालु भक्त भगवान् की अद्वितीय प्रौद्योगिकी देखकर अपार हर्ष प्राप्त करते हैं।

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ।
दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

आयुधानि—हथियार; च—तथा; दिव्यानि—दिव्य; पुराणानि—पुराने; यदृच्छया—स्वतः; दृष्ट्वा—देखकर; तानि—उनको; हृषीकेशः—भगवान् कृष्ण; सङ्कर्षणम्—बलराम से; अथ—तब; अब्रवीत्—बोले।

उसी समय भगवान् के दिव्य हथियार भी स्वतः उनके समक्ष प्रकट हो गये। इन्हें देखकर इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण ने भगवान् संकर्षण से कहा।

पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ।
एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १ ॥
एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ।
त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ॥ १४॥

शब्दार्थ

पश्य—देखिये; आर्य—सम्मान्य; व्यसनम्—खतरा, संकट; प्राप्तम्—आया हुआ; यदूनाम्—यदुओं के लिए; त्वा—तुम्हारे द्वारा; अवताम्—सुरक्षित; प्रभो—हे स्वामी; एषः—यह; ते—तुम्हारा; रथः—रथ; आयातः—आ चुका है; दयितानि—प्रिय; आयुधानि—हथियार; च—तथा; एतत्-अर्थम्—इस प्रयोजन के लिए; हि—निस्सन्देह; नौ—हमारा; जन्म—जन्म; साधूनाम्—साधु-भक्तों का; ईश—हे प्रभु; शर्म—लाभ; कृत्—करते हुए; त्रयः-विंशति—तेईस; अनीक—सेनाएँ; आख्यम्—के नाम से; भूमेः—पृथ्वी का; भारम्—भार; अपाकुरु—हटाइये।

[भगवान् ने कहा] : हे पूज्य ज्येष्ठ भ्राता, आप अपने आश्रित यदुओं पर आये हुए इस संकट को तो देखिये! और हे प्रभु, यह भी देखिये कि आपका निजी रथ तथा आपकी पसन्द के हथियार आपके समक्ष आ चुके हैं। हे प्रभु! हमने जिस उद्देश्य से जन्म लिया है, वह अपने भक्तों के कल्याण को सुरक्षित करना है। कृपया अब इन तेईस सैन्य-टुकड़ियों के भार को पृथ्वी से हटा दीजिये।

एवं सम्मन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ।
निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसा वृतौ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; सम्मन्त्र्य—आमंत्रित करके; दाशार्हौ—दशार्ह के दो वंशज (कृष्ण तथा बलराम); दंशितौ—कवच पहनकर; रथिनौ—रथों पर आरूढ़ होकर; पुरात्—नगरी से; निर्जग्मतुः—बाहर गये; स्व—अपने; आयुध—हथियार; आढ्यौ—चमचमाते; बलेन—सेना द्वारा; अल्पीयसा—अत्यन्त लघु; वृतौ—साथ में लेकर।

भगवान् कृष्ण द्वारा अपने भाई को इस तरह आमंत्रित करने के बाद, दोनों दशार्ह कृष्ण तथा बलराम कवच पहन कर और अपने अपने चमचमाते हथियारों को प्रदर्शित करते हुए अपने रथों पर चढ़कर नगरी के बाहर चले गये। उनके साथ सैनिकों की छोटी-सी टुकड़ी ही थी।

शङ्खं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ।
ततोऽभूत्परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

शङ्खम्—अपना शंख; दध्मौ—बजाया; विनिर्गत्य—बाहर जाकर; हरिः—कृष्ण ने; दारुक-सारथिः—जिनका सारथी दारुक था; ततः—तत्पश्चात्; अभूत्—उठी; पर—शत्रु के; सैन्यानाम्—सैनिकों के; हृदि—हृदयों में; वित्रास—भय से; वेपथुः—कँपकँपी।

जब भगवान् कृष्ण दारुक द्वारा हाँके जा रहे अपने रथ पर चढ़कर नगरी से बाहर आ गये तो उन्होंने अपना शंख बजाया। इससे शत्रु-सैनिकों के हृदय भय से काँपने लगे।

तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ।
न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ।
गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥ १७॥

शब्दार्थ

तौ—दोनों से; आह—कहा; मागधः—जरासंध ने; वीक्ष्य—देखकर; हे कृष्ण—हे कृष्ण; पुरुष-अधम—पुरुषों में सबसे निम्न; न—नहीं; त्वया—तुमसे; योद्धुम्—लड़ने के लिए; इच्छामि—इच्छा करता हूँ; बालेन—बालक के साथ; एकेन—अकेला; लज्जया—शर्म से; गुप्तेन—छिपी; हि—निस्सन्देह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; मन्द—हे मूर्ख; न योत्स्ये—नहीं लड़ूँगा; याहि—चले जाओ; बन्धु—सम्बन्धियों का; हन्—अरे वध करने वाले।

जरासन्ध ने दोनों की ओर देखा और कहा : अरे पुरुषों में अधम कृष्ण, मैं तुझसे अकेले नहीं लड़ना चाहता क्योंकि एक बालक से युद्ध करना लज्जा की बात होगी। अरे अपने को गुप्त रखने वाले मूर्ख, अपने सम्बन्धियों की हत्या करने वाले, तू भाग जा! मैं तुझसे युद्ध नहीं करूँगा।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने जरासन्ध के शब्दों की विवेचना इस प्रकार की है : *पुरुषाधम* को *पुरुषा अधमा यस्मात्*—कृष्ण, जिसके सामने सारे लोग अधम हैं—के रूप में समझा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यहाँ पर कृष्ण को ''हे पुरुषोत्तम, या जीवों में श्रेष्ठ'' के रूप में सम्बोधित किया जा रहा है। इसी तरह *गुप्तेन* कृष्ण का हर एक के हृदय में उपस्थित रहकर भौतिक दृष्टि से अदृश्य रहने का सूचक है। *त्वया मन्द* को संस्कृत व्याकरण के अनुसार *त्वया आमन्द* में विच्छेद किया जा सकता है। तब जरासन्ध का अभिप्राय होगा कि कृष्ण मूर्ख नहीं अपितु अत्यन्त सतर्क हैं। जरासन्ध द्वारा *बन्धु* शब्द का प्रयोग ''सम्बन्धी'' के अर्थ में हुआ है क्योंकि कृष्ण ने अपने मामा कंस का वध किया था। फिर भी *बन्धु* शब्द *बन्ध* क्रिया (बाँधना) से व्युत्पन्न है, अतः *बन्धुहन्* से ''अज्ञान के बन्धन को नष्ट करने

वाला'' अर्थ निकाला जा सकता है। इसी प्रकार *याहि* शब्द (जाइए) सूचित करता है कि कृष्ण को चाहिए कि जीवों के पास जाकर उन्हें कृष्णभावनाभावित बनने का आशीर्वाद दें।

तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ।
हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥ १८॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारा; राम—हे बलराम; यदि—यदि; श्रद्धा—विश्वास; युध्यस्व—लड़ो; धैर्यम्—धैर्य; उद्वह—धारण करो; हित्वा—छोड़कर; वा—या तो; मत्—मेरे; शरैः—बाणों से; छिन्नम्—खण्ड खण्ड होकर; देहम्—तुम्हारा शरीर; स्वः—स्वर्ग को; याहि—जाओ; माम्—(या फिर) मुझको; जहि—मारो।

रे बलराम, तू धैर्य सँजो करके मुझसे लड़, यदि तू सोचता है कि तू ऐसा कर सकता है। या तो तू मेरे बाणों के द्वारा खण्ड खण्ड होने से अपना शरीर त्याग और इस तरह स्वर्ग प्राप्त कर या फिर तू मुझे जान से मार।

तात्पर्य : आचार्य श्रीधर स्वामी के अनुसार जरासंध को सन्देह हो गया कि बलराम का शरीर अविनश्वर है इसलिए उसने यह विकल्प रखा कि बलराम उसका वध कर दें जो कदाचित अधिक व्यावहारिक हो।

श्रीभगवानुवाच
न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ।
न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥ १९॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; शूराः—वीर; विकत्थन्ते—डींग मारते हैं; दर्शयन्ति—दिखलाते हैं; एव—केवल; पौरुषम्—अपना पराक्रम; न गृह्णीमः—हम नहीं मानते; वचः—शब्द; राजन्—हे राजन्; आतुरस्य—मानसिक रूप से व्याकुल के; मुमूर्षतः—मरने वाले।

भगवान् ने कहा : असली वीर केवल डींग नहीं मारते अपितु अपने कार्य के द्वारा पराक्रम का प्रदर्शन करते हैं। जो चिन्ता से पूर्ण हो और मरना चाहता हो उसके शब्दों को हम गम्भीरता से नहीं ले सकते।

श्रीशुक उवाच
जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ
महाबलौघेन बलीयसावृनोत् ।
ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी

सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; जरा-सुतः—जरा का पुत्र; तौ—वे दोनों; अभिसृत्य—पास जाकर; माधवौ—मधु के वंशज; महा—विशाल; बल—सैनिक-शक्ति की; ओघेन—बाढ़ से; बलीयसा—बलवान; आवृणोत्—घेर लिया; स—सहित; सैन्य—सैनिकों के; यान—रथ; ध्वज—झंडे; वाजि—घोड़े; सारथी—रथ हाँकने वाले; सूर्य—सूर्य; अनलौ—तथा अग्नि; वायुः—वायु; इव—सदृश; अभ्र—बादलों से; रेणुभिः—धूल के कणों से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जिस तरह वायु बादलों से सूर्य को या धूल से अग्नि को ढक लेती है उसी तरह जरा का पुत्र, मधु के दो वंशजों की ओर चल पड़ा और उसने अपनी विशाल सेनाओं से उन्हें तथा उनके सैनिकों, रथों, पताकाओं, घोड़ों तथा सारथियों को घेर लिया।

तात्पर्य : आचार्य श्रीधर इंगित करते हैं कि बादल सूर्य को ढकते से प्रतीत होते हैं, वास्तव में सूर्य तो विस्तृत आकाश में चमकता रहता है। न ही धूल की पतली परत से अग्नि की शक्ति प्रभावित होती है। इसी तरह जरासंध की सैन्य-शक्ति का ''आवरण'' केवल ऊपरी था।

सुपर्णतालध्वजचिहितौ रथा-
वलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे ।
स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं
समाश्रिताः सम्मुमुहुः शुचार्दितः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

सुपर्ण—गरुड़; ताल—तथा ताड़ (चिह्नों) से युक्त; ध्वज—झंडों से; चिह्नितौ—अंकित; रथौ—दोनों रथ; अलक्षयन्त्यः—न पहचान पाती हुई; हरि-रामयोः—कृष्ण तथा बलराम के; मृधे—युद्ध में; स्त्रियः—स्त्रियाँ; पुर—नगरी की; अट्टालक—अटारियों; हर्म्य—प्रासादों; गोपुरम्—तथा द्वारों पर; समाश्रिताः—चढ़कर; सम्मुमुहुः—मूर्च्छित हो गईं; शुचा—शोक से; अर्दिताः—पीड़ित।

स्त्रियाँ अटारियों, महलों तथा नगर के ऊँचे द्वारों पर खड़ी हुई थीं। जब उन्हें कृष्ण तथा बलराम के रथ नहीं दिखाई पड़े, जिनकी पहचान गरुड़ तथा ताड़-वृक्ष के प्रतीकों से चिन्हित पताकाओं से होती थी, तो वे शोकाकुल होकर मूर्च्छित हो गईं।

तात्पर्य : यहाँ पर स्त्रियों का विशेष उल्लेख है क्योंकि कृष्ण तथा बलराम के प्रति उनकी असाधारण आसक्ति थी।

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः
शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ।
स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं
व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

हरिः—कृष्ण; पर—शत्रु की; अनीक—सेनाओं के; पयः-मुचाम्—(जो) बादलों (की तरह थे); मुहुः—बारम्बार; शिलीमुख—उनके बाणों के; अति—अत्यधिक; उल्बण—भयावनी; वर्ष—वर्षा से; पीडितम्—पीड़ित; स्व—अपनी; सैन्यम्—सेना को; आलोक्य—देखकर; सुर—देवताओं; असुर—तथा असुरों द्वारा; अर्चितम्—पूजित; व्यस्फूर्जयत्—टंकार किया; शार्ङ्ग—शार्ङ्ग नामक; शर-असन—अपना धनुष; उत्तमम्—उत्तम।

अपने चारों ओर बादलों जैसी विशाल शत्रु सेनाओं के बाणों की भयानक तथा निर्मम वर्षा से अपनी सेना को पीड़ित देखकर भगवान् हरि ने अपने उस उत्तम धनुष शार्ङ्ग पर टंकार की जो देवताओं तथा असुरों दोनों के द्वारा पूजित है।

गृह्णन्निशङ्गादथ सन्दधच्छरान्
विकृष्य मुञ्चन्शितबाणपूगान् ।
निघ्नन्रथान्कुञ्जरवाजिपत्तीन्
निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २॥

शब्दार्थ

गृह्णन्—निकालते हुए; निशङ्गात्—तरकस से; अथ—तत्पश्चात; सन्दधत्—स्थिर करते हुए; शरान्—बाणों को; विकृष्य—खींचकर; मुञ्चन्—छोड़ते हुए; शित—तीक्ष्ण; बाण—बाणों की; पूगान्—बाढ़; निघ्नन्—प्रहार करते हुए; रथान्—रथों; कुञ्जर—हाथियों; वाजि—घोड़ों; पत्तीन्—तथा पैदल सिपाहियों को; निरन्तरम्—लगातार; यद्वत्—की तरह; अलात-चक्रम्—आग का गोला, लुकाठी।

भगवान् कृष्ण ने अपने तरकस से तीर निकाले, उन्हें प्रत्यंचा (धनुष की डोरी) पर स्थित किया (चढ़ाया), डोरी खींची और तीक्ष्ण बाणों की झड़ी लगा दी जिसने शत्रु के रथों, हाथियों, घोड़ों तथा पैदल सिपाहियों पर जाकर वार किया। भगवान् अपने तीरों को अलात-चक्र की तरह छोड़ रहे थे।

निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतु-
रनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ।
रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः
पदायतश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥ २४॥

शब्दार्थ

निर्भिन्न—फटे हुए; कुम्भाः—माथे का गण्डस्थल; करिणः—हाथी; निपेतुः—गिर पड़े; अनेकशः—एक बार में कई कई; अश्वाः—घोड़े; शर—बाणों से; वृक्ण—कटे हुए; कन्धराः—गर्दनें; रथाः—रथ; हत—मारे गये; अश्व—घोड़े; ध्वज—पताकाएँ; सूत—सारथी; नायकाः—तथा नायक (स्वामी); पदायतः—पैदल सैनिक; छिन्न—कटी हुई; भुज—भुजाएँ; ऊरु—जाँघें; कन्धराः—तथा कंधे।

हाथी धराशायी हो गये, उनके माथे फट गये, कटी गर्दनों वाले सेना के घोड़े गिर गये, रथ घोड़ों, झंडों, सारथियों तथा स्वामियों समेत टूट-फूटकर गिर गये और कटी हुई भुजाओं, जाँघों

तथा कन्धों वाले पैदल सिपाहियों ने दम तोड़ दिए।

सञ्छिद्यमानद्विपदेभवाजिना-
मङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ।
भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपा
हतद्विपद्वीपहय ग्रहाकुलाः ॥ २५ ॥
करोरुमीना नरकेशशैवला
धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसङ्कुलाः ।
अच्छूरिकावर्तभयानका महा-
मणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २६ ॥
प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे
मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ।
विनिघ्नतारीन्मुषलेन दुर्मदान्
सङ्कर्षणेनापरीमेयतेजसा ॥ २७ ॥
बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं
दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ।
क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयो-
र्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सञ्छिद्यमान—खण्ड खण्ड होकर; द्वि-पद—दो पैर वाले (मनुष्य); इभ—हाथी; वाजिनाम्—तथा घोड़ों के; अङ्ग—अंगों से; प्रसूताः—बहते हुए; शतशः—सैकड़ों; असृक्—रक्त की; आप-गः—नदियाँ; भुज—बाँहें; अहयः—सर्पों की तरह; पूरुष—मनुष्यों की; शीर्ष—सिर; कच्छपाः—कछुवों की तरह; हत—मृत; द्विप—हाथी; द्वीप—द्वीपों की तरह; हय—तथा घोड़ों से; ग्रह—घड़ियालों की तरह; आकुलाः—पूरित; कर—हाथ; ऊरु—तथा जाँघें; मीनः—मछलियों की तरह; नर—मनुष्य के; केश—बाल; शैवलाः—सिवार की तरह; धनुः—धनुष; तरङ्ग—लहरों की तरह; आयुध—तथा हथियार; गुल्म—झाड़ियों के कुंज की तरह; सङ्कुलाः—एकत्रित; अच्छूरिका—रथ के पहिए; आवर्त—भँवरों की तरह; भयानकाः—भयावनी; महा-मणि—बहुमूल्य मणियाँ; प्रवेक—उत्तम; आभरण—तथा गहने; अश्म—पत्थरों की तरह; शर्कराः—तथा बालू; प्रवर्तिताः—बाहर निकालते हुए; भीरु—कायर के लिए; भय-आवहाः—डराने वाले; मृधे—युद्धभूमि में; मनस्विनाम्—बुद्धिमानों के लिए; हर्ष-करीः—हर्ष प्रदान करने वाले; परस्परम्—एक-दूसरे से; विनिघ्नता—प्रहार करते हुए; अरीन्—अपने शत्रुओं को; मुषलेन—अपने हलायुध से; दुर्मदान्—प्रचण्ड, क्रुद्ध; सङ्कर्षणेन—बलराम द्वारा; अपरिमेय—अथाह; तेजसा—बल से; बलम्—सैन्य-शक्ति; तत्—उस; अङ्ग—हे प्रिय (राजा परीक्षित); अर्णव—सागर की तरह; दुर्ग—अगाध; भैरवम्—तथा भयावना; दुरन्त—दुर्लंघ्य; पारम्—सीमा; मगध-इन्द्र—मगध के राजा जरासन्ध द्वारा; पालितम्—देखभाल किया हुआ; क्षयम्—विनाश को; प्रणीतम्—प्राप्त हुआ; वसुदेव-पुत्रयोः—वसुदेव के पुत्रों के लिए; विक्रीडितम्—खेल; तत्—वह; जगत्—ब्रह्माण्ड; ईशयोः—प्रभुओं के लिए; परम्—परम।

युद्धभूमि में मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ों के खण्ड खण्ड हो जाने से रक्त की सैकड़ों नदियाँ बह चलीं। इन नदियों में बाँहें सर्पों के तुल्य, मनुष्यों के सिर कछुवों की तरह, मृत हाथी द्वीपों की तरह तथा मृत घोड़े घड़ियालों की तरह प्रतीत हो रहे थे। उनके हाथ तथा जाँघें मछली की तरह, मनुष्यों के बाल सिवार की तरह, बाण लहरों की तरह तथा विविध हथियार झाड़ियों के

कुंज जैसे लग रहे थे। रक्त की नदियाँ इन सारी वस्तुओं से पड़ी थीं।

रथ के पहिए भयावनी भँवरों जैसे और बहुमूल्य मोती तथा आभूषण तेजी से बहती लाल रंग की नदियों में पत्थरों तथा रेत की तरह लग रहे थे, जो कायरों में भय और बुद्धिमानों में हर्ष उत्पन्न करने वाले थे। अपने हलायुध के प्रहारों से अत्यधिक शक्तिशाली बलराम ने मगधेन्द्र की सैनिक-शक्ति विनष्ट कर दी। यद्यपि यह सेना दुर्लंघ्य सागर की भाँति अथाह एवं भयावनी थी किन्तु वसुदेव के दोनों पुत्रों के लिए, जो कि ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, यह युद्ध खिलवाड़ से अधिक नहीं था।

स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः
समीहितेऽनन्तगुणः स्वलीलया ।
न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रह-
स्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

स्थिति—पालन; उद्भव—सृजन; अन्तम्—तथा संहार; भुवन-त्रयस्य—तीनों लोकों का; यः—जो; समीहिते—प्रभाव; अनन्त—अनन्त; गुणः—जिनके दिव्य गुण; स्व-लीलया—अपनी लीलाओं के रूप में; न—नहीं; तस्य—उसका; चित्रम्—अद्भुत; पर—विरोधी; पक्ष—पक्ष का; निग्रहः—दमन; तथा अपि—फिर भी; मर्त्य—मनुष्य; अनुविधस्य—अनुकरण करने वाला; वर्ण्यते—वर्णन किया जाता है।.

जो तीनों लोकों के सृजन, पालन और संहार को एकसाथ सम्पन्न करने वाले हैं तथा जो असीम दिव्य गुणों वाले हैं उनके लिए विरोधी दल का दमन कर देना आश्चर्यजनक नहीं है। फिर भी जब भगवान् मानव-आचरण का अनुकरण करते हुए ऐसा करते हैं, तो साधुगण उनके कार्यों का गुणगान करते हैं।

तात्पर्य : दार्शनिक अरस्तू ने एक बार तर्क प्रस्तुत किया था कि परमेश्वर शायद ही कभी मानवीय कार्यों में भाग लेता हो क्योंकि समस्त सामान्य कार्य ऐसे दैवी पुरुष के लिए अनुपयुक्त है, इसी प्रकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती एक ऐसी ही बात उठाते हैं यद्यपि यह लगभग निश्चित है कि उन्होंने अरस्तू के ग्रंथ नहीं पढ़े होंगे। चूँकि कृष्ण समग्र ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं, तो क्या जब वे जरासन्ध से युद्ध करते हैं यह उनके लिए अरुचिकर विसंगति नहीं है?

इसका उत्तर इस प्रकार है : भगवान् मनुष्य की भूमिका अदा करते हैं और अपनी ह्लादिनी शक्ति का प्रसार करते हुए अनिश्चय और सक्रियता से पूर्ण उल्लासजनक दिव्य लीलाएँ करते हैं। अपनी योग-

मायाशक्ति द्वारा वे मनुष्य की तरह प्रकट होते हैं और इस तरह हम पृथ्वी के रंगमंच पर उन्हें परम पुरुष की भूमिका अदा करते देख कर आनंद उठा सकते हैं। निस्सन्देह, घोर नास्तिक लोग तर्क पेश करेंगे कि चूँकि कृष्ण ईश्वर हैं, तो इसमें वास्तविक अनिश्चय कहाँ रहा? ऐसे संशयवादी कृष्ण की आकर्षक शक्ति को कभी समझ नहीं सकेंगे। भौतिक मंच पर भी सौन्दर्य तथा अभिनय का अपना मोहक औचित्य है। इसी तरह हम कृष्ण को उन्हीं के लिए प्रेम करते हैं, उन्हीं के लिए उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं और कृष्ण की लीलाओं का हम आनन्द लेते हैं क्योंकि वे सचमुच अपने में अद्भुत हैं। वास्तव में, कृष्ण किसी भौतिक अहंकारवश लीलाएँ नहीं करते अपितु हमारे आनन्द के लिए ही करते हैं। इस तरह आध्यात्मिक लीलाओं का प्रस्तुतीकरण उन शुद्ध हृदय वाले जीवों के असीम दिव्य आनंद के लिए है, जो ईश्वर से ईर्ष्या नहीं करते और यह कृष्ण द्वारा सम्पन्न प्रेम-कार्य है।

इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती *गोपाल तापनी उपनिषद* से एक महत्त्वपूर्ण श्लोक उद्धृत करते हैं—*नराकृति परब्रह्म कारणमानुषः*—परब्रह्म अपने निमित्त मनुष्य रूप में प्रकट होते हैं यद्यपि वे समस्त वस्तुओं के उद्गम हैं। इसी प्रकार से *श्रीमद्भागवत* (.१४.२) में कहा गया है— *यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्*—दिव्य आनन्द के स्रोत नित्य परब्रह्म उनके मित्र बन गये हैं।

जग्राह विरथं रामो जरासन्धं महाबलम् ।
हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ० ॥

शब्दार्थ

जग्राह—पकड़ लिया; विरथम्—रथविहीन; रामः—बलराम; जरासन्धम्—जरासन्ध को; महा—अत्यन्त; बलम्—बलवान; हत—मारी गई; अनीक—सेना; अवशिष्ट—शेष; असुम्—श्वास; सिंहः—एक सिंह; सिंहम्—दूसरे सिंह को; इव—सदृश; ओजसा—बलपूर्वक ।

रथविहीन होने तथा सारे सैनिक मारे जाने से जरासन्ध के पास केवल श्वास शेष थी। उस समय बलराम ने उस बलशाली योद्धा को उसी तरह पकड़ लिया जिस तरह एक सिंह दूसरे सिंह को पकड़ लेता है।

बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ।
वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ १ ॥

शब्दार्थ

बध्यमानम्—बाँधे जाते समय; हत—मारा गया; अरातिम्—शत्रु को; पाशैः—रस्सियों से; वारुण—वरुणदेव की; मानुषैः—तथा सामान्य मनुष्यों की; वारयाम् आस—रोका; गोविन्दः—कृष्ण ने; तेन—उसके (जरासन्ध) द्वारा; कार्य—कुछ काम; चिकीर्षया—करने की इच्छा से।

अनेक शत्रुओं का वध करने वाले बलराम, जरासन्ध को वरुण के दैवी-पाश से तथा अन्य लौकिक रस्सियों से बाँधने लगे। किन्तु गोविन्द को अभी जरासन्ध के माध्यम से कुछ कार्य करना शेष था अतः उन्होंने बलराम से रुक जाने के लिए कहा।

तात्पर्य : *हताराातिम्* का अर्थ है "जिसने अपने शत्रुओं को मार दिया है" या "जिसके माध्यम से उसके शत्रु मारे जायेंगे।" यह विचारपूर्ण टिप्पणी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने की है।

सा मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसम्मतः ।
तपसे कृतसङ्कल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ २॥
वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ।
स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, जरासन्ध; मुक्तः—छोड़ दिया गया; लोक-नाथाभ्याम्—दोनों लोकेश्वरों द्वारा; व्रीडितः—लज्जित; वीर—वीरों से; सम्मतः—आदरित; तपसे—तपस्या करने; कृत-सङ्कल्पः—मन को पक्का करके; वारितः—रोका गया; पथि—मार्ग में; राजभिः—राजाओं द्वारा; वाक्यैः—वाक्यों द्वारा; पवित्र—शुद्ध करने वाला; अर्थ—अर्थ वाला; पदैः—शब्दों के द्वारा; नयनैः—तर्क से; प्राकृतैः—संसारी; अपि—भी; स्व—निजी; कर्म-बन्ध—गत कर्म के न बच पाने वाले फल के कारण; प्राप्तः—प्राप्त; अयम्—यह; यदुभिः—यदुओं द्वारा; ते—तुम्हारी; पराभवः—हार।

जरासन्ध जिसको योद्धा अत्यधिक सम्मान देते थे, जब ब्रह्माण्ड के दोनों स्वामियों ने उसे छोड़ दिया तो वह अत्यन्त लज्जित हुआ और उसने तपस्या करने का निश्चय किया। किन्तु मार्ग में कई राजाओं ने आध्यात्मिक ज्ञान तथा संसारी तर्कों के द्वारा उसे आश्वस्त किया कि उसे आत्मोत्सर्ग का विचार त्याग देना चाहिए। उन्होंने उससे कहा, "यदुओं द्वारा आपको हराया जाना तो आपके गत कर्मों का परिहार्य फल है।"

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ।
उपेक्षितो भगवता मगधान्दुर्मना ययौ ॥ ४॥

शब्दार्थ

हतेषु—मारे जाने पर; सर्व—सारे; अनीकेषु—सेना के सारे सैनिक; नृपः—राजा; बार्हद्रथः—बृहद्रथ का पुत्र, जरासन्ध; तदा—तब; उपेक्षित ह्—उपेक्षित; भगवता—भगवान् द्वारा; मगधान्—मगध राज्य में; दुर्मनाः—उदास; ययौ—चला गया।

अपनी सारी सेना मारी जाने तथा स्वयं भी भगवान् द्वारा उपेक्षित होने से बृहद्रथ-पुत्र राजा जरासन्ध उदास मन से अपने राज्य मगध को लौट गया।

मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ।
विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रीदशैरनुमोदितः ॥ ५ ॥
माथुरैरुपसङ्गम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ।
उपगीयमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मुकुन्दः—कृष्ण; अपि—भी; अक्षत—बाल बाँका न होने से; बलः—अपनी सेना; निस्तीर्ण—पार कराकर; अरि—अपने शत्रु की; बल—सेना के; अर्णवः—समुद्र; विकीर्यमाणः—उन पर बरसाये गये; कुसुमैः—फूलों से; त्रिदशैः—देवताओं द्वारा; अनुमोदितः—बधाई दिये गये; माथुरैः—मथुरा के लोगों के द्वारा; उपसङ्गम्य—मिलकर; विज्वरैः—ज्वर से मुक्त; मुदित-आत्मभिः—अतीव हर्ष से युक्त; उपगीयमान—गीत गाये जाकर; विजयः—विजय; सूत-मागध—पुराण के गायक; वन्दिभिः—वन्दीजनों द्वारा।

भगवान् मुकुन्द ने अक्षत अपनी पूर्णतः सेना के द्वारा अपने शत्रु की सेनाओं के समुद्र को पार कर लिया था। स्वर्ग के निवासियों ने उन पर फूलों की वर्षा करते हुए उन्हें बधाइयाँ दीं। मथुरा के निवासी अपनी ज्वरयुक्त चिन्ता से मुक्त होकर तथा हर्ष से पूरित होकर उनसे मिलने के लिए बाहर निकल आये और सूतों, मागधों तथा वन्दीजनों ने उनकी विजय की प्रशंसा में गीत गाये।

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ।
वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥ ७ ॥
सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरभ्यलङ्कृताम् ।
निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; दुन्दुभयः—तथा दुन्दुभियाँ; नेदुः—बजने लगीं; भेरी—ढोल; तूर्याणि—तथा तुरहियाँ; अनेकशः—एकसाथ कई; वीणा-वेणु-मृदङ्गानि—वीणा, बाँसुरी तथा मृदंग; पुरम्—नगर में; प्रविशति—उनके प्रवेश करते ही; प्रभौ—प्रभु; सिक्त—पानी से सींचा गया; मार्गाम्—रास्तों का; हृष्ट—प्रसन्न; जनाम्—नागरिकों को; पताकाभिः—पताकाओं से; अभ्यलङ्कृताम्—खूब सजाया गया; निर्घुष्टाम्—प्रतिध्वनित; ब्रह्म—वेदों के; घोषेण—उच्चारण से; कौतुक—उत्सवपूर्ण; आबद्ध—आभूषण; तोरणाम्—प्रवेशद्वारों पर।

ज्योंही भगवान् ने नगरी में प्रवेश किया, शंख तथा दुन्दुभियाँ बजने लगीं और अनेक ढोल, तुरहियाँ, वीणा, वंशी तथा मृदंग एकसाथ बजने लगे। रास्तों को जल छिड़का गया था, सर्वत्र पताकाएँ लगी थीं तथा प्रवेशद्वारों को समारोह के लिए सजाया गया था। उसके नागरिक उत्साहित थे और नगरी वैदिक स्तोत्रों के उच्चारण से गूँज रही थी।

निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ।
निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

निचीयमानः—उन पर बिखेरकर; नारीभिः—स्त्रियों द्वारा; माल्य—फूलों की मालाएँ; दधि—दही; अक्षत—लईया; अङ्कुरैः—तथा अंकुर; निरीक्ष्यमाणः—देखे जा रहे; स-स्नेहम्—स्नेहपूर्वक; प्रीति—प्रेमवश; उत्कलित—फैली हुई; लोचनैः—आँखों से।

ज्योंही नगरी की स्त्रियों ने भगवान् पर स्नेहयुक्त दृष्टि डाली, उनके नेत्र प्रेमवश खुले के खुले रह गये। उन्होंने भगवान् पर फूल-मालाएँ, दही, अक्षत तथा नवांकुरों की वर्षा की।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण द्वारा मथुरा में प्रवेश करते समय यह सब हुआ।

आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ।
यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

आयोधन-गतम्—युद्धभूमि में गिरी हुई; वित्तम्—बहुमूल्य सामग्री; अनन्तम्—अनगिनत; वीर—वीरों के; भूषणम्—आभूषण; यदु-राजाय—यदुओं के राजा, उग्रसेन को; तत्—वह; सर्वम्—सब; आहृतम्—लाई गई; प्रादिशत्—भेंट की; प्रभुः—भगवान् ने।

तत्पश्चात् भगवान् कृष्ण ने यदुराज को वह सारी सम्पत्ति लाकर भेंट की जो युद्धभूमि में गिरी थी अर्थात् जो मृत योद्धाओं के अनगिनत आभूषणों के रूप में थी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि घोड़ों तथा अन्य पशुओं से भी रत्नजटित आभूषण एकत्र किये गये थे। यहाँ पर अति शंकालु मनुष्य की जानकारी हेतु यह बतला दिया जाय कि जरासन्ध इस स्पष्ट उद्देश्य से मथुरा आया था कि वह कृष्ण तथा बलराम सहित नगरी के सारे लोगों की हत्या कर देगा। भगवान् अपनी अहैतुकी कृपा से बद्धजीवों को मजा चखा कर उनकी सहायता करते हैं जिससे वे प्रकृति के नियमों तथा भगवान् के अस्तित्व के विषय में अधिक संवेदनशील बनें। अन्ततः कृष्ण ने जरासन्ध तथा युद्धभूमि में मारे गये अन्य वीरों को मुक्ति प्रदान की। भगवान् बड़े कठोर हैं किन्तु द्वेषपूर्ण नहीं। वस्तुतः वे दया के सागर हैं।

एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ।
युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सप्त-दश—सत्रह; कृत्वः—बार; तावति—इतने पर भी (हारने पर); अक्षौहिणी—कई अक्षौहिणी वाली; बलः—सैनिक-शक्ति; युयुधे—युद्ध किया; मागधः राजा—मगध के राजा ने; यदुभिः—यदुओं से; कृष्ण-पालितैः—कृष्ण द्वारा सुरक्षित।

मगध का राजा इसी तरह से सत्रह बार पराजित होता रहा। फिर भी इन पराजयों में वह अपनी कई अक्षौहिणी सेनाओं से यदुवंश की उन सेनाओं के विरुद्ध लड़ता रहा जो श्रीकृष्ण द्वारा संरक्षित थीं।

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ।
हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽगादरिभिर्नृपः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अक्षिण्वन्—नष्ट कर दी; तत्—उसकी; बलम्—सेना; सर्वम्—सारी; वृष्णयः—वृष्णियों ने; कृष्ण-तेजसा—भगवान् कृष्ण की शक्ति से; हतेषु—मृत होने पर; स्वेषु—अपनी; अनीकेषु—सेना के; त्यक्तः—छोड़ा गया; अगात्—चला जाता; अरिभिः—शत्रुओं द्वारा; नृपः—राजा, जरासन्ध।

भगवान् कृष्ण की शक्ति से, वृष्णिजन जरासन्ध की सारी सेना को नष्ट करते रहे और जब उसके सारे सैनिक मार डाले जाते तो राजा (जरासन्ध) अपने शत्रुओं द्वारा छोड़ दिये जाने पर पुनः वहाँ से चला जाता।

अष्टादशम सङ्ग्राम आगामिनि तदन्तरा ।
नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अष्टा-दशम—अठारहवें; सङ्ग्रामे—युद्ध में; आगामिनि—घटित होने वाले; तत्-अन्तरा—उस बीच; नारद—नारदमुनि द्वारा; प्रेषितः—भेजा हुआ; वीरः—योद्धा; यवनः—बर्बर (कालयवन नामक); प्रत्यदृश्यत—प्रकट हुआ।

जब अठारहवाँ युद्ध होने ही वाला था, तो कालयवन नामक एक बर्बर योद्धा, जिसे नारद ने भेजा था, युद्ध-क्षेत्र में प्रकट हुआ।

रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ।
नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीन्श्रुत्वात्मसम्मितान् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

रुरोध—घेर लिया; मथुराम्—मथुरा नगरी को; एत्य—आकर; तिसृभिः—तीन गुना; म्लेच्छ—बर्बरों से; कोटिभिः—एक करोड़; नृ-लोके—मनुष्यों में; च—तथा; अप्रतिद्वन्द्वः—जिसका कोई उपयुक्त प्रतिद्वन्द्वी न हो; वृष्णीन्—वृष्णियों को; श्रुत्वा—सुनकर; आत्म—अपनी ही; सम्मितान्—जोड़ वाला।

मथुरा आकर इस यवन ने तीन करोड़ बर्बर (म्लेच्छ) सैनिकों समेत इस नगरी में घेरा डाल दिया। उसे कभी अपने से लड़ने योग्य प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति नहीं मिला था किन्तु उसने सुना था कि वृष्णिजन उसकी जोड़ के हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कालयवन के इतिहास के बारे में *विष्णु पुराण* से उद्धरण दिया है : ''एक बार गार्ग्य के साले ने मजाक में उन्हें नपुंसक कह दिया और जब यादवों ने इसे सुना तो वे जी भरकर हँसे। इस हँसी से क्रुद्ध होकर गार्ग्य दक्षिण दिशा में यह सोचते हुए चल पड़े, ''भगवान् मुझे एक पुत्र दो, जो इन यादवों के लिए आतंक बन सके।'' उन्होंने लोहे का चूर्ण खाकर महादेव की पूजा की और बारह वर्ष बाद उन्हें इच्छित वर मिला। वे खुशी खुशी घर लौट आये।

बाद में जब यवनों के सन्तानहीन राजा ने उनसे एक पुत्र के लिए प्रार्थना की तो गार्ग्य ने यवन की स्त्री से एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम कालयवन था। उनमें शिव के महाकाल-रूप जैसा क्रोध था। एक बार कालयवन ने नारद से पूछा, ''इस समय पृथ्वी पर कौन सबसे बलवान राजा हैं?'' नारद ने उत्तर दिया कि यदु लोग हैं। इस तरह नारद द्वारा बताए जाने पर कालयवन मथुरा में प्रकट हुआ।''

तं दृष्ट्वाचिन्तयत्कृष्णः सङ्कर्षण सहायवान् ।
अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; दृष्ट्वा—देखकर; अचिन्तयत्—सोचा; कृष्णः—कृष्ण ने; सङ्कर्षण—बलराम द्वारा; सहाय-वन्—सहायता पहुँचाया हुआ; अहो—आह; यदूनाम्—यदुओं के लिए; वृजिनम्—समस्या; प्राप्तम्—आई हुई; हि—निस्सन्देह; उभयतः—दोनों ओर से (कालयवन से तथा जरासन्ध से); महत्—महान्।

जब भगवान् कृष्ण तथा भगवान् संकर्षण ने कालयवन को देखा तो कृष्ण ने स्थिति पर विचार किया और कहा, ''ओह! अब तो यदुओं पर दो ओर से संकट आ पड़ा है।''

तात्पर्य : यहाँ हम देख सकते हैं कि यद्यपि कृष्ण ने जरासन्ध को सत्रह बार अनेक विषमताओं के होते हुए पराजित किया था फिर भी उन्होंने कालयवन की सेना का तुरन्त संहार नहीं किया और इस तरह शिवजी द्वारा गार्ग्य को दिये गये वर को अक्षत रखा जैसाकि पिछले श्लोक के तात्पर्य में बताया गया है।

यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ।
मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वागमिष्यति ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

यवनः—विदेशी बर्बर, म्लेच्छ; अयम्—यह; निरुन्धे—विरोध कर रहा है; अस्मान्—हमको; अद्य—आज; तावत्—तब तक; महा-बलः—अत्यन्त बलवान; मागधः—जरासन्ध; अपि—भी; अद्य—आज; वा—अथवा; श्वः—कल; वा—अथवा; पर-श्वः—परसों; वा—अथवा; आगमिष्यति—आयेगा।

''हमें यह यवन पहले से घेरे हुए है और शीघ्र ही यदि आज नहीं, तो कल या परसों तक मगध का बलशाली राजा यहाँ आ पहुँचेगा।''

आवयोः युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः ।
बन्धून्हनिष्यत्यथ वा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४७॥

शब्दार्थ

आवयोः—हम दोनों; युध्यतोः—लड़ते हुए; अस्य—उससे (कालयवन से); यदि—यदि; आगन्ता—आता है; जरा-सुतः—जरा का पुत्र; बन्धून्—हमारे सम्बन्धी; हनिष्यति—मार डालेगा; अथ वा—या फिर; नेष्यते—ले जायेगा; स्व—अपनी; पुरम्—नगरी में; बली—बलवान।

''यदि हमारे दोनों के कालयवन से युद्ध करने में संलग्न रहते समय, बलशाली जरासन्ध आता है, तो वह या तो हमारे सम्बन्धियों को मार सकता है या फिर उन्हें पकड़कर अपनी राजधानी ले जा सकता है।''

तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ।
तत्र ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; अद्य—आज; विधास्यामः—बनायेंगे; दुर्गम्—किला; द्विपद—मनुष्यों के लिए; दुर्गमम्—दुर्गम; तत्र—वहाँ; ज्ञातीन्—अपने परिवार वालों को; समाधाय—रखकर; यवनम्—बर्बर को; घातयामहे—हम मार डालेंगे।

''अतः हम तुरन्त ऐसा किला बनायेंगे जिसमें मानवी सेना प्रवेश न कर पाये। अपने पारिवारिक जनों को उसमें वसा देने के पश्चात् हम म्लेच्छराज का वध करेंगे।''

इति सम्मन्त्र्य भगवान्दुर्गं द्वादशयोजनम् ।
अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; सम्मन्त्र्य—सलाह करके; भगवान्—भगवान् ने; दुर्गम्—किला; द्वादश-योजनम्—बारह योजन का (लगभग ० मील) ; अन्तः—भीतर; समुद्रे—समुद्र के; नगरम्—नगर; कृत्स्न—हर वस्तु से युक्त; अद्भुतम्—अद्भुत; अचीकरत्—बनवा दिया।

इस तरह बलराम से सलाह करने के बाद भगवान् ने समुद्र के भीतर बारह योजन परिधि वाला एक किला बनवाया। इस किले के भीतर उन्होंने एक ऐसा नगर बनाया जिसमें एक से एक बढ़ कर अद्भुत वस्तुएँ उपलब्ध थीं।

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ।
रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥ ५० ॥

सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ।
हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५१ ॥

राजतारकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलङ्कृतैः ।
रत्नकूतैर्गृहैर्हेमैर्महामारकतस्थलैः ॥ ५२ ॥

वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वल्लभीभिश्च निर्मितम् ।
चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

दृश्यते—देखा जाता था; यत्र—जिसमें; हि—निस्सन्देह; त्वाष्ट्रम्—त्वष्टा (विश्वकर्मा) का; विज्ञानम्—वैज्ञानिक ज्ञान; शिल्प—शिल्पकला में; नैपुणम्—निपुणता; रथ्या—मुख्य मार्गों सहित; चत्वर—चौराहा या चौक; वीथीभिः—तथा व्यापारिक मार्गों से; यथा-वास्तु—काफी बड़े भू-खण्ड पर; विनिर्मितम्—बनाया हुआ; सुर—देवताओं के; द्रुम—वृक्षों; लता—तथा लताओं से युक्त; उद्यान—बगीचों; विचित्र—विचित्र; उपवन—तथा पार्कों; अन्वितम्—से युक्त; हेम—स्वर्ण; शृङ्गैः—चोटी से युक्त; दिवि—आकाश को; स्पृग्भिः—स्पर्श करते हुए; स्फटिका—स्फटिक के; अट्टाल—अटारियाँ; गोपुरैः—दरवाजों से युक्त; राजत—चाँदी के; आरकुटैः—तथा पीतल के; कोष्ठैः—कोषागार, भंडार, अस्तबल आदि से युक्त; हेम—स्वर्ण; कुम्भैः—घड़ों से; अलङ्कृतैः—सुसज्जित; रत्न—रत्नजटित; कूतैः—चोटियों वाले; गृहैः—घरों से; हेमैः—सोने के; महा-मारकत—बहुमूल्य मरकत मणियों से; स्थलैः—फर्श से युक्त; वास्तोः—घर-बार के; पतीनाम्—अधिष्ठाता देवों के; च—तथा; गृहैः—मन्दिरों से; वल्लभीभिः—चौकसी बुर्जों से; च—तथा; निर्मितम्—बनाये गये; चातुः-वर्ण्य—चारों वर्णों के; जन—लोगों से; आकीर्णम्—पूरित; यदु-देव—यदुओं के स्वामी, श्रीकृष्ण का; गृह—घरों से; उल्लसत्—अलंकृत।

उस नगर के निर्माण में विश्वकर्मा के पूर्ण विज्ञान तथा शिल्पकला को देखा जा सकता था। उसमें चौड़े मार्ग, व्यावसायिक सड़कें तथा चौराहे थे, जो विस्तृत भू-खण्ड में बनाये गये थे। उसमें भव्य पार्क थे और स्वर्ग-लोक से लाये गये वृक्षों तथा लताओं से युक्त बगीचे भी थे। उसके गोपुर के मीनारों के ऊपर सोने के बुर्ज थे, जो आकाश को चूम रहे थे। उनकी अटारियाँ स्फटिक मणियों से बनी थीं। सोने से आच्छादित घरों के सामने का भाग सुनहरे घड़ों से सजाया गया था और उनकी छतें रत्नजटित थीं तथा फर्श में बहुमूल्य मरकत मणि जड़े थे। घरों के पास ही कोषागार, भंडार तथा आकर्षक घोड़ों के अस्तबल थे, जो चाँदी तथा पीतल के बने हुए थे। प्रत्येक आवास में एक चौकसी बुर्जी थी और घरेलू अर्चाविग्रह के लिए मन्दिर था। यह नगर चारों वर्णों के लोगों से पूरित था और यदुओं के स्वामी श्रीकृष्ण के महलों के कारण विशेष रूप से अलंकृत था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि राजमार्ग (*रथ्याः*) सामने की ओर थे और गौण मार्ग (*वीथ्यः*) पीछे थे और इन दोनों के मध्य में चौराहे (*चत्वराणि*) थे। इन चौराहों के भीतर चहारदीवारियाँ थीं जिनके भीतर सुनहरे आवासगृह थे जिनके ऊपरी भाग में चौकसी बुर्जियाँ थीं जिन

पर सुनहरे घड़े रखे थे। इस तरह सारी इमारतें कई मंजिला थीं। *वास्तु* शब्द सूचित करता है कि घर तथा इमारतें पर्याप्त भू-खण्ड पर बनी थीं जिससे हरियाली के लिए काफी गुंजाईश थी।

सुधर्मां पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ।
यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥ ५४॥

शब्दार्थ

सुधर्माम्—सुधर्मा नामक सभागार; पारिजातम्—पारिजात वृक्ष; च—तथा; महा-इन्द्रः—स्वर्ग के राजा इन्द्र ने; प्राहिणोत्—लाकर दिया; हरेः—कृष्ण को; यत्र—जिसमें (सुधर्मा में); च—तथा; अवस्थितः—स्थित; मर्त्यः—मर्त्य, मरणशील; मर्त्य-धर्मैः—मरने के नियमों से; न युज्यते—प्रभावित नहीं है।

इन्द्र ने श्रीकृष्ण के लिए सुधर्मा सभागार ला दिया जिसके भीतर खड़ा मनुष्य मृत्यु के नियमों से प्रभावित नहीं होता। इन्द्र ने पारिजात वृक्ष भी लाकर दिया।

श्यामैकवर्णान्वरुणो हयाञ्शुक्लान्मनोजवान् ।
अष्टौ निधिपतिः कोशाल्लोकपालो निजोदयान् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

श्याम—गहरा नीला; एक—नितान्त; वर्णान्—रंग का; वरुणः—सागरों का शासक वरुण; हयान्—घोड़े; शुक्लान्—सफेद; मनः—मन (की तरह के); जवान्—तेज; अष्टौ—आठ; निधि-पतिः—देवताओं का कोषाध्यक्ष, कुवेर; कोशान्—खजाने को; लोक-पालः—विभिन्न लोकों के शासक; निज—अपने; उदयान्—ऐश्वर्य विभूति।

वरुण ने मन के समान वेग वाले घोड़े दिये जिनमें से कुछ शुद्ध श्याम रंग के थे और कुछ सफेद थे। देवताओं के कोषाध्यक्ष कुवेर ने अपनी आठों निधियाँ दीं और विभिन्न लोकपालों ने अपने अपने ऐश्वर्य प्रदान किये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है—"कोष का स्वामी कुवेर है और आठ कोष ही उसकी निधियाँ हैं। ये इस प्रकार हैं—

पद्मश्चैव महापद्मो मत्स्यकूर्मौ तथौदकः ।

नीलो मुकुन्दः शंखश्च निधयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

"आठ निधियाँ हैं—पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, औदक, नील, मुकुन्द तथा शंख।"

यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ।
सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

यत् यत्—जो जो; भगवता—भगवान् द्वारा; दत्तम्—दी गई; आधिपत्यम्—नियंत्रण करने की प्रदत्त शक्ति; स्व—निजी; सिद्धये—अधिकार जताने की सुविधा के लिए; सर्वम्—सारी; प्रत्यर्पयाम् आसुः—वापस दे दीं; हरौ—कृष्ण को; भूमि—पृथ्वी में; गते—आये हुए; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

हे राजन्, जब भगवान् पृथ्वी पर आ गये तो इन देवताओं ने उन सभी सिद्धियों को उन्हें अर्पित कर दिया जो उन्हें अपने विशेष अधिकार के निष्पादन के लिए पहले प्राप्त हुई थीं।

तत्र योगप्रभावेन नीत्वा सर्वजनं हरिः ।
प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ।
निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५७॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; योग—अपनी योगशक्ति के; प्रभावेन—प्रभाव से; नीत्वा—लाकर; सर्व—सभी; जनम्—अपनी प्रजा को; हरिः—भगवान् कृष्ण; प्रजा—नागरिकों के; पालेन—रक्षक; रामेण—बलराम द्वारा; कृष्णः—कृष्ण ने; समनुमन्त्रितः—सलाह की; निर्जगाम—बाहर चले गये; पुर—नगर के; द्वारात्—द्वार से; पद्म—कमल के फूलों की; माली—माला पहन कर; निरायुधः—बिना हथियार के।

अपनी योगमाया-शक्ति के बल से जब भगवान् कृष्ण ने अपनी सारी प्रजा को नये नगर में पहुँचा दिया तो उन्होंने बलराम से सलाह की जो मथुरा में उसकी रक्षा करने के लिए रह गये थे। तब गले में कमल के फूलों की माला पहने और बिना हथियार के भगवान् कृष्ण मुख्य दरवाजे से होकर मथुरा से बाहर चले गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कृष्ण द्वारा सारे नागरिकों को मथुरा से द्वारका स्थानान्तरित किये जाने का वर्णन प्रस्तुत करने के लिए *श्री पद्म पुराण* के उत्तर खण्ड से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

सुषुप्तान् मथुरायान्तु पौरांस्तत्र जनार्दनः ।
उद्धृत्य सहसा रात्रौ द्वारकायां न्यवेशयत् ॥
प्रबुद्धास्ते जनाः सर्वे पुत्रदारसमन्विताः ।
हैमहर्म्यतले विष्टा विस्मयं परमं ययुः ॥

"अर्धरात्रि में, जब मथुरावासी सोये हुए थे तो भगवान् जनार्दन ने सहसा उन्हें उस नगरी से हटाकर द्वारका में लाकर रख दिया। जब लोग जागे तो अपने आपको, अपने पुत्रों को तथा पत्नियों को सोने से बने महलों के भीतर पाकर चकित थे।"

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत "कृष्ण द्वारा द्वारकापुरी की स्थापना" नामक

पचासवें अध्याय के श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter इक्यावन

मुचुकुन्द का उद्धार

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण ने मुचुकुन्द की वक्र दृष्टि द्वारा कालयवन का वध कराया और कृष्ण तथा मुचुकुन्द के बीच क्या वार्ता हुई।

अपने परिवारजनों को द्वारका के दुर्ग में सुरक्षित करके श्रीकृष्ण मथुरा से बाहर चले गये। वे उदीयमान चन्द्रमा की तरह लग रहे थे। कालयवन ने देखा कि कृष्ण का तेजस्वी शरीर नारद द्वारा किये गये वर्णन से मेल खा रहा था अतएव वह यवन जान गया कि वे भगवान् ही हैं। यह देखकर कि वे कोई हथियार धारण नहीं किये हैं, उसने भी अपने हथियार रख दिये और उनसे युद्ध करने के उद्देश्य से पीछे की ओर से उनकी तरफ भागा। श्रीकृष्ण यवन से दूर भागते रहे और हर कदम पर केवल इतनी दूर रहते रहे जिससे उसकी पकड़ में न आ सकें और इस तरह वे उसे काफी दूर एक पर्वतगुफा तक ले गये। कालयवन दौड़ता जाता और कृष्ण को अपमानजनक शब्द भी कहता जाता किन्तु वह उन्हें पकड़ नहीं पाया क्योंकि उसके दुष्कर्म का कोष अभी पूरी तरह खाली नहीं हुआ था। श्रीकृष्ण उस गुफा में घुस गये और कालयवन भी उनका पीछा करते पहुँचा जहाँ उसने एक व्यक्ति को जमीन पर लेटे देखा। उसे कृष्ण जानकर कालयवन ने उस पर पाद-प्रहार किया। वह व्यक्ति दीर्घकाल से सो रहा था अत: तीव्रता से जगा दिये जाने से उसने क्रुद्ध होकर चारों ओर देखा तो कालयवन दिख गया। उसने उसकी ओर क्रूरता से घूरा तो कालयवन का शरीर क्षण-भर में जलकर राख हो गया।

यह असाधारण व्यक्ति मान्धाता का पुत्र मुचुकुन्द था। वह ब्राह्मण संस्कृति का उपासक था और अपने व्रत का पक्का था। इसके पूर्व उसने असुरों से देवताओं की रक्षा करने में, सहायता देने में वर्षों बिताए थे। जब देवताओं को रक्षक के रूप में कार्तिकेय प्राप्त हो गये तो उन्होंने मुचुकुन्द को अवकाश दे दिया और कहा कि वह मोक्ष के अतिरिक्त कोई भी और वर माँग ले क्योंकि मोक्ष देना तो विष्णु के हाथों में है। अत: मुचुकुन्द ने देवताओं से सोते रहने का वर माँग लिया और इसीलिए वह तभी से इस गुफा में पड़ा सो रहा था।

कालयवन के भस्म हो जाने पर श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को दर्शन दिया। वह कृष्ण की अद्वितीय सुन्दरता देखकर आश्चर्यचकित हो उठा। उसने भगवान् कृष्ण से पूछा कि आप कौन हैं और उनसे अपना परिचय इस तरह दिया, ''मैं दीर्घकाल तक जागते रहने के बाद जब थक गया तो इस गुफा में निद्रा का आनन्द ले रहा था, तभी किसी अजनबी ने मुझे छेड़ा और अपने पाप-कर्म के फलस्वरूप वह जलकर राख हो गया। हे प्रभु, हे शत्रु-हन्ता! यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आपके सुन्दर स्वरूप का दर्शन कर रहा हूँ।''

तब श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को बताया कि वे कौन हैं और उसे वर दिया। मुचुकुन्द बुद्धिमान था इसलिए भौतिक जीवन की व्यर्थता को सोचते हुए उसने श्रीकृष्ण के चरणकमलों में शरण ग्रहण करने का अनुरोध किया।

इस अनुरोध से प्रसन्न होकर भगवान् ने मुचुकुन्द से कहा, ''भक्तगण भौतिक वरों से कभी भी मोहित नहीं होते, केवल अभक्तगण—यथा योगी तथा ज्ञानी भौतिक वरों में रुचि रखते हैं, क्योंकि उनके हृदय में भौतिक इच्छाएँ होती हैं। हे मुचुकुन्द! तुम्हें मेरी शाश्वत भक्ति प्राप्त होगी। अब मेरे शरणागत रहकर उन पापों के फलों को दूर करने के लिए तपस्या करो, जिन्हें तुमने योद्धा के रूप में अन्यों का वध करते हुए किये हैं। अगले जन्म में तुम उत्तम ब्राह्मण बनोगे और मुझे प्राप्त करोगे।'' इस तरह भगवान् ने मुचुकुन्द को अपना आशीष प्रदान किया।

श्रीशुक उवाच

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ।
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥ २॥
नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ।
मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ॥
वासुदेवो ह्ययमिति पुमान्श्रीवत्सलाञ्छनः ।
चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४॥
लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ।
निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५॥
इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् ।

अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तम्—उसको; विलोक्य विनिष्क्रान्तम्—बाहर आते; उज्जिहानम्—उठते हुए; इव—मानो; उडुपम्—चन्द्रमा को; दर्शनीय-तमम्—देखने में सर्वाधिक सुन्दर; श्यामम्—गहरे नीले; पीत—पीला; कौशेय—रेशम; वाससम्—वस्त्र; श्रीवत्स—लक्ष्मी का चिह्न, जो भगवान् के बालों के गुच्छे का होता है; वक्षसम्—वक्षस्थल पर; भ्राजत्—चमकीला; कौस्तुभ—कौस्तुभ मणि से युक्त; आमुक्त—अलंकृत; कन्धरम्—कन्धा; पृथु—विशाल; दीर्घ—तथा लम्बा; चतुः—चार; बाहुम्—भुजाओं वाला; नव—नये खिले; कञ्ज—कमलों की तरह; अरुण—गुलाबी; ईक्षणम्—आँखें; नित्य—सदैव; प्रमुदितम्—प्रसन्न; श्रीमत्—ऐश्वर्यवान; सु—सुन्दर; कपोलम्—गालों वाला; शुचि—स्वच्छ; स्मितम्—मन्द-हास युक्त; मुख—उनका मुँह (मुखमण्डल); अरविन्दम्—कमल सदृश; बिभ्राणम्—प्रदर्शित करते; स्फुरन्—चमकते हुए; मकर—मछली की आकृति के; कुण्डलम्—कान की बालियाँ; वासुदेवः—वासुदेव; हि—निस्सन्देह; अयम्—यह; इति—इस प्रकार सोचते हुए; पुमान्—पुरुष; श्रीवत्स-लाञ्छनः—श्रीवत्स से अंकित; चतुः-भुजः—चार भुजाओं वाले; अरविन्द-अक्षः—कमल जैसे नेत्रों वाले; वन—जंगल के फूलों की; माली—माला पहने; अति—अत्यधिक; सुन्दरः—सुन्दर; लक्षणैः—लक्षणों से; नारद-प्रोक्तैः—नारदमुनि द्वारा बतलाये गये; न—नहीं; अन्यः—दूसरा; भवितुम् अर्हति—हो सकता है; निरायुधः—बिना हथियार के; चलन्—जाते हुए; पद्भ्याम्—पैदल; योत्स्ये—लड़ूँगा; अनेन—इससे; निरायुधः—बिना हथियार के; इति—इस प्रकार; निश्चित्य—निश्चय करके; यवनः—म्लेच्छ कालयवन; प्राद्रवन्तम्—भागता हुआ; पराक्—मुड़ा; मुखम्—मुँह; अन्वधावत्—पीछा करने लगा; जिघृक्षुः—पकड़ने की इच्छा से; तम्—उसको; दुरापम्—दुष्प्राप्य; अपि—भी; योगिनाम्—योगियों द्वारा।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कालयवन ने भगवान् को मथुरा से उदित होते चन्द्रमा की भाँति आते देखा। देखने में भगवान् अतीव सुन्दर थे, उनका वर्ण श्याम था और वे रेशमी पीताम्बर धारण किये थे। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था और उनके गले में कौस्तुभमणि सुशोभित थी। उनकी चारों भुजाएँ बलिष्ठ तथा लम्बी थीं। उनका मुख कमल सदृश सदैव प्रसन्न रहने वाला था, आँखें गुलाबी कमलों जैसी थीं, उनके गाल सुन्दर तेजवान थे, हँसी स्वच्छ थी तथा उनके कान की चमकीली बालियाँ मछली की आकृति की थीं। उस म्लेच्छ ने सोचा, ''यह व्यक्ति अवश्य ही वासुदेव होगा क्योंकि इसमें वे ही लक्षण दिख रहे हैं, जिनका उल्लेख नारद ने किया था—उसके श्रीवत्स का चिन्ह है, चार भुजाएँ हैं, आँखें कमल जैसी हैं और वह वनफूलों की माला पहने है और अत्यधिक सुन्दर है। वह और कोई नहीं हो सकता। चूँकि वह पैदल चल रहा है और कोई हथियार नहीं लिए है, अतएव मैं भी बिना हथियार के उससे युद्ध करूँगा।'' यह मन में ठान कर वह भगवान् के पीछे पीछे दौड़ने लगा और भगवान् उसकी ओर पीठ करके भागते गये। कालयवन को आशा थी कि वह कृष्ण को पकड़ लेगा यद्यपि बड़े बड़े योगी भी उन्हें प्राप्त नहीं कर पाते।

तात्पर्य : यद्यपि कालयवन भगवान् कृष्ण को अपनी आँखों से देख रहा था किन्तु वह सुन्दर भगवान् का ठीक से मूल्यांकन नहीं कर पा रहा था। अत: उसने कृष्ण की पूजा करने की बजाय उन

पर आक्रमण कर दिया। इसी तरह आधुनिक व्यक्तियों के लिए दर्शन, शान्ति व्यवस्था और धर्म तक के नाम पर कृष्ण पर आक्रमण करना असामान्य बात नहीं है।

हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरीणा स पदे पदे ।
नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

हस्त—अपने हाथ में; प्राप्तम्—प्राप्त हुआ; इव—मानो; आत्मानम्—अपने को; हरिणा—भगवान् कृष्ण द्वारा; सः—वह; पदे पदे—हर डग पर; नीतः—लाया गया; दर्शयता—दिखाये जाने वाले के द्वारा; दूरम्—दूर; यवन-ईशः—यवनों का राजा; अद्रि—पर्वत की; कन्दरम्—गुफा में।

प्रति क्षण कालयवन के हाथों की पहुँच में प्रतीत होते हुए भगवान् हरि उस यवनराज को दूर एक पर्वत—कन्दरा तक ले गये।

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ।
इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥ ८॥

शब्दार्थ

पलायनम्—भागना; यदु-कुले—यदुवंश में; जातस्य—जन्म लेने वाले; तव—तुम्हारा; न—नहीं है; उचितम्—ठीक; इति—इन शब्दों में; क्षिपन्—अपमान करता हुआ; अनुगतः—पीछा करता; न—नहीं; एनम्—उसको; प्राप—पहुँच पाया; अहत—दूर हुआ; अशुभः—जिसके पापमय कर्म-फल।

भगवान् का पीछा करते हुए वह यवन उन पर यह कह कर अपमान कर रहा था, ''तुमने यदुवंश में जन्म ले रखा है, तुम्हारे लिए इस तरह भागना उचित नहीं है!'' तो भी कालयवन भगवान् कृष्ण के पास तक नहीं पहुँच पाया क्योंकि उसके पाप कर्म-फल अभी धुले नहीं थे।

एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकन्दरम् ।
सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; क्षिप्तः—अपमानित; अपि—भी; भगवान्—भगवान्; प्राविशत्—घुस गये; गिरि-कन्दरम्—पर्वत की गुफा में; सः—वह, कालयवन; अपि—भी; प्रविष्टः—घुसते हुए; तत्र—वहाँ; अन्यम्—दूसरे; शयानम्—लेटे हुए; ददृशे—देखा; नरम्—मनुष्य को।

यद्यपि भगवान् इस तरह से अपमानित हो रहे थे किन्तु वे पर्वत की गुफा में घुस गये। उनके पीछे पीछे कालयवन भी घुसा और उसने वहाँ एक अन्य पुरुष को सोये हुए देखा।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् अपना वैराग्य वैभव दिखलाते हैं। अपनी योजना पूरी करने तथा मुचुकुन्द को आशीर्वाद देने के लिए वे दृढ़संकल्प थे, अत: वे कालयवन के अपमान की उपेक्षा करते

हुए शान्त भाव से अपने कार्यक्रम में आगे बढ़ते रहे।

नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ।
इति मत्वाच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ ॥

शब्दार्थ

ननु—ऐसा लगता है; असौ—वह; दूरम्—काफी दूरी तक; आनीय—लाकर; शेते—लेटा हुआ है; माम्—मुझको; इह—यहाँ; साधु-वत्—सन्त-पुरुष की तरह; इति—ऐसा; मत्वा—(मुझको) सोचकर; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण होने का; मूढः—ठगा गया; तम्—उसको; पदा—अपने पाँव से; समताडयत्—पूरे बल से प्रहार किया।

''यह तो मुझे इतनी दूर लाकर अब किसी साधु-पुरुष की तरह यहाँ लेट गया है।'' इस तरह सोते हुए उस व्यक्ति को भगवान् कृष्ण समझ कर, उस ठगे हुए मूर्ख ने पूरे बल से उस पर पाद-प्रहार किया।

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ।
दिशो विलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; उत्थाय—जग कर; चिरम्—दीर्घकाल से; सुप्तः—सोया हुआ; शनैः—धीरे से; उन्मील्य—खोलते हुए; लोचने—अपनी आँखें; दिशः—सारी दिशाओं में; विलोकयन्—देखते हुए; पार्श्वे—अपनी बगल में; तम्—उसको, कालयवन को; अद्राक्षीत्—देखा; अवस्थितम्—खड़ा।

वह पुरुष दीर्घकाल तक सोने के बाद जागा था और धीरे धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं। चारों ओर देखने पर उसे अपने पास ही कालयवन खड़ा हुआ दिखाई दिया।

स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ।
देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, कालयवन; तावत्—तब तक; तस्य—उस जगे हुए पुरुष का; रुष्टस्य—क्रुद्ध; दृष्टि—दृष्टि को; पातेन—डालने से; भारत—हे भरतवंशी (परीक्षित महाराज); देह-जेन—अपने शरीर से ही उत्पन्न; अग्निना—अग्नि से; दग्धः—जल कर; भस्म-सात्—राख; अभवत्—हो गया; क्षणात्—क्षण-भर में।

वह जगाया हुआ पुरुष अत्यन्त क्रुद्ध था। उसने अपनी दृष्टि कालयवन पर डाली तो उसके शरीर से लपटें निकलने लगीं। हे राजा परीक्षित, कालयवन क्षण-भर में जल कर राख हो गया।

तात्पर्य : जिस व्यक्ति ने कालयवन को अपनी दृष्टि से भस्म कर दिया वह मुचुकुन्द था। जैसाकि वह भगवान् को बतलायेगा, उसने दीर्घकाल तक देवताओं की ओर से युद्ध किया था और अन्त में बिना छेड़छाड़ के सोते रहने का वर प्राप्त किया था। *हरिवंश* में बतलाया गया है कि उसे एक वर यह

भी मिला था कि जो उसकी नींद से उसे उठायेगा उसे वह विनष्ट कर सकेगा। आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *हरिवंश* से निम्नलिखित उद्धरण दिये हैं—

प्रसुप्तं बोधयेद् यो मां तं दहेयमहं सुरा: ।

चक्षुषा क्रोधदीप्तेन एवमाह पुन: पुन: ॥

''मुचुकुन्द ने बारम्बार कहा, ''हे देवताओ! मैं अपनी क्रोध से जलती हुई आँखों से उसको भस्म कर सकूँ जो मुझे नींद से उठाये।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि मुचुकुन्द ने यह दूषित अनुरोध इन्द्र को भयभीत बनाने के लिए किया था क्योंकि मुचुकुन्द ने सोचा कि अन्यथा वह उसे अपने ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी शत्रुओं से लड़ने के लिए बारम्बार जगा कर अनुरोध कर सकता है। मुचुकुन्द के अनुरोध पर इन्द्र की सहमति का वर्णन *श्री विष्णु पुराण* में इस प्रकार वर्णित है—

प्रोक्तश्च देवै संसुप्तं यस्त्वामुत्थापयिष्यति।

देहजेनाग्निना सद्य: स तु भस्मीकरिष्यति॥

''देवताओं ने घोषणा की, ''जो भी तुम्हें नींद से जगायेगा वह अपने ही शरीर से उत्पन्न अग्नि से सहसा जल कर भस्म हो जायेगा।''

श्रीराजोवाच

को नाम स पुमान्ब्रह्मन्कस्य किंवीर्य एव च ।
कस्माद्गुहां गत: शिष्ये किंतेजो यवनार्दन: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (परीक्षित) ने कहा; क:—कौन; नाम—विशेष रूप से; स:—वह; पुमान्—पुरुष; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शुकदेव); कस्य—किस (वंश) का; किम्—क्या; वीर्य:—शक्ति; एव च—और भी; कस्मात्—क्यों; गुहाम्—गुफा में; गत:—जाकर के; शिष्ये—सोने के लिए लेट गया; किम्—किसका; तेज:—वीर्य (सन्तान); यवन—यवन का; अर्दन:—संहार करने वाला।

राजा परीक्षित ने कहा : हे ब्राह्मण, वह पुरुष कौन था? वह किस वंश का था और उसकी शक्तियाँ क्या थीं? म्लेच्छ का संहार करने वाला वह व्यक्ति गुफा में क्यों सोया हुआ था और वह किसका पुत्र था?

श्रीशुक उवाच

स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान् ।
मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सः—वह; इक्ष्वाकु-कुले—इक्ष्वाकु वंश में (सूर्य देवता विवस्वान का नाती); जातः—उत्पन्न; मान्धातृ-तनयः—राजा मान्धाता का पुत्र; महान्—महापुरुष; मुचुकुन्दः इति ख्यातः—मुचुकुन्द नाम से विख्यात; ब्रह्मण्यः—ब्राह्मणों का भक्त; सत्य—अपने व्रत का सच्चा; सङ्गरः—युद्ध में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : उस महापुरुष का नाम मुचुकुन्द था और वह इक्ष्वाकु वंश में मान्धाता के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था। वह ब्राह्मण संस्कृति का उपासक था और युद्ध में अपने व्रत का पक्का था।

स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे ।
असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

सः—वह; याचितः—याचना करने पर; सुर-गणैः—देवताओं द्वारा; इन्द्र-आद्यैः—इन्द्र इत्यादि द्वारा; आत्म—अपनी; रक्षणे—रक्षा के लिए; असुरेभ्यः—असुरों से; परित्रस्तैः—भयभीत; तत्—उनकी; रक्षाम्—रक्षा; सः—उसने; अकरोत्—की; चिरम्—दीर्घकाल तक।

जब इन्द्र तथा अन्य देवताओं को असुरों द्वारा त्रास दिये जा रहे थे तो उनके द्वारा अपनी रक्षा के लिए सहायता की याचना किये जाने पर मुचुकुन्द ने दीर्घकाल तक उनकी रक्षा की।

लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ।
राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥ १६॥

शब्दार्थ

लब्ध्वा—प्राप्त करके; गुहम्—कार्तिकेय को; ते—वे; स्वः—स्वर्ग का; पालम्—रक्षक के रूप में; मुचुकुन्दम्—मुचुकुन्द को; अथ—तब; अब्रुवन्—कहा; राजन्—हे राजन्; विरमताम्—कृपया दूर रहें; कृच्छ्रात्—कष्टकर; भवान्—आप; नः—हमारे; परिपालनात्—रक्षा करने से।

जब देवताओं को अपने सेनापति के रूप में कार्तिकेय प्राप्त हो गये तो उन्होंने मुचुकुन्द से कहा, "हे राजन्, अब आप हमारी रक्षा का कष्टप्रद कार्य छोड़ सकते हैं।"

नरलोकं परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकम् ।
अस्मान्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७॥

शब्दार्थ

नर-लोकम्—मनुष्यों के लोक में; परित्यज्य—छोड़कर; राज्यम्—राज्य; निहत—दूर हुए; कण्टकम्—काँटे; अस्मान्—हमको; पालयतः—पालने वाले; वीर—हे वीर; कामः—इच्छाएँ; ते—तुम्हारी; सर्वे—सभी; उज्झिताः—उखाड़कर फेंक दी गईं।

"हे वीर पुरुष, नर-लोक में अपने निष्कण्टक राज्य को छोड़कर आपने हमारी रक्षा करते

हुए अपनी निजी आकांक्षाओं की परवाह नहीं की।''

सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिनः ।
प्रजाश्च तुल्यकालीना नाधुना सन्ति कालिताः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सुताः—सन्तानें; महिष्यः—पटरानियाँ; भवतः—आपके; ज्ञातयः—अन्य सम्बन्धी; अमात्य—मंत्री; मन्त्रिणः—तथा सलाहकार; प्रजाः—प्रजा; च—तथा; तुल्य-कालीनाः—समकालीन; न—नहीं; अधुना—अब; सन्ति—जीवित हैं; कालिताः—काल से प्रेरित।

''बच्चे, रानियाँ, सम्बन्धी, मंत्री, सलाहकार तथा आपकी समकालीन प्रजा—इनमें से कोई अब जीवित नहीं रहे। वे सभी काल के द्वारा बहा ले जाये गये हैं।''

कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ।
प्रजाः कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

कालः—काल, समय; बलीयान्—अत्यन्त बलवान; बलिनाम्—बलवानों की अपेक्षा; भगवान् ईश्वरः—परमेश्वर; अव्ययः—अव्यय, अविनाशी; प्रजाः—मर्त्य प्राणी; कालयते—हाँकता है; क्रीडन्—खेल खेल में; पशु-पालः—पशु-पालक; यथा—जिस तरह; पशून्—पालतू जानवरों को।

''अनंत काल समस्त बलवानों से भी बलवान है और वही साक्षात् परमेश्वर है। जिस तरह पशु-पालक (ग्वाला) अपने पशुओं को हाँकता रहता है उसी तरह परमेश्वर मर्त्य प्राणियों को अपनी लीला के रूप में हाँकते रहते हैं।''

तात्पर्य : यह ब्रह्माण्ड उन दूषित आत्माओं को क्रमशः सुधारने के लिए रचा गया है, जो भौतिक प्रकृति का शोषण करने का प्रयास करते हैं। भगवान् इन बद्धजीवों को उनके कर्म के अनुसार आध्यात्मिक परिष्कार की विविध अवस्थाओं में से घुमाते रहते हैं। इस तरह भगवान् उस ग्वाले (पशुपाल) के समान हैं, जो चरागाह तथा पानी की तलाश में पशुओं को बचाये रखने और पालने के लिए अपने संरक्षण में इधर उधर घुमाता रहता है। एक अन्य दृष्टान्त डॉक्टर का है, जो अपने रोगी को विविध परीक्षणों के लिए अस्पताल के विभिन्न भागों में भेजता रहता है। इसी तरह भगवान् हमें क्रमिक परिष्कार की विधि द्वारा भवजाल में से निकाल देते हैं जिससे हम उनके प्रबुद्ध-संगी के रूप में आनन्द तथा ज्ञान का शाश्वत जीवन बिता सकें। इस तरह मुचुकुन्द के सारे सम्बन्धी, मित्र तथा सहकर्मी काल के प्रभाव से बहुत पहले मिट चुके थे, क्योंकि काल साक्षात् कृष्ण हैं।

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ।
एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

वरम्—वर; वृणीष्व—चुनो; भद्रम्—कल्याण हो; ते—तुम्हारा; ऋते—सिवाय; कैवल्यम्—मोक्ष के; अद्य—आज; नः—हमसे; एकः—एक; एव—एकमात्र; ईश्वरः—सक्षम; तस्य—उसका; भगवान्—भगवान्; विष्णुः—श्री विष्णु; अव्ययः—अविनाशी।

''आपका कल्याण हो, अब आप मोक्ष के सिवाय कोई भी वर चुन सकते हैं क्योंकि मोक्ष को तो एकमात्र अविनाशी भगवान् विष्णु ही प्रदान कर सकते हैं।''

एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ।
अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; उक्तः—कहकर; सः—वह; वै—निस्सन्देह; देवान्—देवताओं को; अभिवन्द्य—नमस्कार करके; महा—महान्; यशाः—जिसकी ख्याति; अशयिष्ट—लेट गया; गुहा-विष्टः—गुफा में घुसकर; निद्रया—नींद में; देव—देवताओं द्वारा; दत्तया—दी गई।

ऐसा कहे जाने पर राजा मुचुकुन्द ने देवताओं से ससम्मान विदा ली और एक गुफा में गया जहाँ वे देवताओं द्वारा दी गई नींद का आनन्द लेने के लिए लेट गया।

तात्पर्य : श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने निम्नलिखित प्रक्षिप्त पाठ दिया है जिन्हें उपर्युक्त श्लोक की दो पंक्तियों के बीच में होना चाहिए—

निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्षितः ॥

यः कश्चिन् मम निद्राया भंगं कुर्याद् सुरोत्तमाः ।

स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा ॥

स्वापं यातं यो मध्ये तु बोधयेत्त्वामचेतनः ।

स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥

''तब परिश्रम से थके राजा ने निद्रा को ही वर के रूप में चुन लिया। उन्होंने कहा, ''हे देवताओं में श्रेष्ठ! जो भी मेरी नींद में बाधा डाले वह तुरन्त जल कर राख हो जाये।'' देवताओं ने उत्तर दिया—''ऐसा ही हो'' और उनसे कहा, ''जो अविवेकी व्यक्ति आपको बीच में जगायेगा वह आपके देखने मात्र से तुरन्त जल कर राख हो जायेगा।''

यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः ।
आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥ २२॥

शब्दार्थ

यवने—जब यवन; भस्म-सात्—राख में; नीते—बदल गया; भगवान्—भगवान्; सात्वत—सात्वत वंशजाति का; ऋषभः—सबसे बड़ा वीर; आत्मानम्—स्वयं; दर्शयाम् आस—प्रकट किया; मुचुकुन्दाय—मुचुकुन्द के पास; धी-मते—बुद्धिमान।

जब यवन जल कर राख हो गया तो सात्वतों के प्रमुख भगवान् ने उस बुद्धिमान मुचुकुन्द के समक्ष अपने को प्रकट किया।

तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ २ ॥
चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ २४॥
प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ।
अपीव्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २५ ॥
पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ।
शङ्कितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आलोक्य—देखकर; घन—बादल की तरह; श्यामम्—गहरे नीले रंग के; पीत—पीला; कौशेय—रेशमी; वाससम्—वस्त्र; श्रीवत्स—श्रीवत्स चिह्न; वक्षसम्—वक्षस्थल पर; भ्राजत्—चमकीला; कौस्तुभेन—कौस्तुभ मणि से; विराजितम्—चमकता हुआ; चतुः-भुजम्—चार भुजाओं वाला; रोचमानम्—सुन्दर लगने वाला; वैजयन्त्या—वैजयन्ती नामक; च—तथा; मालया—फूल की माला से; चारु—आकर्षक; प्रसन्न—तथा शान्त; वदनम्—मुख; स्फुरत्—चमचमाती; मकर—मछली के आकार की; कुण्डलम्—कान की बालियाँ; प्रेक्षणीयम्—आँखों को आकृष्ट करने वाली; नृ-लोकस्य—मनुष्यों की; स—सहित; अनुराग—स्नेह; स्मित—मन्द हँसते हुए; ईक्षणम्—नेत्र या चितवन; अपीव्य—सुन्दर; वयसम्—जिसका तरुण स्वरूप; मत्त—क्रुद्ध; मृग-इन्द्र—सिंह की तरह; उदार—भद्र; विक्रमम्—चाल; पर्य-पृच्छत्—प्रश्न किया; महा-बुद्धिः—बुद्धिमान; तेजसा—तेज से; तस्य—उसका; धर्षितः—अभिभूत; शङ्कितः—शंकालु; शनकैः—धीरे धीरे; राजा—राजा ने; दुर्धर्षम्—अजेय; इव—निस्सन्देह; तेजसा—तेज से।

जब राजा मुचुकुन्द ने भगवान् की ओर निहारा तो देखा कि वे बादल के समान गहरे नीले रंग के थे, उनकी चार भुजाएँ थीं और वे रेशमी पीताम्बर पहने थे। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था और गले में चमचमाती कौस्तुभ मणि थी। वैजयन्ती माला से सज्जित भगवान् ने उसे अपना मनोहर शान्त मुख दिखलाया जो मछली की आकृति के कुण्डलों तथा स्नेहपूर्ण मन्द-हास से युक्त चितवन से सारे मनुष्यों की आँखों को आकृष्ट कर लेता है। उनके तरुण स्वरूप का सौन्दर्य अद्वितीय था और वे क्रुद्ध सिंह की भव्य चाल से चल रहे थे। अत्यन्त बुद्धिमान राजा भगवान् के तेज से अभिभूत हो गया। यह तेज उसे दुर्धर्ष जान पड़ा। अपनी

अनिश्चयता व्यक्त करते हुए मुचुकुन्द ने झिझकते हुए भगवान् कृष्ण से इस प्रकार पूछा।

तात्पर्य : यह महत्त्व की बात है कि श्लोक २४ में भगवान् को *चतुर्भुजं रोचमानम्* कहा गया है। "भगवान् को अपने सुन्दर चतुर्भुज रूप में देखा गया" इस महान् ग्रंथ-भर में भगवान् कृष्ण अपने विविध दिव्य रूपों को प्रकट करते दिखते हैं जिनमें से कृष्ण का द्विभुज रूप और नारायण या विष्णु का चतुर्भुज रूप मुख्य हैं। इस तरह इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि कृष्ण तथा विष्णु अभिन्न हैं या कि कृष्ण ही भगवान् के आदि-रूप हैं। कभी कभी ये बातें ठीक से समझ में नहीं आतीं किन्तु महान् आचार्यों ने जो कि आध्यात्मिक विज्ञान में पटु हैं, हमारे लिए यह विषय स्पष्ट कर दिया है। ईश्वर अपने आदि-रूप में न केवल स्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं या कि बद्धजीवों को दण्ड देने वाले हैं अपितु वे अपार सुन्दर हैं और अपने धाम में अपने अधिकार का भोग करते हैं। यह उन्हीं कृष्ण का रूप है, जो हमारे हड़बड़ाहट भरे संसार के पालन हेतु अपना विस्तार विष्णु रूप में करते हैं।

श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि शब्द *शङ्कितः* "कुछ संशय रखते हुए" यह सूचित करता है कि मुचुकुन्द सोच रहा था, "क्या सचमुच यही भगवान् हैं?" अगले श्लोकों में वह अपनी बात स्पष्ट रूप से कहता है।

श्रीमुचुकुन्द उवाच
को भवानिह सम्प्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥ २७॥

शब्दार्थ

श्री-मुचुकुन्दः उवाच—श्री मुचुकुन्द ने कहा; कः—कौन हैं; भवान्—आप; इह—यहाँ; सम्प्राप्तः—(मेरे साथ) पधारे हुए; विपिने—जंगल में; गिरि-गह्वरे—पर्वत की गुफा में; पद्भ्याम्—अपने पाँव से; पद्म—कमल के; पलाशाभ्याम्—पंखड़ियों (की तरह); विचरसि—घूम रहे हो; उरु-कण्टके—काँटों से भरे हुए।

श्री मुचुकुन्द ने कहा, "आप कौन हैं, जो जंगल में इस पर्वत-गुफा में अपने कमल की पंखड़ियों जैसे कोमल पाँवों से कँटीली भूमि पर चलकर आये हैं?"

किं स्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः ।
सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालो परोऽपि वा ॥ २८॥

शब्दार्थ

किम् स्वित्—शायद; तेजस्विनाम्—सारे शक्तिशाली जीवों में; तेजः—आदि रूप; भगवान्—शक्तिशाली प्रभु; वा—अथवा; विभावसुः—अग्नि देवता; सूर्यः—सूर्यदेव; सोमः—चन्द्रदेव; महा-इन्द्रः—स्वर्ग का राजा इन्द्र; व—अथवा; लोक—लोक का; पालः—शासक; अपरः—दूसरा; अपि वा—या फिर।

शायद आप समस्त शक्तिशाली जीवों की शक्ति हैं। या फिर आप शक्तिशाली अग्नि देव या सूर्यदेव, चन्द्रदेव, स्वर्ग के राजा इन्द्र या अन्य किसी लोक के शासन करने वाले देवता तो नहीं हैं?

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ।
यद्बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

मन्ये—मानता हूँ; त्वाम्—तुमको; देव-देवानाम्—देवताओं के प्रमुख के; त्रयाणाम्—तीनों (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव); पुरुष—पुरुषों के; ऋषभम्—सबसे बड़ा; यत्—क्योंकि; बाधसे—भगा देते हो; गुह—गुफा का; ध्वान्तम्—अँधेरा; प्रदीपः—दीपक; प्रभया—अपने प्रकाश से; यथा—जिस तरह।

मेरे विचार से आप तीन प्रमुख देवताओं में भगवान् हैं क्योंकि आप इस गुफा के अँधेरे को उसी तरह भगा रहे हैं जिस तरह दीपक अपने प्रकाश से अँधकार को दूर कर देता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि भगवान् कृष्ण ने अपने तेज से न केवल पर्वत की गुफा का अंधकार दूर किया अपितु मुचुकुन्द के हृदय के अंधकार को भी दूर किया। संस्कृत में कभी कभी हृदय को *गुहा* अर्थात् एक गहरा गुप्त स्थान कहा जाता है।

शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ।
स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥ ० ॥

शब्दार्थ

शुश्रूषताम्—सुनने के इच्छुक लोगों को; अव्यलीकम्—सही सही; अस्माकम्—हमको; नर—मनुष्यों में; पुम्-गव—हे अत्यन्त प्रसिद्ध; स्व—अपना; जन्म—जन्म; कर्म—कार्य; गोत्रम्—वंश परम्परा; वा—अथवा; कथ्यताम्—कहने की कृपा करें; यदि—यदि; रोचते—अच्छा लगे।

हे पुरुषोत्तम यदि आपको ठीक लगे तो आप अपने जन्म, कर्म तथा गोत्र के विषय में हमसे सही सही (स्पष्ट) बतलायें क्योंकि हम सुनने के इच्छुक हैं।

तात्पर्य : जब भगवान् इस संसार में अवतरित होते हैं, तो वे निश्चय ही *नरपुंगव* अर्थात् मानव समाज के सर्वाधिक उत्कृष्ट सदस्य बन जाते हैं। भगवान् वास्तविक रूप में मनुष्य नहीं हैं और मुचुकुन्द के प्रश्नों से इस बात का स्पष्टीकरण हो जायेगा। इसी तरह *शुश्रूषताम्* "हमें जो सुनने के उत्सुक हैं" शब्द सूचित करता है कि मुचुकुन्द अपने तथा अन्यों के लाभ के लिए एक उत्तम विधि द्वारा पूछ रहा

है।

वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ।
मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥ १ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; तु—दूसरी ओर; पुरुष—पुरुषों में; व्याघ्र—हे बाघ; ऐक्ष्वाकाः—इक्ष्वाकु वंशी; क्षत्र—क्षत्रियों के; बन्धवः—परिवार के सदस्य; मुचुकुन्दः—मुचुकुन्द; इति—इस प्रकार; प्रोक्तः—कहागया; यौवनाश्व—यौवनाश्व (युवनाश्व का पुत्र) का; आत्म-जः—पुत्र; प्रभो—हे प्रभु।

हे पुरुष-व्याघ्र, जहाँ तक हमारी बात है, हम तो पतित क्षत्रियों के वंश से सम्बन्धित हैं और राजा इक्ष्वाकु के वंशज हैं। हे प्रभु, मेरा नाम मुचुकुन्द है और मैं युवनाश्व का पुत्र हूँ।

तात्पर्य : वैदिक संस्कृति में यह सामान्य नियम है कि क्षत्रिय अपना परिचय विनयपूर्वक *क्षत्र-बन्धु* के रूप में देगा—जिसका अर्थ है क्षत्रिय कुल का केवल एक सम्बन्धी या दूसरे शब्दों में पतित क्षत्रिय। प्राचीन वैदिक संस्कृति में अपने परिवार-सम्बन्धों के आधार पर विशिष्ट पद का दावा करना स्वयं में पतितावस्था का सूचक था। क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों को उनके कर्म तथा चरित्र के गुणों के आधार पर पद प्रदान किया जाना होता था। परन्तु जब भारत में जाति प्रथा का पतन हो गया तो लोग बड़े गर्व से अपने को क्षत्रियों या ब्राह्मणों के सम्बन्धी बतलाने लगे यद्यपि भूतकाल में ठोस योग्यताओं के बिना ऐसा दावा पतितावस्था का सूचक था।

चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयापहतेन्द्रियः ।
शयेऽस्मिन्विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ २ ॥

शब्दार्थ

चिर—दीर्घकाल से; प्रजागर—जगे रहने से; श्रान्तः—थका हुआ; निद्रया—नींद से; अपहत—आच्छादित; इन्द्रियः—मेरी इन्द्रियाँ; शये—मैं लेटा रहा हूँ; अस्मिन्—इस; विजने—निर्जन स्थान में; कामम्—इच्छानुसार; केन अपि—किसी के द्वारा; उत्थापितः—जगाया गया; अधुना—अब।

दीर्घकाल तक जागे रहने के कारण मैं थक गया था और नींद से मेरी इन्द्रियाँ वशीभूत थीं। इस तरह मैं तब से इस निर्जन स्थान में सुखपूर्वक सोता रहा हूँ किन्तु अब जाकर किसी ने मुझे जगा दिया है।

सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ।
अनन्तरं भवान्श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशासनः ॥ ॥

शब्दार्थ

सः अपि—यही व्यक्ति; भस्मी-कृतः—राख हुआ; नूनम्—निस्सन्देह; आत्मीयेन—अपने ही; एव—एकमात्र; पाप्मना—पापपूर्ण कर्म से; अनन्तरम्—तुरन्त बाद; भवान्—आप; श्रीमान्—यशस्वी; लक्षितः—देखा गया; अमित्र—शत्रुओं का; शासनः—दण्ड देने वाला।

जिस व्यक्ति ने मुझे जगाया था वह अपने पापों के फल से जल कर राख हो गया। तभी मैंने यशस्वी स्वरूप वाले एवं अपने शत्रुओं को दण्ड देने की शक्ति से सामर्थ्यवान आपको देखा।

तात्पर्य : कालयवन ने अपने को श्रीकृष्ण का तथा यदुवंश का शत्रु घोषित किया था। श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द के माध्यम से उस मूर्ख बर्बर के विरोध को नष्ट कर दिया।

तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ।
हतौजसा महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

तेजसा—तेज के कारण; ते—तुम्हारे; अविषह्येण—असह्य; भूरि—अधिक; द्रष्टुम्—देख पाना; न शक्नुमः—हम समर्थ नहीं हैं; हत—घटा हुआ; ओजसा—अपने ओज से; महा-भग—हे परम ऐश्वर्यवान; माननीयः—सम्मान पाने के योग्य; असि—हो; देहिनम्—देहधारी जीवों द्वारा।

आपके असह्य तेज से हमारी शक्ति दबी जाती है और हम आप पर अपनी दृष्टि स्थिर नहीं कर पाते। हे माननीय, आप समस्त देहधारियों द्वारा आदर किये जाने के योग्य हैं।

एवं सम्भाषितो राज्ञा भगवान्भूतभावनः ।
प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ५॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सम्भाषितः—कहा गया; राज्ञा—राजा द्वारा; भगवान्—भगवान् ने; भूत—समस्त सृष्टि के; भावनः—उद्गम; प्रत्याह—उत्तर दिया; प्रहसन्—हँसते हुए; वाण्या—शब्दों से; मेघ—बादलों की; नाद—गड़गड़ाहट की तरह; गभीरया—गम्भीर।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा]: राजा द्वारा इस तरह कहे जाने पर समस्त सृष्टि के उद्गम भगवान् मुसकराने लगे और तब उन्होंने बादलों की गर्जना के सदृश गम्भीर वाणी में उसे उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच
जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ।
न शक्यन्तेऽनुसङ्ख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥ ६॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; जन्म—जन्म; कर्म—कार्य; अभिधानानि—तथा नाम; सन्ति—हैं; मे—मेरे; अङ्ग—हे प्रिय; सहस्रशः—हजारों; न शक्यन्ते—वे नहीं हो सकते; अनुसङ्ख्यातुम्—गिने जाना; अनन्तत्वात्—अन्त न होने से; मया—मेरे द्वारा; अपि हि—भी।

भगवान् ने कहा : हे मित्र, मैं हजारों जन्म ले चुका हूँ; हजारों जीवन जी चुका हूँ; और हजारों नाम धारण कर चुका हूँ। वस्तुतः मेरे जन्म, कर्म तथा नाम अनन्त हैं, यहाँ तक कि मैं भी उनकी गणना नहीं कर सकता।

क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ७॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; रजांसि—धूल के कण; विममे—गिन सकता है; पार्थिवानि—पृथ्वी पर; उरु-जन्मभिः—अनेक जन्मों में; गुण—गुण; कर्म—कार्यकलाप; अभिधानानि—तथा नाम; न—नहीं; मे—मेरे; जन्मानि—अनेक जन्म; कर्हिचित्—कभी।

यह सम्भव है कि कोई व्यक्ति पृथ्वी पर धूल-कणों की गणना कई जन्मों में कर ले किन्तु मेरे गुणों, कर्मों, नामों तथा जन्मों की गणना कोई भी कभी पूरी नहीं कर सकता।

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ।
अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥ ८॥

शब्दार्थ

काल—समय का; त्रय—तीन अवस्थाओं (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) में; उपपन्नानि—घटित होना; जन्म—जन्म; कर्माणि—तथा कर्म; मे—मेरे; नृप—हे राजा (मुचुकुन्द); अनुक्रमन्तः—गिनती करते हुए; न—नहीं; एव—तनिक भी; अन्तम्—अन्त; गच्छन्ति—पहुँचते हैं; परम—महानतम; ऋषयः—ऋषिगण।

हे राजन्, बड़े से बड़े ऋषि मेरे उन जन्मों तथा कर्मों की गणना करते रहते हैं, जो काल की तीनों अवस्थाओं में घटित होते हैं किन्तु वे कभी उसका अन्त नहीं पाते।

तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृनुष्व गदतो मम ।
विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराहं धर्मगुप्तये ।
भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥ ९॥
अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ।
वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥ ४०॥

शब्दार्थ

तथा अपि—फिर भी; अद्यतनानि—वर्तमान; अङ्ग—हे मित्र; शृणुष्व—सुनो; गदतः—मेरे द्वारा कहा गया; मम—मुझसे; विज्ञापितः—प्रार्थना किया जाकर; विरिञ्चेन—ब्रह्मा द्वारा; पुरा—भूतकाल में; अहम्—मैं; धर्म—धर्म की; गुप्तये—रक्षा करने के लिए; भूमेः—पृथ्वी के लिए; भारायमाणानाम्—भार स्वरूप; असुराणाम्—असुरों के; क्षयाय—विनाश के लिए; च—

तथा; अवतीर्णः—अवतरित; यदु—यदु के; कुले—वंश में; गृहे—घर में; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के; वदन्ति—लोग कहकर पुकारते हैं; वासुदेवः इति—वासुदेव नाम से; वसुदेव-सुतम्—वसुदेव के पुत्र को; हि—निस्सन्देह; माम्—मुझे।

तो भी हे मित्र, मैं अपने इस (वर्तमान) जन्म, नाम तथा कर्म के विषय में तुम्हें बतलाऊँगा। कृपया सुनो। कुछ काल पूर्व ब्रह्मा ने मुझसे धर्म की रक्षा करने तथा पृथ्वी के भारस्वरूप असुरों का संहार करने की प्रार्थना की थी। इस तरह मैंने यदुवंश में आनकदुन्दुभि के घर अवतार लिया। चूँकि मैं वसुदेव का पुत्र हूँ इसलिए लोग मुझे वासुदेव कहते हैं।

कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्द्विषः ।
अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कालनेमिः—कालनेमि असुर; हतः—मारा गया; कंसः—कंस; प्रलम्ब—प्रलम्ब; आद्याः—इत्यादि; च—भी; सत्—पुण्यात्मा लोगों का; द्विषः—ईर्ष्यालु; अयम्—यह; च—तथा; यवनः—यवन; दग्धः—जला हुआ; राजन्—हे राजा; ते—तुम्हारी; तिग्म—तेज, तीक्ष्ण; चक्षुषा—चितवन से।

मैंने कालनेमि का वध किया है, जो कंस रूप में फिर से जन्मा था। साथ ही मैंने प्रलम्ब तथा पुण्यात्मा लोगों के अन्य शत्रुओं का भी संहार किया है। और अब हे राजन्, यह बर्बर तुम्हारी तीक्ष्ण चितवन से जल कर भस्म हो गया है।

सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ।
प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाहं भक्तवत्सलः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—वही पुरुष; अहम्—मैं; तव—तुम्हारे; अनुग्रह—अनुग्रह; अर्थम्—के लिए; गुहाम्—गुफा में; एताम्—इस; उपागतः—आया हुआ; प्रार्थितः—के लिए प्रार्थना किया गया; प्रचुरम्—अत्यधिक; पूर्वम्—पहले; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अहम्—मैं; भक्त—अपने भक्तों का; वत्सलः—स्नेही।

चूँकि भूतकाल में तुमने मुझसे बारम्बार प्रार्थना की थी इसलिए मैं स्वयं तुम पर अनुग्रह दर्शाने के लिए इस गुफा में आया हूँ, क्योंकि मैं अपने भक्तों के प्रति वत्सल रहता हूँ।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि मुचुकुन्द भगवान् का भक्त था। उसने भगवान् का सान्निध्य पाने के लिए प्रार्थना की थी और अब श्रीकृष्ण ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया था।

वरान्वृणीष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते ।
मां प्रसन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

वरान्—वर; वृणीष्व—चुन लो; राज-ऋषे—हे राजर्षि; सर्वान्—समस्त; कामान्—इच्छित वस्तुएँ; ददामि—देता हूँ; ते—तुमको; माम्—मुझको; प्रसन्नः—प्रसन्न करके; जनः—व्यक्ति; कश्चित्—कोई; न भूयः—फिर नहीं; अर्हति—आवश्यकता होती है; शोचितुम्—शोक करने की।

हे राजर्षि, अब मुझसे कुछ वर ले लो। मैं तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूरी कर दूँगा। जो मुझे प्रसन्न कर लेता है, उसे फिर कभी शोक नहीं करना पड़ता।

तात्पर्य : आचार्यों का कहना है कि हम तभी शोक करते हैं जब हम अपूर्ण अनुभव करते हैं, जब हमारी कोई वस्तु खो जाती है या जब हम अभीष्ट प्राप्त नहीं कर पाते। जिसने कृष्ण को प्रसन्न कर लिया है और इस तरह से उनकी कृपा प्राप्त कर ली है, उसे इस तरह कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। भगवान् कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं और उन्हें इस दिव्य आनन्द को समस्त जीवों में बाँटने में सुख मिलता है। बस, हमें भगवान् के साथ सहयोग करने की आवश्यकता है।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ।
ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहे जाने पर; तम्—उनसे; प्रणम्य—प्रणाम करके; आह—कहा; मुचुकुन्दः—मुचुकुन्द ने; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; अन्वितः—पूरित; ज्ञात्वा—जानकर; नारायणम् देवम्—भगवान् नारायण के रूप में; गर्ग-वाक्यम्—गर्ग मुनि के वचन; अनुस्मरन्—स्मरण करते हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह सुनकर मुचुकुन्द ने भगवान् को प्रणाम किया। गर्ग मुनि के वचनों का स्मरण करते हुए उसने कृष्ण को भगवान् नारायण रूप में हर्षपूर्वक पहचान लिया। फिर राजा ने उनसे इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : यद्यपि यहाँ पर भगवान् चतुर्भुजी नारायण के रूप में प्रकट होते हैं किन्तु हम यह कह सकते हैं कि मुचुकुन्द श्रीकृष्ण को सम्बोधित कर रहा था। यह सब *कृष्णलीला* के प्रसंग में घटित हो रहा है। वैष्णवजन भलीभाँति अवगत हैं कि विष्णु या नारायण के चतुर्भुजी रूप श्रीकृष्ण के अंश होते हैं। इस तरह भगवान् कृष्ण की लीलाओं के अन्तर्गत *विष्णुलीला* भी प्रकट हो सकती है। भगवान् के ऐसे हैं गुण तथा कर्म। जो कार्य हमारे लिए असामान्य तथा असम्भव तक हो सकते हैं, वे भगवान् के लिए सामान्य और परिश्रम-रहित लीला विलास हैं।

श्रील श्रीधर स्वामी सूचित करते हैं कि मुचुकुन्द प्राचीन गर्ग मुनि की इस भविष्यवाणी से अवगत था कि भगवान् अट्ठाइसवें युग में अवतरित होंगे। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार गर्ग मुनि ने मुचुकुन्द

को यह भी बतलाया था कि तुम भगवान् का दर्शन करोगे। अब यही सब घटित हो रहा था।

श्रीमुचुकुन्द उवाच
विमोहितोऽयं जन ईश मायया
त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ।
सुखाय दु:खप्रभवेषु सज्जते
गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चित: ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-मुचुकुन्द: उवाच—श्री मुचुकुन्द ने कहा; विमोहित:—मोहग्रस्त; अयम्—यह; जन:—व्यक्ति; ईश—हे प्रभु; मायया—माया द्वारा; त्वदीयया—आपकी; त्वाम्—आपको; न भजति—नहीं पूजता; अनर्थ-दृक्—असली लाभ न देखते हुए; सुखाय—सुख के लिए; दु:ख—दुख; प्रभवेषु—उत्पन्न करने वाली वस्तुओं में; सज्जते—फँस जाता है; गृहेषु—पारिवारिक मामलों में; योषित्—स्त्री; पुरुष:—पुरुष; च—तथा; वञ्चित:—ठगे गये।

श्री मुचुकुन्द ने कहा : हे प्रभु, इस जगत के सभी स्त्री-पुरुष आपकी मायाशक्ति के द्वारा मोहग्रस्त हैं। वे अपने असली लाभ से अनजान रहते हुए आपको न पूजकर अपने को कष्टों के मूल स्त्रोत अर्थात् पारिवारिक मामलों में फँसाकर सुख की तलाश करते हैं।

तात्पर्य : मुचुकुन्द तुरन्त स्पष्ट कर देते हैं कि वे भगवान् से कोई भौतिक वर नहीं माँगने जा रहे। वे उन लोगों से आध्यात्मिक स्तर पर बहुत आगे समुन्नत थे, जो सभी तरह के भौतिक लाभों के लिए धर्म का दुरुपयोग करने का प्रयास करते हैं। *अर्थ* शब्द का मतलब है मूल्य और इस शब्द का विलोम शब्द *अनर्थ* है, जिसका अर्थ है "मूल्यरहित या निरर्थक।" अत: *अनर्थ-दृक्* उन लोगों का सूचक है जिनकी दृष्टि व्यर्थ की वस्तुओं में लगी रहती है और जिन्होंने समझा ही नहीं कि वास्तव में *अर्थ* क्या है। हर चमकने वाली वस्तु सोना नहीं होती। यहाँ पर मुचुकुन्द बलपूर्वक कहता है कि हमें शारीरिक सम्बन्ध रूपी मूर्ख के सोने में अपने को उलझाकर अपने आध्यात्मिक अवसरों को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। हम तो भगवान् से प्रेम करने हेतु निमित्त हैं।

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-
र्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशु: ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

लब्ध्वा—प्राप्त करके; जन:—व्यक्ति; दुर्लभम्—दुर्लभ; अत्र—इस संसार में; मानुषम्—मनुष्य जीवन; कथञ्चित्—किसी न किसी तरह से; अव्यङ्गम्—बिना प्रयास के; अयत्नत:—स्वत: प्राप्त; अनघ—हे निष्पाप; पाद—आपके पाँव; अरविन्दम्—

कमल सदृश; न भजति—नहीं पूजा करता; असत्—अशुद्ध; मतिः—मानसिकता; गृह—घर के; अन्ध—अन्धा; कूपे—कुएँ में; पतितः—गिरा हुआ; यथा—जिस तरह; पशुः—कोई पशु।

उस मनुष्य का मन अशुद्ध होता है, जो अत्यन्त दुर्लभ एवं अत्यन्त विकसित मनुष्य-जीवन के येन-केन-प्रकारेण स्वतः प्राप्त होने पर भी आपके चरणकमलों की पूजा नहीं करता। ऐसा व्यक्ति अंधे कुएँ में गिरे हुए पशु के समान, भौतिक घरबार रूपी अंधकार में गिर जाता है।

तात्पर्य : हमारा असली घर तो भगवद्धाम है। अपने भौतिक घर में रहते रहने के हमारे दृढ़ संकल्प के बावजूद काल हमें भौतिक कार्यकलाप के मंच से अभद्रता से निकाल बाहर कर देता है। घर पर रहना बुरा नहीं है, न ही अपने प्रियजनों के साथ अनुराग बढ़ाना ही बुरा है। किन्तु हमें यह समझना चाहिए कि हमारा असली घर शाश्वत है और वह वैकुण्ठ में है।

अयत्नतः शब्द इंगित करता है कि हमें मनुष्य जीवन स्वतः प्राप्त हुआ है। हमने अपने मनुष्य शरीर को बनाया नहीं इसलिए मूर्खतावश यह दावा नहीं करना चाहिए कि "यह शरीर मेरा है।" मनुष्य जीवन तो ईश्वरीय उपहार है और इसका उपयोग ईश-भावनामृत की सिद्धि प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए। जो इसे नहीं समझता वह *असन्-मति* है अर्थात् मन्द संसारी बुद्धि वाला है।

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो
राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ।
मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभू-
ष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥ ४७॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; एषः—यह; कालः—समय; अजित—हे अजेय; निष्फलः—व्यर्थ; गतः—अब व्यतीत हुआ; राज्य—राज्य; श्रिया—तथा ऐश्वर्य से; उन्नद्ध—बनाया गया; मदस्य—नशा; भूपतेः—पृथ्वी के राजा का; मर्त्य—मर्त्य शरीर; आत्म—आत्मा के रूप में; बुद्धेः—बुद्धि का; सुत—सन्तान; दार—पत्नियाँ; कोश—खजाना; भूषु—तथा भूमि में; आसज्जमानस्य—आसक्त होकर; दुरन्त—अन्तहीन; चिन्तया—चिन्ता से।

हे अजित, मैंने पृथ्वी के राजा के रूप में अपने राज्य तथा वैभव के मद में अधिकाधिक उन्मक्त होकर सारा समय गँवा दिया है। मर्त्य शरीर को आत्मा मानते हुए तथा संतानों, पत्नियों, खजाना तथा भूमि में आसक्त होकर मैंने अनन्त क्लेश भोगा है।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में मूल्यवान मनुष्य-जीवन को संसारी कार्यों में व्यर्थ ही गँवाने वालों की निन्दा करने के बाद मुचुकुन्द अब यह स्वीकार करता है कि वह स्वयं इसी श्रेणी में आता है। वह भगवान् की संगति का बुद्धिमत्ता से लाभ उठाना चाहता है और सदा सदा के लिए शुद्ध भक्त बन जाना

चाहता है।

कलेवरेऽस्मिन्घटकुड्यसन्निभे
निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ।
वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपै-
र्गां पर्यटंस्त्वागणयन्सुदुर्मदः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

कलेवरे—शरीर में; अस्मिन्—इस; घट—घड़ा; कुड्य—या दीवाल; सन्निभे—के सदृश; निरूढ—बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित; मानः—जिसकी झूठी पहचान; नर-देवः—मनुष्यों में देवता (राजा); इति—इस प्रकार (अपने बारे में समझकर); अहम्—मैं; वृतः—घिरा हुआ; रथ—रथों; इभ—हाथियों; अश्व—घोड़ों; पदाति—पैदल सैनिकों; अनीकपैः—तथा सेनापतियों से; गाम्—पृथ्वी की; पर्यटन्—यात्रा करते हुए; त्वा—तुम; अगणयन्—ठीक से न मानते हुए; सु-दुर्मदः—गर्व से प्रवंचित।

अत्यन्त गर्वित होकर मैंने अपने को शरीर मान लिया था, जो घड़े या दीवाल जैसी एक भौतिक वस्तु है। अपने को मनुष्यों में देवता समझ कर मैंने अपने सारथियों, हाथियों, अश्वारोहियों, पैदल सैनिकों तथा सेनापतियों से घिरकर और अपने प्रवंचित गर्व के कारण आपकी अवमानना करते हुए पृथ्वी भर में विचरण किया।

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया
प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे
क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

प्रमत्तम्—पूर्णतया ठगा हुआ; उच्चैः—विस्तृत; इति-कृत्य—करणीय; चिन्तया—विचार से; प्रवृद्ध—बढ़ा हुआ; लोभम्—लालच; विषयेषु—इन्द्रिय विषयों के लिए; लालसम्—लालसा; त्वम्—आप; अप्रमत्तः—जो मोहग्रस्त नहीं है; सहसा—एकाएक; अभिपद्यसे—मुठभेड़ होती है; क्षुत्—प्यास से; लेलिहानः—अपने विषैले दाँतों को चाटता हुआ; अहिः—सर्प; इव—सदृश; आखुम्—चूहे को; अन्तकः—मृत्यु।

करणीय के विचारों में लीन, अत्यन्त लोभी तथा इन्द्रिय-भोग से प्रसन्न रहने वाले मनुष्य का सदा सतर्क रहने वाले आपसे अचानक सामना होता है। जैसे भूखा साँप चूहे के आगे अपने विषैले दाँतों को चाटता है उसी तरह आप उसके समक्ष मृत्यु के रूप में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : हमें यहाँ पर *प्रमत्तम्* तथा *अप्रमत्तः* शब्दों के अन्तर पर ध्यान देना होगा। जो लोग भौतिक जगत का शोषण करना चाहते हैं, वे *प्रमत्त* अर्थात् "ठगे हुए, मोहग्रस्त, इच्छा से मदान्ध।" किन्तु भगवान् *अप्रमत्त*-हैं "सतर्क, गम्भीर तथा मोह रहित।" भले ही अपनी प्रमत्तता में हम ईश्वर या उनके नियमों को न मानें किन्तु ईश्वर गम्भीर हैं और हमें अपने कर्मों के गुणों के अनुसार पुरस्कृत या

दण्डित करने से नहीं चूकेंगे।

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्
मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ।
स एव कालेन दुरत्ययेन ते
कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥५०॥

शब्दार्थ

पुरा—इससे पहले; रथैः—रथों पर; हेम—सोने से; परिष्कृतैः—सजाये; चरन्—आरूढ़ होकर; मतम्—भयानक; गजैः—हाथियों पर; वा—अथवा; नर-देव—राजा; संज्ञितः—नामक; सः—वह; एव—वही; कालेन—काल के द्वारा; दुरत्ययेन—न बच पाने वाले; ते—तुम्हारा; कलेवरः—शरीर; विट्—मल; कृमि—कीड़े-मकोड़े; भस्म—राख; संज्ञितः—नामक।

जो शरीर पहले भयानक हाथियों या सोने से सजाये हुए रथों पर सवार होता है और 'राजा' के नाम से जाना जाता है, वही बाद में आपकी अजेय काल-शक्ति से मल, कृमि या भस्म कहलाता है।

तात्पर्य : संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य विकसित राष्ट्रों में मृत शरीर स्वच्छ ढंग से प्रसाधनों का लेप करके ठिकाने लगाये जाते हैं, किन्तु संसार के अनेक भागों में वृद्ध, रुग्ण तथा दुर्घटनाग्रस्त लोग एकान्त में या उपेक्षित स्थानों में मर जाते हैं, जहाँ कुत्ते तथा सियार उनके शरीरों को खाकर मल में परिणत कर देते हैं। यदि कोई इतना भाग्यशाली होता है कि उसके शरीर को भूमि में दफनाया जाता है, तो छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े उस शरीर को खा जाते हैं। इसी तरह अनेक पार्थिव शव जलाकर भस्मीभूत कर दिये जाते हैं। हर तरह से मृत्यु निश्चित है और अन्ततः शरीर का भाग्य कभी यशस्वी नहीं है। यही मुचुकुन्द के कथन का वास्तविक तात्पर्य है—अर्थात् जो शरीर अभी राजा, राजकुमार, रूपमती रानी, उच्च-मध्य वर्ग इत्यादि कहलाता है, वह अन्ततोगत्वा मल, कृमि तथा राख कहलाता है।

श्रील श्रीधर स्वामी ने निम्नलिखित वैदिक वाक्य उद्धृत किया है—

योनेः सहस्राणि बहूनि गत्वा
दुःखेन लब्ध्वापि च मानुषत्वम्।
सुखावहं ये न भजन्ति विष्णुं
ते वै मनुष्यात्मनि शत्रुभूताः ॥

"हजारों योनियों से गुजरते हुए तथा अत्यधिक संघर्ष करते हुए बद्धजीव अन्त में मनुष्य रूप प्राप्त

करते हैं। अत: वे मनुष्य जो अब भी उन विष्णु की पूजा नहीं करते जो उन्हें असली सुख प्रदान करने वाले हैं, वे निश्चित रूप से अपने आपके तथा मानवता के शत्रु बने हुए हैं।''

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो
वरासनस्थ: समराजवन्दित: ।
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां
क्रीडामृग: पूरुष ईश नीयते ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

निर्जित्य—जीत कर; दिक्—दिशाओं के; चक्रम्—पूरे चक्कर के; अभूत—न रहने पर; विग्रह:—लड़ाई, संघर्ष; वर-आसन—उत्तम सिंहासन पर; स्थ:—आसीन; सम—समान; राज—राजाओं से; वन्दित:—प्रशंसित; गृहेषु—घरों में; मैथुन्य—संभोग; सुखेषु—सुख में; योषिताम्—स्त्रियों के; क्रीडा-मृग:—पालतू पशु; पुरुष:—पुरुष; ईश—हे प्रभु; नीयते—ले जाया जाता है।.

समस्त दिग-दिगान्तरों को जीत कर और इस तरह लड़ाई से मुक्त होकर मनुष्य भव्य राज सिंहासन पर आसीन होता है और अपने उन नायको से प्रशंसित होता है, जो किसी समय उसके बराबर थे। किन्तु जब वह स्त्रियों के कक्ष में प्रवेश करता है जहाँ संभोग-सुख पाया जाता है, तो हे प्रभु, वह पालतू पशु की तरह हाँका जाता है।

करोति कर्माणि तप:सुनिष्ठितो
निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् ।
पुनश्च भूयासमहं स्वराडिति
प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

करोति—करता है; कर्माणि—कर्तव्य; तप:—तपस्या; सु-निष्ठित:—अत्यन्त स्थिर; निवृत्त—बचाते हुए; भोग:—इन्द्रिय भोग; तत्—उस (पद) से; अपेक्षया—तुलना में; अददत्—मानते हुए; पुन:—आगे; च—तथा; भूयासम्—अधिक बड़ा; अहम्—मैं; स्व-राट्—सम्राट, एकछत्र शासक; इति—इस प्रकार सोचते हुए; प्रवृद्ध—बढ़ी हुई; तर्ष:—वेग, तृष्णा; न—नहीं; सुखाय—सुख; कल्पते—प्राप्त कर सकता है।.

जो राजा पहले से प्राप्त शक्ति से भी और अधिक शक्ति (अधिकार) की कामना करता है, वह तपस्या करके तथा इन्द्रिय-भोग का परित्याग करके कठोरता से अपने कर्तव्य पूरा करता है। किन्तु जिसके वेग (तृष्णाएँ) यह सोचते हुए कि ''मैं स्वतंत्र तथा सर्वोच्च हूँ,'' इतने प्रबल हैं, वह कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-

ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

भव—अस्तित्व का; अपवर्गः—समाप्ति; भ्रमतः—घूमने वाला; यदा—जब; भवेत्—होता है; जनस्य—मनुष्य के लिए; तर्हि—उस समय; अच्युत—हे अच्युत; सत्—साधु-भक्तों की; समागमः—संगति; सत्-सण्गमः—साधु-संगति; यर्हि—जब; तदा—तब; एव—केवल; सत्—सन्तों का; गतौ—लक्ष्य है, जो; पर—श्रेष्ठ का (जगत के कारण); अवर—तथा निकृष्ट (कार्य); ईशे—भगवान् में; त्वयि—तुम; जायते—उत्पन्न होती है; मतिः—भक्ति।

हे अच्युत, जब भ्रमणशील आत्मा (जीव) का भौतिक जीवन समाप्त हो जाता है, तो वह आपके भक्तों की संगति प्राप्त कर सकता है। और जब वह उनकी संगति करता है, तो भक्तों के लक्ष्य और समस्त कारणों तथा उनके प्रभावों के स्वामी आपके प्रति उसमें भक्ति उत्पन्न होती है।

तात्पर्य : आचार्य जीव गोस्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती इस बात पर एकमत हैं कि यद्यपि यहाँ कहा गया है कि जब भौतिक जीवन का अन्त होता है, तो मनुष्य को भक्तों की संगति प्राप्त होती है किन्तु वस्तुतः भगवद्भक्तों की संगति से ही मनुष्य भवसागर को लाँघ सकता है। इस प्रतीत होने वाले विपर्यय के लिए श्रील जीव गोस्वामी *काव्यप्रकाश* का (.१५) उद्धरण देते हैं— *कार्यकारणयोश्च पौर्वापर्यविपर्ययो विज्ञेयातिशयोक्तिः स्यात् सा*—वह कथन जिसमें कार्य तथा कारण का तार्किक क्रम उलट जाता है उसे अतिशयोक्ति कहते हैं। इस कथन पर श्रील जीव गोस्वामी की टीका है—*कारणस्य शीघ्रकारितां वक्तुं कार्यस्य पूर्वमुक्तौ*—किसी कारण की त्वरित क्रिया को व्यक्त करने के लिए कारण के पूर्व फल पर बल दिया जा सकता है।

इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि भगवद्भक्तों की कृपापूर्ण संगति से कृष्णभावनाभावित होने का हमारा संकल्प संभव बनता है। और आचार्यगण श्रील जीव गोस्वामी से सहमत हैं कि इस श्लोक में *अतिशयोक्ति* है।

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो
राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ।
यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया
वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥ ५४॥

शब्दार्थ

मन्ये—मैं सोचता हूँ; मम—मुझ पर; अनुग्रहः—दया; ईश—हे प्रभु; ते—आपके द्वारा; कृतः—की गई; राज्य—साम्राज्य; अनुबन्ध—आसक्ति का; अपगमः—विलगाव; यदृच्छया—जहाँ की तहाँ; यः—जो; प्रार्थ्यते—के लिए प्रार्थना की जाती है;

साधुभिः—सन्तों द्वारा; एक-चर्यया—एकान्त में; वनम्—जंगल; विविक्षद्भिः—प्रवेश करने के इच्छुक; अखण्ड—असीम; भूमि—भूमि के; पैः—शासकों द्वारा।

हे प्रभु, मैं सोचता हूँ कि आपने मुझ पर कृपा की है क्योंकि आपने साम्राज्य के प्रति मेरी आसक्ति अपने आप समाप्त हो गई है। ऐसी मुक्ति (स्वतंत्रता) के लिए विशाल साम्राज्य के साधु शासकों द्वारा प्रार्थना की जाती है, जो एकान्त जीवन बिताने के लिए जंगल में जाना चाहते हैं।

न कामयेऽन्यं तव पादसेवना-
दकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे
वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

न कामये—मैं इच्छा नहीं करता; अन्यम्—दूसरी; तव—तुम्हारे; पाद—चरणों के; सेवनात्—सेवा के अतिरिक्त; अकिञ्चन—कुछ न चाहने वालों के द्वारा; प्रार्थ्य-तमात्—जो प्रार्थनीय हो; वरम्—वर; विभो—हे सर्वशक्तिमान; आराध्य—पूज्य; कः—कौन; त्वाम्—तुमको; हि—निस्सन्देह; अपवर्ग—मोक्ष का; दम्—प्रदाता; हरे—हे हरि; वृणीत—चुनेगा; आर्यः—श्रेष्ठ पुरुष; वरम्—वर; आत्म—अपना; बन्धनम्—बन्धन (का कारण)।

हे सर्वशक्तिमान, मैं आपके चरणकमलों की सेवा के अतिरिक्त और किसी वर की कामना नहीं करता क्योंकि यह वर उन लोगों के द्वारा उत्सुकतापूर्वक चाहा जाता है, जो भौतिक कामनाओं से मुक्त हैं। हे हरि! ऐसा कौन प्रबुद्ध व्यक्ति होगा जो मुक्तिदाता अर्थात् आपकी पूजा करते हुए ऐसा वर चुनेगा जो उसका ही बन्धन बने?

तात्पर्य : भगवान् ने मुचुकुन्द को मुँहमाँगा वर लेने को कहा किन्तु वे केवल भगवान् की कामना कर रहे थे। यह शुद्ध कृष्णभावनामृत है।

तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो
रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः ।
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं
त्वां ज्ञाप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; विसृज्य—त्यागकर; आशिषः—इच्छित वस्तुएँ; ईश—हे प्रभु; सर्वतः—नितान्त; रजः—रजो; तमः—तमो; सत्त्व—तथा सतो; गुण—भौतिक गुण; अनु-बन्धनाः—फँसा हुआ; निरञ्जनम्—भौतिक उपाधियों से मुक्त; निर्गुणम्—गुणों से परे; अद्वयम्—अद्वय; परम्—परम; त्वाम्—तुम्हारे पास; ज्ञाप्ति-मात्रम्—शुद्ध ज्ञान; पुरुषम्—आदि-पुरुष को; व्रजामि—पास आ रहा हूँ; अहम्-इ.

इसलिए हे प्रभु, उन समस्त भौतिक इच्छाओं को त्यागकर जो रजो, तमो तथा सतो गुणों से

बद्ध हैं, मैं शरण लेने के लिए आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्रार्थना कर रहा हूँ। आप संसारी उपाधियों से प्रच्छन्न नहीं हैं, प्रत्युत आप शुद्ध ज्ञान से पूर्ण तथा भौतिक गुणों से परे परम सत्य हैं।

तात्पर्य : यहाँ *निर्गुणम्* शब्द सूचित करता है कि भगवान् का अस्तित्व प्रकृति के गुणों से परे है। कोई यह तर्क कर सकता है कि कृष्ण का शरीर तो भौतिक प्रकृति से बना है किन्तु यहाँ पर *अद्वयम्* शब्द इस तर्क का खंडन करता है। कृष्ण के अस्तित्व में कोई द्वैत नहीं है। उनका नित्य आध्यात्मिक शरीर ही कृष्ण है और कृष्ण ईश्वर हैं।

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै-
रवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् ।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्म-
नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

चिरम्—दीर्घकाल से; इह—इस संसार में; वृजिन—उत्पातों द्वारा; आर्तः—दुखी; तप्यमानः—सताये; अनुतापैः—पश्चाताप से; अवितृष—अतृप्त; षट्—छः; अमित्रः—शत्रु (पाँच इन्द्रियाँ तथा मन); अलब्ध—न प्राप्त करते हुए; शान्तिः—शान्ति; कथञ्चित्—किसी तरह से; शरण—शरण का; द—हे देने वाले; समुपेतः—आने वाले; त्वत्—तुम्हारे; पद-अब्जम्—चरणकमल; पर-आत्मन्—हे परमात्मा; अभयम्—निर्भीक; ऋतम्—सत्य; अशोकम्—शोकरहित; पाहि—रक्षा करो; मा—मेरी; आपन्नम्—संकट से घिरा; ईश—हे प्रभु।

इतने दीर्घकाल से मैं इस जगत में कष्टों से पीड़ित होता रहा हूँ और शोक से जलता रहा हूँ। मेरे छह शत्रु कभी भी तृप्त नहीं होते और मुझे शान्ति नहीं मिल पाती। अतः हे शरणदाता, हे परमात्मा! मेरी रक्षा करें। हे प्रभु, सौभाग्य से इतने संकट के बीच मैं आपके चरणकमलों तक पहुँचा हूँ, जो सत्य रूप हैं और जो निर्भय तथा शोक-रहित बनाने वाले हैं।

श्रीभगवानुवाच
सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ।
वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; सार्वभौम—हे सम्राट; महा-राज—महान् राजा; मतिः—मन; ते—तुम्हारा; विमल—निष्कलंक; ऊर्जिता—शक्तिशाली; वरैः—वरों से; प्रलोभितस्य—प्रलोभन में फँसे, तुम्हारा; अपि—यद्यपि; न—नहीं; कामैः—भौतिक इच्छाओं द्वारा; विहता—विनष्ट; यतः—चूँकि।

भगवान् ने कहा : हे सम्राट, महान् राजा, तुम्हारा मन शुद्ध तथा सामर्थ्यवान है। यद्यपि मैंने

वरों के द्वारा तुम्हें प्रलोभित करना चाहा किन्तु तुम्हारा मन भौतिक इच्छाओं के वशीभूत नहीं हुआ।

प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ।
न धीरेकान्तभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

प्रलोभितः—प्रलोभन में आये; वरैः—वरों से; यत्—जो तथ्य; त्वम्—तुम; अप्रमादाय—मोह से मुक्त होने के लिए; विद्धि—जानो; तत्—वह; न—नहीं; धीः—बुद्धि; एकान्त—एकमात्र; भक्तानाम्—भक्तों के; आशीर्भिः—आशीर्वादों से; भिद्यते—विपथ होती है, भटकती है; क्वचित्—कभी।

यह जान लो कि मैं यह सिद्ध करने के लिए तुम्हें वरों से प्रलोभन दे रहा था कि तुम धोखा नहीं खा सकते। मेरे शुद्ध भक्त की बुद्धि कभी भी भौतिक आशीर्वादों से विपथ नहीं होती।

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ।
अक्षीणवासनं राजन्दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

युञ्जानानाम्—लगे रहने वाले का; अभक्तानाम्—अभक्तों का; प्राणायाम—प्राणायाम से; आदिभिः—इत्यादि से; मनः—मन; अक्षीण—निर्मूल नहीं हुई; वासनम्—वासना के अन्तिम अवशेष; राजन्—हे राजन् (मुचुकुन्द); दृश्यते—देखी जाती हैं; पुनः—फिर; उत्थितम्—जगती हुई (इन्द्रिय तृप्ति के विचारों के प्रति)।

ऐसे अभक्तगण जो प्राणायाम जैसे अभ्यासों में लगते हैं उनके मन भौतिक इच्छाओं से कभी विमल नहीं होते। इस तरह हे राजन्, उनके मन में भौतिक इच्छाएँ पुनः उठती हुई देखी गई हैं।

विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ।
अस्त्वेवं नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

विचरस्व—भ्रमण करो; महीम्—इस पृथ्वी पर; कामम्—इच्छानुसार; मयि—मुझमें; आवेशित—स्थिर; मानसः—तुम्हारा मन; अस्तु—होए; एवम्—इस प्रकार; नित्यदा—सदैव; तुभ्यम्—तुम्हारे लिए; भक्तिः—भक्ति; मयि—मुझमें; अनपायिनी—अविचल।

अपना मन मुझमें स्थिर करके तुम इच्छानुसार इस पृथ्वी पर विचरण करो। मुझमें तुम्हारी ऐसी अविचल भक्ति सदैव बनी रहे।

क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून्न्यवधीर्मृगयादिभिः ।
समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

क्षात्र—क्षत्रियों के; धर्म—धर्म में; स्थितः—स्थित; जन्तून्—जीवों को; न्यवधीः—तुमने मारा; मृगया—शिकार के समय; आदिभिः—तथा अन्य कार्यों से; समाहितः—पूर्णतया केन्द्रित; तत्—उस; तपसा—तपस्या से; जहि—समूल उखाड़ फेंको; अघम्—पापपूर्ण फल को; मत्—मुझमें; उपाश्रितः—शरण लिये हुए।

चूँकि तुमने क्षत्रिय के सिद्धान्तों का पालन किया है, अतः शिकार करते तथा अन्य कार्य सम्पन्न करते समय तुमने जीवों का वध किया है। तुम्हें चाहिए कि सावधानी के साथ तपस्या करते हुए तथा मेरे शरणागत रहते हुए इस तरह से किए हुए पापों को मिटा डालो।

जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ।
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

जन्मनि—जन्म में; अनन्तरे—इसके तुरन्त बाद; राजन्—हे राजन्; सर्व—सभी; भूत—जीवों का; सुहृत्-तमः—सर्वश्रेष्ठ शुभचिन्तक; भूत्वा—बनकर; द्विज-वरः—श्रेष्ठ ब्राह्मण; त्वम्—तुम; वै—निस्सन्देह; मम्—मेरे पास; उपैष्यसि—आओगे; केवलम्—एकमात्र।

हे राजन्, तुम अगले जीवन में श्रेष्ठ ब्राह्मण, समस्त जीवों के सर्वोत्तम शुभचिन्तक बनोगे और अवश्य ही मेरे पास आओगे।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (५.२९) में श्रीकृष्ण कहते हैं *सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति* मुझे सभी जीवों का शुभचिन्तक मित्र समझकर मनुष्य शान्ति प्राप्त करता है। भगवान् कृष्ण तथा उनके भक्त पतितात्माओं को मोह-सागर से उबारने के लिए साथ-साथ मिलकर काम करते हैं। यही असली तात्पर्य है कृष्णभावनामृत आन्दोलन का।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "मुचुकुन्द का उद्धार" नामक इक्यावनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बावन

भगवान् कृष्ण के लिए रुक्मिणी-संदेश

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह बलराम तथा कृष्ण मानो भयभीत होकर द्वारका चले गये। तब कृष्ण ने एक ब्राह्मण के मुख से रुक्मिणी का सन्देश सुना और उसे अपनी पत्नी बना लिया।

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दया दिखाये जाने पर राजा मुचुकुन्द ने उन्हें नमस्कार किया और उनकी प्रदक्षिणा की। तब राजा ने वह गुफा छोड़ दी और देखा कि जब से वह सोया था तब की अपेक्षा अब सारे मनुष्य, पेड़-पौधे एवं पशु छोटे हो गये हैं। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि कलियुग निकट है। इस तरह भौतिक संसार से विरक्त होकर राजा ने भगवान् श्रीहरि की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी।

श्रीकृष्ण मथुरा लौट आये जो अब भी बर्बरों की सेना से घिरा था। उन्होंने इस सेना को नष्ट किया, सारे सैनिकों की बहुमूल्य वस्तुएँ एकत्र कीं और द्वारका के लिए रवाना हो गये। तभी जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर वहाँ आ गया। बलराम तथा कृष्ण ने ऐसा अभिनय किया मानो वे डर गये हैं अत: वे अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ छोड़ कर दूर भाग गये। चूँकि जरासन्ध उनकी वास्तविक शक्ति नहीं जानता था अतएव उसने उनका पीछा किया। काफी दूर भाग आने के बाद राम तथा कृष्ण प्रवर्षण-पर्वत के समीप आये और उस पर चढ़ने लगे। जरासन्ध ने सोचा कि वे दोनों किसी गुफा में छिप गये हैं अतएव उनकी तलाश करने लगा। उन्हें न पाकर उसने पर्वत के चारों ओर आग लगा दी। जब पर्वत की ढलानों की वनस्पति जलने लगी तो कृष्ण तथा बलराम पर्वत की चोटी से कूद पड़े। जब वे जरासन्ध तथा उसके अनुयायियों की आँख बचाकर भूमि पर आ गये तो वे समुद्र के भीतर तैर रहे द्वारका के दुर्ग में लौट आये। जरासन्ध को विश्वास हो गया कि राम तथा कृष्ण अग्नि में जलकर राख हो गये हैं अत: वह सेना लेकर अपने राज्य वापस लौट गया।

इस विन्दु पर महाराज परीक्षित ने प्रश्न किया, तो श्रीशुकदेव गोस्वामी ने भगवान् श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी के विवाह की कथा कहनी प्रारम्भ की। विदर्भ के राजा भीष्मक की युवा पुत्री रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, बल तथा अन्य उत्तम गुणों के विषय में सुन रखा था इसलिए उसने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि वे उसके अनुरूप पति होंगे। भगवान् कृष्ण भी उससे विवाह करना चाहते थे। यद्यपि रुक्मिणी के अन्य सम्बन्धी उसके कृष्ण से विवाह से सहमत थे किन्तु उसका भाई रुक्मी कृष्ण से द्वेष रखता था इसलिए उसने इस विवाह का विरोध किया। रुक्मी अपनी बहन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था। रुक्मिणी अनमनी होकर वैवाहिक तैयारियों में लग गई किन्तु उसने एक विश्वस्त ब्राह्मण को एक पत्र देकर कृष्ण के पास भेज दिया।

जब यह ब्राह्मण द्वारका आया तो श्रीकृष्ण ने उसका भलीभाँति उचित पूजा तथा अन्य प्रकार से

सम्मानित करके आतिथ्य किया। फिर उस ब्राह्मण से आने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने रुक्मिणी का पत्र खोला और भगवान् कृष्ण को दिखलाया जिसे कृष्ण के दूत ने पढ़ा। रुक्मिणीदेवी ने लिखा था, ''हे स्वामी! जब से मैंने आपके विषय में सुना है तब से मैं आपके प्रति पूरी तरह से आकृष्ट हूँ। कृपया शिशुपाल के साथ मेरा विवाह होने के पूर्व अवश्य आयें और मुझे ले जाँय। कुलप्रथा के अनुसार मैं अपने विवाह के एक दिन पूर्व देवी अम्बिका का दर्शन करने जाऊँगी। आपके प्रकट होने और आसानी से मेरे अपहरण का यही अवसर सबसे उपयुक्त होगा। यदि आप मुझ पर इतनी कृपा नहीं करेंगे तो मैं उपवास तथा कठिन व्रत करके अपने प्राण त्याग दूँगी। तब सम्भवत: मैं अगले जीवन में आपको पा सकूँगी।''

भगवान् कृष्ण को वह पत्र सुनाने के बाद ब्राह्मण ने उनसे विदा ली ताकि वह अपनी धार्मिक दिनचर्या पूरी कर सके।

श्रीशुक उवाच
इत्थं सोऽनग्रहीतोऽन्ग कृष्णेनेक्ष्वाकु नन्दनः ।
तं परिक्रम्य सन्नम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार; सः—वह; अनुग्रहीतः—दया दिखलाया गया; अङ्ग—हे प्रिय (परीक्षित महाराज); कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; इक्ष्वाकु-नन्दनः—इक्ष्वाकुवंशी मुचुकुन्द; तम्—उन्हें; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; सन्नम्य—नमस्कार करके; निश्चक्राम—बाहर चला गया; गुहा—गुफा के; मुखात्—मुँह से होकर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा, इस प्रकार कृष्ण द्वारा दया दिखाये गये मुचुकुन्द ने उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें नमस्कार किया। तब इक्ष्वाकुवंशी प्रिय मुचुकुन्द गुफा के मुँह से होकर बाहर आये।

संवीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ।
मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

संवीक्ष्य—देखकर; क्षुल्लकान्—छोटे छोटे; मर्त्यान्—मनुष्यों को; पशून्—पशुओं को; वीरुत्—लताओं; वनस्पतीन्—तथा वृक्षों को; मत्वा—मान कर; कलि-युगम्—कलियुग को; प्राप्तम्—आया हुआ; जगाम—चला गया; दिशम्—दिशा में; उत्तराम्—उत्तरी।

यह देखकर कि सभी मनुष्यों, पशुओं, लताओं तथा वृक्षों के आकार अत्यधिक छोटे हो गये हैं और इस तरह यह अनुभव करते हुए कि कलियुग सन्निकट है, मुचुकुन्द उत्तर दिशा की

ओर चल पड़े।

तात्पर्य : इस श्लोक में कई महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। संस्कृत के एक प्रमाणित कोश में *क्षुल्लक* के "क्षुद्र, निम्न, निर्धन, दुष्ट, द्वेषी, परित्यक्त, दुखित" इत्यादि अर्थ पाये जाते हैं। ये सारे लक्षण कलियुग के हैं और ये सारे गुण मनुष्यों, पशुओं, पौधों तथा वृक्षों में पाये जाते हैं। हम लोग, जो अपने और अपने पर्यावरण के प्रति इतने मुग्ध हैं, पहले के युगों के श्रेष्ठ सौन्दर्य तथा उस समय की जीवित अवस्थाओं की कदाचित कल्पना कर सकते हैं।

अन्तिम चरण में *जगाम दिशम् उत्तराम्* को इस प्रकार समझा जा सकता है—भारत की उत्तर दिशा में जाने पर सबसे ऊँची हिमालय की पर्वत श्रेणी मिलती है। आज भी वहाँ अनेक सुन्दर चोटियाँ तथा घाटियाँ हैं जहाँ तपस्या तथा ध्यान के योग्य शान्त कुटियाँ हैं। इस तरह वैदिक संस्कृति में "उत्तर दिशा में जाने" का अर्थ होता है सामान्य समाज की सुविधाओं को त्याग कर आध्यात्मिक उन्नति के लिए कठोर तपस्या करने के लिए हिमालय पर्वत में जाना।

तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः ।
समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गन्धमादनम् ॥ ॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; श्रद्धा—श्रद्धा से; युतः—युक्त; धीरः—गम्भीर; निःसङ्गः—भौतिक संगति से विरक्त; मुक्त—स्वतंत्र; संशयः—सन्देहों से; समाधाय—समाधि में स्थिर करके; मनः—अपना मन; कृष्णे—कृष्ण में; प्राविशत्—प्रवेश किया; गन्धमादनम्—गन्धमादन नामक पर्वत पर।

भौतिक संगति से परे तथा सन्देह से मुक्त सौम्य राजा तपस्या के महत्व के प्रति विश्वस्त था। अपने मन को कृष्ण में लीन करते हुए वह गन्धमादन पर्वत पर आया।

तात्पर्य : गन्धमादन नाम सुहावनी सुगन्धों का सूचक है । निस्सन्देह, गन्धमादन जंगली फूलों की सुगंध से तथा जंगली शहद से और दूसरी प्राकृतिक सुगन्धों से पूर्ण था।

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ।
सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाराधयद्धरिम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

बदरी-आश्रमम्—बदरिकाश्रम में; आसाद्य—पहुँच कर; नर-नारायण—नर तथा नारायण नामक भगवान् के दो अवतारों का; आलयम्—आवास; सर्व—समस्त; द्वन्द्व—द्वैतताओं को; सहः—सहते हुए; शान्तः—शान्त; तपसा—कठिन तपस्या से; आराधयत्—पूजा; हरिम्—भगवान् को।

वहाँ वह नर-नारायण के धाम बदरिकाश्रम आया जहाँ पर समस्त द्वन्द्वों को सहते हुए उसने कठोर तपस्या करके भगवान् हरि की शान्तिपूर्वक पूजा की।

भगवान्पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ।
हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; पुनः—फिर से; आव्रज्य—लौटकर; पुरीम्—अपनी नगरी में; यवन—यवनों द्वारा; वेष्टिताम्—घिरी; हत्वा—मारकर; म्लेच्छ—यवनों की; बलम्—सेना को; निन्ये—ले आये; तदीयम्—उनकी; द्वारकाम्—द्वारका को; धनम्—सम्पत्ति।

भगवान् मथुरा नगरी लौट आये जो अब भी यवनों से घिरी थी। तत्पश्चात् उन्होंने बर्बर यवनों की सेना नष्ट की और उन यवनों की बहुमूल्य वस्तुएँ द्वारका ले गये।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि अकेला कालयवन पर्वत गुफा तक भगवान् कृष्ण का पीछा करता गया। जब घिरी हुई मथुरा नगरी में कृष्ण लौटकर आये तो उन्होंने यवनों की विशाल सेना को समूल नष्ट किया।

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ।
आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६॥

शब्दार्थ

नीयमाने—ले जाते समय; धने—सम्पत्ति को; गोभिः—बैलों द्वारा; नृभिः—मनुष्यों द्वारा; च—तथा; अच्युत—भगवान् कृष्ण द्वारा; चोदितैः—लगाये गये; आजुगाम—वहाँ आया; जरासन्धः—जरासन्ध; त्रयः—तीन; विंशति—बीस; अनीक—सेनाओं का; पः—नायक।

जब यह सम्पदा भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार बैलों तथा मनुष्यों द्वारा ले जाई जा रही थी तो जरासन्ध तेईस सैन्यटुकड़ियों के प्रधान के रूप में वहाँ प्रकट हुआ।

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ।
मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; वेग—लहरों की; रभसम्—डरावनापन; रिपु—शत्रु की; सैन्यस्य—सेनाओं का; माधवौ—दोनों माधव (कृष्ण तथा बलराम); मनुष्य—मनुष्य जैसा; चेष्टाम्—आचरण; आपन्नौ—धारण करते हुए; राजन्—हे राजा (परीक्षित); दुद्रुवतुः—भाग गये; द्रुतम्—तेजी से।

हे राजन्, शत्रु की सेना की भयंकर हलचल को देखकर माधव-बन्धु मनुष्य का-सा व्यवहार करते हुए तेजी से भाग गये।

विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ।
पद्भ्यां पलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

विहाय—छोड़ कर; वित्तम्—धन; प्रचुरम्—पर्याप्त; अभीतौ—वस्तुतः बिना डरे; भीरु—डरपोकों के समान; भीत-वत्—डरे जैसे; पद्भ्याम्—अपने पाँवों से; पद्म—कमलों की; पलाशाभ्याम्—पंखड़ियों जैसे; चेलतुः—चले गये; बहु-योजनम्—कई योजन तक (एक योजन आठ मील से कुछ अधिक की दूरी है)।

प्रचुर सम्पत्ति को छोड़ कर निर्भय किन्तु भय का स्वाँग करते हुए वे अपने कमलवत् चरणों से पैदल अनेक योजन चलते गये।

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ।
अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

पलायमानौ—भागते हुए; तौ—उन दोनों को; दृष्ट्वा—देखकर; मागधः—जरासन्ध; प्रहसन्—जोर से हँसते हुए; बली—बलवान; अन्वधावत्—पीछे पीछे दौड़ा; रथ—रथ; अनीकैः—तथा सैनिकों के साथ; ईशयोः—दोनों प्रभुओं का; अप्रमाण-वित्—कार्यक्षेत्र से अनभिज्ञ।

उन दोनों को भागते देखकर शक्तिशाली जरासन्ध अट्टाहास करने लगा और सारथियों तथा पैदल सैनिकों को साथ लेकर उनका पीछा करने लगा। वह दोनों प्रभुओं के उच्च पद को समझ नहीं सका।

प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम् ।
प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ ॥

शब्दार्थ

प्रद्रुत्य—पूरे वेग से दौड़कर; दूरम्—काफी दूरी; संश्रान्तौ—थके हुए; तुङ्गम्—खूब ऊँचे; आरुहताम्—चढ़ गये; गिरिम्—पर्वत पर; प्रवर्षण-आख्यम्—प्रवर्षण नामक; भगवान्—इन्द्र; नित्यदा—सदैव; यत्र—जहाँ; वर्षति—वर्षा करता है।

काफी दूरी तक भागने से थक कर चूर-चूर दिखते हुए दोनों प्रभु प्रवर्षण नामक ऊँचे पर्वत पर चढ़ गये जिस पर इन्द्र निरंतर वर्षा करता है।

गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप ।
ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गिरौ—पर्वत पर; निलीनौ—छिपे हुए; आज्ञाय—अवगत होकर; न अधिगम्य—न ढूँढ़कर; पदम्—उनका स्थान; नृप—हे राजा (परीक्षित); ददाह—आग लगा दी; गिरिम्—पर्वत में; एधोभिः—ईंधन से; समन्तात्—चारों ओर; अग्निम्—आग; उत्सृजन्—उत्पन्न करते हुए।

यद्यपि जरासन्ध जानता था कि वे दोनों ही पर्वत में छिपे हैं किन्तु उसे उनका कोई पता नहीं चल सका। अतः हे राजा, उसने सभी ओर लकड़ियाँ रखकर पर्वत में आग लगा दी।

तात्पर्य : स्पष्ट है कि हम भगवान् की एक दिव्य लीला देख रहे हैं। यद्यपि *भागवत* में कहा गया है कि दोनों प्रभु कृष्ण तथा बलराम थक कर चूर-चूर थे, फिर भी वे तेजी से इतने ऊँचे पर्वत पर चढ़कर तुरन्त ही भूमि पर कूद सके। ऋषियों द्वारा दिये गये पूरे चित्र की उपेक्षा करके इधर-उधर से कुछ वर्णनों को उठा लेना मूर्खतापूर्ण तथा अतार्किक होगा। स्पष्ट है कि हम भगवान् को उनकी दिव्य लीलाओं के मध्य देख रहे हैं, हम किसी सामान्य मनुष्य को नहीं देख रहे। जब यह घटना घटी तो भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम तब भी तरुण थे और इन विवरणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हास्यास्पद जरासन्ध से दूर भागना, पर्वत पर दौड़ते हुए चढ़ना और फिर वहाँ से नीचे कूद पड़ना और उस असुर को लगातार मूर्ख बनाना जिसने आत्मविश्वास कभी नहीं खोया, उन दोनों को कितना आनन्द देता रहा होगा। द्वेष या कलहप्रियता से रहित होकर देखने पर भगवान् की लीलाएँ अतीव मनोरंजक लगती हैं।

तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ।
दशैकयोजनात्तुङ्गान्निपेततुरधो भुवि ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—उस (पर्वत) से; उत्पत्य—कूद कर; तरसा—जल्दी से; दह्यमान—जलते हुए; तटात्—छोरों से; उभौ—दोनों; दश-एक—ग्यारह; योजनात्—योजन; तुङ्गात्—उच्च; निपेततुः—वे गिरे; अधः—नीचे; भुवि—जमीन पर।

तब वे दोनों सहसा उस जलते हुए ग्यारह योजन ऊँचे पर्वत से नीचे कूद कर जमीन पर आ गिरे।

तात्पर्य : ग्यारह योजन ९० मील के लगभग है।

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ।
स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १ ॥

शब्दार्थ

अलक्ष्यमाणौ—न दिखाई देते हुए; रिपुणा—अपने शत्रुओं द्वारा; स—सहित; अनुगेन—अपने अनुयायियों के साथ; यदु—यदुओं के; उत्तमौ—दो अतीव उत्तम; स्व-पुरम्—अपनी पुरी (द्वारका) में; पुनः—फिर; आयातौ—गये; समुद्र—समुद्र; परिखाम्—रक्षा-खाई से युक्त; नृप—हे राजन्।

अपने प्रतिपक्षी या उसके अनुचरों द्वारा न दिखने पर, हे राजन्, वे दोनों यदु श्रेष्ठ अपनी द्वारकापुरी लौट गये जिसकी सुरक्षा-खाई समुद्र थी।

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ।
बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ ॥ १४॥

शब्दार्थ

सः—वह; अपि—भी; दग्धौ—अग्नि में जले हुए दोनों; इति—इस प्रकार; मृषा—झूठे ही; मन्वानः—सोचते हुए; बल-केशवौ—बलराम तथा कृष्ण; बलम्—अपनी सेना; आकृष्य—पीछे हटाकर; सु-महत्—विशाल; मगधान्—मगधों के राज्य में; मागधः—मगधों का राजा; ययौ—चला गया।

यही नहीं, जरासन्ध ने गलती से सोचा कि बलराम तथा कृष्ण अग्नि में जल कर मर गये हैं। अतः उसने अपनी विशाल सेना पीछे हटा ली और मगध राज्य को लौट गया।

आनर्ताधिपतिः श्रीमान्रैवतो रैवतीं सुताम् ।
ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

आनर्त—आनर्त प्रदेश का; अधिपतिः—अधीश्वर; श्रीमान्—ऐश्वर्यवान्; रैवतः—रैवत; रैवतीम्—रैवती नामक; सुताम्—उसकी पुत्री; ब्रह्मणा—ब्रह्मा द्वारा; चोदितः—आज्ञा दिया गया; प्रादात्—दिया; बलाय—बलराम को; इति—इस प्रकार; पुरा—प्राचीन काल में; उदितम्—उल्लिखित।

ब्रह्मा के आदेश से आनर्त के वैभवशाली राजा रैवत ने अपनी पुत्री रैवती का विवाह बलराम से कर दिया। इसका उल्लेख पहले ही हो चुका है।

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरूद्वह ।
वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥ १६॥
प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ।
पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—निस्सन्देह; गोविन्दः—कृष्ण ने; उपयेमे—ब्याहा; कुरु-उद्वह—हे कुरुओं में वीर (परीक्षित); वैदर्भीम्—रुक्मिणी को; भीष्मक-सुताम्—राजा भीष्मक की पुत्री; श्रियः—लक्ष्मी को; मात्राम्—स्वांश; स्वयम्-वरे—अपनी रुचि से; प्रमथ्य—दमन करके; तरसा—बल से; राज्ञः—राजाओं को; शाल्व-आदीन्—शाल्व इत्यादि; चैद्य—शिशुपाल के; पक्ष-गान्—पक्षधरों को; पश्यताम्—देखते देखते; सर्व—सारे; लोकानाम्—लोगों के; तार्क्ष्य-पुत्रः—तार्क्ष्य का पुत्र (गरुड़); सुधाम्—स्वर्ग का अमृत; इव—सदृश।

हे कुरुवीर, भगवान् गोविन्द ने भीष्मक की पुत्री वैदर्भी (रुक्मिणी) से विवाह किया जो

साक्षात् लक्ष्मी की अंश थी। भगवान् ने उसकी इच्छा से ही ऐसा किया और इस कार्य के लिए उन्होंने शाल्व तथा शिशुपाल के पक्षधर अन्य राजाओं को परास्त किया। दरअसल सबों के देखते देखते श्रीकृष्ण रुक्मिणी को उसी तरह उठा ले गये जिस तरह नि:शंक गरुड़ देवताओं से अमृत चुरा कर ले आया था।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने इन दोनों श्लोकों की पाण्डित्यपूर्ण टीका की है : *श्रियो मात्राम्* शब्द बताते हैं कि सुन्दर रुक्मिणी शाश्वत लक्ष्मीदेवी की अंशरूप हैं। इसलिए वे भगवान् की दुलहन (वधू) बनने योग्य हैं। जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.६७) में कहा गया है—*श्रिय: कान्ता कान्त: परमपुरुष:*—वैकुण्ठ की सारी प्रेमिकाएँ लक्ष्मी देवियाँ हैं और प्रेमी भगवान् हैं। इस तरह श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि श्रीमती रुक्मिणीदेवी श्रीमती राधारानी की स्वांश हैं। *पद्म पुराण* के *कार्त्तिक-माहात्म्य* में कहा गया है—*कैशोरे गोपकन्यास्ता यौवने राजकन्यका:*—कृष्ण ने किशोरावस्था में ग्वालों की कन्याओं के साथ आनन्द लूटा और यौवनावस्था में राजाओं की कन्याओं के साथ। इसी प्रकार *स्कन्द पुराण* में कथन है—*रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने*—जो स्थान राधा का वृन्दावन के जंगल में है, वही रुक्मिणी का स्थान द्वारका में है।

स्वयंवरे शब्द का अर्थ है ''अपनी इच्छा से।'' यद्यपि यह शब्द प्राय: उस औपचारिक वैदिक अनुष्ठान का सूचक है, जिसमें कुलीनवंशी राजकुमारी अपना पति स्वयं चुन सकती थी किन्तु यहाँ पर यह शब्द रुक्मिणी के साथ कृष्ण के विवाह से सम्बन्धित अनौपचारिक एवं अभूतपूर्व वातावरण का सूचक है। वस्तुत: श्रीकृष्ण तथा श्रीमती रुक्मिणी ने दिव्य शाश्वत प्रेम के कारण एक-दूसरे को वरण किया।

श्रीराजोवाच
भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ।
राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (परीक्षित) ने कहा; भगवान्—भगवान्; भीष्मक-सुताम्—भीष्मक की पुत्री; रुक्मिणीम्—श्रीमती रुक्मिणीदेवी को; रुचिर—मनोहर; आननाम्—मुख वाली; राक्षसेन—राक्षस नामक; विधानेन—विधि से (अपहरण करके); उपयेमे—ब्याह लिया; इति—इस प्रकार; श्रुतम्—सुना गया है।

राजा परीक्षित ने कहा : मैंने सुना है कि भगवान् ने भीष्मक की सुमुखी पुत्री रुक्मिणी से

राक्षस-विधि से विवाह किया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने यह स्मृति वाक्य उद्धृत किया है—*राक्षसो युद्धहरणात्*—राक्षस विवाह तब होता है जब दुलहन को प्रतिद्वन्द्वी प्रेमियों से बलपूर्वक हरा जाता है। इसी तरह शुकदेव गोस्वामी स्वयं कह चुके हैं *राज्ञ: प्रमथ्य*—रुक्मिणी को पाने के लिए कृष्ण को विरोधी राजाओं को परास्त करना पड़ा।

भगवन्श्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजस: ।
यथा मागधशाल्वादीन्जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

भगवन्—हे प्रभु (शुकदेव गोस्वामी); श्रोतुम्—सुनना; इच्छामि—चाहता हूँ; कृष्णस्य—कृष्ण के विषय में; अमित—असीम; तेजस:—जिसका बल; यथा—किस तरह; मागध-शाल्व-आदीन्—जरासन्ध तथा शाल्व जैसे राजाओं को; जित्वा—हराकर; कन्याम्—दुलहन को; उपाहरत्—हर लाए।

हे प्रभु, मैं यह सुनने का इच्छुक हूँ कि असीम बलशाली भगवान् कृष्ण किस तरह मागध तथा शाल्व जैसे राजाओं को हराकर अपनी दुलहन को हर ले गये।

तात्पर्य : हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि श्रीकृष्ण जरासन्ध से सचमुच भयभीत थे। हम अगले अध्याय में देखेंगे कि श्रीकृष्ण जरासन्ध तथा उसके सैनिकों को सरलता से हरा देते हैं। अत: हमें कभी भी भगवान् कृष्ण के पराक्रम के विषय में संशय नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मन्कृष्णकथा: पुण्या माध्वीर्लोकमलापहा: ।
को नु तृप्येत शृण्वान: श्रुतज्ञो नित्यनूतना: ॥ २० ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; कृष्ण-कथा:—कृष्ण की कथाएँ; पुण्या:—पवित्र; माध्वी:—मधुर; लोक—संसार के; मल—कल्मष को; अपहा:—दूर करने वाली; क:—कौन; नु—तनिक भी; तृप्येत—तृप्त होगा; शृण्वान:—सुनते हुए; श्रुत—सुना जाने वाला; ज्ञ:—जानने वाला; नित्य—सदा; नूतना:—नवीन।

हे ब्राह्मण, ऐसा कौन-सा अनुभवी श्रोता होगा जो श्रीकृष्ण की पवित्र, मनोहर तथा नित्य नवीन कथाओं को, जो संसार के कल्मष को धो देने वाली हैं, सुनकर कभी तृप्त हो सकेगा?

श्रीबादरायणिरुवाच

राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ।
तस्य पञ्चाभवन्पुत्रा: कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणि:—श्री बादरायणि (बादरायण वेदव्यास के पुत्र शुकदेव) ने; उवाच—कहा; राजा—राजा; आसीत्—था; भीष्मक: नाम—भीष्मक नामक; विदर्भ-अधिपति:—विदर्भ राज्य का शासक; महान्—महान्; तस्य—उसके; पञ्च—पाँच; अभवन्—थे; पुत्रा:—पुत्र; कन्या—पुत्री; एका—एक; च—तथा; वर—अतीव सुन्दर; आनना—मुख वाली।

श्री बादरायणि ने कहा : भीष्मक नामक एक राजा था, जो विदर्भ का शक्तिशाली शासक था। उसके पाँच पुत्र तथा एक सुमुखी पुत्री थी।

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तर: ।
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषा स्वसा सती ॥ २२॥

शब्दार्थ

रुक्मी—रुक्मी; अग्र-ज:—सबसे बड़ा; रुक्म-रथ: रुक्मबाहु:—रुक्मरथ तथा रुक्मबाहु; अनन्तर:—इनके बाद; रुक्म-केश: रुक्म-माली—रुक्मकेश तथा रुक्ममाली; रुक्मिणी—रुक्मिणी; एषा—वह; स्वसा—बहिन; सती—साधु चरित्र वाली।

रुक्मी सबसे बड़ा पुत्र था, उसके बाद रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश तथा रुक्ममाली थे। उनकी बहिन सती रुक्मिणी थी।

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रिय: ।
गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥ २॥

शब्दार्थ

सा—उसने; उपश्रुत्य—सुनकर; मुकुन्दस्य—कृष्ण के; रूप—सौन्दर्य; वीर्य—पराक्रम; गुण—चरित्र; श्रिय:—तथा ऐश्वर्य के विषय में; गृह—उसके पारिवारिक घर में; आगतै:—आने वालों द्वारा; गीयमाना:—गाया जाकर; तम्—उसको; मेने—सोचा; सदृशम्—उपयुक्त; पतिम्—पति।

महल में आने वालों के मुख से जो प्राय: मुकुन्द के बारे में गुणगान करते थे, मुकुन्द के सौन्दर्य, पराक्रम, दिव्य चरित्र तथा ऐश्वर्य के बारे में सुनकर, रुक्मिणी ने निश्चय किया कि वे ही उसके उपयुक्त पति होंगे।

तात्पर्य : *सदृशम्* शब्द सूचित करता है कि रुक्मिणी तथा श्रीकृष्ण में एक-जैसे गुण थे अत: स्वाभाविक था कि वे एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते। राजा भीष्मक साधु व्यक्ति थे अतएव उनके महल में अनेक साधु-पुरुष आते रहे होंगे। ये साधु-पुरुष अवश्य ही श्रीकृष्ण की महिमा के विषय में मुक्तकण्ठ प्रचार करते थे।

तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ।
कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥ २४॥

शब्दार्थ

ताम्—उसकी; बुद्धि—बुद्धि के; लक्षण—शुभ शारीरिक चिह्न; औदार्य—उदारता; रूप—सौन्दर्य; शील—उचित व्यवहार; गुण—तथा अन्य व्यक्तिगत गुण के; आश्रयाम्—आगार; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; च—तथा; सदृशीम्—उपयुक्त; भार्याम्—पत्नी; समुद्वोढुम्—विवाह करने के लिए; मनः—अपना मन; दधे—बनाया।

भगवान् कृष्ण जानते थे कि रुक्मिणी बुद्धि, शुभ शारीरिक चिह्न, सौन्दर्य, उचित व्यवहार तथा अन्य उत्तम गुणों से युक्त है। यह निष्कर्ष निकाल करके कि वह उनके योग्य एक आदर्श पत्नी होगी, कृष्ण ने उससे विवाह करने का निश्चय किया।

तात्पर्य : जिस तरह कृष्ण को *सदृशं पतिम्* कहा गया है, उसी तरह रुक्मिणी को *सदृशीं भार्याम्*—श्रीकृष्ण के लिए आदर्श पत्नी कहा गया है। यह स्वाभाविक है क्योंकि श्रीमती रुक्मिणीदेवी कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति हैं।

बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ।
ततो निवार्य कृष्णद्विड्रुक्मी चैद्यममन्यत ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

बन्धूनाम्—अपने परिवार के लोगों के; इच्छताम्—चाहने से; दातुम्—देने के लिए; कृष्णाय—कृष्ण को; भगिनीम्—अपनी बहन; नृप—हे राजा; ततः—इससे; निवार्य—उन्हें रोककर; कृष्ण-द्विट्—कृष्ण से द्वेष रखने से; रुक्मी—रुक्मी; चैद्यम्—चैद्य (शिशुपाल) को; अमन्यत—मानता था।

हे राजन्, चूँकि रुक्मी भगवान् से द्वेष रखता था अतएव उसने अपने परिवार वालों को, उनकी इच्छा के विपरीत, अपनी बहन कृष्ण को दिये जाने से रोका। उल्टे रुक्मी ने रुक्मिणी को शिशुपाल को देने का निश्चय किया।

तात्पर्य : बड़ा भाई होने से रुक्मी ने अपने पद का दुरुपयोग किया और दुर्भावनापूर्ण कार्य किया। इस निर्णय के लिए उसे कष्ट भोगना पड़ गया।

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ।
विचिन्त्याप्तं द्विजं कञ्चित्कृष्णाय प्राहिणोद्द्रुतम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; अवेत्य—जानकर; असित—श्याम; अपाङ्गी—जिसकी आँखों के कोर; वैदर्भी—विदर्भ की राजकुमारी; दुर्मना—दुखी; भृशम्—अत्यधिक; विचिन्त्य—सोचकर; आप्तम्—विश्वस्त; द्विजम्—ब्राह्मण को; कञ्चित्—किसी; कृष्णाय—कृष्ण के पास; प्राहिणोत्—भेजा; द्रुतम्—जल्दी से।

श्याम-नेत्रों वाली वैदर्भी इस योजना से अवगत थी अतः वह इससे अत्यधिक उदास थी। उसने सारी परिस्थिति पर विचार करते हुए तुरन्त ही कृष्ण के पास एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को

भेजा।

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ।
अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं काञ्चनासने ॥ २७॥

शब्दार्थ

द्वारकाम्—द्वारका में; सः—वह (ब्राह्मण); समभ्येत्य—पहुँच कर; प्रतीहारैः—द्वारपालों के द्वारा; प्रवेशितः—भीतर लाया गया; अपश्यत्—देखा; आद्यम्—आदि; पुरुषम्—परम पुरुष को; आसीनम्—आसीन, बैठा; काञ्चन—सुनहरे; आसने—सिंहासन पर।

द्वारका पहुँचने पर उस ब्राह्मण को द्वारपाल भीतर ले गये जहाँ उसने आदि-भगवान् को सोने के सिंहासन पर आसीन देखा।

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ।
उपवेश्यार्हयां चक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥ २८॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; ब्रह्मण्य—ब्राह्मणों का ध्यान रखने वाला; देवः—प्रभु; तम्—उसको; अवरुह्य—उतर कर; निज—अपने; आसनात्—सिंहासन से; उपवेश्य—बैठाकर; अर्हयाम् चक्रे—पूजा की; यथा—जिस तरह; आत्मानम्—स्वयं को; दिव-ओकसः—स्वर्ग के वासी।

ब्राह्मण को देखकर, ब्राह्मणों के प्रभु श्रीकृष्ण अपने सिंहासन से नीचे उतर आये और उसे बैठाया। तत्पश्चात् भगवान् ने उसकी उसी तरह पूजा की जिस तरह वे स्वयं देवताओं द्वारा पूजित होते हैं।

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः ।
पाणिनाभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; भुक्तवन्तम्—खा चुकने पर; विश्रान्तम्—आराम किया; उपगम्य—पास जाकर; सताम्—साधु-भक्तों का; गतिः—लक्ष्य; पाणिना—अपने हाथों से; अभिमृशन्—दबाते हुए; पादौ—उसके पाँव; अव्यग्रः—बिना क्षुब्ध हुए; तम्—उससे; अपृच्छत—पूछा।

जब वह ब्राह्मण खा-पीकर आराम कर चुका तो साधु-भक्तों के ध्येय श्रीकृष्ण उसके पास आये और अपने हाथों से उस ब्राह्मण के पाँवों को दबाते हुए बड़े ही धैर्य के साथ इस प्रकार पूछा।

कच्चिद्द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसम्मतः ।

वर्तते नातिकृच्छ्रेण सन्तुष्टमनसः सदा ॥ ० ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; द्विज—ब्राह्मणों में; वर—श्रेष्ठ; श्रेष्ठ—हे श्रेष्ठ; धर्मः—धर्म; ते—तुम्हारा; वृद्ध—गुरुजनों के द्वारा; सम्मतः—अनुमोदित; वर्तते—चल रहा है; न—नहीं; अति—अत्यधिक; कृच्छ्रेण—कठिनाई से; सन्तुष्ट—पूर्णतया संतुष्ट; मनसः—मन वाले; सदा—सदैव।

[भगवान् ने कहा] : हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ, आपके गुरुजनों द्वारा अनुमोदित धार्मिक अनुष्ठान बिना किसी बड़ी कठिनाई के चल तो रहे हैं न? आपका मन सदैव संतुष्ट तो रहता है न?

तात्पर्य : यहाँ हमने *धर्म* शब्द का "धार्मिक अनुष्ठान" किया है, यद्यपि इससे संस्कृत शब्द का पूरा अभिप्राय समझ में नहीं आता। कृष्ण का जन्म धर्मनिरपेक्ष समाज में नहीं हुआ था। वैदिक काल के लोग शायद ही ऐसे समाज की कल्पना कर सकते थे जिसमें ईश्वर के विधान का पालन करने की आवश्यकता न हो। अत: उनके लिए *धर्म* शब्द सामान्य कर्तव्य, उच्चतर सिद्धान्त तथा निश्चित कर्म—ये सभी अर्थ इंगित करने वाला था। ऐसा स्वत:सिद्ध था कि ऐसे कर्तव्य धार्मिक परिधि में आते हैं। किन्तु उन दिनों धर्म कोई विशिष्ट पक्ष या जीवन का विभाग न था अपितु समस्त कार्यों के लिए मार्गदर्शक था। अधार्मिक जीवन को आसुरी माना जाता था और हर बात में ईश्वर का हाथ दिखता था।

सन्तुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ।
अहीयमानः स्वद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सन्तुष्टः—सन्तुष्ट; यर्हि—जब; वर्तेत—पालन करता है; ब्राह्मणः—ब्राह्मण; येन केनचित्—जिस किसी से; अहीयमानः—न्यून नहीं; स्वात्—अपने; धर्मात्—धार्मिक कर्तव्य से; सः—वे धार्मिक सिद्धान्त (धर्म); हि—निस्सन्देह; अस्य—उसके लिए; अखिल—हर वस्तु का; काम-धुक्—कामधेनु गाय, किसी भी कामना-पूर्ति के लिए दुही जाने वाली।

जो कुछ भी मिल जाय उससे सन्तुष्ट हो जाना और अपने धार्मिक कर्तव्य से च्युत नहीं होना ये धार्मिक सिद्धान्त ब्राह्मण की सारी इच्छाओं को पूरी करने वाली कामधेनु बन जाते हैं।

असन्तुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ।
अकिञ्चनोऽपि सन्तुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

असन्तुष्टः—असन्तुष्ट; असकृत्—बारम्बार; लोकान्—विविध लोकों को; आप्नोति—प्राप्त करता है; अपि—यद्यपि; सुर—देवताओं का; ईश्वरः—स्वामी; अकिञ्चनः—निर्धन; अपि—होते हुए भी; सन्तुष्टः—सन्तुष्ट; शेते—सोता है; सर्व—सारे; अङ्ग—शरीर के अंग; विज्वरः—दुख से रहित।

असन्तुष्ट ब्राह्मण स्वर्ग का राजा बन जाने पर भी एक लोक से दूसरे लोक में बेचैन होकर

भटकता रहता है। किन्तु संतुष्ट ब्राह्मण, अपने पास कुछ न होने पर भी शान्तिपूर्वक विश्राम करता है और उसके सारे अंग कष्ट से मुक्त रहते हैं।

तात्पर्य : जो लोग असन्तुष्ट हैं उनके सारे शरीर में पीड़ा का अनुभव होता है और वे अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। किन्तु सन्तुष्ट ब्राह्मण, चाहे उसके पास कुछ भी न हो, शान्त तथा स्थिर रहता है और उसके शरीर या मन में कोई कष्ट नहीं रहता।

विप्रान्स्वलाभसन्तुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ।
निरहङ्कारिणः शान्तान्नमस्ये शिरसासकृत् ॥ ॥

शब्दार्थ

विप्रान्—विद्वान ब्राह्मणों को; स्व—अपना; लाभ—लाभ से; सन्तुष्टान्—संतुष्ट; साधून्—साधु; भूत—सारे जीवों का; सुहृत्-तमान्—सर्वश्रेष्ठ शुभचिन्तक मित्र; निरहङ्कारिणः—मिथ्या अहंकार से रहित; शान्तान्—शान्त; नमस्ये—नमस्कार करता हूँ; शिरसा—सिर के बल; असकृत्—पुनः पुनः।

मैं उन ब्राह्मणों को बारम्बार अपना शीश नवाता हूँ जो अपने भाग्य से संतुष्ट हैं। साधु, अहंकारशून्य तथा शान्त होने से वे समस्त जीवों के सर्वोत्तम शुभचिन्तक हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी व्याख्या करते हैं कि *स्वलाभ* का एक अन्य अर्थ भी है ''अपने स्व की प्राप्ति'' अर्थात् आत्म-साक्षात्कार। इस तरह उन्नत ब्राह्मण कभी भी भौतिक औपचारिकताओं या सुविधाओं पर निर्भर न रह कर अपने आध्यात्मिक ज्ञान से सदैव सन्तुष्ट रहता है।

कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन्राजतो यस्य हि प्रजाः ।
सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ४॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या, कहीं; वः—तुम्हारा; कुशलम्—कुशलमंगल; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; राजतः—राजा से; यस्य—जिसका; हि—निस्सन्देह; प्रजाः—जनता; सुखम्—सुखपूर्वक; वसन्ति—रहती हैं; विषये—देश में; पाल्यमानाः—रक्षित होकर; सः—वह; मे—मुझको; प्रियः—प्रिय।

हे ब्राह्मण, आपका राजा आप लोगों के कुशल-मंगल का ध्यान तो रखता है? निस्सन्देह, जिस राजा के देश में प्रजा सुखी तथा सुरक्षित है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।

यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ।
सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥ ५॥

शब्दार्थ

यतः—जहाँ से; त्वम्—तुम; आगतः—आये हो; दुर्गम्—दुर्गम समुद्र; निस्तीर्य—पार करके; इह—यहाँ; यत्—किस; इच्छया—इच्छा से; सर्वम्—सारी वस्तुएँ; नः—हमारे प्रति; ब्रूहि—कहो; अगुह्यम्—गुप्त नहीं; चेत्—यदि; किम्—क्या; कार्यम्—कार्य; करवाम—हम करें; ते—तुम्हारे लिए।

दुर्लंघ्य समुद्र पार करके आप कहाँ से और किस कार्य से यहाँ आये हैं? यदि यह गुप्त न हो तो हमें बतलाइये और यह कहिये कि आपके लिए हम क्या कर सकते हैं?

एवं सम्पृष्टसम्प्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ।
लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सम्पृष्ट—पूछा गया; सम्प्रश्नः—प्रश्न; ब्राह्मणः—ब्राह्मण; परमेष्ठिना—भगवान् द्वारा; लील—अपनी लीला के रूप में; गृहीत—ग्रहण किये गये; देहेन—अपने शरीरों से; तस्मै—उसको; सर्वम्—हर वस्तु; अवर्णयत्—कह सुनाया।

अपनी लीला सम्पन्न करने के लिए अवतार लेने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा इस तरह पूछे जाने पर ब्राह्मण ने उन्हें सारी बात बता दी।

तात्पर्य : *गृहीत* का अर्थ ''पकड़ा'' किया जा सकता है, अत: ठीक अंग्रेजी भाषा की तरह इसका अर्थ 'किसी बात को ध्यान से समझना' भी हो सकता है। यह इसका सूचक है कि भगवान् कृष्ण का दिव्य शरीर अनुभव किया या जाना जाता है या भक्तों द्वारा पकड़ा जाता है जब भगवान् अपनी दिव्य लीलाएँ प्रदर्शित करने के लिए आते हैं। ये लीलाएँ मनमानी नहीं हैं अपितु जटिल कार्यक्रम के अंशरूप हैं और बद्धजीवों में भगवान् के प्रति प्राकृतिक प्रेम तथा भक्ति जगाकर उन्हें भगवद्धाम ले जाने के लिए भगवान् द्वारा निर्मित तथा निष्पादित की जाती हैं।

श्रीरुक्मिण्युवाच

श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ७॥

शब्दार्थ

श्री-रुक्मिणी उवाच—श्री रुक्मिणी ने कहा; श्रुत्वा—सुनकर; गुणान्—गुणों को; भुवन—सारे लोकों के; सुन्दर—हे सौन्दर्य; शृण्वताम्—सुनने वालों के लिए; ते—तुम्हारा; निर्विश्य—प्रवेश करके; कर्ण—कानों के; विवरैः—छेदों से; हरतः—हटाते हुए; अङ्ग—उनके शरीरों की; तापम्—पीड़ा; रूपम्—सौन्दर्य; दृशाम्—देखने की इन्द्रिय का; दृशि-मताम्—आँख वालों का; अखिल—समग्र; अर्थ—इच्छापूर्ति का; लाभम्—प्राप्ति; त्वयि—तुममें; अच्युत—हे अच्युत कृष्ण; आविशति—प्रवेश करती है; चित्तम्—चित्त में; अपत्रपम्—निर्लज्ज; मे—मेरे।

[ब्राह्मण द्वारा पढ़े जा रहे अपने पत्र में] श्री रुक्मिणी ने कहा : हे जगतों के सौन्दर्य,

आपके गुणों के विषय में सुनकर जो कि सुनने वालों के कानों में प्रवेश करके उनके शारीरिक ताप को दूर कर देते हैं और आपके सौन्दर्य के बारे में सुनकर कि वह देखने वाले की सारी दृष्टि सम्बन्धी इच्छाओं को पूरा करता है, हे कृष्ण, मैंने अपना निर्लज्ज मन आप पर स्थिर कर दिया है।

तात्पर्य : रुक्मिणी एक राजा की पुत्री थी, वह साहसी तथा निडर थी और वह कृष्ण के प्राप्त न होने पर मरना पसन्द करती। यह सब विचार करके उसने एक स्पष्ट खुला पत्र लिखा जिसमें कृष्ण से याचना की गई थी कि वे आकर उसे ले जाँय।

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-
विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या
काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

का—कौन; त्वा—तुम; मुकुन्द—हे कृष्ण; महती—राजसी; कुल—पारिवारिक पृष्ठभूमि के रूप में; शील—चरित्र; रूप—सौन्दर्य; विद्या—ज्ञान; वयः—युवावस्था; द्रविण—धन; धामभिः—तथा प्रभाव से; आत्म—अपने ही; तुल्यम्—समान; धीरा—जो धीर है; पतिम्—अपने पति रूप में; कुल-वती—अच्छे परिवार वाली; न वृणीत—वरण नहीं करेगी; कन्या—विवाह योग्य तरुणी; काले—ऐसे समय में; नृ—लोगों में; सिंह—हे सिंह; नर-लोक—मानव समाज का; मनः—मनों को; अभिरामम्—आनन्द देने वाले।

हे मुकुन्द, आप वंश, चरित्र, सौन्दर्य, ज्ञान, युवावस्था, सम्पदा तथा प्रभाव में केवल अपने समान हैं। हे पुरुषों में सिंह, आप सारी मानवता के मन को आनन्दित करते हैं। उपयुक्त समय आ जाने पर ऐसी कौन-सी राजकुल की धीर तथा विवाहयोग्य कन्या होगी जो आपको पति रूप में नहीं चुनेगी?

तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरङ्ग जाया-
मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतः; मे—मेरे द्वारा; भवान्—आप; खलु—निस्सन्देह; वृतः—चुने गये; पतिः—पति रूप में; अङ्ग—प्रिय स्वामी; जायाम्—पत्नी रूप में; आत्मा—अपने को; अर्पितः—अर्पित; च—और; भवतः—आपको; अत्र—यहाँ; विभो—हे सर्वशक्तिमान; विधेहि—स्वीकार करें; मा—कभी नहीं; वीर—वीर का; भागम्—अंश; अभिमर्शतु—छूना चाहिए; चैद्यः—

चेदिराज का पुत्र, शिशुपाल; आरात्—तेजी से; गोमायु-वत्—सियार की तरह; मृग-पतेः—पशुओं के राजा सिंह से सम्बन्धित; बलिम्—बलि; अम्बुज-अक्ष—हे कमल-नेत्र।

अतएव हे प्रभु, मैंने आपको अपने पति-रूप में चुना है और मैं आपकी शरण में आई हूँ। हे सर्वशक्तिमान, तुरन्त आइये और मुझे अपनी पत्नी बना लीजिये। हे मेरे कमल-नेत्र स्वामी, किसी सिंह की सम्पत्ति को चुराने वाले सियार जैसे शिशुपाल को एक वीर के अंश को कभी छूने न दीजिये।

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-
गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

पूर्त—पुण्य कार्यों (ब्राह्मणों को भोजन कराना, कुंआ खुदवाना आदि) के द्वारा; इष्ट—यज्ञादि करना; दत्त—दान; नियम—अनुष्ठान पालन (यथा तीर्थस्थान जाना); व्रत—तपस्या का व्रत; देव—देवताओं; विप्र—ब्राह्मणों; गुरु—तथा गुरुओं की; अर्चन—पूजा; आदिभिः—इत्यादि से; अलम्—पर्याप्त; भगवान्—भगवान्; पर—परम; ईशः—नियंत्रक; आराधितः—भक्ति किया हुआ; यदि—यदि; गद-अग्रजः—गद के बड़े भाई, कृष्ण; एत्य—आकर; पाणिम्—हाथ; गृह्णातु—ग्रहण करें; मे—मेरा; न—नहीं; दमघोष-सुत—दमघोष-पुत्र, शिशुपाल; आदयः—इत्यादि; अन्ये—अन्य।

यदि मैंने पुण्य कर्म, यज्ञ, दान, अनुष्ठान-व्रत के साथ साथ देवताओं, ब्राह्मणों तथा गुरुओं की पूजा द्वारा भगवान् की पर्याप्त रूप से उपासना की हो तो हे गदाग्रज, आप आकर मेरा हाथ ग्रहण करें और दमघोष का पुत्र या कोई अन्य ग्रहण न करने पाये।

तात्पर्य : आचार्यों ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है—''रुक्मिणी को अनुभव हुआ कि केवल एक जीवन के प्रयासों द्वारा कृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए उन्होंने श्रीकृष्ण को आने के लिए विश्वस्त करने की आशा हेतु उन पुण्य कर्मों को गंभीरता से इंगित किया जो उन्होंने इस जीवन में तथा पिछले जीवनों में किये थे।''

श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्
गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ।
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य
मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्वः भाविनि—कल; त्वम्—तुम; अजित—हे अजेय; उद्वहने—विवाहोत्सव के समय; विदर्भान्—विदर्भ में; गुप्तः—अदृश्य; समेत्य—आकर; पृतना—अपनी सेना के; पतिभिः—नायकों द्वारा; परीतः—घिरा हुआ; निर्मथ्य—दलन करके; चैद्य—

शिशुपाल; मगध-इन्द्र—तथा मगध का राजा, जरासन्ध की; बलम्—सैन्य-शक्ति; प्रसह्य—बलपूर्वक; माम्—मुझको; राक्षसेन विधिना—राक्षस विधि से; उद्वह—विवाह करके ले जाओ; वीर्य—अपने पराक्रम के; शुल्काम्—मूल्य रूप में।.

हे अजित, कल जब मेरा विवाहोत्सव प्रारम्भ हो तो आप विदर्भ में अपनी सेना के नायकों से घिर कर गुप्त रूप से आयें। तत्पश्चात् चैद्य तथा मगधेन्द्र की सेनाओं को कुचल कर अपने पराक्रम से मुझे जीत कर राक्षस विधि से मेरे साथ विवाह कर लें।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में इंगित किया है कि राजकुल में उत्पन्न होने के कारण रुक्मिणी को राजनीतिक कामकाज की, निश्चित रूप से, अच्छी पकड़ थी। उन्होंने श्रीकृष्ण को सलाह दी कि वे नगर में अकेले और बिना किसी के देखे प्रवेश करें तथा तब स्वयं अपने सेना-नायकों के बीच में घिर कर रहें जिससे जो भी करना है, उसे वे कर सकें। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने आने वाले युद्ध की तुलना लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए भगवान् द्वारा समुद्र के मंथन से की है। इस तरह श्री-रूपी रुक्मिणी इस मंथन से प्राप्त होंगी।

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धून्-
त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।
पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवयात्रा
यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अन्तः-पुर—महल में स्त्रियों के कक्ष, रनिवास के; अन्तर—भीतर; चरीम्—घूमने वाले; अनिहत्य—बिना मारे; बन्धून्—तुम्हारे सम्बन्धियों को; त्वाम्—तुमको; उद्वहे—मैं ले जाऊँगा; कथम्—कैसे; इति—ऐसे शब्द कहते हुए; प्रवदामि—मैं बतलाऊँगी; उपायम्—उपाय; पूर्वे-द्युः—एक दिन पहले; अस्ति—है; महती—विशाल; कुल—राजपरिवार के; देव—कुलदेवता के लिए; यात्रा—जुलूस; यस्याम्—जिसमें; बहिः—बाहर; नव—नवीन; वधूः—दुलहन; गिरिजाम्—देवी गिरिजा (अम्बिका) के पास; उपेयात्—जाती है।.

चूँकि मैं रनिवास के भीतर रहूँगी अतः आप आश्चर्य करेंगे और सोचेंगे कि ''मैं तुम्हारे कुछ सम्बन्धियों को मारे बिना तुम्हें कैसे ले जा सकता हूँ ?'' किन्तु मैं आपको एक विधि बतलाऊँगी: विवाह के एक दिन पूर्व राजकुल के देवता के सम्मान में एक विशाल जुलूस निकलेगा जिसमें दुलहन नगर के बाहर देवी गिरिजा का दर्शन करने जाती है।

तात्पर्य : चतुर रुक्मिणी ने पहले से श्रीकृष्ण द्वारा उठाई जाने वाली आपत्ति भाँप ली थी। वे निश्चित रूप से शिशुपाल तथा जरासन्ध जैसे धूर्तों का दमन करने का विरोध नहीं करेंगे किन्तु वे नहीं चाहेंगे कि अन्त:पुर में उनका मार्ग रोकने वाले रुक्मिणी के सम्बन्धियों को क्षति पहुँचाई जाय या

उनका वध किया जाय। गिरिजादेवी (दुर्गा) तक जाने तथा लौटने वाले जुलूस से कृष्ण को पूर्ण अवसर प्राप्त हो सकेगा कि रुक्मिणी के सम्बन्धियों को बिना क्षति पहुँचाये रुक्मिणी का हरण कर लें।

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून्व्रतकृशान्शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; अङ्घ्रि—चरणों की; पङ्कज—कमल; रजः—धूलि से; स्नपनम्—स्नान करते हुए; महान्तः—महात्मागण; वाञ्छन्ति—लालायित रहते हैं; उमा-पतिः—उमादेवी के पति, शिवजी; इव—जिस तरह; आत्म—अपने; तमः—अज्ञान के; अपहत्यै—नष्ट करने के लिए; यर्हि—जब; अम्बुज-अक्ष—हे कमल-नयन; न लभेय—मैं नहीं पा सकती; भवत्—आपकी; प्रसादम्—दया; जह्याम्—मुझे त्याग देना चाहिए; असून्—अपने प्राण; व्रत—तपस्या द्वारा; कृशान्—दुर्बल हुए; शत—सौ; जन्मभिः—जन्मों के बाद; स्यात्—हो सके।

"हे कमल-नयन, शिवजी जैसे महात्मा आपके चरणकमलों की धूलि में स्नान करके अपने अज्ञान को नष्ट करना चाहते हैं। यदि मुझे आपकी कृपा प्राप्त नहीं होती तो मैं अपने उस प्राण को त्याग दूँगी जो मेरे द्वारा की जाने वाली कठिन तपस्या के कारण क्षीण हो चुका होगा। तब कहीं सैकड़ों जन्मों तक परिश्रम करने के बाद शायद आपकी कृपा प्राप्त हो सके।"

तात्पर्य : श्रीकृष्ण के प्रति दिव्य रुक्मिणी का असामान्य समर्पण आध्यात्मिक स्तर पर ही सम्भव है, संसारी स्नेह के भंगुर जगत में नहीं।

ब्राह्मण उवाच
इत्येते गुह्यसन्देशा यदुदेव मयाहृताः ।
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणः उवाच—ब्राह्मण ने कहा; इति—इस प्रकार; एते—ये; गुह्य—गुप्त; सन्देशाः—सन्देश; यदु-देव—हे यदुओं के स्वामी; मया—मेरे द्वारा; आहृताः—लाये गये; विमृश्य—विचार करके; कर्तुम्—करणीय; यत्—जो; च—तथा; अत्र—इस बारे में; क्रियताम्—करें; तत्—वह; अनन्तरम्—इसके तुरन्त बाद।

ब्राह्मण ने कहा, हे यदु-देव, मैं यह गोपनीय संदेश अपने साथ लाया हूँ। कृपया सोचें-विचारें कि इन परिस्थितियों में क्या किया जाना चाहिये और उसे तुरन्त ही कीजिये।

तात्पर्य : जब ब्राह्मण आया तो उसने रुक्मिणी द्वारा अपने अन्त:पुर में केवल कृष्ण के निमित्त एकांत में लिखे गये गोपनीय पत्र की सील तोड़ी। रुक्मिणी द्वारा स्वयं चुने गये विश्वासपात्र ब्राह्मण ने

गुह्य सन्देशा: शब्द का प्रयोग करते हुए यह पुष्टि की है कि उसने सन्देश की गोपनीयता का अतिक्रमण नहीं किया है। केवल भगवान् कृष्ण ने ही उसे सुना। चूँकि रुक्मिणी का विवाह निकट था इसलिए कृष्ण को तुरन्त कार्यवाही करनी थी। *यदु-देव* शब्द सूचित करता है कि प्रबल यदुवंश के स्वामी के रूप में कृष्ण को निर्णय लेना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो वे अपने अनुयायियों को साथ ले लेना चाहिए।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''भगवान् कृष्ण के लिए रुक्मिणी-संदेश'' नामक बावनवें अध्याय के श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तिरपन

कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अपहरण

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण किस तरह विदर्भ की राजधानी कुण्डिन पहुँचे और बलशाली शत्रुओं की उपस्थिति में उन्होंने रुक्मिणी का अपहरण किया।

जब कृष्ण ब्राह्मण-दूत से रुक्मिणी का पत्र सुन चुके तो भगवान् ने उससे कहा, ''असल में, मैं रुक्मिणी के प्रति आकृष्ट हूँ और जानता हूँ कि उसका भाई रुक्मी मेरे साथ उसके विवाह का विरोध करता है। इसलिए मुझे सारे निम्नवर्गीय राजाओं का दमन करके उसका अपहरण उसी तरह करना चाहिए जिस तरह लकड़ी में से घर्षण द्वारा अग्नि उत्पन्न की जाती है।'' चूँकि रुक्मिणी तथा शिशुपाल का यह विवाह केवल तीन दिनों के भीतर सम्पन्न होने को था अत: भगवान् कृष्ण ने दारुक से कहा कि वह तुरन्त रथ को तैयार करे। तत्पश्चात् वे तुरन्त विदर्भ के लिए रवाना हो गये जहाँ वे रात-भर यात्रा करने के बाद पहुँच गये।

राजा भीष्मक अपने पुत्र रुक्मी के स्नेह में फँस कर अपनी पुत्री शिशुपाल को देने के लिए तैयार था। उसने सभी आवश्यक तैयारियाँ करवा लीं—उसने नगर को अनेक प्रकार से सजवाया और मुख्य सड़कों तथा चौराहों की सफाई करवाई। चेदिराज दमघोष भी अपने पुत्र के विवाह के लिए सारी आवश्यक तैयारियाँ करके विदर्भ आ पहुँचा। राजा भीष्मक ने उसका समुचित सत्कार किया और ठहरने के लिए स्थान प्रदान किया। अन्य अनेक राजा—यथा जरासन्ध, शाल्व तथा दन्तवक्र—भी इस

अवसर को देखने आये। कृष्ण के इन शत्रुओं ने षड्यंत्र रचा था कि यदि कृष्ण आयें तो दुलहन (वधू) का अपहरण कर लिया जाय। उन्होंने मिलकर कृष्ण से युद्ध करने की तैयारी कर ली और शिशुपाल को उसकी दुलहन दिलाने का पक्का इरादा कर लिया। ये योजनाएँ सुनकर बलदेवजी अपनी सारी सेना एकत्र करके तेजी से कुण्डिनपुर पहुँच गये।

विवाह के पूर्व की रात में रुक्मिणी विश्राम करने जा रही थीं किन्तु तब तक न तो ब्राह्मण आया था न ही कृष्ण। चिन्तामग्न वे अपने दुर्भाग्य को कोस रही थीं। तभी उनका बायाँ अंग फड़का और शुभ शकुन हुआ। दरअसल तुरन्त ही ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा और कृष्ण ने जो कुछ कहा था वह सारा हाल कह सुनाया—इसमें उनके अपहरण का पक्का वायदा भी था।

जब राजा भीष्मक ने सुना कि कृष्ण तथा बलराम आये हैं, तो वह बाजे-गाजे के साथ उनके सत्कार के लिए गया। उसने अनेक उपहारों के साथ उन दोनों की पूजा की और फिर उनके विश्राम के लिए स्थान निर्दिष्ट किया। इस तरह राजा ने इन दोनों की वैसी ही आवभगत की जैसी कि अन्य असंख्य राजसी अतिथियों के लिए की थी।

विदर्भ के लोग भगवान् कृष्ण को देखकर परस्पर बातें करने लगे कि वे ही रुक्मिणी के योग्य पति हैं। वे प्रार्थना करने लगे कि उनके जो भी पुण्यकर्म हों उनके बल पर कृष्ण का रुक्मिणी से पाणिग्रहण हो जाय।

जब श्रीमती रुक्मिणीदेवी का श्री अम्बिका के मन्दिर जाने का समय आ गया तो वह अनेक रक्षकों से घिर कर वहाँ गईं। वहाँ पर देवी को प्रणाम करके रुक्मिणी ने प्रार्थना की कि पति-रूप में उन्हें श्रीकृष्ण प्राप्त हों। तत्पश्चात् वे अपनी एक दासी का हाथ पकड़ कर अम्बिका मन्दिर से बाहर आईं। उनकी अकथनीय सुन्दरता देखकर वहाँ पर उपस्थित बड़े बड़े वीरों ने अपने हथियार डाल दिये और पृथ्वी पर अचेत होकर धराशायी हो गये। रुक्मिणी बड़ी होशियारी से तब तक चलती गईं जब तक उन्हें कृष्ण दिखाई नहीं पड़ गये। तब सबों के देखते देखते श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को अपने रथ में चढ़ा लिया। जिस तरह सियारों के झुंड में से सिंह अपना उचित भाग ले लेता है उसी तरह उन्होंने सारे विरोध करने वाले राजाओं को पीछे हटाकर अपना तथा अपने संगियों का रास्ता धीरे-धीरे बना लिया। जरासन्ध तथा अन्य राजा अपनी पराजय तथा अनादर को न सह सकने के कारण अपने को जोर-जोर

से धिक्कारने लगे। इस अपयश को उन्होंने सिंह के भाग को एक क्षुद्र पशु द्वारा चुराये जाने के समान समझा।

श्रीशुक उवाच
वैदर्भ्याः स तु सन्देशं निशम्य यदुनन्दनः ।
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; वैदर्भ्याः—विदर्भ की राजकुमारी का; सः—वह; तु—तथा; सन्देशम्—गुप्त सन्देश; निशम्य—सुनकर; यदु-नन्दनः—यदुवंशी श्रीकृष्ण ने; प्रगृह्य—पकड़ कर; पाणिना—अपने हाथ से; पाणिम्—हाथ (ब्राह्मण-दूत का); प्रहसन्—मुसकाते हुए; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह कुमारी वैदर्भी का गुप्त सन्देश सुनकर यदुनन्दन ने ब्राह्मण का हाथ अपने हाथ में ले लिया और मुसकाते हुए उससे इस प्रकार बोले।

श्रीभगवानुवाच
तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ।
वेदाहमुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; तथा—इसी तरह से; अहम्—मैं; अपि—भी; तत्—उस पर स्थिर किये; चित्तः—अपने मन को; निद्राम्—नींद; च—तथा; न लभे—नहीं पाता; निशि—रात में; वेद—जानता हूँ; अहम्—मैं; रुक्मिणा—रुक्मी द्वारा; द्वेषात्—शत्रुतावश; मम—मेरी; उद्वाहः—विवाह; निवारितः—रोका गया।

भगवान् ने कहा : जिस तरह रुक्मिणी का मन मुझ पर लगा है उसी तरह मेरा मन उस पर लगा है। मैं रात में सो तक नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि द्वेषवश रुक्मी ने हमारा विवाह रोक दिया है।

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे ।
मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; आनयिष्ये—मैं यहाँ लाऊँगा; उन्मथ्य—मथ कर; राजन्य—राजवर्ग के; अपसदान्—अयोग्य सदस्यों को; मृधे—युद्ध में; मत्—मेरे प्रति; पराम्—पूर्णतया समर्पित; अनवद्य—निर्विवाद; अङ्गीम्—शारीरिक सौन्दर्य वाली को; एधसः—अग्नि जलाने वाला काष्ठ; अग्नि—अग्नि की; शिखाम्—लपटों; इव—सदृश।

वह अपने आपको एकमात्र मेरे प्रति समर्पित कर चुकी है और उसका सौन्दर्य निष्कलंक है। मैं उन अयोग्य राजाओं को युद्ध में उसी तरह मथ कर उसे यहाँ लाऊँगा जिस तरह काठ से प्रज्वलित अग्नि उत्पन्न की जाती है।

तात्पर्य : जब काष्ठ में से प्रसुप्त अग्नि प्रकट की जाती है, तो लपटें निकलती हैं और इस क्रिया में काष्ठ जल जाता है। इसी तरह भगवान् ने निर्भय होकर भविष्यवाणी की कि, रुक्मिणी उनसे पाणिग्रहण करने के लिए आगे आयेगी और ऐसा होने पर दुष्ट राजागण कृष्ण की संकल्प-अग्नि में जल जायेंगे।

श्रीशुक उवाच
उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ।
रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; उद्वाह—विवाह की; ऋक्षम्—लग्न; च—तथा; विज्ञाय—जान कर; रुक्मिण्याः—रुक्मिणी के; मधुसूदनः—भगवान् कृष्ण ने; रथः—रथ; संयुज्यताम्—जोता जाय; आशु—तुरन्त; दारुक—हे दारुक; इति—इस प्रकार; आह—कहा; सारथिम्—अपने सारथी से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् मधुसूदन रुक्मिणी के विवाह की सही सही लग्न का समय भी समझ गये। अतः उन्होंने अपने सारथी से कहा, ''हे दारुक, मेरा रथ तुरन्त तैयार करो।''

स चाश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ।
युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५॥

शब्दार्थ

सः—वह, दारुक; च—तथा; अश्वैः—घोड़ों से; शैब्य-सुग्रीव-मेघपुष्प-बलाहकैः—शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा बलाहक नामक; युक्तम्—जोता; रथम्—रथ को; उपानीय—लाकर; तस्थौ—खड़ा हुआ; प्राञ्जलिः—आदरपूर्वक हाथ जोड़ कर; अग्रतः—सामने।

दारुक भगवान् का रथ ले आया जिसमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा बलाहक नामक घोड़े जुते थे। फिर वह अपने हाथ जोड़ कर भगवान् कृष्ण के सामने खड़ा हो गया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती *पद्म पुराण* से उद्धरण देते हैं जिसमें भगवान् कृष्ण के रथ के घोड़ों का वर्णन हुआ है—

शैब्यस्तु शुकपत्राभः सुग्रीवो हेमपिंगलः।
मेघपुष्पस्तु मेघाभः पाण्डुरो च बलाहकः॥

''शैब्य तोते के पंखों जैसे रंग वाला था, सुग्रीव पीला सुनहरा था, मेघपुष्प बादल के रंग का और बलाहक कुछ कुछ सफेद रंग का था।''

आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ।
आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

आरुह्य—चढ़ कर; स्यन्दनम्—अपने रथ में; शौरिः—कृष्ण; द्विजम्—ब्राह्मण को; आरोप्य—बैठाकर; तूर्ण-गैः—तेज; आनर्तात्—आनर्त जिले से; एक—एकही; रात्रेण—रात में; विदर्भान्—विदर्भ राज्य तक; अगमत्—गये; हयैः—अपने घोड़ों से।

भगवान् शौरि अपने रथ में सवार हुए और फिर ब्राह्मण को चढ़ाया। तत्पश्चात् भगवान् के तेज घोड़े एक रात में ही उन्हें आनर्त जिले से विदर्भ ले गये।

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशानुगः ।
शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

राजा—राजा; सः—वह, भीष्मक; कुण्डिन-पतिः—कुण्डिन का स्वामी; पुत्र—अपने पुत्र के; स्नेह—स्नेह के; वश—वशीभूत; अनुगः—आज्ञापालन करते हुए; शिशुपालाय—शिशुपाल को; स्वाम्—अपनी; कन्याम्—पुत्री; दास्यन्—देने ही वाला; कर्माणि—आवश्यक कार्य; अकारयत्—कर चुका था।

कुण्डिन का स्वामी राजा भीष्मक अपने पुत्र के स्नेह के वशीभूत होकर अपनी कन्या शिशुपाल को देने ही वाला था। राजा ने समस्त आवश्यक तैयारियाँ पूरी कर ली थीं।

तात्पर्य : इस सन्दर्भ में श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि राजा भीष्मक को शिशुपाल से कोई विशेष लगाव न था प्रत्युत वह अपने पुत्र रुक्मी के प्रति अनुरागवश ऐसा कर रहा था।

पुरं सम्मृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ।
चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलङ्कृतम् ॥ ८ ॥
स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोऽम्बरभूषितैः ।
जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

पुरम्—नगरी को; सम्मृष्ट—अच्छी तरह साफ कराया; संसिक्त—तथा जल छिड़काया; मार्ग—मुख्य सड़कें; रथ्या—व्यावसायिक सड़कें; चतुः-पथम्—तथा चौराहों को; चित्र—रंगबिरंगे; ध्वज—झंडियों; पताकाभिः—पताकाओं से; तोरणैः—तथा गोल दरवाजों से; समलङ्कृतम्—सजाया; स्रक्—रत्नजटित हारों से; गन्ध—सुगन्धित वस्तुएँ, यथा चन्दन-लेप; माल्य—फूल की मालाएँ; आभरणैः—तथा अन्य आभूषणों से; विरजः—स्वच्छ; अम्बर—वस्त्र से; भूषितैः—सजाये गये; जुष्टम्—युक्त; स्त्री—स्त्रियों; पुरुषैः—तथा पुरुषों से; श्री-मत्—ऐश्वर्यवान्; गृहैः—घरों से; अगुरु-धूपितैः—अगुरु धूप से सुगन्धित।

राजा ने मुख्य मार्गों, व्यापारिक सड़कों तथा चौराहों को ठीक से साफ कराया और तब उन पर जल छिड़कवाया। उसने विजय तोरणों तथा खंभों पर रंगबिरंगी झंडियों से नगर को

सजवाया। नगर के स्त्री-पुरुषों ने साफ-सुथरे वस्त्र पहने और अपने अपने शरीरों पर सुगन्धित चन्दन-लेप लगाया और बहुमूल्य हार, फूल की मालाएँ तथा रत्नजटित आभूषण धारण किये। उनके भव्य घर अगुरु की सुगन्ध से भर गये।

तात्पर्य : जब कच्ची सड़कों पर पानी का छिड़काव किया जाता है, तो धूल बैठ जाती है और सड़कें सुदृढ़ तथा चिकनी हो जाती हैं। राजा भीष्मक ने विवाह के लिए पूरी तैयारियाँ कीं और कृष्ण द्वारा सुन्दरी रुक्मिणीदेवी के अपहरण के लिए भूमिका तैयार कर दी।

पितृन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ।
भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥ ॥

शब्दार्थ

पितृन्—पूर्वजों; देवान्—देवतागण; समभ्यर्च्य—ठीक से पूजा की; विप्रान्—ब्राह्मणों को; च—तथा; विधि-वत्—विधि-विधानों के अनुसार; नृप—हे राजा (परीक्षित); भोजयित्वा—भोजन कराकर; यथा—जिस तरह; न्यायम्—उचित है; वाचयाम् आस—उच्चारित किया था; मङ्गलम्—शुभ मंत्र।

हे राजन्, महाराज भीष्मक ने पितरों, देवताओं तथा ब्राह्मणों को भलीभाँति भोजन कराकर उनकी विधिवत पूजा की। तत्पश्चात् उसने दुलहन के मंगल के लिए परम्परागत मंत्रों का उच्चारण करवाया।

सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम् ।
आहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सु-स्नाताम्—ठीक से स्नान कराई गई; सु-दतीम्—सुन्दर दाँतों वाली; कन्याम्—दुलहन को; कृत—सम्पन्न करके; कौतुक-मङ्गलाम्—मांगलिक वैवाहिक हार पहनाने का उत्सव; आहत—कोरा; अंशुक—वस्त्र की; युग्मेन—जोड़ी से; भूषिताम्—अलंकृत; भूषण—गहनों से; उत्तमैः—सुन्दर सुन्दर।

दुलहन ने अपने दाँत साफ किये और फिर स्नान किया और इसके बाद उसने मांगलिक वैवाहिक हार धारण किया। तत्पश्चात् उसे उत्तम कोटि के नये वस्त्रों की जोड़ी पहनाई गई और अत्यन्त सुन्दर रत्नजटित गहनों से सजाया गया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार मांगलिक उत्सवों पर केवल साफ-सुथरे कोरे वस्त्र धारण किये जाने चाहिए।

चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ।
पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

चक्रुः—किया; साम-ऋग्-यजुः—साम, ऋग तथा यजुर्वेदों के; मन्त्रैः—मंत्रों से; वध्वाः—दुलहन या वधू की; रक्षाम्—रक्षा; द्विज-उत्तमः—उत्तम ब्राह्मण; पुरोहितः—पुरोहित; अथर्व-वित्—अथर्ववेद के मंत्रों में पटु; वै—निस्सन्देह; जुहाव—घी की आहुति डाली; ग्रह—नियन्ता ग्रहों को; शान्तये—शान्त करने के लिए।

उत्तमोत्तम ब्राह्मणजनों ने वधू की रक्षा के लिए ऋग्, साम तथा यजुर्वेदों के मंत्रों का उच्चारण किया और अथर्ववेद में पटु पुरोहित ने नियन्ता ग्रहों को शान्त करने के लिए आहुतियाँ दीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि अथर्ववेद प्राय: प्रतिकूल ग्रहों की शान्ति से सम्बन्धित है।

हिरण्यरूप्य वासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ।
प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

हिरण्य—सोना; रूप्य—चाँदी; वासांसि—तथा वस्त्र; तिलान्—तिल; च—तथा; गुड—गुड़; मिश्रितान्—से मिश्रित; प्रादात्—दिया; धेनूः—गौवें; च—भी; विप्रेभ्यः—ब्राह्मणों को; राजा—राजा भीष्मक ने; विधि—विधि-विधान; विदाम्—जानने वालों में; वरः—श्रेष्ठ।

राजा ने विधि-विधानों के ज्ञान में दक्ष व अद्वितीय ब्राह्मणों को सोना, चाँदी, वस्त्र, गौवें तथा गुड़-मिश्रित तिलों की दक्षिणा दी।

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ।
कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; चेदि-पतिः—चेदि का राजा; राजा दमघोषः—राजा दमघोष ने; सुताय—अपने पुत्र (शिशुपाल) के लिए; वै—निस्सन्देह; कारयाम् आस—कराया था; मन्त्र-ज्ञैः—मंत्र जानने वालों के द्वारा; सर्वम्—सबकुछ; अभ्युदय—उसके उत्थान के लिए; उचितम्—उपयुक्त।

चेदि नरेश राजा दमघोष ने भी अपने पुत्र की समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए समस्त कृत्यों को सम्पन्न करने के लिए मंत्रोच्चार में पटु ब्राह्मणों को लगाया था।

मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः ।
पत्त्यश्वसङ्कुलैः सैन्यैः परीतः कुण्दीनं ययौ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

मद—मस्तक से चूने वाला द्रव; च्युद्भिः—चूता हुआ; गज—हाथियों के; अनीकैः—समूह से; स्यन्दनैः—रथों के साथ; हेम—सुनहला; मालिभिः—मालाओं से सुसज्जित; पत्ति—पैदल सैनिकों; अश्व—तथा घोड़ों सहित; सङ्कुलैः—एकत्रित; सैन्यैः—सेनाओं द्वारा; परीतः—साथ साथ; कुण्डिनम्—भीष्मक की राजधानी कुण्डिन में; ययौ—गया।

राजा दमघोष ने मद टपकाते हाथियों, लटकती सुनहरी साँकलों वाले रथों तथा असंख्य घुड़सवार और पैदल सैनिकों के साथ कुण्डिन की यात्रा की।

तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ।
निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (दमघोष) को; वै—दरअसल; विदर्भ-अधिपतिः—विदर्भ के स्वामी भीष्मक ने; समभ्येत्य—बढ़कर अगवानी करके; अभिपूज्य—आदर करके; च—तथा; निवेशयाम् आस—ठहराया; मुदा—हर्षपूर्वक; कल्पित—बनवाया; अन्य—विशेष; निवेशने—जनवासे में।

विदर्भराज भीष्मक नगर से बाहर गये और राजा दमघोष से विशेष सत्कार के प्रतीकों के साथ मिले। फिर भीष्मक ने दमघोष को इस अवसर के लिए विशेष रूप से निर्मित आवास-ग्रह में ठहराया।

तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्रो विदूरथः ।
आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; शाल्वः जरासन्धः दन्तवक्रः विदूरथः—शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र तथा विदूरथ; आजग्मुः—आये; चैद्य—शिशुपाल के; पक्षीयाः—पक्षधर; पौण्ड्रक—पौण्ड्रक; आद्याः—इत्यादि; सहस्रशः—हजारों।

शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र तथा विदूरथ जो शिशुपाल के समर्थक थे, वे सभी पौण्ड्रक तथा हजारों अन्य राजाओं के साथ आये।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण के जीवन के इतिहास से परिचित लोग इस श्लोक में दिये सभी नामों को झटपट पहचान लेंगे। यहाँ पर उल्लिखित सारे राजा श्रीकृष्ण से कटु शत्रुता रखते थे और किसी न किसी रूप में उनका विरोध करते थे। किन्तु शिशुपाल के इस प्रस्तावित विवाह के अवसर पर इन सबों को पराजित और निराश होना होगा।

कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ।
यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥

योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ।
आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-राम-द्विषः—कृष्ण तथा बलराम से द्वेष करने वालों ने; यत्ताः—तैयारी की; कन्याम्—दुलहन को; चैद्याय—शिशुपाल के लिए; साधितुम्—प्राप्त करने के लिए; यदि—यदि; आगत्य—आकर; हरेत्—हरण कर ली जाय; कृष्णः—कृष्ण; राम—बलराम; आद्यैः—इत्यादि के द्वारा; यदुभिः—यादवों के; वृतः—साथ में; योत्स्यामः—हम युद्ध करेंगे; संहताः—साथ होकर; तेन—उसके साथ; इति—इस प्रकार; निश्चित-मानसाः—कृतसंकल्प; आजग्मुः—आये; भू-भुजः—राजा; सर्वे—सभी; समग्र—पूर्ण; बल—सैन्य-शक्ति; वाहनाः—तथा वाहनों के साथ।

शिशुपाल को दुलहन दिलाने के लिए कृष्ण तथा बलराम से ईर्ष्या करने वाले राजाओं ने परस्पर यह निश्चय किया, "यह कृष्ण यदि बलराम तथा अन्य यदुओं के साथ दुलहन का अपहरण करने यहाँ आता है, तो हम सब मिलकर उससे युद्ध करेंगे।" अतः वे ईर्ष्यालु राजा अपनी सारी सेनाएँ तथा सारे सैन्य वाहन लेकर विवाह में गये।

तात्पर्य : *संहताः* का सामान्य अर्थ "दृढ़ता से बँधा हुआ" होता है किन्तु इसका अर्थ "पूरी तरह पददलित या मारा गया" भी हो सकता है। इस तरह यद्यपि कृष्ण के शत्रु एकजुट और बलशाली—*संहताः* पहले अर्थ में—थे किन्तु वे भगवान् का ठीक से मुकाबला नहीं कर पाये अतः वे पददलित होकर मारे जायेंगे—*संहताः* दूसरे अर्थ में।

श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीय नृपोद्यमम् ।
कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः ॥ २० ॥
बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ।
त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; एतत्—यह; भगवान् रामः—बलराम; विपक्षीय—शत्रुपक्ष के; नृप—राजाओं की; उद्यमम्—तैयारियाँ; कृष्णम्—कृष्ण को; च—तथा; एकम्—अकेला; गतम्—गया हुआ; हर्तुम्—हरण करने केलिए; कन्याम्—कन्या को; कलह—युद्ध की; शङ्कितः—आशंका से; बलेन—सेना; महता—विशाल; सार्धम्—साथ; भ्रातृ—अपने भाई के प्रति; स्नेह—स्नेह में; परिप्लुतः—निमग्न; त्वरितः—तुरन्त; कुण्डिनम्—कुण्डिन को; प्रागात्—गये; गज—हाथी; अश्व—घोड़े; रथ—रथ; पत्तिभिः—पैदल सेना सहित।

जब बलराम ने विपक्षी राजाओं की इन तैयारियों तथा कृष्ण द्वारा दुलहन का हरण करने के लिए अकेले ही प्रस्थान किये जाने के बारे में सुना तो उन्हें शंका होने लगी कि कहीं युद्ध न ठन जाय। अतः वे अपने भाई के स्नेह में निमग्न होकर अपनी विशाल सेना के साथ तेजी से कुण्डिन के लिए कूच कर गये। उनकी सेना में पैदल तथा हाथी, घोड़े और रथ पर सवार सैनिक थे।

भीष्मकन्या वरारोहा काङ्क्षन्त्यागमनं हरेः ।
प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

भीष्म-कन्या—भीष्मक-पुत्री ने; वर-आरोहा—सुन्दर नितम्बों वाली; काङ्क्षन्ती—प्रतीक्षा करती; आगमनम्—आने की; हरेः—कृष्ण के; प्रत्यापत्तिम्—वापसी; अपश्यन्ती—न देखती हुई; द्विजस्य—ब्राह्मण की; अचिन्तयत्—सोचा; तदा—तब।

भीष्मक की सुप्रिया पुत्री कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक कर रही थी किन्तु जब उसने ब्राह्मण को वापस आए हुए नहीं देखा तो उसने इस प्रकार सोचा।

अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ।
नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ।
सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्सन्देशहरो द्विजः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

अहो—हाय; त्रि-याम—तीन पहर (नौ घंटे) अर्थात् पूरी रात; अन्तरितः—बीत चुकी; उद्वाहः—विवाह; मे—मेरा; अल्प—अपर्याप्त; राधसः—सौभाग्य; न आगच्छति—नहीं आता है; अरविन्द-अक्षः—कमल-नेत्रों वाले कृष्ण; न—नहीं; अहम्—मैं; वेद्मि—जानती हूँ; अत्र—इस; कारणम्—कारण के लिए; सः—वह; अपि—भी; न आवर्तते—नहीं लौटा है; अद्य अपि—अब भी; मत्—मेरे; सन्देश—सन्देश का; हरः—ले जाने वाला; द्विजः—ब्राह्मण।

[राजकुमारी रुक्मिणी ने सोचा] : हाय! रात बीत जाने पर मेरा विवाह होना है! मैं कितनी अभागिनी हूँ! कमल-नेत्र कृष्ण अभी भी नहीं आये। मैं नहीं जानती क्यों? यहाँ तक कि ब्राह्मण-दूत भी अभी तक नहीं लौटा।

तात्पर्य : जैसाकि श्लोक से प्रकट है और जैसाकि श्रील श्रीधर स्वामी द्वारा पुष्टि हुई है वर्तमान घटना सूर्योदय के पूर्व घटती है।

अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किञ्चिज्जुगुप्सितम् ।
मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अपि—शायद; मयि—मुझमें; अनवद्य—निर्दोष; आत्मा—मन तथा शरीर वाला; दृष्ट्वा—देखकर; किञ्चित्—कुछ कुछ; जुगुप्सितम्—घृणित; मत्—मेरा; पाणि—हाथ; ग्रहणे—ग्रहण करने के लिए; नूनम्—निस्सन्देह; न आयाति—नहीं आया है; हि—निश्चय ही; कृत-उद्यमः—पहले ऐसा चाहते हुए भी।

लगता है कि निर्दोष प्रभु ने यहाँ आने के लिए तैयार होते समय भी मुझमें कुछ घृणित बात देखी हो, जिससे वे मेरा पाणिग्रहण करने नहीं आये।

तात्पर्य : राजकुमारी रुक्मिणी ने निर्भीक होकर कृष्ण को अपना अपहरण करने के लिए आमंत्रित किया था। जब रुक्मिणी ने देखा कि वे नहीं आये तो वह भयभीत हुई कि शायद उन्होंने उसका प्रस्ताव

ठुकरा दिया क्योंकि हो सकता है कि उसमें कोई अग्राह्य दोष दिखा हो। जैसाकि यहाँ व्यक्त हुआ है, भगवान् *अनवद्य* अर्थात् निर्दोष हैं अत: यदि उन्हें रुक्मिणी में कोई दोष दिखा हो तो वह उनके लिए अयोग्य दुलहन सिद्ध होगी। उस युवती राजकुमारी के लिए ऐसी चिन्ता करना स्वाभाविक था। यही नहीं, यदि श्रीकृष्ण ने सचमुच ऐसा निर्णय कर लिया है, तो ब्राह्मण के लिए स्वाभाविक होगा कि रुक्मिणी की प्रतिक्रिया के विषय में भयभीत हो यदि वह ऐसा समाचार उन तक लाता।

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ।
देवी वा विमुखी गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥ २५॥

शब्दार्थ

दुर्भगायाः—अभागी; न—नहीं; मे—मुझ पर; धाता—स्रष्टा (ब्रह्मा)विधाता; न—नहीं; अनुकूलः—अनुकूल; महा-ईश्वरः—शिवजी; देवी—देवी (उनकी प्रिया); वा—अथवा; विमुखी—विरुद्ध; गौरी—गौरी; रुद्राणी—रुद्र की पत्नी; गिरि-जा—हिमालय की पुत्री; सती—सती, जो पूर्वजन्म में दक्ष पुत्री थी और जिसने अपना शरीर-त्याग किया था।

मैं घोर अभागिनी हूँ क्योंकि न तो स्रष्टा विधाता मेरे अनुकूल है, न ही महेश्वर (शिवजी) अथवा शायद शिव-पत्नी देवी जो गौरी, रुद्राणी, गिरिजा तथा सती नाम से विख्यात हैं, मेरे विपरीत हो गई हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि हो सकता है रुक्मिणी ने सोचा हो, ''यदि कृष्ण आना भी चाह रहे हों तो सम्भवत: रास्ते में स्रष्टा ब्रह्मा ने रोक लिया हो क्योंकि वे मेरे अनुकूल नहीं हैं। लेकिन वे प्रतिकूल क्यों होने लगे? शायद ये महेश्वर शिवजी हों जिनकी मैंने कुछ अवसरों पर ठीक से पूजा नहीं की जिससे वे क्रुद्ध हो गए हों। लेकिन वे तो महेश्वर हैं—महान् नियंता—अत: वे मुझ जैसी क्षुद्र और बेसमझ लड़की से क्यों क्रुद्ध होने लगे?

शायद यह शिव-पत्नी गौरीदेवी हैं, जो मुझ पर अप्रसन्न हैं यद्यपि मैं नित्य ही उनकी पूजा करती रही हूँ। हाय! मैंने उनका किस तरह अपमान किया है कि वे मुझसे रूठ गई हैं? किन्तु वे ठहरी रुद्राणी जिसका अर्थ है 'हरएक को रुलाने वाली।' अत: शायद वे और शिवजी मुझे रुलाना चाहते हैं। किन्तु यह देखते हुए कि मैं कितनी दुखियारी हूँ और अपना प्राण त्यागने वाली हूँ वे मुझ पर दयालु क्यों नहीं होते? इसका कारण यही हो सकता है कि वे गिरिजा हैं, गोद ली हुई पुत्री हैं, तो फिर वे दयालु क्यों होने लगीं? उन्होंने अपने सती अवतार में अपना शरीर छोड़ा था, अतएव वे शायद यही चाहती हैं कि मैं भी अपना शरीर छोड़ दूँ।''

इस तरह आचार्य ने काव्य-संवेदनशीलता की अनुभूति के साथ इस श्लोक में विविध नामों की व्याख्या की है।

एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृतमानसा ।
न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; चिन्तयती—सोचती हुई; बाला—युवती; गोविन्द—कृष्ण द्वारा; हृत—चुराया हुआ; मानसा—मन से; न्यमीलयत—बन्द कर लिया; काल—समय; ज्ञा—जानने वाली; नेत्रे—अपनी आँखें; च—तथा; अश्रु-कला—आँसू से; आकुले—डबडबाये।

इस तरह से सोच रही तरुण बाला ने, जिसका मन कृष्ण ने चुरा लिया था, यह सोचकर कि अब भी समय है, अपने अश्रुपूरित नेत्र बन्द कर लिये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने *कालज्ञा* शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है : "[रुक्मिणी ने सोचा] : यह गोविन्द के आने का सही समय भी नहीं है।" और इस तरह उसे कुछ ढाढ़स बँधा।

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप ।
वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; वध्वाः—बधु, दुलहन; प्रतीक्षन्त्याः—प्रतीक्षारत; गोविन्द-आगमनम्—कृष्ण का आगमन; नृप—हे राजा (परीक्षित); वामः—बाँई; ऊरुः—जाँघ; भुजः—बाँह; नेत्रम्—तथा आँख; अस्फुरन्—फड़कने लगीं; प्रिय—वांछित; भाषिणः—बताती हुई।

हे राजन्, जब वह दुलहन गोविन्द के आगमन की इस तरह प्रतीक्षा कर रही थी तो उसे लगा कि उसकी बाईं जाँघ, बाईं भुजा तथा बाईं आँख फड़क रही हैं। यह इसका संकेत था कि कुछ प्रिय घटना घटने वाली है।

अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ।
अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीम्ददर्श ह ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात; कृष्ण-विनिर्दिष्टः—कृष्ण द्वारा आदेश दिया गया; सः—वह; एव—ही; द्विज—विद्वान ब्राह्मण; सत्-तमः—परम शुद्ध; अन्तः-पुर—भीतरी महल में; चरीम्—ठहरी हुई; देवीम्—देवी रुक्मिणी को; राज—राजा की; पुत्रीम्—पुत्री को; ददर्श ह—देखा।

तभी वह शुद्धतम विद्वान ब्राह्मण, कृष्ण के आदेशानुसार दिव्य राजकुमारी रुक्मिणी से भेंट करने राजमहल के अन्तःपुर में आया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार श्रीकृष्ण नगर के बाहर उद्यान में आ चुके थे और रुक्मिणी की चिन्ता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने ब्राह्मण को बताया था कि वह जाकर उनके आगमन का समाचार दे।

सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ।
आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

स—वह; तम्—उसको; प्रहृष्ट—प्रसन्न; वदनम्—मुख वाला; अव्यग्र—व्यग्रतारहित; आत्म—जिसके शरीर की; गतिम्—चाल; सती—साध्वी तरुणी; आलक्ष्य—देखकर; लक्षण—लक्षणों की; अभिज्ञा—जानने वाली; समपृच्छत्—पूछा; शुचि—शुद्ध; स्मिता—मुसकान सहित।

ब्राह्मण के प्रसन्न मुख तथा शान्त चाल को देखकर ऐसे लक्षणों की दक्ष-व्याख्या करने वाली साध्वी रुक्मिणी ने शुद्ध मन्द-हास के साथ उससे पूछा।

तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् ।
उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ० ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उससे; आवेदयत्—सूचना दी; प्राप्तम्—आकर; शशंस—बतलाया; यदु-नन्दनम्—यदुओं के पुत्र कृष्ण ने; उक्तम्—जो कहा था; च—तथा; सत्य—आश्वासन के; वचनम्—शब्द; आत्म—उसके साथ; उपनयनम्—विवाह के; प्रति—विषय में।

ब्राह्मण ने उनसे यदुनन्दन के आगमन की सूचना सुनाई और उनके साथ विवाह करने के भगवान् के वचन को कह सुनाया।

तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ।
न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ १ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको, कृष्ण को; आगतम्—आया हुआ; समाज्ञाय—अच्छी तरह समझकर; वैदर्भी—रुक्मिणी; हृष्ट—प्रफुल्लित; मानसा—मन वाली; न पश्यन्ती—न देखती हुई; ब्राह्मणाय—ब्राह्मण को; प्रियम्—प्रिय; अन्यत्—कुछ और; ननाम—नमस्कार किया; सा—उसने।

राजकुमारी वैदर्भी कृष्ण का आगमन सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुई। पास में देने योग्य कोई उपयुक्त वस्तु न पाकर उसने ब्राह्मण को केवल नमस्कार किया।

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ।
अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

प्राप्तौ—आया हुआ; श्रुत्वा—सुनकर; स्व—अपनी (मेरी); दुहितुः—पुत्री का; उद्वाह—विवाह; प्रेक्षण—देखने के लिए; उत्सुकौ—उत्सुक; अभ्ययात्—आगे आया; तूर्य—बाजे; घोषेण.—शब्द से; राम-कृष्णौ—बलराम तथा कृष्ण के पास; समर्हणैः—पर्याप्त भेंटों सहित।

जब राजा ने सुना कि कृष्ण तथा बलराम आये हैं और वह उसकी पुत्री का विवाह देखने के लिए उत्सुक हैं, तो वह बाजे-गाजे के साथ उनका सत्कार करने के लिए पर्याप्त भेंटें लेकर आगे बढ़ा।

मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः ।
उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ॥

शब्दार्थ

मधु-पर्कम्—दूध तथा शहद का मिश्रण; उपानीय—लेकर; वासांसि—वस्त्र; विरजांसि—स्वच्छ; सः—उसने; उपायनानि—भेंटें; अभीष्टानि—वांछित; विधि-वत्—शास्त्रीय विधियों के अनुसार; समपूजयत्—पूजा की।

उन्हें मधुपर्क, नये वस्त्र तथा अन्य वांछित भेंटें देकर उसने निर्धारित विधियों के अनुसार उनकी पूजा की।

तयोर्निवेशनं श्रीमदुपाकल्प्य महामतिः ।
ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ४॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों के लिए; निवेशनम्—ठहरने का स्थान; श्री-मत्—ऐश्वर्यशाली, भव्य; उपाकल्प्य—व्यवस्था करके; महा-मतिः—उदार; स—सहित; सैन्ययोः—उनके सैनिकों; स—सहित; अनुगयोः—उनके निजी संगियों; आतिथ्यम्—सत्कार; विदधे—किया; यथा—उचित रीति से।

उदार राजा ने दोनों प्रभुओं के लिए तथा उनकी सेना एवं उनके संगियों के लिए भव्य आवासों की व्यवस्था की। इस तरह उसने उनको समुचित आतिथ्य प्रदान किया।

एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ।
यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ५॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; राज्ञाम्—राजाओं के लिए; समेतानाम्—एकत्र हुए; यथा—के अनुसार; वीर्यम्—उनके पराक्रम; यथा—के अनुसार; वयः—उनकी आयु; यथा—के अनुसार; बलम्—उनकी शक्ति; यथा—के अनुसार; वित्तम्—उनकी सम्पत्ति; सर्वैः—समस्त; कामैः—इच्छित वस्तुओं से; समर्हयत्—उनका आदर किया।

इस तरह भीष्मक ने इस अवसर पर एकत्र हुए राजाओं को सारी वांछित वस्तुएँ प्रदान कीं और उनकी राजनैतिक शक्ति, आयु, शारीरिक बल तथा सम्पत्ति के अनुसार उनका सम्मान

किया।

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ।
आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

कृष्णम्—कृष्ण को; आगतम्—आया हुआ; आकर्ण्य—सुनकर; विदर्भ-पुर—विदर्भ की राजधानी के; वासिनः—निवासी; आगत्य—आकर; नेत्र—अपनी आँखों की; अञ्जलिभिः—अंजुलियों से; पपुः—पिया; तत्—उसका; मुख—मुँह; पङ्कजम्—कमल।

जब विदर्भवासियों ने सुना कि भगवान् कृष्ण आए हैं, तो वे सब उनका दर्शन करने गये। अपनी आँखों की अंजुली से उन्होंने उनके कमलमुख के मधु का पान किया।

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ।
असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अस्य—उसकी; एव—एकमात्र; भार्या—पत्नी; भवितुम्—होने के लिए; रुक्मिणी—रुक्मिणी; अर्हति—पात्र है; न अपरा—कोई दूसरी नहीं; असौ—वह; अपि—भी; अनवद्य—निर्दोष; आत्मा—स्वरूप; भैष्म्याः—भीष्मक की पुत्री के लिए; समुचितः—उपयुक्त; पतिः—पति।

[नगरवासियों ने कहा] एकमात्र रुक्मिणी उनकी पत्नी बनने के योग्य हैं और वे भी दोषरहित सौन्दर्यवान होने से राजकुमारी भैष्मी के लिए एकमात्र उपयुक्त पति हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार इस श्लोक में विभिन्न नागरिकों के कथन सम्मिलित हैं। कुछ लोगों ने संकेत किया कि रुक्मिणी कृष्ण के लिए उपयुक्त पत्नी है, दूसरों ने कहा कि उनके सिवाय अन्य कोई इसके योग्य नहीं है। इसी प्रकार कुछेक ने कहा कि कृष्ण रुक्मिणी के सर्वाधिक योग्य पति हैं और अन्यों ने कहा कि उनके अतिरिक्त अन्य कोई योग्य पति है ही नहीं।

किञ्चित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ।
अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

किञ्चित्—तनिक भी; सु-चरितम्—पुण्य कर्म; यत्—जो भी; नः—हमारे; तेन—उसी से; तुष्टः—संतुष्ट; त्रि-लोक—तीनों लोक का; कृत्—स्रष्टा, विधाता; अनुगृह्णातु—दया दिखलाये; गृह्णातु—जिससे ग्रहण करे; वैदर्भ्याः—रुक्मिणी का; पाणिम्—हाथ; अच्युतः—कृष्ण।

हम लोगों ने जो भी पुण्य कर्म किये हों उनसे तीनों लोकों के स्रष्टा अच्युत प्रसन्न हों और वे वैदर्भी का पाणिग्रहण करने की अनुकम्पा दिखलायें।

तात्पर्य : विदर्भ के भक्त नागरिकों ने प्रेमवश अपने समस्त संचित पुण्य राजकुमारी रुक्मिणी को अर्पित कर दिये। वे भगवान् कृष्ण के साथ उनका विवाह देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे।

एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः ।
कन्या चान्तःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्ताम्बिकालयम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; प्रेम—शुद्ध प्रेम की; कला—वृद्धि से; बद्धाः—बँधे हुए; वदन्ति स्म—बोल रहे थे; पुर-ओकसः—नगरनिवासी; कन्या—दुलहन; च—तथा; अन्तः-पुरात्—अन्तःपुर से; प्रागात्—बाहर गई; भटैः—अंगरक्षकों द्वारा; गुप्ता—रक्षित; अम्बिका-आलयम्—देवी अम्बिका के मन्दिर तक।

अपने उमड़ते प्रेम से बँध कर नगर के निवासी इस तरह की बातें कर रहे थे। तभी अंगरक्षकों से संरक्षित दुलहन अम्बिका के मन्दिर में जाने के लिए अंतःपुर से बाहर आई।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *कला* की परिभाषा *मेदिनी कोश* से उद्धृत की है, जो इस प्रकार है—*कला मूले प्रवृद्धौ स्याच्छिलादावंशमात्रके*—कला शब्द के अर्थ हैं—जड़, वृद्धि, पत्थर या केवल अंश।

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ।
सा चानुध्यायती सम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ।
यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ॥ ४० ॥
गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ।
मृडङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

पद्भ्याम्—पैदल; विनिर्ययौ—बाहर गईं; द्रष्टुम्—देखने के लिए; भवान्याः—माता भवानी के; पाद-पल्लवम्—कमल की पंखड़ियों जैसे चरण; सा—वह; च—तथा; अनुध्यायती—ध्यान करती हुई; सम्यक्—पूर्णतः; मुकुन्द—कृष्ण के; चरण-अम्बुजम्—चरणकमलों पर; यत-वाक्—मौन धारण किये; मातृभिः—अपनी माताओं के; सार्धम्—साथ; सखीभिः—सखियों से; परिवारिता—घिरी; गुप्ता—रक्षित; राज—राजा के; भटैः—अंगरक्षकों द्वारा; शूरैः—बहादुर; सन्नद्धैः—सशस्त्र तथा तत्पर; उद्यत—उठे हुए; आयुधैः—हथियारों से; मृदङ्ग-शङ्ख-पणवाः—मृदंग, शंख तथा ढोल; तूर्य—तुरही; भेर्यः—भेरी, सींग का बाजा; च—तथा; जघ्निरे—बज रहे थे।

रुक्मिणी मौन होकर देवी भवानी के चरणकमलों का दर्शन करने के लिए पैदल ही चल पड़ी। उनके साथ माताएँ तथा सखियाँ थीं और वे राजा के बहादुर सैनिकों द्वारा संरक्षित थीं जो अपने हथियार ऊपर उठाये हुए सन्नद्ध थे। रुक्मिणी केवल कृष्ण के चरणकमलों में अपने मन को ध्यानस्थ किये थीं। मार्ग-भर में मृदंग, शंख, पणव, तुरही तथा अन्य बाजे बजाये जा रहे थे।

नानोपहार बलिभिर्वारमुख्या: सहस्रश: ।
स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्य: स्वलङ्कृता: ॥ ४२ ॥
गायन्त्यश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादका: ।
परिवार्य वधूं जग्मु: सूतमागधवन्दिन: ॥ ४॥

शब्दार्थ

नाना—विविध; उपहार—पूजा-सामग्री; बलिभि:—तथा भेंटों सहित; वार-मुख्या:—प्रमुख गणिकाएँ; सहस्रश:—हजार; स्रक्—फूल की मालाओं; गन्ध—सुगन्धियों; वस्त्र—वस्त्र; आभरणै:—तथा आभूषणों से; द्विज—ब्राह्मणों की; पत्न्य:—पत्नियाँ; स्व्-अलङ्कृता:—भलीभाँति आभूषित; गायन्त्य:—गाती हुईं; च—तथा; स्तुवन्त:—स्तुतियाँ करतीं; च—तथा; गायका:—गवैये; वाद्य-वादका:—बाजे बजाने वाले; परिवार्य—साथ होकर; वधूम्—दुलहन के; जग्मु:—गये; सूत—सूत; मागध—मागध; वन्दिन:—तथा वन्दीजन।

दुलहन के पीछे पीछे हजारों प्रमुख गणिकाएँ थीं जो नाना प्रकार की भेंटें लिये थीं। उनके साथ ब्राह्मणों की सजी-धजी पत्नियाँ गीत गा रही थीं और स्तुतियाँ कर रही थीं। वे माला, सुगन्ध, वस्त्र तथा आभूषण की भेंटें लिये थीं। साथ ही पेशेवर गवैये, संगीतज्ञ, सूत, मागध तथा वन्दीजन थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि रुक्मिणी अपने महल से भवानी मन्दिर तक पालकी में गईं अत: वे पूर्णतया सुरक्षित थीं। केवल अन्तिम १२-१५ फुट, महल से मन्दिर क्षेत्र तक, वे पैदल चलीं। उनके साथ मन्दिर के चारों ओर तैनात शाही अंगरक्षक थे।

आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ।
उपस्पृश्य शुचि: शान्ता प्रविवेशाम्बिकान्तिकम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

आसाद्य—पहुँचकर; देवी—देवी के; सदनम्—आवास; धौत—धोकर; पाद—पाँव; कर—तथा हाथ; अम्बुजा—कमल जैसे; उपस्पृश्य—जल का आचमन करके; शुचि:—पवित्र होकर; शान्ता—शान्त; प्रविवेश—अन्दर गई; अम्बिका-अन्तिकम्—अम्बिका के समक्ष।

देवी के मन्दिर में पहुँचकर रुक्मिणी ने सबसे पहले अपने कमल सदृश पैर तथा हाथ धोये और तब शुद्धि के लिए आचमन किया। इस तरह पवित्र एवं शान्त भाव से वे माता अम्बिका के समक्ष पधारीं।

तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषित: ।
भवानीं वन्दयां चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; वै—निस्सन्देह; प्रवयसः—बड़ी बूढ़ी; बालाम्—युवती को; विधि—विधि-विधान की; ज्ञाः—जानने वाली; विप्र—ब्राह्मणों की; योषितः—पत्नियाँ; भवानीम्—देवी भवानी को; वन्दयाम् चक्रुः—वन्दना करायी; भव-पत्नीम्—भव (शिवजी) की पत्नी की; भव-अन्विताम्—भव समेत।

ब्राह्मणों की बड़ी बूढ़ी पत्नियाँ जो विधि-विधान में पटु थीं, रुक्मिणी को भवानी को नमस्कार कराने ले गईं जो अपने प्रियतम भगवान् भव (शिवजी) के साथ प्रकट हुईं।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार यहाँ पर *भवान्विताम्* शब्द सूचित करता है कि रुक्मिणी जिस अम्बिका मन्दिर में गई थीं उसकी अधिष्ठात्री देवी थीं जिनके पति उनका साथ देने के लिए प्रकट हो गए। इस तरह स्त्रियों द्वारा यह अनुष्ठान विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि *विधिज्ञा:* शब्द से यह जाना जा सकता है कि ब्राह्मणों की विद्वान पत्नियाँ रुक्मिणी की कृष्ण से विवाह करने की इच्छा से परिचित थीं अत: *वन्दयां चक्रु:* से यह सूचित होता है कि उन्होंने रुक्मिणी को उसके लिए प्रार्थना करने के लिए प्रेरित किया जो वह वास्तव में चाहती थीं ताकि भवानी की ही तरह रुक्मिणी अपने शाश्वत पुरुष संगी से मिल सकें।

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।
भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

नमस्ये—मैं नमस्कार करती हूँ; त्वा—तुम्हें; अम्बिके—हे अम्बिका; अभीक्ष्णम्—निरन्तर; स्व—आपके; सन्तान—बच्चों; युताम्—सहित; शिवाम्—शिव-पत्नी को; भूयात्—होयें; पतिः—पति; मे—मेरे; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; तत्—उसे; अनुमोदताम्—अनुमति दें।

[राजकुमारी रुक्मिणी ने प्रार्थना की] हे शिव-पत्नी माता अम्बिका! मैं बारम्बार आपको तथा आपकी सन्तान को नमस्कार करती हूँ। कृपया यह वर दें कि भगवान् कृष्ण मेरे पति होएँ।

अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासःस्त्रङ्माल्य भूषणैः ।
नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥ ४७ ॥
विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ।
लवणापूपताम्बूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अद्भिः—जल से; गन्ध—सुगन्धित वस्तु; अक्षतैः—तथा अन्नों से; धूपैः—धूप से; वासः—वस्त्र से; स्त्रक्—फूल की मालाओं से; माल्य—रत्नजटित हारों; भूषणैः—तथा गहनों से; नाना—अनेक प्रकार की; उपहार—भेंटों; बलिभिः—तथा भेंटों से; प्रदीप—दीपक की; आवलिभिः—पंक्तियों से; पृथक्—अलग; विप्र-स्त्रियः—ब्राह्मण पत्नियाँ; पति—पतियों; मतीः—से युक्त; तथा—भी; तैः—इन वस्तुओं से; समपूजयत्—पूजा की; लवण—नमकीन पदार्थ; आपूप—पुए; ताम्बूल—पान; कण्ठ-सूत्र—उपवीत या जनेऊ; फल—फल; इक्षुभिः—तथा गन्ना से।

रुक्मिणी ने जल, सुगन्धि, अन्न, धूप, वस्त्र, माला, हार, आभूषण तथा अन्य संस्तुत उपहारों से और दीपकों की पंक्तियों से देवी की पूजा की। उन्हीं के साथ साथ विवाहिता ब्राह्मणियों ने उन्हीं वस्तुओं से और नमकीन, पूए, पान-सुपारी, जनेऊ, फल तथा गन्ने के रस की भेंटें चढ़ा कर पूजा की।

तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ।
ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तस्यै—रुक्मिणी को; स्त्रियः—स्त्रियों ने; ताः—उन; प्रददुः—दिया; शेषाम्—बचा हुआ (प्रसाद); युयुजुः—प्रदान किया; आशिषः—आशीर्वाद; ताभ्यः—उनको; देव्यै—तथा देवी को; नमः चक्रे—नमस्कार किया; शेषाम्—बचा हुआ (प्रसाद); च—तथा; जगृहे—ग्रहण किया; वधूः—दुलहन ने।

स्त्रियों ने दुलहन को प्रसाद दिया और फिर आशीर्वाद प्रदान किया। उसने भी उन्हें तथा देवी को नमस्कार किया और प्रसाद ग्रहण किया।

मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकागृहात् ।
प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

मुनि—मौन; व्रतम्—व्रत; अथ—तब; त्यक्त्वा—त्याग कर; निश्चक्राम—बाहर आई; अम्बिका-गृहात्—अम्बिका मन्दिर से; प्रगृह्य—पकड़कर; पाणिना—हाथ से; भृत्याम्—दासी को; रत्न—रत्नजटित; मुद्रा—अँगूठी से; उपशोभिना—शोभित।

तब राजकुमारी ने अपना मौन-व्रत तोड़ दिया और वह रत्नजटित अँगूठी से सुशोभित अपने हाथ से एक दासी को पकड़ कर अम्बिका मन्दिर के बाहर आई।

तां देवमायामिव धीरमोहिनीं
सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् ।
श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां
व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ।
शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युति-
शोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम् ॥ ५१ ॥
पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं
सिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ।
विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता
यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ ५२ ॥

यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहास-
    व्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ।
पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा
    यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ ५ ॥
सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ
    प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ।
उत्सार्य वामकरजैरलकानपङ्गैः
    प्राप्तान्ह्रियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं च ॥ ५४ ॥
तां राजकन्यां रथमारुरक्षतीं
    जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; देव—भगवान् की; मायाम्—माया; इव—सदृश; धीर—गम्भीर रहने वाले भी; मोहिनीम्—मोहने वाली; सु-मध्यमाम्—सुघड़ कमर वाली; कुण्डल—कान के कुण्डलों से; मण्डित—सुसज्जित; आननाम्—मुख वाली; श्यामाम्—निष्कलुष सौन्दर्य; नितम्ब—कूल्हे पर; अर्पित—स्थित; रत्न—रत्नजटित; मेखलाम्—करधनी; व्यञ्जत्—उभड़ रहे; स्तनीम्—स्तनों वाली; कुन्तल—केशराशि का; शङ्कित—डरी हुई; ईक्षणाम्—नेत्रों वाली; शुचि—शुद्ध; स्मिताम्—मन्दहास-युक्त; बिम्ब-फल—बिम्ब फल की तरह; अधर—होंठों वाली; द्युति—चमक से; शोणायमान—लाल लाल हो रही; द्विज—दाँत; कुन्द—चमेली की; कुड्मलाम्—कलियों जैसे; पदा—पाँवों से; चलन्तीम्—चलती हुई; कल-हंस—राजहंस की तरह; गामिनीम्—गमन करने वाली; सिञ्जत्—रुनझुन करती; कला—पटुता से सँवारे; नूपुर—पायलों के; धाम—तेज से; शोभिना—सुशोभित; विलोक्य—देखकर; वीराः—वीरगण; मुमुहुः—मुग्ध हो गये; समागताः—एकत्र हुए; यशस्विनः—सम्मानित; तत्—उससे; कृत—उत्पन्न; हृत्-शय—कामवासना से; अर्दिताः—पीड़ित; याम्—जिसको; वीक्ष्य—देखकर; ते—वे; नृ-पतयः—राजागण; तत्—उसकी; उदार—विस्तृत; हास—हँसी से; व्रीडा—लज्जा का; अवलोक—तथा चितवन; हृत—चुराये गये; चेतसः—जिनके मन; उज्झित—डालकर; अस्त्राः—अपने हथियार; पेतुः—गिर पड़े; क्षितौ—पृथ्वी पर; गज—हाथियों; रथ—रथों; अश्व—तथा घोड़ों पर; गताः—बैठे; विमूढाः—मूर्छित होकर; यात्रा—जुलूस के; छलेन—बहाने; हरये—हरि या कृष्ण के प्रति; अर्पयतीम्—अर्पित कर रही; स्व—अपना; शोभाम्—सौन्दर्य; सा—वह; एवम्—इस तरह; शनैः—धीरे धीरे; चलयती—चलती हुई; चल—हिल रहे; पद्म—कमल के फूल के; कोशौ—दो कोश (दो पाँव); प्राप्तिम्—आगमन; तदा—तब; भगवतः—भगवान् की; प्रसमीक्षमाणा—उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करती; उत्सार्य—धकेलते हुए; वाम—बाँयें; कर-जैः—अपने हाथ के नाखुनों से; अलकान्—बालों को; अपाङ्गैः—तिरछी चितवन से; प्राप्तान्—वहाँ उपस्थित; ह्रिया—लज्जा से; ऐक्षत—उसने देखा; नृपान्—राजाओं को; ददृशे—देखा; अच्युतम्—कृष्ण को; च—तथा; ताम्—उस; राज-कन्याम्—राजकुमारी को; रथम्—उसका रथ; आरुरुक्षतीम्—चढ़ने के लिए तैयार; जहार—पकड़ लिया; कृष्णः—कृष्ण ने; द्विषताम्—अपने शत्रु के; समीक्षताम्—देखते देखते।

रुक्मिणी भगवान् की उस मायाशक्ति की तरह मोहने वाली प्रतीत हो रही थीं जो बड़े बड़े धीर-गम्भीर पुरुषों को भी मोह लेती है। इस तरह राजागण उनके सुकुमार सौन्दर्य, उनकी सुघड़ कमर तथा कुण्डलों से सुशोभित मुख को निहारने लगे। उनके कूल्हे पर रत्नजटित करधनी शोभा पा रही थी, उनके स्तन अभी उभड़ ही रहे थे और उनकी आँखें उनकी लटकती केशराशि से चंचल लग रही थीं। वे मधुर हँसी से युक्त थीं और उनके चमेली की कली जैसे दाँतों से उनके बिम्ब जैसे लाल होंठों की चमक प्रतिबिम्बित हो रही थी। जब वे राजहंस जैसी चाल से चलने लगीं तो उनके रुनझुन करते पायलों के तेज से उनके चरणों की शोभा बढ़ गई। उन्हें देखकर

एकत्रित वीरजन पूर्णतया मोहित हो गये। कामवासना से उनके हृदय विदीर्ण हो गये। दरअसल जब राजाओं ने उनकी विस्तृत मुसकान तथा लजीली चितवन देखी तो वे सम्मोहित हो गये, उन्होंने अपने अपने हथियार डाल दिये और वे मूर्छित होकर अपने अपने हाथियों, रथों तथा घोड़ों पर से जमीन पर गिर पड़े। जुलूस के बहाने रुक्मिणी ने अकेले कृष्ण के लिए ही अपना सौन्दर्य प्रदर्शित किया। उन्होंने भगवान् के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए धीरे धीरे चलायमान कमलकोश रूपी दो चरणों को आगे बढ़ाया। उन्होंने अपने बाँए हाथ के नाखुनों से अपने मुख पर लटकते केश-गुच्छों को हटाया और अपने समक्ष खड़े राजाओं की ओर कनखियों से देखा। उसी समय उन्हें कृष्ण दिख गये। तभी अपने दुश्मनों के देखते देखते भगवान् ने राजकुमारी को पकड़ लिया जो उनके रथ पर चढ़ने के लिए आतुर थी।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार रुक्मिणी अपने प्रियतम कृष्ण को देखने के लिए आतुर थीं इसलिए उन्हें चिन्ता थी कि उनके बालों के गुच्छे उनकी दृष्टि में बाधक न हों। अभक्त या असुरगण भगवान् के एश्वर्य को देखकर मोहित हो जाते हैं और सोचते हैं कि भगवान् की शक्ति उनकी स्थूल इन्द्रियों की तृप्ति के निमित्त है। लेकिन कृष्ण की अंतरंगा ह्लादिनी शक्ति की अंश रूपा रुक्मिणी तो एकमात्र कृष्ण की थीं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *श्यामा* प्रकार की स्त्री का वर्णन करने के लिए निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

शीतकाले भवेद् उष्णो उष्णकाले तु शीतला।

स्तनौ सुकठिनौ यस्याः सा श्यामा परिकीर्तिता॥

''वह स्त्री श्यामा कहलाती है, जिसके स्तन अत्यन्त कठोर होते हैं और उसके सामने आने वाला व्यक्ति जाड़े में अपने को गर्म तथा गर्मी में अपने को शीतल अनुभव करता है।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी इंगित करते हैं कि चूँकि रुक्मिणी का सुन्दर रूप भगवान् की अन्तरंगा शक्ति का प्राकट्य है, अतः अभक्तगण उसकी ओर नहीं देख सकते। इस तरह विदर्भ में एकत्र बलवान राजा भगवान् की माया शक्ति या रुक्मिणी के अंश को देखकर कामुक हो उठे थे। दूसरे शब्दों में, भगवान् की नित्य संगिनी को देखकर कोई काम-मोहित नहीं हो सकता क्योंकि काम से कलुषित

होते ही मन को माया का आवरण आध्यात्मिक जगत तथा उसके निवासियों के आद्य सौन्दर्य से विलग कर देता है।

अन्त में, श्रीमती रुक्मिणी देवी अन्य राजाओं को तिरछी नजर से देखकर लजा सी गईं क्योंकि वे उन निकृष्टजनों की नजरों से अपनी नजरें नहीं मिलाना चाहती थीं।

रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं
राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ।
ततो ययौ रामपुरोगमः शनैः
शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

रथम्—रथ पर; समारोप्य—उठाकर; सुपर्ण—गरुड़; लक्षणम्—चिह्न वाले; राजन्य—राजाओं के; चक्रम्—घेरे को; परिभूय—हराकर; माधवः—कृष्ण; ततः—वहाँ से; ययौ—चले गये; राम—राम द्वारा; पुरः-गमः—आगे आगे; शनैः—धीरे धीरे; शृगाल—सियारों के; मध्यात्—बीच से; इव—जिस तरह; भाग—अपना हिस्सा; हृत्—निकाल कर; हरिः—सिंह।

राजकुमारी को उठाकर अपने गरुड़-ध्वज वाले रथ में बैठाकर माधव ने राजाओं के घेरे को पीछे धकेल दिया। वे बलराम को आगे करके धीरे से उसी तरह बाहर निकल गये जिस तरह सियारों के बीच से अपना शिकार उठाकर सिंह चला जाता है।

तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं
परे जरासन्धमुखा न सेहिरे ।
अहो धिगस्मान्यश आत्तधन्वनां
गोपैर्हृतं केशरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; मानिनः—अभिमानी; स्व—अपने; अभिभवम्—हार; यशः—अपने सम्मान; क्षयम्—विनष्ट करते हुए; परे—शत्रुगण; जरासन्ध-मुखाः—जरासन्ध इत्यादि; न सेहिरे—सहन नहीं कर सके; अहो—ओह; धिक्—धिक्कार है; अस्मान्—हमें; यशः—सम्मान; आत्त-धन्वनाम्—धनुषधारियों का; गोपैः—ग्वालों द्वारा; हृतम्—ले जाये गये; केशरिणाम्—सिंहों के; मृगैः—छोटे जानवरों द्वारा; इव—मानो।

भगवान् के जरासन्ध जैसे शत्रु राजा, इस अपमानजनक हार को सहन नहीं कर सके। वे चीख पड़े, ''ओह! हमें धिक्कार है! यद्यपि हम बलशाली धनुर्धर हैं, किन्तु इन ग्वालों मात्र ने हमसे हमारा सम्मान उसी तरह छीन लिया है, जिस तरह छोटे छोटे पशु सिंहों का सम्मान हर लें।''

तात्पर्य : इस अध्याय के अन्तिम दो श्लोकों से यह स्पष्ट है कि असुरों की विकृत बुद्धि उन्हें

वस्तुओं को सच्चाई से सर्वथा विपरीत दिखलाती है। यह स्पष्ट कहा गया है कि कृष्ण रुक्मिणी को उसी तरह हर ले गये जिस तरह एक सिंह सियारों के झुंड से अपना शिकार ले जाता है। किन्तु असुरों ने अपने को सिंह की तरह और कृष्ण को एक क्षुद्र प्राणी जैसा अनुभव किया। कृष्णभावनामृत के बिना जीवन अत्यन्त संकटमय हो जाता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अपहरण'' नामक तिरपनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चौवन

कृष्ण-रुक्मिणी विवाह

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का अपहरण करने के बाद विरोधी राजाओं को परास्त किया, रुक्मिणी के भाई रुक्मी को विकृत किया और रुक्मिणी को राजधानी द्वारका में लाकर उससे विवाह किया।

जब श्रीकृष्ण राजकुमारी रुक्मिणी को लिये जा रहे थे तो शत्रु राजाओं ने सेना एकत्र की और उनका पीछा किया। बलदेव तथा यादव सेना के प्रमुख, उनका मार्ग रोकने के लिए मुड़कर उनका सामना करने लगे। शत्रु सेनाएँ भगवान् कृष्ण की सेना पर बाणों की लगातार वर्षा करने लगीं। अपने होने वाले पति की सेना पर इस तरह प्रचण्ड आक्रमण होते देख श्रीमती रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण की ओर डरी हुई नजर से देखा। किन्तु कृष्ण केवल हँस पड़े और उनसे कहा कि डर की कोई बात नहीं है, क्योंकि उनकी सेना विपक्षी सेना का अवश्य ही संहार कर देगी।

तत्पश्चात् भगवान् बलराम तथा अन्य वीरगण *नाराच* बाणों द्वारा विपक्षी सेना का संहार करने लगे। यादवों के हाथ करारी हार खाकर जरासन्ध इत्यादि शत्रु राजा लौट गये।

जरासन्ध ने शिशुपाल को यह कहकर ढाढ़स बँधाया, ''सुख-दुख कभी स्थायी नहीं होते। वे तो ईश्वर के अधीन हैं। कृष्ण ने मुझे सत्रह बार हराया किन्तु अन्त में मैं उन पर विजयी हुआ। इस तरह यह देखकर कि जय-पराजय तो दैव तथा काल के अधीन है, मैंने शोक या हर्ष के सामने झुकना नहीं सीखा है। सम्प्रति काल यादवों के अनुकूल है, अत: उन्होंने छोटी-सी सेना से तुम्हें परास्त कर दिया है

किन्तु भविष्य में काल तुम्हारा साथ देगा और तुम अवश्य विजयी होगे।'' इस प्रकार ढाढ़स दिये जाने पर शिशुपाल अपने अनुयायियों के साथ अपने राज्य को लौट गया।

रुक्मिणी का भाई रुक्मी कृष्ण से घृणा करता था अत: कृष्ण के द्वारा अपनी बहन के अपहरण से वह अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा। अत: उसने वहाँ पर उपस्थित सभी राजाओं के समक्ष प्रतिज्ञा की कि वह तब तक कुण्डिन नहीं लौटेगा जब तक वह कृष्ण का विनाश नहीं कर लेता और रुक्मिणी को छुड़ा नहीं लेता। अत: वह अपनी सेना लेकर भगवान् पर आक्रमण करने के लिए रवाना हो गया। उसे भगवान् कृष्ण की महिमा का पता न था इसलिए वह अकेले रथ पर चढ़कर कृष्ण पर आक्रमण करने गया। उनके पास जाकर उसने उन पर बाणों से प्रहार किया और रुक्मिणी को छोड़ देने की माँग की। श्रीकृष्ण ने रुक्मी के हथियारों को खण्ड खण्ड कर डाला। तब उन्होंने अपनी तलवार ऊँचे उठाई और रुक्मी को मारने ही जा रहे थे कि रुक्मिणी ने बीच में रोक कर अपने भाई को छोड़ देने की जोरदार याचना की। भगवान् कृष्ण ने रुक्मी को जान से नहीं मारा किन्तु अपनी तलवार से रुक्मी के सिर के इधर-उधर से कुछ बाल काट लिये, जिससे वह विकृत हो गया। तभी बलदेव यादव-सेना लेकर वहाँ आ गये। रुक्मी को विकृत देखकर उन्होंने कृष्ण को धीरे से डाँटते हुए कहा, ''सगे-सम्बन्धी को इस प्रकार विकृत करना उसे मारने के तुल्य है, अत: उसे मारना नहीं चाहिए और छोड़ दिया जाना चाहिए।''

तब बलदेव ने रुक्मिणी से कहा कि तुम्हारे भाई की यह दुर्दशा उसके विगत कर्म के कारण है क्योंकि हर व्यक्ति अपने सुख-दुख के लिए स्वयं जिम्मेदार है। उन्होंने रुक्मिणी को जीवात्मा की दिव्य-स्थिति के विषय में उपदेश दिया और बतलाया कि किस प्रकार सुख-दुख का मोह एकमात्र अज्ञान का फल है। बलराम के उपदेश को ग्रहण करके रुक्मिणी ने शोक का परित्याग किया।

तभी रुक्मी ने अपने को पूर्णतया हताश अनुभव किया क्योंकि वह अपने बल एवं लड़ने की शक्ति से वंचित हो गया था। चूँकि उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह कृष्ण को जीते बिना वापस नहीं लौटेगा अत: उसने वहीं एक नगर बनवाया और उसी क्रुद्ध भाव से वहीं रहने लगा।

भगवान् कृष्ण रुक्मिणी को अपनी राजधानी द्वारका ले गये और वहाँ उससे विवाह कर लिया। नागरिकों ने खूब उत्सव मनाया और नगर-भर में धूम मचा दी कि भगवान् ने रुक्मिणी का किस तरह

अपहरण किया है। द्वारका का प्रत्येक नागरिक रुक्मिणी के साथ प्रणयसूत्र में कृष्ण को बँधा देखकर प्रमुदित था।

श्रीशुक उवाच
इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ।
स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार कहते हुए; सर्वे—सभी; सु-संरब्धाः—अत्यन्त क्रुद्ध; वाहान्—अपने अपने वाहनों में; आरुह्य—चढ़ कर; दंशिताः—कवच पहने हुए; स्वैः स्वैः—अपनी अपनी; बलैः—सेना से; परिक्रान्ताः—घिरे हुए; अन्वीयुः—पीछा करने लगे; धृत—पकड़े हुए; कार्मुकाः—अपने धनुष।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह कह कर उन सारे क्रुद्ध राजाओं ने अपने कवच पहने और अपने अपने वाहनों में सवार हो गये। प्रत्येक राजा अपने हाथ में धनुष धारण किये भगवान् कृष्ण का पीछा करते समय अपनी सेना से घिरा हुआ था।

तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ।
तस्थुस्तत्सम्मुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; आपततः—पीछा करते; आलोक्य—देख कर; यादव-अनीक—यादव सेना के; यूथ-पः—अधिकारी; तस्थुः—खड़े हो गये; तत्—उनके; सम्मुखाः—समक्ष; राजन्—हे राजा (परीक्षित); विस्फूर्ज्य—टंकार देकर; स्व—अपने अपने; धनूंषि—धनुष; ते—वे।

जब यादव सेना के सेनापतियों ने देखा कि शत्रुगण उन पर आक्रमण करने के लिए दौड़ रहे हैं, तो हे राजन्, वे सब अपने धनुषों में टंकार देकर उनका सामना करने के लिए मुड़े और दृढ़तापूर्वक अड़ गये।

अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थेऽस्त्र कोविदाः ।
मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ॥

शब्दार्थ

अश्व-पृष्ठे—घोड़े की पीठ पर; गज—हाथी के; स्कन्धे—कंधों पर; रथ—रथों के; उपस्थे—आसनों पर; अस्त्र—हथियारों के; कोविदाः—पटु; मुमुचुः—छोड़ा; शर—बाणों की; वर्षाणि—वर्षा; मेघाः—बादल; अद्रिषु—पर्वतों पर; अपः—जल; यथा—जिस तरह।

घोड़ों की पीठों पर, हाथियों के कन्धों पर तथा रथों के आसनों पर सवार होकर अस्त्रों में पटु शत्रु राजाओं ने यदुओं पर बाणों की वर्षा की जिस तरह बादल पर्वतों पर वर्षा करते हैं।

पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ।
सव्रीड्मैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४॥

शब्दार्थ

पत्युः—अपने पति की; बलम्—सेना; शर—बाणों की; आसारैः—भीषण वर्षा से; छन्नम्—ढका हुआ; वीक्ष्य—देख कर; सु-मध्यमा—पतली कमर वाली (रुक्मिणी) ने; स-व्रीडम्—लजाते हुए; ऐक्षत्—देखा; तत्—उसके; वक्त्रम्—मुख को; भय—भय से; विह्वल—विचलित; लोचना—आँखों वाली।

पतली कमर वाली रुक्मिणी ने अपने स्वामी की सेना को बाणों की धुँआधार वर्षा से आच्छादित देख कर भयभीत आँखों से लजाते हुए कृष्ण के मुख की ओर निहारा।

प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ।
विनङ्क्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

प्रहस्य—हँस कर; भगवान्—भगवान् ने; आह—कहा; मा स्म भैः—तुम डरो नहीं; वाम-लोचने—हे सुन्दर नेत्रों वाली; विनङ्क्ष्यति—नष्ट कर दी जायेगी; अधुना एव—अभी ही; एतत्—यह; तावकैः—तुम्हारी (सेना) द्वारा; शात्रवम्—शत्रुओं की; बलम्—सेना।

भगवान् ने हँसते हुए उसे विश्वास दिलाया, "हे सुन्दर नेत्रों वाली, तुम डरो मत! यह शत्रु सेना तुम्हारे सैनिकों द्वारा विनष्ट होने ही वाली है।"

तात्पर्य : रुक्मिणी के प्रति अत्यधिक स्नेह व्यक्त करने के लिए भगवान् कृष्ण ने अपनी यादव सेना को "तुम्हारे सैनिकों" कहा जिसमें यह संकेत था कि भगवान् का पूरा वंश अब उनकी प्रिय रानी की सम्पत्ति है। भगवान् कृष्ण अपने आनन्दपूर्ण ऐश्वर्यों की साझेदारी सारे जीवों से करना चाहते हैं और इसीलिए वे उन्हें भगवद्धाम वापस आने के लिए सच्चे मन से आमंत्रित करते हैं। श्रील प्रभुपाद ने अपने आध्यात्मिक गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के आदेश पर ही कृष्णभावनामृत आन्दोलन का समूचे विश्व में सूत्रपात किया। स्वयं श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने पूज्य पिता श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के आदेश पर सारे भारत में प्रचार करते रहे। हमारा यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन भगवान् कृष्ण के प्रेममय सन्देश का—उन्हें स्मरण करने, उनकी सेवा करने, उनके पास वापस जाकर भगवद्धाम का असीम ऐश्वर्य भोगने का—प्रसार कर रहा है।

तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसङ्कर्षनादयः ।
अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान्रथान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उनके (विरोधी राजाओं) द्वारा; तत्—वह; विक्रमम्—पराक्रम-प्रदर्शन; वीराः—वीरगण; गद—गद, कृष्ण के छोटे भाई; सङ्कर्षण—बलराम; आदयः—इत्यादि; अमृष्यमाणाः—न सहन करते हुए; नाराचैः—लोहे के बाणों से; जघ्नुः—प्रहार किया; हय—घोड़े; गजान्—हाथी; रथान्—तथा रथों पर।

भगवान् की सेना में गद, संकर्षण इत्यादि वीर विरोधी राजाओं के आक्रमण को सहन नहीं कर सके। अतः वे लोहे के बाणों से शत्रुओं के घोड़ों, हाथियों तथा रथों पर प्रहार करने लगे।

**पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ।
सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७॥**

शब्दार्थ

पेतुः—गिरने लगे; शिरांसि—सिर; रथिनाम्—रथारोहियों के; अश्विनाम्—घुड़सवारों के; गजिनाम्—हाथी पर सवार होने वालों के; भुवि—पृथ्वी पर; स—सहित; कुण्डल—कान की बालियाँ; किरीटानि—तथा मुकुट; स—सहित; उष्णीषाणि—पगड़ियाँ; च—तथा; कोटिशः—करोड़ों।

रथों, घोड़ों तथा हाथियों पर सवार होकर लड़ने वाले सैनिकों के सिर करोड़ों की संख्या में गिरने लगे। इनमें से कुछ सिर कुण्डलों से युक्त थे तो कुछों पर मुकुट एवं पगड़ियाँ थी।

**हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः ।
अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८॥**

शब्दार्थ

हस्ताः—हाथ; स—सहित; असि—तलवारें; गदा—गदा; इषु-आसाः—बाण; करभाः—अंगुलियों से विहीन हाथ; ऊरवः—जाँघें; अङ्घ्रयः—पाँव; अश्व—घोड़ों; अश्वतर—गधों; नाग—हाथियों; उष्ट्र—ऊँटों; खर—जंगली गधों; मर्त्य—तथा मनुष्यों के; शिरांसि—सिर; च—भी।

चारों ओर जाँघें, पाँव तथा अंगुलियों से विहीन हाथों के साथ ही साथ तलवार, गदा तथा धनुष पकड़े हुए हाथ और घोड़ों, गधों, हाथियों, ऊँटों, जंगली गधों तथा मनुष्यों के सिर भी पड़े हुए थे।

तात्पर्य : *करभाः* शब्द कलाई से लेकर अँगुलियों के नीचे तक के भाग का सूचक है। यही शब्द हाथी के सूँड़ का भी द्योतन कर सकता है। अतः इस श्लोक का अर्थ होगा कि युद्ध क्षेत्र में पड़ी हुई जँघाएँ हाथियों की सूँड़ों के समान थीं।

**हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः ।
राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरःसराः ॥ ९॥**

शब्दार्थ

हन्यमान—मारे जा रहे; बल-अनीकाः—जिनकी सेनाएँ; वृष्णिभिः—वृष्णियों द्वारा; जय—विजय के लिए; काङ्क्षिभिः—इच्छुक; राजानः—राजागण; विमुखाः—निरुत्साहित; जग्मुः—छोड़ दिया; जरासन्ध-पुरः-सराः—जरासन्ध इत्यादि।

विजय के लिए उत्सुक वृष्णियों द्वारा अपनी सेनाओं को मारे जाते देखकर जरासन्ध इत्यादि राजा हतोत्साहित हुए और युद्ध-भूमि छोड़ कर भाग गये।

तात्पर्य : यद्यपि शिशुपाल ने रुक्मिणी से विवाह नहीं किया था किन्तु वह उसे अपनी सम्पत्ति मानता था और इसीलिए वह विनष्ट हो गया जिस तरह कि अपनी प्रिय पत्नी को खोने वाला मनुष्य।

शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् ।
नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ ॥

शब्दार्थ

शिशुपालम्—शिशुपाल के; समभ्येत्य—पास जाकर; हृत—चुरायी गई; दारम्—पत्नी वाला; इव—मानो; आतुरम्—विचलित; नष्ट—खोया हुआ; त्विषम्—रंग; गत—गया हुआ; उत्साहम्—उत्साह; शुष्यत्—सूख गया; वदनम्—मुँह; अब्रुवन्—उन्होंने कहा।

सारे राजा शिशुपाल के पास गये जो उस व्यक्ति के समान उद्विग्न था जिसकी पत्नी छिन चुकी हो। उसके शरीर का रंग उतर गया, उसका उत्साह जाता रहा और उसका मुख सूखा हुआ प्रतीत होने लगा। राजाओं ने उससे इस प्रकार कहा।

भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ।
न प्रियाप्रिययो राजन्निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

भोः भोः—अरे महाशय; पुरुष—पुरुषों में; शार्दूल—हे बाघ; दौर्मन-स्यम्—मन की उदास अवस्था; इदम्—यह; त्यज—छोड़ो; न—नहीं; प्रिय—वांछित; अप्रिययोः—या अवांछित का; राजन्—हे राजन्; निष्ठा—स्थायित्व; देहिषु—देहधारी जीवों में; दृश्यते—देखा जाता है।

[जरासन्ध ने कहा] हे पुरुषों में व्याघ्र शिशुपाल, सुनो। तुम अपनी उदासी छोड़ दो। हे राजन्, सारे देहधारियों का सुख तथा दुख कभी भी स्थायी नहीं देखे गये हैं।

यथा दारुमयी योषित्नृत्यते कुहकेच्छया ।
एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; दारु-मयी—काठ की बनी; योषित्—स्त्री; नृत्यते—नाचती है; कुहक—दिखाने वाले की; इच्छया—इच्छा से; एवम्—उसी तरह से; ईश्वर—ईश्वर के; तन्त्रः—नियंत्रण में; अयम्—यह जगत; ईहते—चेष्टा करता है; सुख—सुख; दुःखयोः—तथा दुख में।

जिस तरह स्त्री के वेश में एक कठपुतली अपने नचाने वाले की इच्छानुसार नाचती है उसी

तरह भगवान् द्वारा नियंत्रित यह जगत सुख तथा दुख दोनों से भिड़ता रहता है।

तात्पर्य : भगवान् की इच्छा से जीवों को उनके कार्यों का उचित फल मिलता है। जो परब्रह्म को जान लेता है, वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में चला जाता है और भौतिक जगत के भीतर स्थित नहीं माना जाता। चूँकि भौतिक जगत के भीतर प्रयासरत लोग ईश्वर की सृष्टि का दोहन करने की अवश्य ही चेष्टा करना चाहते हैं इसलिए उन्हें कर्मफल भोगने पड़ते हैं, जो बद्धजीव के लिए सुख या दुख के रूप में होते हैं। वस्तुत: यदि परम आनन्द की दृष्टि से देखा जाय तो सम्पूर्ण भौतिक जीवन एक विफलता है।

शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ।
त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्ये एकमहं परम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

शौरेः—कृष्ण से; सप्त-दश—सत्रह; अहम्—मैं; वै—निस्सन्देह; संयुगानि—युद्ध; पराजितः—हारा हुआ; त्रयः-विंशतिभिः—तेईस; सैन्यैः—सेनाओं से; जिग्ये—जीता; एकम्—एक; अहम्—मैंने; परम्—केवल।

मैं कृष्ण के साथ युद्ध में अपनी तेईस सेनाओं सहित सत्रह बार हारा—केवल एक बार उन्हें पराजित कर सका।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में अपरिहार्य सुख तथा दुख के दृष्टान्त के रूप में जरासन्ध अपना ही जीवन का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है।

तथाप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ।
कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तथा अपि—तो भी; अहम्—मैं; न शोचामि—शोक नहीं करता; न प्रहृष्यामि—हर्ष प्रकट नहीं करता; कर्हिचित्—कभी; कालेन—समय से; दैव—भाग्य से; युक्तेन—जुड़ा हुआ; जानन्—जानते हुए; विद्रावितम्—संचालित; जगत्—संसार।

तो भी मैं न तो कभी शोक करता हूँ, न हर्षित होता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह संसार काल तथा भाग्य द्वारा संचालित है।

तात्पर्य : यह बता चुकने के बाद कि भगवान् इस जगत का नियंत्रण करते हैं जरासन्ध अब नियंत्रण की विशेष विधि बतलाता है। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि वैदिक सन्दर्भ में *काल* एकमात्र दिन, सप्ताह, मास तथा वर्ष जैसे काल मापन की विधि का ही द्योतन नहीं करता अपितु वस्तुओं के

गतिशील होने की *विधि* को बतलाता है। प्रत्येक वस्तु अपने प्रारब्ध के अनुसार गतिशील रहती है और यह प्रारब्ध भी काल कहलाता है क्योंकि हर व्यक्ति का प्रारब्ध काल की गति से प्रकट होता है।

अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ।
पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अधुना—अब; अपि—भी; वयम्—हम; सर्वे—सभी; वीर—वीरों के; यूथ-प—सेनानायकों के; यूथ-पाः—नायक; पराजिताः—हारे हुए; फल्गु—थोड़े से; तन्त्रैः—परिचारकों द्वारा; यदुभिः—यदुओं द्वारा; कृष्ण-पालितैः—कृष्ण द्वारा रक्षित।

और अब हम सभी, सेनानायकों के बड़े बड़े सेनापति, यदुओं तथा उनकी छोटी सेना के द्वारा हराये जा चुके हैं क्योंकि वे सभी कृष्ण द्वारा संरक्षित हैं।

रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ।
तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

रिपवः—हमारे शत्रुओं ने; जिग्युः—जीत लिया है; अधुना—अब; काले—समय; आत्म—उनको; अनुसारीणि—पक्षपात करने वाले; तदा—तब; वयम्—हम; विजेष्यामः—जीत लेंगे; यदा—जब; कालः—समय; प्रदक्षिणः—हमारी ओर मुड़ेगा।

अभी हमारे शत्रुओं ने हमें जीत लिया है क्योंकि समय ने उनका साथ दिया, किन्तु भविष्य में जब समय हमारे लिए शुभ होगा तो हम जीतेंगे।

श्रीशुक उवाच
एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् ।
हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; प्रबोधितः—समझाया-बुझाया; मित्रैः—अपने मित्रों के द्वारा; चैद्यः—शिशुपाल; अगात्—गया; स-अनुगः—अपने अनुयायियों सहित; पुरम्—अपने नगर में; हत—मारे हुओं से; शेषाः—बचे; पुनः—फिर; ते—वे; अपि—भी; ययुः—गये; स्वम् स्वम्—अपने अपने; पुरम्—नगर; नृपाः—राजा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह अपने मित्रों द्वारा समझाने-बुझाने पर शिशुपाल अपने अनुयायियों सहित अपनी राजधानी लौट गया। जो योद्धा बच रहे थे वे भी अपने अपने नगरों को लौट गये।

रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ।
पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

रुक्मी—रुक्मी; तु—किन्तु; राक्षस—राक्षसी विधि से; उद्वाहम्—विवाह; कृष्ण-द्विट्—कृष्ण से घृणा करने वाला; असहन्—सहन कर पाने में असमर्थ; स्वसुः—अपनी बहिन का; पृष्ठतः—पीछे से; अन्वगमत्—पीछा किया; कृष्णाम्—कृष्ण को; अक्षौहिण्या—एक अक्षौहिणी सेना लेकर; वृतः—घेर लिया; बली—शक्तिशाली।

किन्तु बलवान रुक्मी कृष्ण से विशेष रूप से द्वेष रखता था। उससे यह बात सहन नहीं हो सकी कि कृष्ण बलपूर्वक उसकी बहिन को ले जाकर उससे राक्षस-विधि से विवाह कर ले। अतः उसने सेना की एक पूरी टुकड़ी लेकर भगवान् का पीछा किया।

रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ।
प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥ १९ ॥
अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

रुक्मी—रुक्मी; अमर्षी—असहिष्णु; सु-संरब्धः—अत्यन्त क्रुद्ध; शृण्वताम्—सुनते हुए; सर्व—समस्त; भू-भुजाम्—राजाओं के; प्रतिजज्ञे—प्रतिज्ञा की; महा-बाहुः—बाहुबली; दंशितः—कवच पहने; स-शरासनः—अपने धनुष सहित; अहत्वा—बिना मारे; समरे—युद्ध में; कृष्णम्—कृष्ण को; अप्रत्यूह्य—वापस लाये बिना; च—तथा; रुक्मिणीम्—रुक्मिणी को; कुण्डिनम्—कुण्डिन नगर में; न प्रवेक्ष्यामि—प्रवेश नहीं करूँगा; सत्यम्—सच; एतत्—यह; ब्रवीमि—मैं कहता हूँ; वः—तुम सबों से।

उद्विग्न एवं क्रुद्ध महाबाहु रुक्मी ने कवच पहने तथा धनुष धारण किये सभी राजाओं के समक्ष यह शपथ ली थी, ''यदि मैं युद्ध में कृष्ण को मार कर रुक्मिणी को अपने साथ वापस नहीं ले आता तो मैं फिर कुण्डिन नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। यह मैं आप लोगों के समक्ष शपथ लेता हूँ।''

तात्पर्य : रुक्मी ने ये क्रुद्ध वचन कहे और तब वह भगवान् कृष्ण का पीछा करने लगा जैसाकि अगले श्लोकों में है।

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ।
चोदयाश्वान्यतः कृष्णः तस्य मे संयुगं भवेत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; रथम्—रथ पर; आरुह्य—चढ़ कर; सारथिम्—सारथी से; प्राह—कहा; सत्वरः—तेजी से; चोदय—हाँको; अश्वान्—घोड़ों को; यतः—जहाँ; कृष्णः—कृष्ण; तस्य—उसका; मे—मेरे साथ; संयुगम्—युद्ध; भवेत्—होना चाहिए।

यह कहकर वह अपने रथ पर चढ़ गया और अपने सारथी से कहा, ''तुम घोड़ों को जल्दी से हाँक कर वहीं ले चलो जहाँ कृष्ण है। उससे मुझे युद्ध करना है।''

अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ।
नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥ २२॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; अहम्—मैं; निशितैः—तीक्ष्ण; बाणैः—बाणों से; गोपालस्य—ग्वाले का; सु-दुर्मतेः—दुष्टबुद्धि; नेष्ये—नष्ट कर दूँगा; वीर्य—अपने बल में; मदम्—घमंड; येन—जिससे; स्वसा—बहिन; मे—मेरी; प्रसभम्—बलपूर्वक; हृता—अपहरण की गई।

''इस दुष्टबुद्धि ग्वालबाल ने अपने बल के घमण्ड में चूर होकर मेरी बहन का बलपूर्वक अपहरण किया है। किन्तु आज मैं उसके घमंड को अपने तीखे बाणों से चूर कर दूँगा।''

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि *गोपालस्य* का असली अर्थ ''वेदों के रक्षक का'' है, जबकि *दुर्मतेः* का अर्थ है ''उसका जिसका सुन्दर मन दुष्ट के भी प्रति दयालु होता है।'' श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि रुक्मी के कहने का आशय यह था कि वह आज कृष्ण से युद्ध करके महान् वीर कहलाने का ढोंग छोड़ देगा।

विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ।
रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २॥

शब्दार्थ

विकत्थमानः—डींग मारते हुए; कु-मतिः—मूर्ख; ईश्वरस्य—भगवान् का; अप्रमाण-वित्—परिमाप न जानते हुए; रथेन एकेन—एकाकी रथ सहित; गोविन्दम्—भगवान् कृष्ण को; तिष्ठ तिष्ठ—रुको और युद्ध करो; इति—ऐसा कहकर; अथ—तब; आह्वयत्—उसने पुकारा।

इस प्रकार डींग हाँकता, भगवान् के पराक्रम के असली विस्तार से अपरिचित मूर्ख रुक्मी, अपने एकाकी रथ में भगवान् गोविन्द के पास पहुँचा और उन्हें ललकारा, ''जरा ठहरो और लड़ो।''

तात्पर्य : इन श्लोकों से लगता है कि यद्यपि रुक्मी एक पूरी सेना की टुकड़ी लेकर रवाना हुआ था किन्तु कृष्ण से युद्ध करने वह स्वयं आगे बढ़ा।

धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ।
आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥ २४॥

शब्दार्थ

धनुः—अपना धनुष; विकृष्य—खींचकर; सु—अत्यन्त; दृढम्—दृढ़तापूर्वक; जघ्ने—प्रहार किया; कृष्णम्—कृष्ण पर; त्रिभिः—तीन; शरैः—बाणों से; आह—कहा; च—तथा; अत्र—यहाँ; क्षणम्—एकक्षण; तिष्ठ—ठहरो; यदूनाम्—यदुओं के; कुल—वंश को; पांसन—अरे दूषित करने वाले।

रुक्मी ने भारी जोर लगाकर अपना धनुष खींचा और कृष्ण पर तीन बाण चलाये। तब उसने कहा, ''रे यदुवंश को दूषित करने वाले! जरा एक क्षण ठहर तो!''

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी संकेत करते हैं कि *कुल-पांसन* को *कुल-प* (हे यदुवंश के स्वामी) तथा *अंसन* (हे शत्रुओं का वध करने में कुशल) से बना मानना चाहिए। उन्होंने व्याकरणिक व्याख्या भी दी है, जिससे यह भावार्थ सम्भव होता है।

यत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवद्धविः ।
हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ भी; यासि—जाओगे; स्वसारम्—बहन को; मे—मेरी; मुषित्वा—चुराकर; ध्वाङ्क्ष-वत्—कौवे की तरह; हविः—यज्ञ का घृत; हरिष्ये—मैं वध करूँगा; अद्य—आज; मदम्—तुम्हारे मिथ्या गर्व को; मन्द—रे मूर्ख; मायिनः—धोखेबाज का; कूट—ठग; योधिनः—युद्ध करने वाले का।

''तुम यज्ञ का घृत चुराने वाले कौवे की भाँति मेरी बहन को जहाँ जहाँ ले जाओगे वहाँ वहाँ मैं तुम्हारा पीछा करूँगा। अरे मूर्ख, धोखेबाज, अरे युद्ध में ठगने वाले! मैं आज ही तुम्हारे मिथ्या गर्व को चूर चूर कर दूँगा।''

तात्पर्य : इस पागलपन-भरे आक्रमण में रुक्मी उन्हीं गुणों को प्रदर्शित करता है जिनका आरोप वह कृष्ण पर करता है। हर जीव भगवान् का अंश है और भगवान् से सम्बन्धित है। अत: रुक्मी उस कौवे के समान था, जो कृष्ण द्वारा भोगी जाने वाली हवि को चुराने का प्रयास कर रहा था।

यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारीकाम् ।
स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; न—नहीं; मे—मेरे; हतः—मारा गया; बाणैः—बाणों से; शयीथः—लिटा दिया गया; मुञ्च—छोड़ दो; दारीकाम्—लड़की को; स्मयन्—हँसते हुए; कृष्णः—कृष्ण ने; धनुः—अपना धनुष; छित्त्वा—तोड़ कर; षड्भिः—छः (बाणों) से; विव्याध—बेध दिया; रुक्मिणम्—रुक्मी को।

''इसके पूर्व कि तुम मेरे बाणों के प्रहार से मरो और लोट-पोट हो जाओ तुम इस लड़की को छोड़ दो।'' इसके उत्तर में भगवान् कृष्ण मुसकरा दिये और अपने छः बाणों से रुक्मी पर प्रहार करके उसके धनुष को तोड़ डाला।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि वास्तव में कृष्ण तो रुक्मिणी के साथ सुन्दर फूलों की शैया में लेटने के लिए थे किन्तु रुक्मी ने लज्जावश यह बात सीधे नहीं कही।

अष्टभिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ।
स चान्यद्धनुराधाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः ॥ २७॥

शब्दार्थ

अष्टभिः—आठ (बाणों) से; चतुरः—चारों; वाहान्—घोड़ों को; द्वाभ्याम्—दो से; सूतम्—सारथी को; ध्वजम्—झंडे को; त्रिभिः—तीन से; सः—वह, रुक्मी; च—तथा; अन्यत्—अन्य; धनुः—धनुष; आधाय—लेकर; कृष्णम्—कृष्ण को; विव्याध—बेध डाला; पञ्चभिः—पाँच से।

भगवान् ने रुक्मी के चारों घोड़ों को आठ बाणों से, उसके सारथी को दो बाणों से तथा रथ की ध्वजा को तीन बाणों से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। रुक्मी ने दूसरा धनुष उठाया और कृष्ण पर पाँच बाणों से प्रहार किया।

तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ।
पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८॥

शब्दार्थ

तैः—इनके द्वारा; ताडितः—प्रहार किया गया; शर—बाणों की; ओघैः—बाढ़ से; तु—यद्यपि; चिच्छेद—तोड़ डाला; धनुः—(रुक्मी का) धनुष; अच्युतः—भगवान् कृष्ण ने; पुनः—फिर; अन्यत्—दूसरा; उपादत्त—उसने (रुक्मी ने) उठा लिया; तत्—वह; अपि—भी; अच्छिनत्—तोड़ दिया; अव्ययः—अविनाशी।

यद्यपि भगवान् अच्युत पर इन अनेक बाणों से प्रहार हुआ किन्तु उन्होंने पुनः रुक्मी के धनुष को तोड़ दिया। रुक्मी ने दूसरा धनुष उठाया किन्तु अविनाशी भगवान् ने उसे भी खण्ड खण्ड कर डाला।

परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ।
यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९॥

शब्दार्थ

परिघम्—परिघ; पट्टिशम्—त्रिशूल; शूलम्—भाला; चर्म-असी—ढाल तथा तलवार; शक्ति—शक्ति; तोमरौ—तोमर; यत् यत्—जो जो; आयुधम्—हथियार; आदत्त—उठाया; तत् सर्वम्—उन सबों को; सः—उस; अच्छिनत्—तोड़ डाला; हरिः—भगवान् कृष्ण ने।

रुक्मी ने जो भी हथियार—परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल तथा तलवार, शक्ति और तोमर—उठाया, उन्हें भगवान् हरि ने छिन्न-भिन्न कर डाला।

ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ।
कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम् ॥ ० ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; रथात्—रथ से; अवप्लुत्य—नीचे कूदकर; खड्ग—तलवार; पणिः—अपने हाथ में; जिघांसया—मारने की इच्छा से; कृष्णम्—कृष्ण की ओर; अभ्यद्रवत्—दौड़ा; क्रुद्धः—क्रुद्ध होकर; पतङ्गः—पक्षी; इव—सदृश; पावकम्—हवा, वायु में।.

तब रुक्मी अपने रथ से नीचे कूद पड़ा और अपने हाथ में तलवार लेकर कृष्ण को मारने के लिए उनकी ओर अत्यन्त क्रुद्ध होकर दौड़ा जिस तरह कोई पक्षी वायु में उड़े।

तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ।
छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; च—तथा; आपततः—आक्रमण करते हुए; खड्गम्—तलवार; तिलशः—छोटे छोटे खंडों में; चर्म—ढाल; च—तथा; इषुभिः—अपने बाणों से; छित्त्वा—तोड़ कर; असिम्—तलवार को; आददे—उसने ग्रहण किया; तिग्मम्—तेज; रुक्मिणम्—रुक्मी को; हन्तुम्—मारने के लिए; उद्यतः—तैयार।.

ज्योंही रुक्मी ने उन पर आक्रमण किया, भगवान् ने तीर चलाये जिससे रुक्मी की तलवार तथा ढाल के खंड खंड हो गये। तब कृष्ण ने अपनी तेज तलवार धारण की और रुक्मी को मारने की तैयारी की।

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ।
पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥ २ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; भ्रातृ—अपने भाई को; वध—मारने के लिए; उद्योगम्—प्रयास; रुक्मिणी—श्रीमती रुक्मिणी ने; भय—भय से; विह्वला—घबड़ाई; पतित्वा—गिर कर; पादयोः—पैरों पर; भर्तुः—अपने पति के; उवाच—कहा; करुणम्—करुण स्वर में; सती—साध्वी।.

अपने भाई को मार डालने के लिए उद्यत भगवान् कृष्ण को देख कर साध्वी सदृश रुक्मिणी अत्यन्त भयभीत हो उठीं। वे अपने पति के पैरों पर गिर पड़ीं और बड़े ही करुण-स्वर में बोलीं।

श्रीरुक्मिण्युवाच
योगेश्वराप्रमेयात्मन्देवदेव जगत्पते ।
हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ॥

शब्दार्थ

श्री-रुक्मिणी उवाच—श्री रुक्मिणी ने कहा; योग-ईश्वर—समस्त योगशक्ति के नियन्ता; अप्रमेय-आत्मन्—न मापे जा सकने वाले; देव-देव—हे देवताओं के स्वामी; जगत्-पते—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; हन्तुम् न अर्हसि—आप वध न करें; कल्याण—हे मंगलमय; भ्रातरम्—भाई को; मे—मेरे; महा-भुज—हे बाहुबली।

श्री रुक्मिणी ने कहा : हे योगेश्वर, हे अप्रमेय, हे देवताओं के देव, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! हे मंगलमय एवं बाहुबली! कृपया मेरे भाई का वध न करें।

श्रीशुक उवाच
तया परित्रासविकम्पिताङ्गया
शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ।
कातर्यविस्रंसितहेममालया
गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तया—उसके द्वारा; परित्रास—पूर्णतया भयभीत; विकम्पित—काँपती हुई; अङ्गया—जिसके अंग; शुचा—शोक से; अवशुष्यत्—सूखता हुआ; मुख—जिसका मुख; रुद्ध—तथा भरे हुए; कण्ठया—गले से; कातर्य—आतुरतावश; विस्रंसित—बिखर गई; हेम—सोने की; मालया—गले की माला; गृहीत—पकड़ लिया; पादः—उसके पाँव; करुणः—दयालु ने; न्यवर्तत—छोड़ दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : रुक्मिणी के अत्यधिक भयभीत होने से उसके अंग-अंग काँपने लगे, मुँह सूखने लगा तथा त्रास के मारे उसका गला रुँध गया। उद्वेलित होने से उसका सोने का हार माला बिखर गया। उसने कृष्ण के पैर पकड़ लिये। तब भगवान् ने दया दिखलाकर उसे छोड़ दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लौकिक नियम का उद्धरण देते हैं—*दयाया भगिनी मूर्तिः*—कि बहिन साक्षात् दया होती है। यद्यपि रुक्मी दुष्ट था और अपनी बहिन के हित का विरोध करता था किन्तु रुक्मिणी उसके प्रति दयालु थी और भगवान् उसकी दया में भागी हुए।

चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारीणं
सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् ।
तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं
यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥ ५॥

शब्दार्थ

चैलेन—कपड़े की पट्टी से; बद्ध्वा—बाँध कर; तम्—उसको; असाधु-कारिणम्—दुष्कर्म करने वाले; स-श्मश्रु-केशम्—कुछ मूछें तथा बाल छोड़ कर; प्रवपन्—मूँड़ करके; व्यरूपयत्—विरूप बना दिया; तावत्—तब तक; ममर्दुः—कुचल दिया था; पर—विपक्षी; सैन्यम्—सेना को; अद्भुतम्—अद्भुत; यदु-प्रवीराः—यदुकुल के वीरों ने; नलिनीम्—कमल के फूलों को; यथा—जिस तरह; गजाः—हाथी।

भगवान् कृष्ण ने उस दुकृत्य करने वाले को कपड़े की पट्टी (दुपट्टे) से बाँध दिया। इसके

बाद उन्होंने उसकी कुछ कुछ मूँछें तथा बाल छोड़ कर शेष सारे बाल हास्यजनक रूप से मूँड़ कर उसको विरूप बना दिया। तब तक यदु-वीरों ने अपने विपक्षियों की अद्‌भुत सेना को कुचल दिया था जिस तरह हाथी कमल के फूल को कुचल देता है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने अपनी तेज तलवार से दुष्ट रुक्मी के बाल अद्‌भुत तरह से मूँड़ दिये।

कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ।
तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा सङ्कर्षणो विभुः ।
विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण—कृष्ण के; अन्तिकम्—निकट; उपव्रज्य—जाकर; ददृशुः—उन्होंने (यदु-वीरों ने) देखा; तत्र—वहाँ; रुक्मिणम्—रुक्मी; तथा-भूतम्—ऐसी अवस्था में; हत—मृत; प्रायम्—लगभग; दृष्ट्वा—देख कर; सङ्कर्षणः—बलराम ने; विभुः—सर्वशक्तिमान; विमुच्य—छोड़ कर; बद्धम्—बँधा हुआ (रुक्मी); करुणः—दयालु; भगवान्—भगवान्; कृष्णम्—कृष्ण से; अब्रवीत्—कहा।

जब यदुगण भगवान् कृष्ण के पास पहुँचे तो उन्होंने रुक्मी को इस शोचनीय अवस्था में प्रायः शर्म से मरते देखा। जब सर्वशक्तिमान बलराम ने रुक्मी को देखा तो दयावश उन्होंने उसे छुड़ा दिया और वे भगवान् कृष्ण से इस तरह बोले।

असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ।
वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

असाधु—अनुचित; इदम्—यह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; कृष्ण—हे कृष्ण; कृतम्—किया गया; अस्मत्—हमारे लिए; जुगुप्सितम्—भयावह; वपनम्—मूँड़ना; श्मश्रु-केशानाम्—उसके मूँछ तथा बालों को; वैरूप्यम्—विरूप करना; सुहृदः—पारिवारिक सदस्य का; वधः—मृत्यु।

[बलराम ने कहा] : हे कृष्ण, तुमने अनुचित कार्य किया है। इस कार्य से हमको लज्जित होना पड़ेगा, क्योंकि किसी निकट सम्बन्धी के मूँछ तथा बाल मूँड़ कर उसे विरूपित करना उसका वध करने के ही समान है।

तात्पर्य : सर्वज्ञ बलराम जान गये थे कि रुक्मी दोषी था किन्तु शोकमग्न रुक्मिणी को ढाढ़स दिलाने के लिए उन्होंने श्रीकृष्ण को भद्रता से डाँटना उचित समझा।

मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ।

सुखदु:खदो न चान्योऽस्ति यत: स्वकृतभुक्पुमान् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

मा—मत; एव—निस्सन्देह; अस्मान्—हमारे प्रति; साध्वि—हे साध्वी; असूयेथा:—शत्रुता अनुभव करो; भ्रातु:—अपने भाई के; वैरूप्य—विरूप होने की; चिन्तया—चिन्ता से; सुख—सुख; दु:ख—तथा दुख का; द:—देने वाला; न—नहीं; च—तथा; अन्य:—अन्य कोई; अस्ति—है; यत:—क्योंकि; स्व—अपना; कृत—कर्म; भुक्—फल भोगने वाला; पुमान्—मनुष्य।

हे साध्वी, तुम अपने भाई के विरूप होने की चिन्ता से हम पर रुष्ट न होओ। किसी के सुख तथा दुख का उत्तरदायी उसके अपने सिवा कोई दूसरा नहीं होता है, क्योंकि मनुष्य अपने ही कर्मों का फल पाता है।

बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति ।
त्याज्य: स्वेनैव दोषेण हत: किं हन्यते पुन: ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

बन्धु:—सम्बन्धी; वध—मारे जाने के; अर्ह—योग्य होता है; दोष:—जिसकी बुराइयाँ; अपि—यद्यपि; न—नहीं; बन्धो:—सम्बन्धी से; वधम्—मारे जाने के; अर्हति—योग्य होता है; त्याज्य:—त्याग करने योग्य; स्वेन एव—अपने ही; दोषेण—दोष से; हत:—मारा गया; किम्—क्यों; हन्यते—मारा जाये; पुन:—फिर।

[अब कृष्ण को सम्बोधित करते हुए बलराम ने कहा] : यदि सम्बन्धी के दोष मृत्यु-दण्ड देने योग्य हों तब भी उसका वध नहीं किया जाना चाहिए। प्रत्युत उसे परिवार से निकाल देना चाहिए। चूँकि वह अपने पाप से पहले ही मारा जा चुका है, तो उसे फिर से क्यों मारा जाये?

तात्पर्य : रुक्मिणी को और अधिक सान्त्वना देने की दृष्टि से बलराम पुन: जोर देकर कहते हैं कि कृष्ण को चाहिए था कि रुक्मी को लज्जित न करते।

क्षत्रियाणामयं धर्म: प्रजापतिविनिर्मित: ।
भ्रातापि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतमस्तत: ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

क्षत्रियाणाम्—क्षत्रियों का; अयम्—यह; धर्म:—पवित्र कर्तव्य की संहिता; प्रजापति—आदि सन्तान उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा के द्वारा; विनिर्मित:—स्थापित; भ्राता—भाई; अपि—भी; भ्रातरम्—अपने भाई को; हन्यात्—मारना पड़ता है; येन—जिस (संहिता) से; घोर-तम:—अत्यन्त भयावह; तत:—अत:।.

क्षत्रियाणाम्—क्षत्रियों का; अयम्—यह; धर्म:—पवित्र कर्तव्य की संहिता; प्रजापति—आदि सन्तान उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा के द्वारा; विनिर्मित:—स्थापित; भ्राता—भाई; अपि—भी; भ्रातरम्—अपने भाई को; हन्यात्—मारना पड़ता है; येन—जिस (संहिता) से; घोर-तम:—अत्यन्त भयावह; तत:—अत:।

[रुक्मिणी की ओर मुड़कर बलराम ने कहा] : ब्रह्मा द्वारा स्थापित योद्धाओं के लिए पवित्र कर्तव्य की संहिता का आदेश है कि उसे अपने सगे भाई तक का वध करना पड़ सकता है। निस्सन्देह यह सबसे अथावह नियम है।

तात्पर्य : भगवान् बलराम निष्पक्ष भाव से स्थिति का पूरा विश्लेषण कर रहे हैं। यद्यपि अपने सम्बन्धी का वध नहीं करना चाहिए किन्तु सैन्य संहिता के अनुसार कुछ न्यूनीकारक परिस्थितियाँ भी हैं। १८६० ई. में अमरीकी गृह–युद्ध में कुछ परिवार उत्तरी तथा दक्षिणी सेनाओं में बँट गये थे जिससे दुर्भाग्यवश बन्धु–वध सामान्य व्यापार बन गया था। ऐसा वध निश्चय ही *घोरतम* है। किन्तु भौतिक जगत की रीति ही ऐसी है जहाँ कर्तव्य, सम्मान तथा तथाकथित न्याय से संघर्ष छिड़ जाता है। केवल आध्यात्मिक स्तर पर या कि शुद्ध कृष्णभावनामृत में हम संसार की अग्राह्य पीड़ा को लाँघ सकते हैं। रुक्मी गर्व तथा द्वेष से उन्मत्त था अत: वह कृष्ण या कृष्णभावनामृत के विषय में कुछ भी नहीं समझ सका।

राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः ।
मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

राज्यस्य—राज्य का; भूमेः—भूमि का; वित्तस्य—सम्पत्ति का; स्त्रियः—स्त्री का; मानस्य—सम्मान का; तेजसः—बल का; मानिनः—गर्व करने वाले; अन्यस्य—अन्यों का; वा—अथवा; हेतोः—कारण से; श्री—उनके ऐश्वर्य में; मद—उनकी उन्मत्तता से; अन्धाः—अंधे; क्षिपन्ति—अनादर (तिरस्कार) करते हैं; हि—निस्सन्देह।

[पुनः बलराम ने कृष्ण से कहा] : अपने ऐश्वर्य के मद से अन्धे हुए दम्भी लोग राज्य, भूमि, सम्पत्ति, स्त्री, सम्मान तथा अधिकार जैसी वस्तुओं के लिए अन्यों का तिरस्कार कर सकते हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण मूलत: रुक्मिणी से विवाह करने के निमित्त ही थे। सारे सम्बन्धियों को यही सर्वोत्तम व्यवस्था लग रही थी फिर भी द्वेषवश रुक्मी प्रारम्भ से ही दुर्भावना से इस उत्तम व्यवस्था का विरोधी था। जब अन्तत: उसकी बहिन की इच्छा पूरी हो गई और कृष्ण उसे ले गये तो उसने ओछे अनादर के साथ और भौतिक हथियारों से कृष्ण पर आक्रमण किया। बदले में कृष्ण ने उसे बाँध दिया और उसके कुछ बाल तथा मूँछें मूँड़ दीं। एक ओर जहाँ यह रुक्मी जैसे दम्भी राजकुमार के लिए लज्जास्पद था वहीं उसकी करतूत को देखते हुए यह दण्ड केवल उसकी कलाई पर एक थपकी के समान था।

तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ।
यन्मन्यसे सदाभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारे; इयम्—यह; विषमा—पक्षपातपूर्ण; बुद्धिः—मनोवृत्ति; सर्व-भूतेषु—सारे जीवों के प्रति; दुर्हृदाम्—विचारों वाले; यत्—जो; मन्यसे—तुम चाहते हो; सदा—सदैव; अभद्रम्—बुराई; सुहृदाम्—तुम्हारे शुभचिन्तकों को; भद्रम्—मंगल; अज्ञ-वत्—अज्ञानी पुरुष की भाँति।

[बलराम ने रुक्मिणी से कहा] : तुम्हारी मनोवृत्ति सही नहीं है क्योंकि तुम अज्ञानी व्यक्ति की भाँति उनका मंगल चाहती हो जो सारे जीवों के प्रति शत्रुतापूर्ण हैं और जिन्होंने तुम्हारे असली शुभचिन्तकों के साथ दुष्कृत्य किया है।

आत्ममोहो नृणामेव कल्पते देवमायया ।
सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

आत्म—अपने विषय में; मोहः—मोह; नृणाम्—मनुष्यों का; एव—एकमात्र; कल्पते—पूरा होता है; देव—भगवान् की; मायया—माया द्वारा; सुहृत्—मित्र; दुर्हृत्—शत्रु; उदासीनः—उदासीन; इति—ऐसा सोचकर; देह—शरीर; आत्म—आत्मा के रूप में; मानिनाम्—मानने वालों के लिए।

भगवान् की माया लोगों को उनके असली स्वरूपों को भुलवा देती है और इस तरह शरीर को आत्मा मान कर वे अन्यों को मित्र, शत्रु या तटस्थ मानते हैं।

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

एकः—एक; एव—अकेला; परः—परम; हि—निस्सन्देह; आत्मा—आत्मा; सर्वेषाम्—सभी; अपि—तथा; देहिनाम्—देहधारियों में; नाना—अनेक; इव—मानो; गृह्यते—अनुभव की जाती है; मूढैः—मोहग्रस्तों द्वारा; यथा—जैसे; ज्योतिः—नैसर्गिक पिण्ड; यथा—जिस तरह; नभः—आकाश में।

जो लोग मोहग्रस्त हैं, वे समस्त जीवधारियों के भीतर निवास करने वाले एक परमात्मा को अनेक करके मानते हैं जिस तरह से कोई आकाश में प्रकाश को, या आकाश को ही, अनेक रूपों में अनुभव करता हो।

तात्पर्य : इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति *यथा ज्योतिर्यथा नभः* में दो उपमाएँ हैं जिनमें एक ही वस्तु हमें अनेक प्रतीत होती है। *ज्योतिः* नैसर्गिक पिण्डों के यथा सूर्य या चन्द्रमा के प्रकाश का द्योतक है। यद्यपि चन्द्रमा एक है किन्तु उसका प्रतिबिम्ब हमें जलाशयों, नदियों, झीलों तथा पानी के बर्तनों में दिखता है। तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे कई चन्द्रमा हों जबकि चन्द्रमा रहता है एक ही। इसी प्रकार हम प्रत्येक जीव में दैवी उपस्थिति का अनुभव करते हैं क्योंकि भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं यद्यपि हैं

एक ही। दूसरी उपमा है *यथा नभः*। यदि एक कमरे में मिट्टी के कई बन्द पात्र रखे हों तो प्रत्येक पात्र में आकाश या वायु होता है यद्यपि आकाश एक है।

श्रीमद्भागवत में ही (१.२.२) ऐसा ही दृष्टान्त अग्नि तथा काष्ठ विषयक है—

यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु।

नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान्।

"भगवान्, परमात्मा रूप में सभी वस्तुओं में व्याप्त हैं, जिस तरह काष्ठ में अग्नि रहती है, अतः वह अनेक रूपों में प्रकट होता है, यद्यपि वह अद्वितीय एवं परम है।"

देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ।
आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

देहः—भौतिक शरीर; आदि—प्रारम्भ; अन्त—तथा अन्त; वान्—से युक्त; एषः—यह; द्रव्य—भौतिक तत्त्वों का; प्राण—इन्द्रियाँ; गुण—तथा प्रकृति के मूल गुण (सात्विक, रजो तथा तमो); आत्मकः—रचित; आत्मनि—आत्मा में; अविद्यया—भौतिक अज्ञान का; क्लृप्तः—थोपा हुआ; संसारयति—जन्म तथा मृत्यु के चक्र का बोध कराता है; देहिनम्—देहधारी को।

यह भौतिक शरीर, जिसका आदि तथा अन्त है, भौतिक तत्त्वों, इन्द्रियों तथा प्रकृति के गुणों से बना हुआ होता है। यह शरीर भौतिक अज्ञान द्वारा आत्मा पर लादे जाने से मनुष्य को जन्म तथा मृत्यु के चक्र का अनुभव कराता है।

तात्पर्य : भौतिक शरीर, जो कि विविध भौतिक गुणों, तत्त्वों इत्यादि से बना हुआ है बद्धजीव को आकर्षित-विकर्षित करता रहता है और उसे भव-बन्धन में उलझा देता है। हम अपने ही शरीर तथा अन्य शरीरों के प्रति आकर्षण-विकर्षण से ही अस्थायी सम्बन्ध स्थापित करते हैं, अपने को बड़े बड़े उधमों तथा कष्ट साध्य कार्यो में लगाते हैं, हम काल्पनिक धर्मों को गढ़ते हैं, बढ़िया व्याख्यान देते हैं और भौतिक मोह में अपने को पूरी तरह लिप्त कर लेते हैं। शेक्सपियर ने ठीक ही कहा है, "सारा जगत एक मंच के तुल्य है।" इस बेहूदे संसार रूपी मंच के परे ही असली तथा सार्थक कृष्णभावनामृत का संसार है, जो भगवान् की प्रेममयी भक्ति में लगे शुद्ध जीवों का मुक्त जीवन है।

नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चसतः सति ।
तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; आत्मनः—आत्मा के लिए; अन्येन—अन्य किसी से; संयोगः—सम्पर्क; वियोगः—विछोह; च—तथा; असतः—जो सारभूत नहीं है; सति—हे अच्छे-बुरे का ज्ञान रखने वाले; तत्—उस (आत्मा) से; हेतुत्वात्—उत्पन्न होने से; तत्—उस (आत्मा) से; प्रसिद्धेः—प्रकट होने से; दृक्—दृश्य-इन्द्रिय; रूपाभ्याम्—तथा दृश्य-रूप से; यथा—जिस तरह; रवेः—सूर्य के लिए।.

हे बुद्धिमान देवी, आत्मा न तो कभी असत् भौतिक पदार्थों के सम्पर्क में आता है न उससे वियुक्त होता है क्योंकि आत्मा ही उनका उद्‌गम एवं प्रकाशक है। इस तरह आत्मा सूर्य के समान है, जो न तो कभी दृश्य-इन्द्रिय (नेत्र) तथा दृश्य-रूप के सम्पर्क में आता है, न ही उससे विलग होता है।

तात्पर्य : जैसाकि पिछले श्लोक में बतलाया गया है, बद्धजीव अज्ञानतावश अपने को भौतिक शरीर मान लेता है और इस तरह जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है। वस्तुतः पदार्थ तथा आत्मा, प्रत्येक वस्तु के मूल उद्‌गम भगवान् अर्थात् परम सत्य की सह-शक्तियाँ हैं।

भगवद्गीता (७.५) में भगवान् कृष्ण बतलाते हैं—*जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्*—यह भौतिक जगत इसलिए बना चला आ रहा है क्योंकि जीव इसका दोहन करना चाहते हैं। यह भौतिक जगत एक कारागार के समान है। अपराधी लोग अपराध करने के लिए कृतसंकल्प रहते हैं इसलिए सरकार को कारागार की व्यवस्था बनाये रखनी होती है। इसी प्रकार भगवान् भौतिक ब्रह्माण्डों को बनाए रखते हैं क्योंकि बद्धजीव उनके विरुद्ध विद्रोह करने और उनके प्रेमपूर्ण सहयोग के बिना ही भोग करने का प्रयास करने पर तुले रहते हैं। इसीलिए यहाँ *तद्-धेतुत्वात्* पद का प्रयोग आत्मा के लिए हुआ है, जिसका अर्थ हुआ कि आत्मा उस पदार्थ के पुंजीभूत होकर भौतिक शरीर बनाने का कारण है। *तत्-प्रसिद्धेः* पद सूचित करता है कि आत्मा से यह शरीर अनुभव होता है और इसी पद से यह भी सूचित होता है कि यह तथ्य प्रबुद्ध व्यक्ति को अच्छी तरह ज्ञात है।

इस श्लोक में प्रयुक्त *आत्मनः* शब्द दिये गये अर्थ के अतिरिक्त परमात्मा का भी सूचक हो सकता है। उस दशा में *तद्-धेतुत्वात्* पद यह सूचित करता है कि भगवान् अपनी निजी शक्ति का विस्तार करते हैं और इस तरह भौतिक ब्रह्माण्ड का प्राकट्य करते हैं। चूँकि भगवान् अपने शुद्ध दिव्य शरीर में शाश्वत रूप में विद्यमान हैं अतएव वे कभी भी भौतिक नहीं हो सकते जैसा यहाँ बताया गया है।

जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ।
कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

जन्म-आदयः—जन्म इत्यादि; तु—लेकिन; देहस्य—शरीर के; विक्रियाः—विकार; न—नहीं; आत्मनः—आत्मा के; क्वचित्—सदैव; कलानाम्—कलाओं का; इव—सदृश; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; इन्दोः—चन्द्रमा की; मृतिः—मृत्यु; हि—निस्सन्देह; अस्य—इसका; कुहूः—नवीन चान्द्र-दिवस; इव—सदृश।

जन्म तथा अन्य विकार शरीर में ही होते हैं, आत्मा में नहीं। जिस प्रकार चन्द्रमा की कलाएँ बदलती हैं, चन्द्रमा नहीं यद्यपि नव-चान्द्र दिवस को चन्द्रमा की ''मृत्यु'' कहा जा सकता है।

तात्पर्य : यहाँपर बलराम यह बतलाते हैं कि किस तरह बद्धजीव अपनी पहचान शरीर से करते हैं और इस पहचान को किस तरह त्याग देना चाहिए। निस्सन्देह, हर सामान्य व्यक्ति अपने को तरुण, प्रौढ़ या वृद्ध अथवा स्वस्थ या रुग्ण मानता है। किन्तु ऐसी पहचान भ्रम है, जिस तरह चन्द्रमा का घटना-बढ़ना भ्रम है। जब हम अपने भौतिक शरीर से अपनी पहचान करते हैं, तो हम अपनी आत्मा को समझने की शक्ति खो देते हैं।

यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च ।
अनुभुङ्क्ते ऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; शयानः—सोया हुआ व्यक्ति; आत्मानम्—अपने को; विषयान्—इन्द्रिय-विषयों को; फलम्—फल को; एव—निस्सन्देह; च—भी; अनुभुङ्क्ते—अनुभव करता है; अपि—भी; असति अर्थे—जो सत्य नहीं है उसमें; तथा—उसी प्रकार; आप्नोति—प्राप्त होता है; अबुधः—अज्ञानी; भवम्—संसार को।

जिस प्रकार सोया हुआ व्यक्ति स्वप्न के भ्रम के अन्तर्गत अपना, इन्द्रिय भोग के विषयों का तथा अपने कर्म-फलों का अनुभव करता है, उसी तरह अज्ञानी व्यक्ति इस संसार को प्राप्त होता है।

तात्पर्य : जैसाकि *श्रुति* का कथन है—*असङ्गो ह्ययं पुरुषः*—जीव का भौतिक जगत से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। इस श्लोक में इसी बात को बतलाया गया है। ऐसा ही कथन *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र भी (११.२२.५६) आया है—

अर्थेऽह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते।

ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा।

''जो इन्द्रियतृप्ति का ही चिन्तन करता रहता है उसके लिए भौतिक जीवन जिसका वास्तविक

अस्तित्व नहीं होता, समाप्त नहीं होता जिस तरह कि स्वप्न के कटु अनुभव नहीं जा पाते।''

तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ।
तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; अज्ञान—अज्ञान से; जम्—उत्पन्न; शोकम्—शोक; आत्म—स्वयं; शोष—सुखाते हुए; विमोहनम्—तथा मोहग्रस्त होना; तत्त्व—सत्य के; ज्ञानेन—ज्ञान से; निर्हृत्य—दूर करके; स्व-स्था—अपने सहज भाव में स्थित; भव—होओ; शुचि-स्मिते—शुद्ध हँसी वाली।

अत: दिव्य ज्ञान से उस शोक को दूर करो जो तुम्हारे मन को दुर्बल तथा भ्रमित कर रहा है। हे आदि हँसी वाली राजकुमारी, तुम अपने सहज भाव को फिर से प्राप्त करो।

तात्पर्य : भगवान् बलराम श्रीमती रुक्मिणी को स्मरण दिलाते हैं कि वे नित्य लक्ष्मी हैं, जो इस जगत में भगवान् के साथ लीलाएँ कर रही हैं अत: उन्हें अपना तथाकथित शोक त्याग देना चाहिए।

श्रीशुक उवाच
एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ।
वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; तन्वी—पतली कमर वाली रुक्मिणी; रामेण—बलराम द्वारा; प्रतिबोधिता—समझाई गई; वैमनस्यम्—अपनी उदासी को; परित्यज्य—त्याग कर; मनः—अपना मन; बुद्ध्या—बुद्धि से; समादधे—स्थिर किया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार बलराम द्वारा समझाये जाने पर क्षीण-कटि वाली रुक्मिणी अपनी उदासी भूल गईं और आध्यात्मिक बुद्धि से उन्होंने अपना मन स्थिर किया।

प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः ।
स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ।
चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत्पुरम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

प्राण—उसकी प्राण-वायु; अवशेषः—बची हुई; उत्सृष्टः—निकाला गया; द्विड्भिः—शत्रुओं द्वारा; हत—विनष्ट; बल—उसका बल; प्रभः—तथा शारीरिक तेज; स्मरन्—स्मरण करके; विरूप-करणम्—अपना विरूपित होना; वितथ—हताश; आत्म—अपनी; मनः-रथः—इच्छाएँ; चक्रे—बनाया; भोज-कटम् नाम—भोजकट नामक; निवासाय—अपने रहने के लिए; महत्—बड़ी; पुरम्—नगरी।

अपने शत्रुओं द्वारा निष्कासित तथा बल और शारीरिक कान्ति से विहीन अपने प्राण बचाया हुआ रुक्मी यह नहीं भूल पाया कि उसको किस तरह विरूपित किया गया था। हताश हो जाने

के कारण उसने अपने रहने के लिए एक विशाल नगरी बनवाई जिसका नाम उसने भोजकट रखा।

अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अहत्वा—बिना वध किये; दुर्मतिम्—दुष्टबुद्धि; कृष्णम्—कृष्ण को; अप्रत्यूह्य—वापस लाये बिना; यवीयसीम्—अपनी छोटी बहन; कुण्डिनम्—कुण्डिन में; न प्रवेक्ष्यामि—नहीं प्रवेश करूँगा; इति—ऐसा; उक्त्वा—कहकर; तत्र—वहाँ (जहाँ उसे विरूपित किया गया था); अवसत्—रहने लगा; रुषा—क्रोध में।

चूँकि उसने प्रतिज्ञा की थी कि ''मैं तब तक कुण्डिन में प्रवेश नहीं करूँगा जब तक दुष्ट कृष्ण को मार कर अपनी छोटी बहन को वापस नहीं ले आता'' अतः रुक्मी हताश होकर उसी स्थान पर रहने लगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि *भोज* शब्द का अर्थ है ''अनुभव'' और *कटः* शब्द का अर्थ *नानार्थवर्ग कोश* के अनुसार ''व्रत'' है। अतः भोजकट वह स्थान है जहाँ रुक्मी को अपने व्रत के कारण शोक सहना पड़ा।

भगवान्भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ।
पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् ने; भीष्मक-सुताम्—भीष्मक-पुत्री को; एवम्—इस प्रकार; निर्जित्य—पराजित करके; भूमि-पान्—राजाओं को; पुरम्—अपनी राजधानी में; आनीय—लाकर; विधि-वत्—वैदिक आदेशों के अनुसार; उपयेमे—विवाह किया; कुरु-उद्वह—हे कुरुओं के रक्षक।

हे कुरुओं के रक्षक, इस तरह भगवान् सारे विरोधी राजाओं को हरा कर भीष्मक की पुत्री को अपनी राजधानी ले आये और जहाँ वैदिक आदेशों के अनुसार उससे विवाह कर लिया।

तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ।
अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब; महा-उत्सवः—महान् उत्साह; नृणाम्—लोगों द्वारा; यदु-पुर्याम्—यदुओं की राजधानी द्वारका में; गृहे गृहे—घर घर में; अभूत्—उठा; अनन्य-भावानाम्—अनन्य प्रेम; कृष्णे—कृष्ण के लिए; यदु-पतौ—यदुओं के प्रमुख; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

हे राजन्, उस समय यदुपुरी के सारे घरों में महान् उत्साह था क्योंकि उसके नागरिक यदुओं

के एकमात्र प्रधान कृष्ण से प्रेम करते थे।

नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ।
पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

नराः—पुरुष; नार्यः—स्त्रियाँ; च—और; मुदिताः—प्रसन्न; प्रमृष्ट—चमकीली; मणि—मणियाँ; कुण्डलाः—तथा कुण्डल; पारिबर्हम्—विवाह के उपहार; उपाजह्रुः—आदरपूर्वक भेंट किया; वरयोः—दूल्हा-दुलहिन को; चित्र—अद्भुत; वाससोः—वस्त्रों वाले।

प्रसन्नता से पूरित होकर एवं चमकीली मणियों तथा कुण्डलों से अलंकृत सारे स्त्री-पुरुष विवाह के उपहार ले आये जिन्हें उन्होंने अति सुन्दर वस्त्र पहने दूल्हा-दुलहिन को आदरपूर्वक भेंट किया।

सा वृष्णिपुर्युत्तम्भितेन्द्रकेतुभि-
विंचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः ।
बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलै-
रापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; वृष्णि-पुरी—वृष्णियों की नगरी; उत्तम्भित—ऊपर उठी; इन्द्र-केतुभिः—मांगलिक ख भों से; विचित्र—नाना प्रकार के; माल्य—फूलों की माला से युक्त; अम्बर—कपड़े के झंडे; रत्न—तथा मणियाँ; तोरणैः—बन्दनवारों से; बभौ—सुन्दर लग रहा था; प्रति—प्रत्येक; द्वारि—दरवाजे पर; उपक्लृप्त—सजा; मङ्गलैः—मांगलिक वस्तुओं से; आपूर्ण—भरे; कुम्भ—जलपात्र; अगुरु—अगुरु से सुगन्धित; धूप—धूप से; दीपकैः—तथा दीपकों से।

वृष्णियों की नगरी अत्यन्त सुन्दर लग रही थी: ऊँचे ऊँचे मांगलिक ख भे तथा फूल-मालाओं, कपड़े के झंडों और बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत तोरण भी थे। प्रत्येक दरवाजे पर भरे हुए मंगल घट, अगुरु से सुगन्धित धूप तथा दीपक सजे थे।

सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ।
गजैर्द्वाःसु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

सिक्त—छिड़काव की गई; मार्गा—सड़कें; मद—हाथियों के गण्डस्थल से निकला रस; च्युद्भिः—रसता हुआ; आहूत—बुलाया; प्रेष्ठ—प्रिय; भू-भुजाम्—राजाओं के; गजैः—हाथियों से; द्वाःसु—द्वारों पर; परामृष्ट—रख कर; रम्भा—केला; पूग—तथा सुपारी से; उपशोभिता—सजाया गया।

नगरी की सड़कों का छिड़काव उन उन्मुक्त हाथियों द्वारा हुआ था, जो विवाह के अवसर पर अतिथि बनकर आये प्रिय राजाओं के थे। इन हाथियों ने सारे द्वारों पर केले के तने तथा सुपारी

के वृक्ष रख कर नगरी की शोभा और भी बढ़ा दी थी।

कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः ।
मिथो मुमुदिरे तस्मिन्सम्भ्रमात्परिधावताम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

कुरु-सृञ्जय-कैकेय-विदर्भ-यदु-कुन्तयः—कुरु, सृञ्जय, कैकेय, विदर्भ, यदु तथा कुन्ति वंश के सदस्यों के; मिथः—परस्पर; मुमुदिरे—आनन्द लूटा; तस्मिन्—उस (उत्सव) में; सम्भ्रमात्—उत्तेजनावश; परिधावताम्—जो दौड़ने वाले थे उनमें से।

कुरु, सृञ्जय, कैकेय, विदर्भ, यदु तथा कुन्ति वंश वाले लोग, उत्तेजना में इधर-उधर दौड़ते लोगों की भीड़ में, एक-दूसरे से उल्लासपूर्वक मिल रहे थे।

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ।
राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

रुक्मिण्याः—रुक्मिणी के; हरणम्—हरण के विषय में; श्रुत्वा—सुनकर; गीयमानम्—गाया जाता; ततः ततः—सर्वत्र; राजानः—राजागण; राज-कन्याः—राजाओं की पुत्रियाँ; च—तथा; बभूवुः—हो गईं; भृश—अत्यन्त; विस्मिताः—चकित।

सारे राजा तथा उनकी पुत्रियाँ रुक्मिणी-हरण की उस वृतान्त को सुनकर अत्यन्त चकित थे, जो सर्वत्र गीत के रूप में गायी जा रही थी।

द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ।
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

द्वारकायाम्—द्वारका में; अभूत्—था; राजन्—हे राजन्; महा-मोदः—परम उत्साह; पुर-ओकसाम्—नगरवासियों के लिए; रुक्मिण्या—रुक्मिणी से; रमया—लक्ष्मी स्वरूप; उपेतम्—संयुक्त; दृष्ट्वा—देख कर; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; श्रियः—समस्त ऐश्वर्य के; पतिम्—स्वामी को।

द्वारका के निवासी समस्त ऐश्वर्य के स्वामी कृष्ण को लक्ष्मी स्वरूप रुक्मिणी से संयुक्त देखकर अत्यधिक प्रमुदित थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवे स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण-रुक्मिणी विवाह'' नामक चौवनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पचपन

प्रद्युम्न-कथा

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह भगवान् कृष्ण के पुत्र-रूप में प्रद्युम्न का जन्म हुआ और किस तरह फिर शम्बर असुर ने उसका अपहरण कर लिया। इसमें इसका भी वर्णन हुआ है कि प्रद्युम्न किस तरह शम्बर को मार कर अपनी पत्नी समेत घर लौटे।

जब भगवान् वासुदेव के अंश-रूप कामदेव शिवजी के क्रोध से भस्म हो गये तो वे रुक्मिणी की कोख से प्रद्युम्न के अंश-रूप में पुनः उत्पन्न हुए। शम्बर नामक असुर ने इन्हें अपना शत्रु मान कर प्रसूतिगृह से ही, जब ये दस दिन के भी नहीं थे, उनका अपहरण कर लिया। उसने प्रद्युम्न को समुद्र में फेंक दिया और फिर अपने राज्य को चला गया। एक बलशाली मछली प्रद्युम्न को निगल गई जिसे मछुओं ने जाल में फँसा लिया। उन्होंने इस बड़ी मछली को ले जाकर शम्बर को भेंट किया और जब उसके रसोइयों ने उसे काटा तो उसके पेट से एक बालक मिला। रसोइये ने इस बालक को मायावती दासी को दे दिया जो उसे देखकर चकित हो गई। तभी नारदमुनि ने वहाँ आकर इस बालक के बारे में उसे सब बतलाया। मायावती वास्तव में कामदेव की पत्नी रतिदेवी थी। अपने पति को नवीन शरीर धारण करके फिर से जन्म लेने की प्रतीक्षा करते हुए उसने शम्बर के घर में खाना बनाने की नौकरी कर ली थी। चूँकि अब वह जान गई थी कि यह बालक कौन है, अत: उसके प्रति उसमें उत्कट स्नेह प्रकट होने लगा। अल्पकाल में ही प्रद्युम्न युवक हो गया और अपने सौन्दर्य से स्त्रियों को मुग्ध करने लगा।

एक बार रतिदेवी प्रद्युम्न के पास गई और माधुर्य-भाव में अपनी भौंहें मटकाने लगी। उसे माँ कहकर सम्बोधित करते हुए प्रद्युम्न ने टिप्पणी की कि वह अपने समुचित वात्सल्य-भाव को त्याग कर कामुक प्रेमिका की तरह आचरण क्यों कर रही है। तब रति ने प्रद्युम्न को बतलाया कि वे दोनों कौन हैं। उसने प्रद्युम्न को सलाह दी कि वह शम्बर असुर को मारे जिसके लिए उसने उसे महामाया नामक योगमंत्रों की शिक्षा दी। प्रद्युम्न ने शम्बर के पास जाकर उसे अनेक प्रकार से अपमानित करके क्रुद्ध किया तथा लड़ने के लिए ललकारा। इस पर शम्बर ने क्रुद्ध होकर अपनी गदा उठाई और बाहर निकल आया। उसने प्रद्युम्न पर अनेक जादू-टोने किये किन्तु प्रद्युम्न ने महामाया मंत्रों के बल पर उन सबों को छूमन्तर कर दिया और तब अपनी तलवार से शम्बर का सिर छिन्न कर दिया। उस समय रतिदेवी आकाश में प्रकट हुई और वह प्रद्युम्न को द्वारका ले गई।

जब प्रद्युम्न तथा उसकी पत्नी कृष्ण के अन्त:पुर में प्रविष्ट हुए तो अनेक सुन्दरी स्त्रियों ने सोचा कि वे साक्षात् कृष्ण हैं। उनका रूप तथा वेश भगवान् जैसा ही था। वे स्त्रियाँ लज्जावश इधर-उधर भाग कर छिप गईं। किन्तु थोड़ी देर बाद उन्हें प्रद्युम्न तथा कृष्ण के रूपों में थोड़ा अन्तर दिखा तो वे समझ गईं कि यह कृष्ण नहीं हैं, अत: उन्होंने चारों ओर से उन्हें घेर लिया।

जब रुक्मिणीदेवी ने प्रद्युम्न को देखा तो वे मातृ-प्रेम से अभिभूत हो उठीं और तुरन्त उनके स्तनों से दूध चूने लगा। यह देखकर कि प्रद्युम्न बिल्कुल कृष्ण ही जैसा दिखता है, वे पता लगाने के लिए उत्सुक हो उठीं कि वह कौन है। उन्हें स्मरण हो आया कि किस तरह उनका एक पुत्र प्रसूतिगृह से चुरा लिया गया था। उन्होंने सोचा, "यदि वह अभी जीवित है, तो वह मेरे समक्ष खड़े इस प्रद्युम्न की ही आयु वाला होगा।" जब वे इस तरह सोच-विचार कर रही थीं तभी कृष्ण देवकी तथा वसुदेव के साथ वहाँ आ गये। यद्यपि कृष्ण सारी स्थिति को भलीभाँति समझ गये थे, किन्तु वे मौन रहे। तभी नारदमुनि आये और उन्होंने सारी बातें बतलाईं। सभी लोग यह वृत्तान्त सुनकर चकित थे और उन्होंने परम प्रसन्नतापूर्वक प्रद्युम्न को गले लगा दिया।

चूँकि प्रद्युम्न का सौन्दर्य कृष्ण के सौन्दर्य से काफी कुछ मिलता-जुलता था अत: प्रद्युम्न के प्रति मातृ-स्नेह रखने वाली स्त्रियाँ उन्हें अपने प्रेमी के रूप में देखने लगीं। चूँकि वे कृष्ण के हू-बहू प्रतिबिम्ब थे, अत: उनका इस प्रकार से उन्हें देखना स्वाभाविक था।

श्रीशुक उवाच
कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कामः—कामदेव; तु—तथा; वासुदेव—भगवान् वासुदेव का; अंशः—अंश; दग्धः—जला हुआ; प्राक्—पूर्वकाल में; रुद्र—शिव के; मन्युना—क्रोध से; देह—शरीर; उपपत्तये—प्राप्त करने के उद्देश्य से; भूयः—पुनः; तम्—उसको, वासुदेव को; एव—निस्सन्देह; प्रत्यपद्यत्—वापस आ गया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : वासुदेव का अंश कामदेव पहले ही रुद्र के क्रोध से जल कर राख हो चुका था। अब नवीन शरीर प्राप्त करने के लिए वह भगवान् वासुदेव के शरीर में पुनः लीन हो गया।

तात्पर्य : श्रील रूप गोस्वामी ने *कृष्णसन्दर्भ* (अनुच्छेद ८७) में *गोपाल तापनी उपनिषद्* का

निम्नलिखित श्लोक (२.४०) यह सिद्ध करने के लिए उद्धृत किया है कि कृष्ण तथा रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न वही प्रद्युम्न हैं, जो भगवान् कृष्ण के शाश्वत चतुरंगी स्वांशों अर्थात् चतुर्व्यूह में से एक सदस्य हैं—

यत्रासौ संस्थित: कृष्णस्त्रिभि: शक्त्या समाहित: ।

रामानिरुद्धप्रद्युम्नै रुक्मिण्या सहितो विभु: ॥

''द्वारका में सर्वशक्तिमान एवं पूर्ण शक्तियों से समन्वित भगवान् कृष्ण अपने तीन अंशों—बलराम, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न समेत रह रहे थे।'' *श्रीमद्भागवत* के इस श्लोक के सन्दर्भ में *कृष्णसन्दर्भ* में आगे बतलाया गया है कि ''रुद्र ने जिस कामदेव को क्रुद्ध होकर भस्म कर दिया था, वह इन्द्र के अधीन देवता है। यह काम देवता आदि-कामदेव प्रद्युम्न का अंशांश है, जबकि प्रद्युम्न वासुदेव के स्वांश हैं। अपने आप नवीन शरीर प्राप्त करने में अक्षम होने पर कामदेव प्रद्युम्न के शरीर में प्रवेश कर गया, अन्यथा रुद्र का कोपभाजन होने के कारण, उसे सदा के लिए बिना शरीर के रहना पड़ता।''

श्रील प्रभुपाद ने *श्रीमद्भागवत* के तात्पर्य (१.१४.०) में भगवान् कृष्ण के प्रथम पुत्र प्रद्युम्न के परम पद की पुष्टि की है कि ''प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भी भगवान् के अंश हैं अत: वे भी *विष्णुतत्त्व* हैं। द्वारका में भगवान् वासुदेव अपने स्वांशों—संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के साथ अपनी दिव्य लीलाओं में व्यस्त रहते हैं अतएव इन तीनों में से हरएक को भगवान् कह कर पुकारा जा सकता है...।''

श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार प्रद्युम्न का जन्म रुक्मिणी की कोख से, जाम्बवती के साथ कृष्ण के विवाह तथा उनके अन्य विवाहों के पूर्व हुआ था। बाद में, प्रद्युम्न शम्बर के महल से वापस आये। किन्तु इसके पूर्व कि शुकदेव गोस्वामी कृष्ण की अन्य पत्नियों के साथ उनकी लीलाओं का वर्णन करें, सांतत्य की दृष्टि से वे प्रद्युम्न की पूरी कथा कह सुनायेंगे।

श्रील श्रीधर स्वामी यह भी लिखते हैं कि कामदेव जो कि अब प्रद्युम्न के भीतर प्रकट हो रहा था, वासुदेव का अंश है, क्योंकि वह *चित्त* से प्रकट होने वाला तत्त्व है, जिसके अधिष्ठाता वासुदेव हैं। यह कामदेव भौतिक उत्पत्ति का कारण भी है। जैसाकि भगवान् ने *भगवद्गीता* (.२८) में कहा है—*प्रजनश्चास्मि कन्दर्प:*—प्रजनकों में मैं कन्दर्प (काम) हूँ।

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २॥

शब्दार्थ

सः—वह; एव—निस्सन्देह; जातः—उत्पन्न; वैदर्भ्याम्—विदर्भ की पुत्री से; कृष्ण-वीर्य—भगवान् कृष्ण के वीर्य से; समुद्भवः—उत्पन्न; प्रद्युम्नः—प्रद्युम्न; इति—इस प्रकार; विख्यातः—विख्यात; सर्वतः—सभी प्रकार से; अनवमः—निकृष्ट (कम) नहीं; पितुः-तो हिस् फथेर्.

उसका जन्म वैदर्भी की कोख से भगवान् कृष्ण के वीर्य से हुआ और उसका नाम प्रद्युम्न पड़ा। वह अपने पिता से किसी भी तरह कम नहीं था।

तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ।
स विदित्वात्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ॥ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; शम्बरः—शम्बर नामक असुर; काम—इच्छित; रूपी—रूप धारण करके; हृत्वा—चुरा कर; तोकम्—शिशु को; अनिः-दशम्—अभी दस दिन का भी नहीं था; सः—वह (शम्बर); विदित्वा—जान कर; आत्मनः—अपना; शत्रुम्—शत्रु; प्रास्य—फेंक कर; उदन्वति—समुद्र में; अगात्—चला गया; गृहम्—अपने घर।

इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर लेने वाला शम्बर असुर उस शिशु को, जो अभी दस दिन का भी नहीं हुआ था, उठा ले गया। प्रद्युम्न को अपना शत्रु समझ कर शम्बर ने उसे समुद्र में फेंक दिया और फिर अपने घर लौट आया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि *विष्णु पुराण* के अनुसार प्रद्युम्न का अपहरण जन्म लेने के छठे दिन बाद हुआ।

तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह ।
वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; निर्जगार—निगल गई; बल-वान्—बलशाली; मीनः—मछली; सः—वह (मछली); अपि—तथा; अपरैः—अन्यों के; सह—साथ; वृतः—घिर कर, फँस कर; जालेन—जाल से; महता—विशाल; गृहीतः—पकड़ ली गई; मत्स्य-जीविभिः—मछुआरों द्वारा।

प्रद्युम्न को एक बलशाली मछली निगल गई और यह मछली अन्य मछलियों के साथ मछुआरों द्वारा एक बड़े से जाल में फँसा कर पकड़ी गई।

तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम् ।

सूदा महानसं नीत्वावद्यन्सुधितिनाद्भुतम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (मछली) को; शम्बराय—शम्बर को; कैवर्ताः—मछुआरों ने; उपाजह्रुः—भेंट कर दिया; उपायनम्—उपहार; सूदाः—रसोइयों ने; महानसम्—रसोई-घर में; नीत्वा—ले जाकर; अवद्यन्—खंड खंड कर दिया; सुधितिना—कसाई के चाकू से; अद्भुतम्—अद्भुत।

मछुआरों ने वह असामान्य मछली लाकर शम्बर को भेंट कर दी, जिसके रसोइये उसे रसोई-घर में ले आये, जहाँ वे उसे कसाई के चाकू से काटने लगे।

दृष्ट्वा तदुदरे बालम्मायावत्यै न्यवेदयन् ।
नारदोऽकथयत्सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः ।
बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; तत्—उसके; उदरे—पेट में; बालम्—शिशु को; मायावत्यै—मायावती को; न्यवेदयन्—दे दिया; नारदः—नारदमुनि ने; अकथयत्—कह सुनाया; सर्वम्—सभी; तस्याः—उससे; शङ्कित—चकित; चेतसः—जिसका मन; बालस्य—शिशु के; तत्त्वम्—विषयक बातें; उत्पत्तिम्—जन्म; मत्स्य—मछली के; उदर—पेट में; निवेशनम्—प्रवेश।

मछली के पेट में बालक पाकर रसोइयों ने यह बालक मायावती को दे दिया, जो चकित रह गई। तब नारदमुनि प्रकट हुए और उन्होंने उससे बालक के जन्म तथा मछली के पेट में उसके प्रवेश की सारी बातें कह सुनाईं।

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ।
पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिम्प्रतीक्षती ॥ ७ ॥
निरूपिता शम्बरेण सा सूदौदनसाधने ।
कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदार्भके ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; च—तथा; कामस्य—कामदेव की; वै—वस्तुतः; पत्नी—पत्नी; रतिः नम—रति नामक; यशस्विनी—सुप्रसिद्ध; पत्युः—अपने पति के; निर्दग्ध—भस्म हुए; देहस्य—शरीर के; देह—शरीर की; उत्पत्तिम्—प्राप्ति; प्रतीक्षती—प्रतीक्षा करती; निरूपिता—नियुक्त; शम्बरेण—शम्बर द्वारा; सा—वह; सूद-ओदन—तरकारियों तथा चावल के; साधने—तैयार करने में; काम-देवम्—कामदेव के रूप में; शिशुम्—शिशु को; बुद्ध्वा—समझ कर; चक्रे—करने लगी; स्नेहम्—प्रेम; तदा—तब; अर्भके—शिशु के लिए।

वस्तुतः मायावती कामदेव की सुप्रसिद्ध पत्नी रति थी। वह अपने पति द्वारा नवीन शरीर प्राप्त करने की प्रतीक्षा में थी क्योंकि उसके पति का पिछला शरीर भस्म कर दिया गया था। मायावती को शम्बर द्वारा तरकारियाँ तथा चावल पकाने का काम सौंपा गया था। मायावती समझ गई थी कि यह शिशु वास्तव में कामदेव है, अतएव वह उससे प्रेम करने लगी थी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस कथा की व्याख्या इस प्रकार की है : जब कामदेव का शरीर जलकर राख हो गया तो रति ने कामदेव को दूसरा शरीर प्रदान कराने के लिए शिवजी की आराधना की। शम्बर भी आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए शिवजी के पास आया था। उन्होंने उसे पहचान लिया और कहा कि "पहले तुम आशीर्वाद माँगो।" रति को देख कर शम्बर कामवश हो गया अत: उसने कहा कि वरदान में वह रति को चाहता है। शिवजी ने हाँ कर दी। तब शिवजी ने व्याकुल रति को सान्त्वना दी कि "तुम इसके साथ जाओ और इसके घर में ही तुम्हें मनवांछित फल प्राप्त होगा।" तत्पश्चात् रति ने शम्बर को अपनी मोहिनी शक्ति से मोह लिया और मायावती नाम रखकर उसी के घर में पवित्र सती की तरह रहने लगी।

नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णि रूढयौवन: ।
जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अति-दीर्घेण—बहुत लम्बे; कालेन—समय के बाद; स:—वह; कार्ष्णि:—कृष्ण का पुत्र; रूढ—प्राप्त; यौवन:—युवावस्था; जनयाम् आस—उत्पन्न किया; नारीणाम्—स्त्रियों के लिए; वीक्षन्तीनाम्—उस पर टकटकी लगाने वाली; च—तथा; विभ्रमम्—जादू।

कुछ काल बाद कृष्ण के इस पुत्र, प्रद्युम्न ने पूर्ण यौवन प्राप्त कर लिया। वह उन सारी स्त्रियों को मोहने लगा जो उसे देखती थीं।

सा तम्पतिं पद्मदलायतेक्षणं
प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम् ।
सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती
प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतै: ॥ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; तम्—उस; पतिम्—अपने पति को; पद्म—कमल के फूल की; दल-आयत—पंखड़ियों के समान फैली; ईक्षणम्—आँखें; प्रलम्ब—लटकती हुई; बाहुम्—बाँहें; नर-लोक—मानव समाज की; सुन्दरम्—सुन्दरता की सबसे बड़ी वस्तु; स-व्रीड—सलज्ज; हास—हँसी से युक्त; उत्तभित—उठी हुईं; भ्रुवा—तथा भौंहों से युक्त; ईक्षती—देखती हुई; प्रीत्या—प्रेमपूर्वक; उपतस्थे—पास आई; रति:—रति; अङ्ग—हे प्रिय (राजा परीक्षित); सौरतै:—दाम्पत्य आकर्षण (सुरति) के सूचक संकेतों से।

हे राजन्, सलज्ज हास तथा भौंहें ताने मायावती जब प्रेमपूर्वक अपने पति के पास पहुँची तो उसने दाम्पत्य आकर्षण के विविध संकेत प्रकट किये। उसके पति की आँखें कमल की पंखड़ियों की तरह फैली हुई थीं, उसकी भुजाएँ काफी लम्बी थीं और मनुष्यों में वह सर्वाधिक

मनोहर था।

तात्पर्य : मायावती प्रद्युम्न के प्रति अपना दाम्पत्य आकर्षण असली पहचान प्रकट होने के काफी पहले से प्रकट कर रही थी। स्वाभाविक है कि इससे प्रारम्भ में कुछ भ्रम उत्पन्न हुआ जैसाकि अगले श्लोक में वर्णन हुआ है।

तामह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ।
मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उससे; आह—कहा; भगवान्—भगवान्; कार्ष्णिः—प्रद्युम्न ने; मातः—हे माता; ते—तुम्हारा; मतिः—झुकाव; अन्यथा—अन्यथा; मातृ-भावम्—माता का भाव या मुद्रा; अतिक्रम्य—अतिक्रमण करके; वर्तसे—आचरण कर रही हो; कामिनी—प्रेयसी; यथा—सदृश।

भगवान् प्रद्युम्न ने उससे कहा, ''हे माता, तुम्हारे मनोभाव बदल गये हैं। तुम मातोचित भावों का अतिक्रमण कर रही हो और एक प्रेयसी की भाँति आचरण कर रही हो।''

रतिरुवाच
भवान्नारायणसुतः शम्बरेण हृतो गृहात् ।
अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

रतिः उवाच—रति ने कहा; भवान्—आप; नारायण-सुत ह्—भगवान् नारायण के पुत्र; शम्बरेण—शम्बर द्वारा; हृतः—चुराये जाकर; गृहात्—अपने घर से; अहम्—मैं; ते—तुम्हारी; अधिकृता—वैध; पत्नी—पत्नी; रतिः—रति; कामः—कामदेव; भवान्—आप; प्रभो—हे प्रभु।

रति ने कहा : आप भगवान् नारायण के पुत्र हैं और शम्बर द्वारा अपने माता-पिता के घर से हर लिए गये थे। हे प्रभु, मैं आपकी वैध पत्नी रति हूँ, क्योंकि आप कामदेव हैं।

एष त्वानिर्दशं सिन्धावक्षिपच्छम्बरोऽसुरः ।
मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादितः प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १ ॥

शब्दार्थ

एषः—वह; त्वा—तुम; अनिः-दशम्—दस दिन के भी नहीं; सिन्धौ—समुद्र में; अक्षिपत्—फेंक दिया; शम्बरः—शम्बर ने; असुरः—असुर; मत्स्यः—मछली; अग्रसीत्—निगल गई; तत्—उसके; उदरात्—पेट से; इतः—यहाँ; प्राप्तः—प्राप्त किया; भवान्—आप; प्रभो—हे प्रभु।

उस शम्बर असुर ने जबकि आप अभी दस दिन के भी नहीं थे आपको समुद्र में फेंक दिया और एक मछली आपको निगल गई। तत्पश्चात् हे प्रभु, हमने इसी स्थान पर आपको मछली के

पेट से प्राप्त किया।

तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ।
मायाशतविदं तं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४॥

शब्दार्थ

तम् इमम्—उसको; जहि—कृपया मार डालें; दुर्धर्षम्—जिसके पास तक पहुँचना कठिन है; दुर्जयम्—तथा जीत पाना कठिन है; शत्रुम्—शत्रु को; आत्मनः—अपनी; माया—जादूगरी से; शत—सैकड़ों; विदम्—जानने वाले; तम्—उसको; च—तथा; मायाभिः—अपने जादू से; मोहन-आदिभिः—मोहने के तथा अन्य।

आप अपने इस अत्यन्त दुर्धर्ष तथा भयानक शत्रु का वध कर दें। यद्यपि यह सैकड़ों प्रकार के जादू जानता है किन्तु आप उसे जादू तथा अन्य विधियों से मोहित करके हरा सकते हैं।

परीशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ।
पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥ १५॥

शब्दार्थ

परिशोचति—विलाप कर रही है; ते—तुम्हारी; माता—माता (रुक्मिणी); कुररी इव—कुररी पक्षी की तरह; गत—गई हुई, विनष्ट; प्रजा—सन्तान; पुत्र—अपने पुत्र के लिए; स्नेह—स्नेह से; आकुला—विह्वल; दीना—दयनीय; विवत्सा—बछड़े से विहीन; गौः—गाय; इव—सदृश; आतुरा—अत्यन्त दुखी।

अपना पुत्र खो जाने से बेचारी तुम्हारी माता तुम्हारे लिए कुररी पक्षी की भाँति विलख है। वह अपने पुत्र के प्रेम से उसी तरह अभिभूत है, जिस तरह अपने बछड़े से विलग हुई गाय।

प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ।
मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६॥

शब्दार्थ

प्रभाष्य—कह कर; एवम्—इस प्रकार; ददौ—दे दिया; विद्याम्—योग-विद्या; प्रद्युम्नाय—प्रद्युम्न को; महा-आत्मने—महान् आत्मा; मायावती—मायावती; महा-मायाम्—महामाया नामक; सर्व—समस्त; माया—मोहनी शक्ति; विनाशिनीम्—विनाश करने वाली।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे बताया] : इस प्रकार कहते हुए मायावती ने महात्मा प्रद्युम्न को महामाया नामक योग-विद्या प्रदान की, जो अन्य समस्त मोहिनी शक्तियों को विनष्ट कर देती है।

स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ।
अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्सञ्जनयन्कलिम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

सः—वह; च—तथा; शम्बरम्—शम्बर को; अभ्येत्य—के पास जाकर; संयुगाय—युद्ध करने के लिए; समाह्वयत्—ललकारा; अविषह्यैः—असह्य; तम्—उसको; आक्षेपैः—अपमान द्वारा; क्षिपन् सञ्जनयन्—उकसाते हुए; कलिम्—लड़ने के लिए।

प्रद्युम्न शम्बर के पास गया और विवाद बढ़ाने के लिए उसे असह्य अपमानजनक बातें कह कर युद्ध करने के लिए ललकारा।

सोऽधिक्षिप्तो दुर्वाचोभिः पदाहत इवोरगः ।
निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥ १८॥

शब्दार्थ

सः—वह, शम्बर; अधिक्षिप्तः—अपमानित; दुर्वाचोभिः—कटु वचनों द्वारा; पदा—पाँव से; आहतः—प्रहार किया गया; इव—सदृश; उरगः—सर्प; निश्चक्राम—बाहर निकल आया; गदा—गदा; पाणिः—अपने हाथ में लिये; अमर्षात्—असह्य क्रोध से; ताम्र—ताँबे जैसी लाल; लोचनः—आँखें किये।

इन कटु वचनों से अपमानित होकर शम्बर पाँव से कुचले गये सर्प की भाँति विक्षुब्ध हो उठा। वह हाथ में गदा लेकर बाहर निकल आया। उसकी आँखें क्रोध से लाल थीं।

गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ।
प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९॥

शब्दार्थ

गदाम्—अपनी गदा को; आविध्य—घुमाकर; तरसा—तेजी से; प्रद्युम्नाय—प्रद्युम्न पर; महा-आत्मने—चतुर; प्रक्षिप्य—फेंक कर; व्यनदन् नादम्—शोर उत्पन्न करता; वज्र—बिजली का; निष्पेष—प्रहार; निष्ठुरम्—तीव्र।

शम्बर ने तेजी से अपनी गदा घुमाई और इसे चतुर प्रद्युम्न पर फेंक दिया जिससे बिजली कड़कने जैसी तीव्र आवाज उत्पन्न हुई।

तामापतन्तीं भगवान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् ।
अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ॥ २०॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; आपतन्तीम्—अपनी ओर आती; भगवान्—भगवान्; प्रद्युम्नः—प्रद्युम्न ने; गदया—अपनी गदा से; गदाम्—गदा को; अपास्य—दूर भगाते; शत्रवे—अपने शत्रु पर; क्रुद्धः—क्रुद्ध; प्राहिणोत्—फेंका; स्व-गदाम्—अपनी गदा; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

जैसे ही शम्बर की गदा उड़ती हुई भगवान् प्रद्युम्न की ओर आई, उन्होंने अपनी गदा से उसे दूर छिटका दिया। तब हे राजन्, प्रद्युम्न ने क्रुद्ध होकर शत्रु पर अपनी गदा फेंकी।

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शितम् ।
मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥ २१॥

शब्दार्थ

सः—वह, शम्बर; च—तथा; मायाम्—जादू का; समाश्रित्य—आश्रय लेकर; दैतेयीम्—आसुरी; मय—मय दानव द्वारा; दर्शितम्—दिखलाई गई; मुमुचे—छोड़ा; अस्त्र-मयम्—हथियारों की; वर्षम्—वर्षा; कार्ष्णौ—कृष्ण के पुत्र पर; वैहायसः—आकाश में खड़े; असुरः—असुर ने।

मय दानव द्वारा सिखलाए गये दैत्यों के काले जादू का प्रयोग करते हुए शम्बर सहसा आकाश में प्रकट हुआ और उसने कृष्ण के पुत्र पर हथियारों की झड़ी लगा दी।

बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ।
सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

बाध्यमानः—सताया गया; अस्त्र—हथियारों की; वर्षेण—वर्षा से; रौक्मिणेयः—रुक्मिणी-पुत्र, प्रद्युम्न; महा-रथः—शक्तिशाली योद्धा; सत्त्व-आत्मिकाम्—सतोगुण से उत्पन्न; महा-विद्याम्—महामाया नामक योग-विद्या (का प्रयोग किया); सर्व—समस्त; मया—जादू को; उपमर्दिनीम्—परास्त करने वाली।

हथियारों की इस झड़ी से तंग आकर महाबलशाली योद्धा रौक्मिणेय ने महामाया नामक योग-विद्या का प्रयोग किया जो सतोगुण से उत्पन्न थी और अन्य समस्त योगशक्तियों को परास्त करने वाली थी।

ततो गौह्यकगान्धर्वपैशाचोरगराक्षसीः ।
प्रायुङ्क्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; गौह्यक-गान्धर्व-पैशाच-उरग-राक्षसीः—गुह्यकों, गन्धर्वों, पिशाचों, उरगों तथा राक्षसों के (हथियार); प्रायुङ्क्त—प्रयोग किया; शतशः—सैकड़ों; दैत्यः—असुर ने; कार्ष्णिः—प्रद्युम्न ने; व्यधमयत्—मार गिराया; सः—उस; ताः—इनको।

तब उस असुर ने गुह्यकों, गन्धर्वों, पिशाचों, उरगों तथा राक्षसों से सम्बन्धित सैकड़ों मायावी हथियार छोड़े किन्तु भगवान् कार्ष्णि अर्थात् प्रद्युम्न ने उन सबों को विनष्ट कर दिया।

निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् ।
शम्बरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्र्वोजसाहरत् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

निशातम्—तेज धार वाली; असिम्—तलवार; उद्यम्य—उठाकर; स—सहित; किरीटम्—मुकुट; स—सहित; कुण्डलम्—कान के कुंडल; शम्बरस्य—शम्बर का; शिरः—सिर; कायात्—उसके शरीर से; ताम्र—ताम्र (लाल) रंग की; श्मश्रु—मूछें; ओजसा—बल से; अहरत्—अलग कर दिया।

अपनी तेज धार वाली तलवार खींच कर प्रद्युम्न ने बड़े ही वेग से शम्बर के सिर को लाल मूछों, मुकुट तथा कुंडलों समेत काट कर अलग कर दिया।

आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ।
भार्ययाम्बरचारिण्या पुरं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

आकीर्यमाणः—वर्षा किया गया; दिवि-जैः—स्वर्ग के वासियों द्वारा; स्तुवद्भिः—प्रशंसा करते हुए; कुसुम—फूलों के; उत्करैः—बिखेरने से; भार्यया—अपनी पत्नी द्वारा; अम्बर—आकाश में; चारिण्या—विचरण करने वाले; पुरम्—पुरी (द्वारका) में; नीतः—लाया गया; विहायसा—आकाश के मार्ग से।

जब उच्च लोकों के वासी प्रद्युम्न पर फूलों की वर्षा करके उनकी प्रशंसा के गीत गा रहे थे तो उनकी पत्नी आकाश में प्रकट हुईं और उन्हें आकाश के मार्ग से होते हुए द्वारकापुरी वापस ले गईं।

अन्तःपुरवरं राजन्ललनाशतसङ्कुलम् ।
विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अन्तः-पुर—भीतरी महल; वरम्—सर्वोत्तम; राजन्—हे राजन् (परीक्षित); ललना—स्नेहमयी स्त्रियाँ; शत—सैकड़ों; सङ्कुलम्—एकत्रित; विवेश—प्रवेश किया; पत्न्या—अपनी पत्नी सहित; गगनात्—आकाश से; विद्युता—बिजली समेत; इव—सदृश; बलाहकः—बादल।

हे राजन्, जब प्रद्युम्न अपनी पत्नी समेत कृष्ण के सर्वोत्कृष्ट महल के भीतरी कक्षों में आकाश से उतरे, जो सुन्दर स्त्रियों से भरे थे तो वे बिजली से युक्त बादल जैसे प्रतीत हो रहे थे।

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥ २७ ॥
स्वलङ्कृतमुखाम्भोजं नीलवक्रालकालिभिः ।
कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; दृष्ट्वा—देख कर; जल-द—बादल के समान; श्यामम्—साँवले रंग के; पीत—पीले; कौशेय—रेशमी; वाससम्—वस्त्र; प्रलम्ब—लम्बी; बाहुम्—भुजाएँ; ताम्र—लाल लाल; अक्षम्—आँखें; सु-स्मितम्—मनोहर मुस्कान से युक्त; रुचिर—लुभावना; आननम्—मुखमण्डल; सु-अलङ्कृत—सुन्दर रंग से सजाया; मुख—मुँह; अम्भोजम्—कमल सदृश; नील—नीला; वक्र—कुंचित; आलक-आलिभिः—केशों की लटों से; कृष्णम्—कृष्ण; मत्वा—सोचते हुए; स्त्रियः—स्त्रियाँ; ह्रीताः—सकुचाईं; निलिल्युः—छिप गईं; तत्र तत्र—इधर-उधर; ह—निस्सन्देह।

जब उस महल की स्त्रियों ने उनके वर्षा के बादल जैसे साँवले रंग, उनके पीले रेशमी वस्त्रों, उनकी लम्बी भुजाओं, मनोहर हँसी से युक्त उनके आकर्षक कमल मुख, उनके सुन्दर आभूषण तथा उनके घुँघराले श्यामल बालों को देखा तो उन्होंने सोचा कि वे कृष्ण हैं। इस तरह सारी

स्त्रियाँ सकुचाकर इधर-उधर छिप गईं।

अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ।
उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्री रत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अवधार्य—अनुभव करके; शनैः—धीरे-धीरे; ईषत्—कुछ कुछ; वैलक्षण्येन—दिखावे में अन्तर होने से; योषितः—स्त्रियाँ; उपजग्मुः—पास आईं; प्रमुदिताः—प्रफुल्लित; स—सहित; स्त्री—स्त्रियों के; रत्नम्—रत्न के; सु-विस्मितः—अत्यन्त चकित।

धीरे-धीरे उनके तथा कृष्ण के वेश में कुछ कुछ अन्तरों से स्त्रियों को लगा कि वे भगवान् कृष्ण नहीं हैं। वे अत्यन्त प्रफुल्लित एवं चकित होकर प्रद्युम्न तथा उनकी प्रेयसी स्त्री-रत्न के पास आईं।

अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ।
अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ० ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; तत्र—वहाँ; असित—श्याम; अपाङ्गी—जिनकी आँखों की कोरें; वैदर्भी—रुक्मिणी ने; वल्गु—मधुर; भाषिनी—वाणी वाली; अस्मरत्—स्मरण किया; स्व-सुतम्—अपने पुत्र को; नष्टम्—खोये हुए; स्नेह—प्रेमवश; स्नुत—गीली; पयः-धरा—स्तनों वाली।

प्रद्युम्न को देखकर मधुर वाणी एवं श्याम नेत्रों वाली रुक्मिणी ने अपने खोये हुए पुत्र का स्मरण किया, तो स्नेह से उनके स्तन भीग गये।

को न्वयम्नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ।
धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ १ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; नु—निस्सन्देह; अयम्—यह; नर-वैदूर्यः—पुरुषों में मणि; कस्य—किसका (पुत्र); वा—तथा; कमल-ईक्षणः—कमल नेत्रों वाला; धृतः—धारण किया हुआ; कया—किस स्त्री द्वारा; वा—तथा; जठरे—अपने गर्भ में; का—कौन; इयम्—यह स्त्री; लब्धा—प्राप्त; तु—और भी; अनेन—उसके द्वारा; वा—तथा।

[श्रीमती रुक्मिणीदेवी ने कहा] : पुरुषों में रत्न यह कमल नेत्रों वाला कौन है? यह किस पुरुष का पुत्र है और किस स्त्री ने इसे अपने गर्भ में धारण किया? और यह स्त्री कौन है, जिसे उसने अपनी पत्नी बनाया है?

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ।
एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; च—तथा; अपि—भी; आत्मजः—पुत्र; नष्टः—खोया; नीतः—ले जाया गया; यः—कौन; सूतिका-गृहात्—प्रसूतिगृह से; एतत्—इसके; तुल्य—समान; वयः—उम्र; रूपः—तथा स्वरूप में; यदि—यदि; जीवति—जिन्दा है; कुत्रचित्—कहीं।

यदि मेरा खोया हुआ पुत्र, जो प्रसूतिगृह से हर लिया गया था, अब भी कहीं जिन्दा होता तो वह इसी नवयुवक की ही आयु तथा रूप का होता।

कथं त्वनेन सम्प्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ।
आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥ ॥

शब्दार्थ

कथम्—कैसे; तु—लेकिन; अनेन—उसके द्वारा; सम्प्राप्तम्—प्राप्त; सारूप्यम्—एक जैसा रूप; शार्ङ्ग-धन्वनः—शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले कृष्ण के रूप में; आकृत्या—आकृति में; अवयवैः—अंगों से; गत्या—चाल से; स्वर—वाणी से; हास—हँसी; अवलोकनैः—तथा चितवन से।

किन्तु यह कैसे है कि यह नवयुवक अपने शारीरिक रूप तथा अपने अंगों, अपनी चाल तथा अपने स्वर और अपनी हँसी युक्त दृष्टि में मेरे स्वामी, शार्ङ्गधर कृष्ण से इतनी समानता रखता है?

स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ।
अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—वह; एव—निस्सन्देह; वा—अथवा; भवेत्—होये; नूनम्—निश्चय ही; यः—जो; मे—मेरे; गर्भे—गर्भ में; धृतः—धारण किया हुआ; अर्भकः—शिशु; अमुष्मिन्—उसके लिए; प्रीतिः—स्नेह; अधिका—अधिक; वामः—बाईं; स्फुरति—फड़कती है; मे—मेरी; भुजः—बाँह।

हाँ, यह वही बालक हो सकता है, जिसे मैंने अपने गर्भ में धारण किया था क्योंकि इसके प्रति मुझे अतीव स्नेह का अनुभव हो रहा है और मेरी बाईं भुजा भी फड़क रही है।

एवं मीमांसमणायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ।
देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमःश्लोक आगमत् ॥ ५॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मीमांसमानायाम्—सोच-विचार करती हुई; वैदर्भ्याम्—रानी रुक्मिणी द्वारा; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र; देवकी-आनकदुन्दुभ्याम्—देवकी तथा वसुदेव सहित; उत्तमः-श्लोकः—भगवान् कृष्ण; आगमत्—वहाँ आ गये।

जब रानी रुक्मिणी इस तरह सोच-विचार में पड़ी थीं तब देवकी-पुत्र कृष्ण, वसुदेव तथा देवकी सहित, घटनास्थल पर आ गये।

विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः ।
नारदोऽकथयत्सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

विज्ञात—पूरी तरह जानते हुए; अर्थः—बात; अपि—यद्यपि; भगवान्—भगवान्; तूष्णीम्—मौन; आस—रहे; जनार्दनः—कृष्ण; नारदः—नारदमुनि ने; अकथयत्—कह सुनाया; सर्वम्—सारी बातें; शम्बर—शम्बर द्वारा; आहरण—अपहरण; आदिकम्—इत्यादि।

यद्यपि भगवान् जनार्दन यह भलीभाँति जानते थे कि क्या हुआ है किन्तु वे मौन रहे। तथापि नारदमुनि ने शम्बर द्वारा बालक के अपहरण से लेकर अब तक की सारी बातें कह सुनाईं।

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः ।
अभ्यनन्दन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

तत्—उसे; श्रुत्वा—सुनकर; महत्—महान्; आश्चर्यम्—आश्चर्य; कृष्ण-अन्तः-पुर—कृष्ण के निजी आवास की; योषितः—स्त्रियों ने; अभ्यनन्दन्—अभिनन्दन किया; बहून्—अनेक; अब्दान्—वर्षों के; नष्टम्—खोये; मृतम्—मरे हुए; इव—सदृश; आगतम्—वापस आया हुआ।

जब भगवान् कृष्ण के महल की स्त्रियों ने इस अत्यन्त आश्चर्यमय विवरण को सुना तो उन्होंने बड़े ही हर्ष के साथ प्रद्युम्न का अभिनन्दन किया जो वर्षों से खोये हुए थे किन्तु अब इस तरह लौटे थे मानो मृत्यु से लौट आये हों।

देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ।
दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

देवकी—देवकी; वसुदेवः—वसुदेव; च—तथा; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम; तथा—भी; स्त्रियः—स्त्रियाँ; दम्-पती—पति-पत्नी; तौ—ये दोनों; परिष्वज्य—आलिंगन करके; रुक्मिणी—रुक्मिणी; च—तथा; ययुः मुदम्—प्रसन्नता को प्राप्त हुए।

देवकी, वसुदेव, कृष्ण, बलराम तथा महल की सारी स्त्रियों, विशेषतया रानी रुक्मिणी ने, तरुण दम्पति को गले लगाया किया और आनन्द मनाया।

नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ।
अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

नष्टम्—खोया हुआ; प्रद्युम्नम्—प्रद्युम्न को; आयातम्—आया हुआ; आकर्ण्य—सुनकर; द्वारका-ओकसः—द्वारकावासी; अहो—ओह; मृतः—मरा हुआ; इव—मानो; आयातः—वापस आया; बालः—बच्चा; दिष्ट्या—भाग्यवश; इति—इस प्रकार; ह—निस्सन्देह; अब्रुवन्—वे बोले।

यह सुनकर कि खोया हुआ प्रद्युम्न घर आ गया है, द्वारकावासी चिल्ला उठे, "ओह! विधाता ने इस बालक को मानो मृत्यु से वापस आने दिया है।"

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावा-
स्तन्मातरो यदभजन्रहरूढभावाः ।
चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे
कामे स्मरेऽक्षविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको; वै—निस्सन्देह; मुहुः—बारम्बार; पितृ—पिता; स-रूप—समान; निज—अपने; ईश—स्वामी; भावाः—सोचने वाले; तत्—उसकी; मातरः—माताएँ; यत्—जितना कि; अभजन्—पूजा की; रह—एकान्त में; रूढ—पूर्ण विकसित; भावाः—भाव; चित्रम्—अद्भुत; न—नहीं; तत्—वह; खलु—निस्सन्देह; रमा—लक्ष्मी; आस्पद—शरण (कृष्ण); बिम्ब—स्वरूप का; बिम्बे—प्रतिबिम्ब रूप; कामे—साक्षात् कामवासना; स्मरे—कामदेव; अक्ष-विषये—अपनी आँखों के समक्ष; किम् उत—तो फिर क्या कहा जाय; अन्य—दूसरी; नार्यः—स्त्रियाँ।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि महल की स्त्रियाँ, जो प्रद्युम्न के प्रति मातृ-स्नेह रखतीं, एकान्त में उनके प्रति प्रेमाकर्षण का अनुभव करने लगीं मानो वे उनके स्वामी हों। दरअसल प्रद्युम्न लक्ष्मी के आश्रय भगवान् कृष्ण के सौन्दर्य के पूर्ण प्रतिबिम्ब थे और उनकी आँखों के सामने साक्षात् कामदेव के रूप में प्रकट हुए थे। चूँकि उनकी माता जैसे पद को प्राप्त स्त्रियों को भी उनके प्रति दाम्पत्य आकर्षण का अनुभव हुआ तो फिर इस विषय में क्या कहा जा सकता है कि उन्हें देखकर अन्य स्त्रियों ने क्या अनुभव किया होगा?

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती व्याख्या करते हैं, जब भी अन्तःपुर की स्त्रियाँ प्रद्युम्न को देखती उन्हें तुरन्त अपने स्वामी श्रीकृष्ण का स्मरण हो आता। श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में निम्मानुसार टीका की है, "श्रील शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया है कि प्रारम्भ में अन्तःपुर में रहने वाली प्रद्युम्न की सारी माताओं तथा विमाताओं ने उन्हें कृष्ण समझा और दाम्पत्य-प्रेम की इच्छा से दूषित होने से सकुचा गईं। इसकी व्याख्या यह है कि प्रद्युम्न का स्वरूप हू-बहू कृष्ण जैसा था और वे साक्षात् कामदेव थे। इसलिए इसमें आश्चर्य की कोई बात न थी जब प्रद्युम्न की माताओं तथा अन्य स्त्रियों ने उन्हें इस प्रकार समझा। इस कथन से स्पष्ट है कि प्रद्युम्न के शारीरिक लक्षण कृष्ण से इतने मिलते-जुलते थे कि उनकी माता तक को उनके कृष्ण होने का भ्रम हो गया।"

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''प्रद्युम्न-कथा'' नामक पचपनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter छप्पन

स्यमन्तक मणि

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि अपने विरुद्ध झूठे दोषारोपण के निराकरण के लिए भगवान् कृष्ण ने किस तरह स्यमन्तक मणि को फिर से प्राप्त किया और जाम्बवान तथा सत्राजित की कन्याओं से विवाह किया। भगवान् ने स्यमन्तक मणि विषयक लीला करके भौतिक सम्पत्ति की व्यर्थता सिद्ध कर दी।

जब शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया कि राजा सत्राजित ने स्यमन्तक मणि के कारण कृष्ण का अपमान किया, तो राजा परीक्षित इस घटना को विस्तार से सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। अत: शुकदेव गोस्वामी ने यह कथा कह सुनाई।

राजा सत्राजित ने अपने परम शुभचिन्तक सूर्यदेव की कृपा से स्यमन्तक मणि प्राप्त की। उसने इस मणि को एक जंजीर में बाँध कर गले में लटका लिया और तब द्वारका की यात्रा की। वहाँ के निवासी उसे साक्षात् सूर्यदेव समझ कर कृष्ण के पास गये और बतलाया कि उनका दर्शन करने सूर्यदेव आये हैं। लेकिन कृष्ण ने उत्तर दिया कि आने वाला व्यक्ति सूर्य नहीं अपितु राजा सत्राजित है, जो स्यमन्तक मणि धारण करने से अत्यधिक तेजोमय प्रतीत हो रहा है।

द्वारका में सत्राजित ने इस बहुमूल्य मणि को अपने घर में विशेष वेदिका में स्थापित करा दिया। यह मणि प्रतिदिन प्रचुर मात्रा में स्वर्ण उत्पन्न करता था और इसमें एक अतिरिक्त शक्ति यह थी कि इसकी जहाँ कहीं उचित रीति से पूजा की जाय वहाँ कोई विपत्ति नहीं आयेगी।

एक अवसर पर भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्राजित से अनुरोध किया कि वह इस मणि को यदुराज उग्रसेन को दे दे। किन्तु सत्राजित ने देने से इनकार कर दिया क्योंकि वह लालची था। इसके कुछ काल बाद सत्राजित का भाई प्रसेन घोड़े पर सवार होकर और अपने गले में स्यमन्तक मणि पहनकर शिकार खेलने गया। मार्ग में एक सिंह ने उसे मार डाला और उस मणि को एक पहाड़ी गुफा में ले

गया जहाँ ऋक्षराज जाम्बवान रह रहे थे। जाम्बवान ने उस सिंह को मार डाला और उस मणि को अपने बेटे को खेलने के लिए दे दिया।

जब राजा सत्राजित का भाई नहीं लौटा तो राजा ने यह मान लिया कि कृष्ण ने स्यमन्तक मणि के लिए उसे मार डाला है। जब कृष्ण ने जनता में फैली इस अफवाह को सुना तो अपने नाम से कलंक छुड़ाने के लिए वे कुछ नागरिकों के साथ प्रसेन को खोजने निकले। उसके पैरों के निशानों का पीछा करते करते उन्होंने उसके शरीर तथा उसके घोड़े को मार्ग पर पड़ा देखा। उसके आगे उन्होंने जाम्बवान द्वारा मारे गये सिंह के शरीर को देखा। भगवान् कृष्ण ने नागरिकों से गुफा के बाहर रहने के लिए कहा और स्वयं पता लगाने गुफा के भीतर गये।

भगवान् जब जाम्बवान की गुफा में घुसे तो देखा कि वह स्यमन्तक मणि एक बालक के पास पड़ा था। किन्तु जब कृष्ण ने वह मणि लेना चाहा तो बालक की धाय भयभीत होकर चिल्ला पड़ी जिससे तुरन्त ही वहाँ जाम्बवान आ गये। उन्होंने कृष्ण को सामान्य व्यक्ति समझ कर उनसे लड़ना शुरू कर दिया। दोनों लगातार २८ दिनों तक लड़ते रहे। तब तक जाम्बवान भगवान् के प्रहार से निर्बल हो गया। तब यह समझ कर कि कृष्ण भगवान् हैं, जाम्बवान ने उनकी प्रशंसा करनी शुरू कर दी। भगवान् ने अपने करकमलों से जाम्बवान का स्पर्श करते हुए उसके भय को दूर किया और मणि के बारे में सारी बातें बतलाईं। जाम्बवान ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक वह मणि भगवान् को भेंट कर दिया और साथ में अपनी कुमारी कन्या जाम्बवती भी भेंट कर दी।

इस बीच कृष्ण के संगी गुफा के बाहर बारह दिनों तक उनके बाहर आने की प्रतीक्षा करने के बाद निराश होकर द्वारका लौट गये। कृष्ण के सारे मित्र तथा परिवार वाले अत्यन्त दुखी थे और कृष्ण के सकुशल वापस आने के लिए दुर्गा देवी की नियमित रूप से पूजा करने लगे। जब वे यह पूजा कर रहे थे तभी कृष्ण नवविवाहिता पत्नी के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। उन्होंने सत्राजित को राजसभा में बुलवाया और स्यमन्तक मणि पाने की सारी कहानी सुनाकर उसे वह मणि वापस कर दिया। सत्राजित ने अतीव लज्जा तथा पश्चाताप के साथ वह मणि स्वीकार किया। वह अपने घर चला गया और उसने निश्चय किया कि भगवान् के चरणकमलों पर किये गये अपराध के प्रायश्चित्त स्वरूप वह न केवल वह मणि उन्हें दे देगा अपितु अपनी कन्या भी दान में देगा। श्रीकृष्ण ने सत्राजित की कन्या सत्यभामा के

साथ पाणिग्रहण तो स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह सर्वगुण सम्पन्न थी किन्तु उन्होंने मणि लेना अस्वीकार कर दिया और उसे राजा सत्राजित को लौटा दिया।

श्रीशुक उवाच
सत्राजित: स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिष: ।
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सत्राजित:—राजा सत्राजित ने; स्व—अपनी; तनयाम्—पुत्री; कृष्णाय—कृष्ण को; कृत—कर चुकने पर; किल्बिष:—अपराध; स्यमन्तकेन—स्यमन्तक नामक; मणिना—मणि सहित; स्वयम्—स्वयं; उद्यम्य—प्रयास करके; दत्तवान्—दे दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कृष्ण का अपमान करने के बाद सत्राजित ने अपनी पुत्री तथा स्यमन्तक मणि उन्हें भेंट करके प्रायश्चित करने का भरसक प्रयत्न किया।

श्रीराजोवाच
सत्राजित: किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिष: ।
स्यमन्तक: कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरे: ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा—राजा (परीक्षित महाराज) ने; उवाच—कहा; सत्राजित:—सत्राजित ने; किम्—क्या; अकरोत्—किया; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; कृष्णस्य—कृष्ण के विरुद्ध; किल्बिष:—अपराध; स्यमन्तक:—स्यमन्तक मणि; कुत:—कहाँ से; तस्य—उसका; कस्मात्—क्यों; दत्ता—दिया; सुता—अपनी पुत्री; हरे:—भगवान् हरि को।

महाराज परीक्षित ने पूछा : "हे ब्राह्मण, राजा सत्राजित ने भगवान् कृष्ण को रुष्ट करने के लिए क्या कर दिया? उसे स्यमन्तक मणि कहाँ से मिला? और उसने अपनी पुत्री भगवान् को क्यों दी?"

श्रीशुक उवाच
आसीत्सत्राजित: सूर्यो भक्तस्य परम: सखा ।
प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्स च तुष्ट: स्यमन्तकम् ॥ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; आसीत्—था; सत्राजित:—सत्राजित का; सूर्य:—सूर्यदेव; भक्तस्य—भक्त का; परम:—परम; सखा—शुभचिन्तक मित्र; प्रीत:—प्रिय; तस्मै—उसको; मणिम्—मणि; प्रादात्—दिया; स:—उसने; च—तथा; तुष्ट:—प्रसन्न होकर; स्यमन्तकम्—स्यमन्तक नामक।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : सूर्यदेव अपने भक्त सत्राजित के प्रति अत्यन्त वत्सल थे। अत: उनके श्रेष्ठ मित्र के रूप में उन्होंने अपनी तुष्टि के चिन्ह रूप में उसे स्यमन्तक नामक मणि प्रदान

किया।

स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ।
प्रविष्टो द्वारकां राजन्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—वह, राजा सत्राजित; तम्—उस; बिभ्रत्—पहने हुए; मणिम्—मणि को; कण्ठे—अपने गले में; भ्राजमानः—खूब चमकीला; यथा—सदृश; रविः—सूर्य; प्रविष्टः—प्रविष्ट हुआ; द्वारकाम्—द्वारकापुरी में; राजन्—हे राजा (परीक्षित); तेजसा—तेज से; न—नहीं; उपलक्षितः—पहचाना जाता था।

सत्राजित उस मणि को गले में पहन कर द्वारका में प्रविष्ट हुआ। हे राजन्, वह साक्षात् सूर्य के समान चमक रहा था और मणि के तेज से पहचाना नहीं जा रहा था।

तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ।
दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥ ५॥

शब्दार्थ

तम्—उसे; विलोक्य—देख कर; जनाः—लोग; दूरात्—दूर से ही; तेजसा—उसके तेज से; मुष्ट—चुरायी हुई; दृष्टयः—देखने की शक्ति; दीव्यते—खेलते हुए; अक्षैः—पाँसा से; भगवते—भगवान् कृष्ण से; शशंसुः—उन्होंने सूचना दी; सूर्य—सूर्यदेव; शङ्किताः—उसे मान कर।

जब लोगों ने सत्राजित को दूर से आते देखा तो उसकी चमक से वे चौंधिया गये। उन्होंने मान लिया कि वह सूर्यदेव है और भगवान् कृष्ण से बताने गये जो उस समय पाँसा खेल रहे थे।

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ।
दामोदरारविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥ ६॥

शब्दार्थ

नारायण—हे नारायण; नमः—नमस्कार; ते—आपको; अस्तु—हो; शङ्ख—शंख; चक्र—चक्र; गदा—तथा गदा के; धर—धारण करने वाले; दामोदर—हे दामोदर; अरविन्द-अक्ष—हे कमल-नेत्र; गोविन्द—हे गोविन्द; यदु-नन्दन—हे यदुओं के लाड़ले बेटे।

[द्वारकावासियों ने कहा] : हे नारायण, हे शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले, हे कमल-नेत्र दामोदर, हे गोविन्द, हे यदुवंशी, आपको नमस्कार है।

एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ।
मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥ ७॥

शब्दार्थ

एषः—यह; आयाति—आ रहा है; सविता—सूर्यदेव; त्वाम्—तुमको; दिदृक्षुः—देखने की इच्छा से; जगत्-पते—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; मुष्णन्—चुरा कर; गभस्ति—अपनी किरणों के; चक्रेण—गोले से; नृणाम्—लोगों की; चक्षूंषि—आँखों को; तिग्म—प्रखर; गुः—विकिरण वाला।

हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, सवितादेव आपको मिलने आये हैं। वे अपनी प्रखर तेजोमय किरणों से सबों की आँखों को चौंधिया रहे हैं।

नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रीलोक्यां विबुधर्षभाः ।
ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ननु—अवश्य ही; अन्विच्छन्ति—ढूँढ़ लेते हैं; ते—तुम्हारा; मार्गम्—रास्ता; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; विबुध—चतुर देवताओं के; ऋषभाः—अत्यन्त पूज्य; ज्ञात्वा—जान कर; अद्य—अब; गूढम्—वेश बदले; यदुषु—यदुओं के बीच; द्रष्टुम्—देखने के लिए; त्वाम्—तुमको; याति—आता है; अजः—अजन्मा (सूर्यदेव); प्रभो—हे प्रभु।

हे प्रभु, अब तीनों लोकों के परम श्रेष्ठ देवता आपको खोज निकालने के लिए उत्सुक हैं क्योंकि आपने अपने को यदुवंशियों के बीच छिपा रखा है। अतः अजन्मा सूर्यदेव आपका दर्शन करने यहाँ आये हैं।

श्रीशुक उवाच
निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ।
प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; निशम्य—सुनकर; बाल—बचकाना; वचनम्—वचनों को; प्रहस्य—हँस कर; अम्बुज—कमल सदृश; लोचनः—आँखों वाले; प्राह—कहा; न—नहीं; असौ—यह व्यक्ति; रविः देवः—सूर्यदेव; सत्राजित्—राजा सत्राजित; मणिना—अपनी मणि के कारण; ज्वलन्—चमकता हुआ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे बताया : ये भोलेभाले वचन सुनकर कमलनयन भगवान् जोर से हँसे और बोले, ''यह सूर्यदेव, रवि नहीं, अपितु सत्राजित है, जो अपनी मणि के कारण चमक रहा है।''

सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् ।
प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ ॥

शब्दार्थ

सत्राजित्—सत्राजित; स्व—अपने; गृहम्—घर; श्रीमत्—ऐश्वर्यवान; कृत—किया; कौतुक—उत्सव के साथ; मङ्गलम्—शुभ अनुष्ठान; प्रविश्य—प्रवेश करके; देव-सदने—मन्दिर-कक्ष में; मणिम्—मणि को; विप्रैः—विद्वान ब्राह्मणों द्वारा; न्यवेशयत्—उसने स्थापित करा दिया।

राजा सत्राजित समारोह के साथ शुभ अनुष्ठान सम्पन्न करके अपने एश्वर्यशाली घर में प्रविष्ट

हुआ। उसने योग्य ब्राह्मणों से अपने घर के मन्दिर-कक्ष में स्यमन्तक मणि की स्थापना करा दी।

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ।
दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ।
न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दिने दिने—प्रति दिन; स्वर्ण—स्वर्ण के; भारान्—भार (एक तौल); अष्टौ—आठ; सः—वह; सृजति—उत्पन्न करता है; प्रभो—हे प्रभु (परीक्षित महाराज); दुर्भिक्ष—अकाल; मारि—असामयिक मृत्युएँ; अरिष्टानि—आपदाएँ; सर्प—साँप; आधि—मानसिक रोग; व्याधयः—रोग; अशुभाः—अशुभ; न सन्ति—नहीं होते हैं; मायिनः—ठग; तत्र—वहाँ; यत्र—जहाँ; आस्ते—रहती है; अभ्यर्चितः—ठीक से पूजित; मणिः—मणि।

हे प्रभु, वह मणि प्रति दिन आठ भार सोना उत्पन्न करता था और जिस स्थान में वह रखा रहता था और पूजा जाता था वह स्थान आपदाओं से तथा अकाल, असामयिक मृत्यु तथा सर्पदंश, मानसिक तथा भौतिक रोगों और ठगों से मुक्त रहता था।

तात्पर्य : *भार* के सम्बन्ध में श्रील श्रीधर स्वामी ने निम्नलिखित शास्त्रीय सन्दर्भ दिया है—

चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जां गुञ्जाः पञ्च पणं पणान्।

अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम्।

तुलां पलशतं प्राहुर्भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः॥

''चार चावल के दाने एक गुंजा कहलाते हैं; पाँच गुंजा बराबर एक पण; आठ पण बराबर एक कर्ष; चार कर्ष बराबर एक पल तथा एक सौ पल बराबर एक तुला; बीस तुला बराबर एक भार होता है।'' चूँकि एक औंस में चावल के लगभग ७०० दाने होते हैं इसलिए स्यमन्तक मणि प्रतिदिन लगभग १७० पौंड सोना उत्पन्न कर रहा था।

स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ।
नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने, सत्राजित ने; याचितः—माँगे जाने पर; मणिम्—मणि को; क्व अपि—एक अवसर पर; यदु-राजाय—यदुराज उग्रसेन के लिए; शौरिणा—कृष्ण द्वारा; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अर्थ—सम्पत्ति का; कामुकः—लालची; प्रादात्—दिया; याच्ञा—अनुरोध का; भङ्गम्—इनकार; अतर्कयन्—विचार न करता हुआ।

एक अवसर पर भगवान् कृष्ण ने सत्राजित से अनुरोध किया कि वह इसे यदुराज उग्रसेन को दे दे किन्तु सत्राजित इतना लालची था कि उसने देने से इनकार कर दिया। उसने भगवान्

की याचना को ठुकराने से होने वाले अपराध की गम्भीरता पर विचार नहीं किया।

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ।
प्रसेनो हयमारुह्य मृगायां व्यचरद्वने ॥ १ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; एकदा—एक बार; मणिम्—मणि को; कण्ठे—गले में; प्रतिमुच्य—पहन कर; महा—अत्यन्त; प्रभम्—तेजवान; प्रसेनः—प्रसेन (सत्राजित का भाई); हयम्—घोड़े पर; आरुह्य—सवार होकर; मृगायाम्—शिकार के लिए; व्यचरत्—चला गया; वने—वन में।.

एक बार सत्राजित का भाई प्रसेन उस चमकीली मणि को गले में पहन कर घोड़े पर सवार हुआ और जंगल में शिकार खेलने चला गया।

तात्पर्य : सत्राजित द्वारा कृष्ण का अनुरोध अस्वीकार करने का अशुभ परिणाम प्रकट होने ही वाला है।

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केशरी ।
गिरिं विशन्जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

प्रसेनम्—प्रसेन को; स—सहित; हयम्—उसके घोड़े; हत्वा—मार कर; मणिम्—मणि को; आच्छिद्य—पकड़कर; केशरी—सिंह; गिरिम्—पर्वत (की गुफा) में; विशन्—प्रवेश करते हुए; जाम्बवता—ऋक्षराज जाम्बवान् द्वारा; निहतः—मारा गया; मणिम्—मणि; इच्छता—चाहने वाला।.

प्रसेन तथा उसके घोड़े को एक सिंह ने मार कर वह मणि ले लिया। किन्तु जब वह सिंह पर्वत की गुफा में घुसा तो उस मणि के इच्छुक जाम्बवान ने उसे मार डाला।

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ।
अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने, जाम्बवान् ने; अपि—भी; चक्रे—बनाया; कुमारस्य—अपने पुत्र के लिए; मणिम्—मणि को; क्रीडनकम्—खिलौना; बिले—गुफा में; अपश्यन्—न देखते हुए; भ्रातरम्—अपने भाई को; भ्राता—भाई; सत्राजित्—सत्राजित; पर्यतप्यत—अत्यन्त दुखी हुआ।.

गुफा के भीतर जाम्बवान ने उस मणि को अपने पुत्र को खिलौने के तौर पर खेलने के लिए दे दिया। इस बीच सत्राजित अपने भाई को वापस आता न देख कर अत्यन्त व्याकुल हो गया।

प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ।

भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपन्जना: ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

प्राय:—सम्भवतया; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; निहत:—मारा गया; मणि—मणि; ग्रीव:—अपने गले में पहने; वनम्—वन में; गत:—गया हुआ; भ्राता—भाई; मम—मेरा; इति—ऐसा कहकर; तत्—वह; श्रुत्वा—सुनकर; कर्णे कर्णे—एक कान से दूसरे कान में; अजपन्—कानाफूसी करते; जना:—लोग।

उसने कहा : ''सम्भवतया कृष्ण ने मेरे भाई को मार डाला है क्योंकि वह अपने गले में मणि पहन कर जंगल गया था।'' जब लोगों ने यह दोषारोपण सुना तो वे एक-दूसरे से कानाफूसी करने लगे।

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ।
मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरै: ॥ १७॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्, कृष्ण; तत्—वह; उपश्रुत्य—लोगों से सुनकर; दुर्यश:—अपयश; लिप्तम्—पोता हुआ; आत्मनि—अपने ऊपर; मार्ष्टुम्—साफ करने के लिए; प्रसेन-पदवीम्—प्रसेन द्वारा अपनाये गये मार्ग का; अन्वपद्यत—पीछा किया; नागरै:—नगर के निवासियों के साथ।

जब भगवान् कृष्ण ने यह अफवाह सुनी तो उन्होंने अपने यश में लगे कलंक को मिटाना चाहा। अत: द्वारका के कुछ नागरिकों को अपने साथ लेकर वे प्रसेन के मार्ग को ढूँढ़ने के लिए रवाना हो गये।

हतं प्रसेनं अश्वं च वीक्ष्य केशरिणा वने ।
तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जना: ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

हतम्—मारा गया; प्रसेनम्—प्रसेन को; अश्वम्—उसके घोड़े को; च—तथा; वीक्ष्य—देख कर; केशरिणा—सिंह द्वारा; वने—जंगल में; तम्—उस (सिंह) को; च—भी; अद्रि—पर्वत के; पृष्ठे—बगल में; निहतम्—मारा गया; ऋक्षेण—ऋक्ष (जाम्बवान) द्वारा; ददृशु:—उन्होंने देखा; जना:—लोगों ने।

जंगल में उन्होंने प्रसेन तथा उसके घोड़े दोनों को ही सिंह द्वारा मारा गया पाया। इसके आगे उन्होंने पर्वत की बगल में सिंह को ऋक्ष (जाम्बवान) द्वारा मारा गया पाया।

ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसावृतम् ।
एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहि: प्रजा: ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

ऋक्ष-राज—रीछों का राजा; बिलम्—गुफा में; भीमम्—भयावह; अन्धेन तमसा—घने अंधकार से; आवृतम्—घिरा; एक:—अकेले; विवेश—घुसे; भगवान्—भगवान्; अवस्थाप्य—रखकर; बहि:—बाहर; प्रजा:—नागरिकों को।

भगवान् ने ऋक्षराज की भयावनी घनान्धकारमय गुफा के बाहर नागरिकों को बैठा दिया और अकेले ही भीतर घुसे।

तत्र दृष्ट्वा मणिप्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ।
हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; दृष्ट्वा—देखकर; मणि-प्रेष्ठम्—अत्यन्त मूल्यवान मणि; बाल—बच्चे का; क्रीडनकम्—खिलौना; कृतम्—बना कर; हर्तुम्—ले लेने के लिए; कृत-मतिः—निश्चय करके; तस्मिन्—वहाँ; अवतस्थे—ठहर गये; अर्भक-अन्तिके—बालक के पास।

वहाँ भगवान् कृष्ण ने देखा कि वह बहुमूल्य मणि बच्चे का खिलौना बना हुआ है। उसे लेने का संकल्प करके वे उस बालक के निकट गये।

तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ।
तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवत्क्रुद्धो जाम्बवान्बलिनां वरः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; अपूर्वम्—पहले कभी नहीं (देखा); नरम्—व्यक्ति को; दृष्ट्वा—देखकर; धात्री—धाई; चुक्रोश—चिल्ला उठी; भीत-वत्—डरी हुई; तत्—उसे; श्रुत्वा—सुनकर; अभ्यद्रवत्—दौड़ा; क्रुद्धः—नाराज; जाम्बवान्—जाम्बवान; बलिनाम्—बलवानों में; वरः—श्रेष्ठ।

उस असाधारण व्यक्ति को अपने समक्ष खड़ा देखकर बालक की धाई भयवश चिल्ला उठी। उसकी चीख सुनकर बलवानों में सर्वाधिक बलवान जाम्बवान क्रुद्ध होकर भगवान् की ओर दौड़ा।

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः ।
पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; भगवता—भगवान् के साथ; तेन—उन; युयुधे—लड़ने लगा; स्वामिना—स्वामी से; आत्मनः—अपने ही; पुरुषम्—पुरुष; प्राकृतम्—संसारी; मत्वा—मान कर; कुपितः—क्रुद्ध; न—नहीं; अनुभाव—उनके पद से; वित्—अवगत।

उनके असली पद से अनजान तथा उन्हें सामान्य व्यक्ति समझते हुए जाम्बवान अपने स्वामी भगवान् से क्रुद्ध होकर लड़ने लगे।

तात्पर्य : *पुरुषं प्राकृतं मत्वा*—"उन्हें एक सामान्य व्यक्ति समझते हुए" ये शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। तथाकथित वैदिक विद्वान, जिनमें अधिकांश पाश्चात्य विद्वान सम्मिलित हैं *पुरुषम्* का "मनुष्य" के

रूप में अर्थ देते हुए आनन्दित होते हैं चाहे यह शब्द भगवान् कृष्ण के सन्दर्भ में ही क्यों न हो। इस तरह वैदिक साहित्य के उनके अवैध ईश्वर के प्रति उनकी भौतिकतावादी धारणाओं से रंजित होते हैं। किन्तु यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि चूँकि जाम्बवान ने भगवान् के पद को ठीक से नहीं समझा इसीलिए उन्होंने उन्हें *प्राकृत पुरुष* ''एक सांसारिक व्यक्ति'' माना। दूसरे शब्दों में भगवान् तो *पुरुषोत्तम,* ''परम दिव्य पुरुष,'' हैं।

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ।
आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २ ॥

शब्दार्थ

द्वन्द्व—जोड़ी; युद्धम्—युद्ध; सु-तुमुलम्—अत्यन्त भयानक; उभयोः—दोनों के बीच; विजिगीषतोः—जीतने के लिए प्रयत्नशील; आयुध—हथियारों; अश्म—पत्थरों; द्रुमैः—तथा वृक्षों से; दोर्भिः—अपनी बाहुओं से; क्रव्य—मांस; अर्थे—के हेतु; श्येनयोः—दो बाजों में; इव—मानो।

दोनों जीतने के लिए कृतसंकल्प होकर घमासान द्वन्द्व युद्ध करने लगे। पहले विविध हथियारों से और तब पत्थरों, वृक्षों के तनों और अन्त में निःशस्त्र बाहुओं से एक-दूसरे से भिड़ कर, वे मांस के टुकड़े के लिए झपट रहे दो बाजों की तरह लड़ रहे थे।

आसीत्तदष्टाविम्शाहमितरेतरमुष्टिभिः ।
वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

आसीत्—था; तत्—वह; अष्टा-विंश—अट्ठाईस; अहम्—दिन; इतर-इतर—एक-दूसरे से; मुष्टिभिः—मुक्कों से; वज्र—बिजली के; निष्पेष—प्रहारों की तरह; परुषैः—कठोर; अविश्रमम्—बिना रुके; अहः-निशम्—अहर्निश, दिन-रात।

यह युद्ध बिना विश्राम के अट्ठाईस दिनों तक चलता रहा। दोनों एक-दूसरे पर मुक्कों से प्रहार कर रहे थे, जो टूक-टूक करने वाले बिजली के प्रहारों जैसे गिरते थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि यह युद्ध बिना अन्तराल के रात-दिन चलता रहा।

कृष्णमुष्टिविनिष्पात निष्पिष्टाङ्गोरु बन्धनः ।
क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-मुष्टि—कृष्ण के मुक्के के; विनिष्पात—प्रहारों से; निष्पिष्ट—चटनी होकर; अङ्ग—शरीर के; उरु—विशाल; बन्धनः—पुट्ठे, पेशियाँ; क्षीण—निर्बल; सत्त्वः—शक्ति; स्विन्न—पसीना छोड़ता; गात्रः—अंग; तम्—उससे; आह—बोला; अतीव—अत्यन्त; विस्मितः—चकित।

भगवान् कृष्ण के मुक्कों से जाम्बवान की उभरी मांस-पेशियाँ कुचलती गईं, उसका बल घटने लगा और अंग पसीने से तर हो गये, तो वह अत्यन्त चकित होकर भगवान् से बोला।

जाने त्वां सव्रवभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

जाने—जानता हूँ; त्वाम्—तुमको (कि हो); सर्व—समस्त; भूतानाम्—जीवों का; प्राणः—प्राण; ओजः—ऐन्द्रिय शक्ति; सहः—मानसिक बल; बलम्—शरीरिक शक्ति; विष्णुम्—भगवान् विष्णु को; पुराण—आदि; पुरुषम्—पुरुष; प्रभविष्णुम्—सर्वशक्तिमान; अधीश्वरम्—परम नियन्ता।

[जाम्बवान ने कहा]: मैं जानता हूँ कि आप समस्त जीवों के प्राण हैं और ऐन्द्रिय, मानसिक तथा शारीरिक बल हैं। आप आदि-पुरुष, परम पुरुष, सर्व शक्तिमान नियन्ता भगवान् विष्णु हैं।

त्वं हि विश्वसृजाम्स्रष्टा सृष्टानामपि यच्च सत् ।
कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; हि—निस्सन्देह; विश्व—ब्रह्माण्ड के; सृजाम्—सृजनकर्ताओं के; स्रष्टा—सृजनकर्ता; सृष्टानाम्—उत्पन्न जीवों के; अपि—भी; यत्—जो; च—तथा; सत्—निहित वस्तु; कालः—दमनकारी; कलयताम्—दमनकर्ताओं के; ईशः—परमेश्वर; परः आत्मा—परम आत्मा; तथा—भी; आत्मनाम्—समस्त आत्माओं के।

आप ब्रह्माण्ड के समस्त स्रष्टाओं के परम स्रष्टा तथा समस्त सृजित वस्तुओं में निहित वस्तु (सत्) हैं। आप समस्त दमनकरियों के दमनकर्ता, परमेश्वर तथा समस्त आत्माओं के परमात्मा हैं।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* में ही (.२५.४२) भगवान् कपिल कहते हैं—*मृत्युश्चरति मद्भयात्*—मेरे भय से साक्षात् मृत्यु इधर-उधर घूमती है।

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षै-
र्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिङ्गलोऽब्धिः ।
सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का
रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; ईषत्—किंचित; उत्कलित—प्रकट; रोष—क्रोध से; कटा-अक्ष—चितवन से; मोक्षैः—मुक्त होने से; वर्त्म—मार्ग; आदिशत्—दिखलाया; क्षुभित—क्षुब्ध; नक्र—(जिसमें) घड़ियाल; तिमिङ्गलः—बड़ी मछली; अब्धिः—समुद्र; सेतुः—पुल; कृतः—बनाया; स्व—अपने; यशः—यश; उज्ज्वलिता—जला दिया; च—तथा; लङ्का—लंका नगरी; रक्षः—(रावण) असुर के; शिरांसि—सिर; भुवि—पृथ्वी पर; पेतुः—गिरे; इषु—जिसके बाणों से; क्षतानि—कट कर।

आप वही हैं जिनके क्रोध को तनिक प्रकट करने वाली चितवन ने अथाह जल के भीतर के घड़ियालों तथा तिमिंगिल मछलियों को क्षुब्ध बना दिया था, जिससे सागर मार्ग देने के लिए बाध्य हुआ था। आप वही हैं जिन्होंने अपना यश स्थापित करने के लिए एक महान् पुल बनाया, लंका नगरी को जला दिया और जिनके बाणों ने रावण के सिरों को छिन्न कर दिया, जो पृथ्वी पर जा गिरे।

इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ।
व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥
अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ।
कृपया परया भक्तं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; विज्ञात-विज्ञानम्—जिसने सत्य को समझ लिया था; ऋक्ष—रीछों के; राजानम्—राजा से; अच्युतः—कृष्ण; व्याजहार—बोले; महा-राज—हे राजा (परीक्षित); भगवान्—भगवान्; देवकी-सुरः—देवकी-पुत्र; अभिमृश्य—स्पर्श करके; अरविन्द-अक्षः—कमल-नेत्र; पाणिना—अपने हाथ से; शम्—मंगल; करेण—प्रदान करने वाला; तम्—उसको; कृपया—कृपा से; परया—महान्; भक्तम्—भक्त को; मेघ—बादल के समान; गम्भीरया—गम्भीर; गिरा—वाणी में।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : हे राजन्, तब भगवान् कृष्ण ने ऋक्षराज को सम्बोधित किया जो सच्चाई जान गया था। देवकी-पुत्र कमल-नेत्र भगवान् ने समस्त, आशीर्वादों के दाता, अपने हाथ से जाम्बवान का स्पर्श किया और अपने भक्त से अत्यन्त कृपापूर्वक मेघ की गर्जना जैसी गम्भीर वाणी में बोले।

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ।
मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मणि—मणि; हेतोः—के कारण; इह—यहाँ; प्राप्ताः—आये हैं; वयम्—हम; ऋक्ष-पते—हे रीछों के स्वामी; बिलम्—गुफा तक; मिथ्या—झूठा; अभिशापम्—दोषारोपण; प्रमृजन्—दूर करने के लिए; आत्मनः—अपने विरुद्ध; मणिना—मणि के साथ; अमुना—इस।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : हे ऋक्षराज, हम इसी मणि के लिए आपकी गुफा में आये हैं। मैं इस मणि का उपयोग अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपों को झूठा सिद्ध करने के लिए करना

चाहता हूँ।

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा ।
अर्हणार्थम्स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥ २॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; स्वाम्—अपनी; दुहितरम्—पुत्री; कन्याम्—कुमारी; जाम्बवतीम्—जाम्बवती को; मुदा—खुशी खुशी; अर्हण-अर्थम्—सादर भेंट के रूप में; सः—उसने; मणिना—मणि समेत; कृष्णाय—कृष्ण को; उपजहार ह—भेंट कर दिया।

इस प्रकार कहे जाने पर जाम्बवान ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कुमारी पुत्री जाम्बवती के साथ साथ मणि को भेंट अर्पित करते हुए भगवान् कृष्ण का सम्मान किया।

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ।
प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ॥

शब्दार्थ

अदृष्ट्वा—न देख कर; निर्गमम्—बाहर आना; शौरेः—कृष्ण का; प्रविष्टस्य—भीतर गये हुए; बिलम्—गुफा में; जनः—लोग; प्रतीक्ष्य—प्रतीक्षा करने के बाद; द्वादश—बारह; अहानि—दिन; दुःखिताः—दुखी; स्व—अपने; पुरम्—नगर को; ययुः—चले गये।

भगवान् शौरि के गुफा में प्रविष्ट होने के बाद उनके साथ आये द्वारका के लोग बारह दिनों तक उनकी प्रतीक्षा करते रहे किन्तु वे बाहर नहीं आये। अन्त में वे सब निराश होकर अत्यन्त दुखी मन से अपने नगर लौट गये थे।

निशम्य देवकी देवी रक्मिण्यानकदुन्दुभिः ।
सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; देवकी—देवकी; देवी रुक्मिणी—देवी रुक्मिणी; आनकदुन्दुभिः—वसुदेव; सुहृदः—मित्रगण; ज्ञातयः—सम्बन्धी लोग; अशोचन्—पछतावा करने लगे; बिलात्—गुफा से; कृष्णम्—कृष्ण को; अनिर्गतम्—बाहर न आते हुए।

जब देवकी, रुक्मिणी देवी, वसुदेव तथा भगवान् के अन्य सम्बन्धियों ने सुना कि वे गुफा से बाहर नहीं निकले तो वे सभी दुःखी होने लगे।

सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ।
उपतस्थुश्चन्द्रभागां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ५॥

शब्दार्थ

सत्राजितम्—सत्राजित को; शपन्तः—कोसते हुए; ते—वे; दुःखिताः—दुखित; द्वारका-ओकसः—द्वारकावासियों ने; उपतस्थुः—पूजा की; चन्द्रभागाम्—चन्द्रभागा; दुर्गाम्—दुर्गा की; कृष्ण-उपलब्धये—कृष्ण को प्राप्त करने के लिए।

सत्राजित को कोसते हुए व्याकुल द्वारकावासी चन्द्रभागा नामक दुर्गा अर्चाविग्रह के समीप गये और कृष्ण की वापसी के लिए उनसे प्रार्थना करने लगे।

तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा स च ।
प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उनसे; तु—लेकिन; देवी—देवी की; उपस्थानात्—पूजा के बाद; प्रत्यादिष्ट—बदले में प्रदान किया; आशिषाः—वर; सः—वह; च—तथा; प्रादुर्बभूव—प्रकट हुआ; सिद्ध—प्राप्त करके; अर्थः—अपना लक्ष्य; स-दारः—अपनी पत्नी के सहित; हर्षयन्—हर्षित करते हुए; हरिः—भगवान् कृष्ण।

जब नगरनिवासी देवी की पूजा कर चुके तो वे उनसे बोलीं कि तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार की जाती है। तभी अपने लक्ष्य की पूर्ति करके भगवान् कृष्ण अपनी नई पत्नी के साथ उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्हें हर्ष से सराबोर कर दिया।

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ।
सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

उपलभ्य—पहचान कर; हृषीकेशम्—इन्द्रियों के स्वामी को; मृतम्—मृत व्यक्ति; पुनः—फिर; इव—मानो; आगतम्—आया हुआ; सह—साथ; पत्न्या—पत्नी के; मणि—मणि; ग्रीवम्—गर्दन में; सर्वे—सारे; जात—उत्पन्न किया; महा—अत्यधिक; उत्सवाः—हँसी-खुशी।

भगवान् हृषीकेश को उनकी नवीन पत्नी के साथ तथा उनके गले में स्यमंतक मणि पड़ी देखकर सारे लोगों में अत्यधिक प्रसन्नता छा गई, मानों कृष्ण मृत्यु से वापस लौटे हों।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार जाम्बवान ने जब अपनी पुत्री कृष्ण को भेंट की तो उसने वह मणि उनके गले में डाल दिया था।

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ।
प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सत्राजितम्—सत्राजित को; समाहूय—बुलवाकर; सभायाम्—राजसभा में; राज—राज (उग्रसेन) की; सन्निधौ—उपस्थिति में; प्राप्तिम्—प्राप्ति; च—तथा; आख्याय—घोषित करके; भगवान्—भगवान् ने; मणिम्—मणि; तस्मै—उसको; न्यवेदयत्—भेंट कर दिया।

भगवान् कृष्ण ने सत्राजित को राजसभा में बुलवाया। वहाँ राजा उग्रसेन की उपस्थिति में

कृष्ण ने मणि पाये जाने की घोषणा की और तब उसे औपचारिक रीति से सत्राजित को भेंट कर दिया।

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः ।
अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, सत्राजित; च—तथा; अति—अत्यधिक; व्रीडितः—लज्जित; रत्नम्—मणि को; गृहीत्वा—ले करके; अवाक्—नीचे की ओर; मुखः—अपना मुँह; ततः—वहाँ से; अनुतप्यमानः—पश्चाताप अनुभव करते हुए; भवनम्—घर; अगमत्—गया; स्वेन—अपने; पाप्मना—पापपूर्ण आचरण के साथ।

अत्यधिक लज्जा से मुँह लटकाये सत्राजित ने वह मणि ले लिया और घर लौट गया किन्तु सारे समय वह अपने पापपूर्ण आचरण पर पश्चाताप का अनुभव करता रहा।

सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ।
कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाच्युतः कथम् ॥ ४० ॥
किम्कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा ।
अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥ ४१ ॥
दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ।
उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अनुध्यायन्—सोच-विचार करता; तत्—वह; एव—निस्सन्देह; अघम्—अपराध; बल-वत्—बलवानों से; विग्रह—झगड़े के बारे में; आकुलः—चिन्तित; कथम्—कैसे; मृजामि—धो सकूँगा; आत्म—अपने; रजः—कल्मष; प्रसीदेत्—प्रसन्न हों; वा—अथवा; अच्युतः—कृष्ण; कथम्—कैसे; किम्—क्या; कृत्वा—करके; साधु—अच्छा; मह्यम्—मेरे लिए; स्यात्—हो सकता है; न शपेत्—शाप न दें; वा—अथवा; जनः—लोग; यथा—जिस तरह; अदीर्घ—कम अवधि का; दर्शनम्—जिनका दर्शन; क्षुद्रम्—क्षुद्र; मूढम्—मूढ़; द्रविण—सम्पत्ति के; लोलुपम्—लोभी; दास्ये—मैं दूँगा; दुहितरम्—अपनी पुत्री; तस्मै—उनको; स्त्री—स्त्रियों का; रत्नम्—भूषण; रत्नम्—रत्न; एव च—तथा; उपायः—साधन; अयम्—यह; समीचीनः—प्रभावशाली; तस्य—उसका; शान्तिः—शमन; न—नहीं; च—तथा; अन्यथा—नहीं तो।

अपने घोर अपराध के बारे में सोच-विचार करते और भगवान् के शक्तिशाली भक्तों से संघर्ष की सम्भावना के बारे में चिन्तित राजा सत्राजित ने सोचा, "मैं किस तरह अपने कल्मष को स्वयं धो सकता हूँ और किस तरह भगवान् अच्युत मुझ पर प्रसन्न हों? मैं अपने सौभाग्य की पुनप्राप्ति के लिए क्या कर सकता हूँ? दूरदृष्टि न होने, कंजूस, मूर्ख तथा लालची होने से मैं जनता से शापित होने से कैसे बचूँ? मैं अपनी पुत्री, जो कि सभी स्त्रियों में रत्न है, स्यमन्तक मणि के साथ ही भगवान् को भेंट कर दूँगा। निस्सन्देह उन्हें शान्त करने का यही एकमात्र उचित

उपाय है।''

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ।
मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥ ४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; व्यवसितः—दृढ़ संकल्प करके; बुद्ध्या—बुद्धि के उपयोग से; सत्राजित्—सत्राजित; स्व—अपनी; सुताम्—पुत्री; शुभाम्—गौर वर्ण की; मणिम्—मणि; च—तथा; स्वयम्—स्वयं; उद्यम्य—प्रयास करके; कृष्णाय—कृष्ण को; उपजहार ह—भेंट कर दिया।

इस तरह बुद्धिमानी के साथ मन को दृढ़ करके राजा सत्राजित ने स्वयं अपनी गौर-वर्ण वाली पुत्री के साथ साथ स्यमन्तक मणि भी भगवान् कृष्ण को भेंट करने की व्यवस्था की।

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ।
बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; सत्यभामाम्—सत्यभामा से; भगवान्—भगवान् ने; उपयेमे—विवाह कर लिया; यथा-विधि—उचित अनुष्ठान द्वारा; बहुभिः—अनेक लोगों द्वारा; याचिताम्—माँगी गई; शील—उत्तम चरित्र वाली; रूप—सौन्दर्य; औदार्य—तथा उदारता; गुण—गुणों से; अन्विताम्—युक्त, सम्पन्न।

भगवान् ने उचित धार्मिक रीति से सत्यभामा के साथ विवाह कर लिया। उत्तम आचरण, सौन्दर्य, उदारता तथा अन्य सद्गुणों से सम्पन्न होने के कारण अनेक लोगों ने उसे लेना चाहा था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि कृतवर्मा जैसे व्यक्तियों ने सत्यभामा से पाणिग्रहण करना चाहा था।

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ।
तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् ने; आह—कहा; न—नहीं; मणिम्—मणि; प्रतीच्छामः—वापस चाहते हैं; वयम्—हम; नृप—हे राजन्; तव—तुम्हारा; आस्ताम्—रहने दो; देव—देवता (सूर्यदेव) के; भक्तस्य—भक्त का; वयम्—हम; च—भी; फल—इसके फल के; भागिनः—भोक्ता।

भगवान् ने सत्राजित से कहा : हे राजन्, हमें इस मणि को वापस लेने की इच्छा नहीं है। तुम सूर्यदेव के भक्त हो अतः इसे अपने ही पास रखो। इस प्रकार हम भी इससे लाभ उठा सकेंगे।

तात्पर्य : सत्राजित को चाहिए था कि वह भगवान् कृष्ण की पूजा करता। इस तरह कृष्ण के

कथन में थोड़ा व्यंग्य है—"आखिर तुम सूर्यदेव के भक्त जो हो।" यही नहीं, कृष्ण ने पहले ही सत्राजित का सबसे बड़ा खाजाना—शुद्ध तथा सुन्दर सत्यभामा—पा लिया था।

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "स्यमन्तक मणि" नामक छप्पनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सत्तावन

सत्राजित की हत्या और मणि की वापसी

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह सत्राजित की हत्या के बाद भगवान् कृष्ण ने शतधन्वा का वध किया और अक्रूर द्वारा किस तरह स्यमन्तक मणि द्वारका लाई गई।

जब श्रीकृष्ण ने सुना कि लाक्षागृह में पाँचों पांडवों के जल कर मर जाने की संभावना है, तो वे सांसारिक शिष्टाचार के नाते बलराम के साथ हस्तिनापुर गये यद्यपि वे सर्वज्ञ होने के नाते जानते थे कि यह समाचार गलत है। कृष्ण के द्वारका से बाहर चले जाने पर अक्रूर तथा कृतवर्मा ने शतधन्वा को उकसाया कि वह सत्राजित से स्यमन्तक मणि चुरा ले। उनकी बातों में आकर पापी शतधन्वा ने सोते हुए सत्राजित की हत्या कर दी और वह मणि चुरा लाया। रानी सत्यभामा अपने पिता की मृत्यु से अत्यन्त शोकाकुल थीं अत: वे श्रीकृष्ण को यह दुखद समाचार बतलाने के लिए हस्तिनापुर दौड़ी गईं। तब शतधन्वा को मारने के लिए श्रीकृष्ण बलराम सहित द्वारका लौट आये।

शतधन्वा सहायता माँगने के लिए अक्रूर तथा कृतवर्मा के पास गया किन्तु जब उन्होंने सहायता देने से इनकार कर दिया तो, वह उस मणि को अक्रूर के पास छोड़ कर अपनी जान बचाकर भाग गया। कृष्ण तथा बलराम ने उसका पीछा किया और कृष्ण ने अपने चक्र से उसका सिर काट लिया। जब कृष्ण को स्यमन्तक मणि शतधन्वा के पास नहीं मिला तो बलराम ने कहा कि हो सकता है कि शतधन्वा ने किसी के पास उसे रख दिया हो। बलराम ने कृष्ण से यह भी कहा कि तुम मणि ढूँढ़ने द्वारका लौट जाओ जबकि मैं विदेहराज के यहाँ जाना चाहता हूँ। इस तरह बलराम मिथिला चले गये जहाँ वे कुछ वर्षों तक रहे और इसी काल में उन्होंने दुर्योधन को गदायुद्ध की शिक्षा दी।

भगवान् कृष्ण द्वारका लौट आये और सत्राजित का दाहकर्म सम्पन्न कराया। जब अक्रूर तथा

कृतवर्मा ने शतधन्वा के मारे जाने का समाचार सुना तो वे दोनों द्वारका छोड़ कर भाग गये। इसके बाद ही द्वारका में अनेक प्रकार के—मानसिक, शारीरिक इत्यादि—उत्पात होने लगे जिससे नागरिकों ने यही अर्थ निकाला कि हो न हो यह अक्रूर के निष्कासन के कारण है। शहर के बड़े बूढ़े कहने लगे, ''एक बार बनारस में सूखा पड़ा और वहाँ के राजा ने अक्रूर के पिता के साथ, जो उस समय बनारस में प्रवास पर थे, अपनी पुत्री की शादी कर दी। इस उपहार के फलस्वरूप सूखा समाप्त हो गया।'' बड़े-बूढ़ों ने सोचा कि अक्रूर में अपने पिता जैसी शक्ति है, अत: अक्रूर को वापस लाया जाये।

श्रीकृष्ण जानते थे कि इन उत्पातों का मुख्य कारण अक्रूर का निष्कासन नहीं है। फिर भी उन्होंने अक्रूर को द्वारका वापस बुलवाया और उनका आदर-सत्कार किया तथा मधुर वाणी में उनसे कहा, ''मैं जानता हूँ कि शतधन्वा ने वह मणि आपके पास छोड़ा है। चूँकि सत्राजित के कोई पुत्र नहीं है, अत: उसकी छोड़ी हुई सारी सम्पत्ति का उचित उत्तराधिकारी उसकी पुत्री की सन्तान है। तो भी अच्छा यही होगा कि इस दुखदायी मणि को आप अपने ही पास रखें किन्तु एक बार मुझे इसे अपने सम्बन्धियों को दिखला देने दें।'' अक्रूर ने वह मणि कृष्ण को भेंट कर दिया। यह मणि सूर्य के समान चमक रहा था। किन्तु अपने परिवार वालों को वह मणि दिखलाने के बाद कृष्ण ने उसे अक्रूर को फिर लौटा दिया।

श्रीबादरायणिरुवाच
विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ।
कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणि: उवाच—बादरायण के पुत्र श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; विज्ञात—अवगत; अर्थ:—तथ्यों से; अपि—यद्यपि; गोविन्द:—भगवान् कृष्ण; दग्धान्—जल कर भस्म हुए; आकर्ण्य—सुनकर; पाण्डवान्—पाण्डु-पुत्रों को; कुन्तीम्—उनकी माता कुन्ती को; च—तथा; कुल्य—कुलरीति; करणे—पूरा करने के लिए; सह-राम:—बलराम के साथ; ययौ—गये; कुरून्—कुरुओं के राज्य में।

श्री बादरायणि ने कहा : यद्यपि जो कुछ घटित हुआ था भगवान् गोविन्द उससे पूर्णतया अवगत थे, फिर भी जब उन्होंने यह समाचार सुना कि पाण्डव तथा महारानी कुन्ती जल कर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, तो वे कुलरीति पूरा करने के उद्देश्य से बलराम के साथ कुरुओं के राज्य में गये।

तात्पर्य : भगवान् को पूरी तरह ज्ञात था कि पाण्डव दुर्योधन के द्वारा रचे गये हत्या-षड्यंत्र से बच

निकले हैं यद्यपि सारे संसार ने यह झूठी खबर सुनी थी कि पाण्डव अपनी माता समेत अग्नि में जल मरे हैं।

भीष्मं कृपं स विदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च ।
तुल्यदु:खौ च सङ्गम्य हा कष्टमिति होचतु: ॥ २॥

शब्दार्थ

भीष्मम्—भीष्म; कृपम्—आचार्य कृप; स-विदुरम्—तथा विदुर से भी; गान्धारीम्—धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी से; द्रोणम्—आचार्य द्रोण से; एव च—तथा; तुल्य—समान रूप से; दु:खौ—शोकपूर्ण; च—तथा; सङ्गम्य—मिल कर; हा—हाय; कष्टम्—कितना कष्टकारक; इति—इस प्रकार; ह ऊचतु:—वे बोले।

दोनों ही विभु भीष्म, कृप, विदुर, गान्धारी तथा द्रोण से मिले। उन्हीं के समान दुख प्रकट करते हुए वे बिलख उठे, ''हाय! यह कितना कष्टप्रद है!''

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि जो लोग इस हत्याकाण्ड में सम्मिलित थे वे पाण्डवों की मृत्यु का समाचार सुनकर तनिक भी दुखी नहीं थे। किन्तु यहाँ जिन महानुभावों का विशेष उल्लेख है—भीष्म, कृप, विदुर, गान्धारी तथा द्रोण—वे इस सम्भावित दुर्घटना को सुनकर वास्तव में दुखी थे।

लब्ध्वैतदन्तरं राजन्शतधन्वानमूचतु: ।
अक्रूरकृतवर्माणौ मनि: कस्मान्न गृह्यते ॥ ॥

शब्दार्थ

लब्ध्वा—पाकर; एतत्—इस; अन्तरम्—अवसर को; राजन्—हे राजा (परीक्षित); शतधन्वानम्—शतधन्वा से; ऊचतु:—कहा; अक्रूर-कृतवर्माणौ—अक्रूर तथा कृतवर्मा ने; मनि:—मणि; कस्मात्—क्यों; न गृह्यते—न ले लिया जाय।

इस अवसर का लाभ उठा कर, हे राजन्, अक्रूर तथा कृतवर्मा शतधन्वा के पास गये और उससे कहा, ''क्यों न स्यमंतक मणि को हथिया लिया जाय?''

तात्पर्य : अक्रूर तथा कृतवर्मा ने तर्क किया कि चूँकि कृष्ण तथा बलराम द्वारका में नहीं हैं, अत: सत्राजित को मार कर मणि को चुराया जा सकता है। श्रील श्रीधर स्वामी उल्लेख करते हैं कि इन दोनों ने शतधन्वा से जाकर चापलूसी की होगी कि ''तुम हमसे अधिक बहादुर हो अत: तुम उसका वध करो।''

योऽस्मभ्यं सम्प्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य न: ।

कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४॥

शब्दार्थ

यः—जिसने; अस्मभ्यम्—हममें से प्रत्येक को; सम्प्रतिश्रुत्य—वादा करके; कन्या—उसकी पुत्री; रत्नम्—रत्न जैसी; विगर्ह्य—अवमानना करके; नः—हमको; कृष्णाय—कृष्ण को; अदात्—दिया; न—नहीं; सत्राजित्—सत्राजित ने; कस्मात्—क्यों; भ्रातरम्—उसके भाई को; अन्वियात्—अनुगमन करना चाहिए।

"सत्राजित ने वादा करके हमारी तिरस्कारपूर्वक अवहेलना करते हुए अपनी रत्न जैसी पुत्री हमें न देकर कृष्ण को दे दी। तो फिर सत्राजित अपने भाई के ही मार्ग का अनुगमन क्यों न करे?"

तात्पर्य : चूँकि सत्राजित का भाई प्रसेन जबरदस्ती मारा गया था अत: "अपने भाई के मार्ग का अनुगमन" का आशय स्पष्ट है। यह हत्या का षड्यंत्र है।

यह सुविदित है कि अक्रूर तथा कृतवर्मा दोनों ही भगवान् के महान् शुद्ध भक्त हैं अतएव उनके असामान्य व्यवहार की व्याख्या अपेक्षित है। आचार्यों ने इस प्रकार व्याख्या की है : श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि यद्यपि अक्रूर उच्च कोटि के शुद्ध भगवद्भक्त थे किन्तु वे गोकुलवासियों के क्रोध के शिकार बने क्योंकि वे कृष्ण को वृन्दावन से ले गये थे। गोस्वामी आगे कहते हैं कि कृतवर्मा ने कंस का साथ दिया था—दोनों ही भोजवंश के थे इसलिए अब कृतवर्मा को बुरी संगति का फल मिल रहा था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने एक वैकल्पिक व्याख्या की है—अक्रूर तथा कृतवर्मा दोनों ही सत्राजित से नाराज थे क्योंकि उसने कृष्ण का अपमान किया था तथा द्वारका में उनके विषय में झूठी अफवाह फैलायी थी। सामान्य परिस्थितियों में अक्रूर तथा कृतवर्मा को अत्यधिक प्रसन्नता हुई होती कि भगवान् कृष्ण ने सुन्दरी सत्यभामा को ब्याह लिया है। शुद्ध भक्त होने से वे इस जोड़ी से कभी अप्रसन्न नहीं हुए होते, न ही वे भगवान् के ईर्ष्यालु प्रतिद्वन्द्वी बनते। अत: उनके प्रतिद्वन्द्वी जैसे व्यवहार में उनका कुछ प्रच्छन्न मन्तव्य था।

एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ।
शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीण जीवितः ॥ ५॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; भिन्न—प्रभावित; मतिः—मन वाला; ताभ्याम्—उन दोनों के द्वारा; सत्राजितम्—सत्राजित को; असत्-तमः—अत्यन्त दुष्ट; शयानम्—सोते हुए; अवधीत्—मार डाला; लोभात्—लालच में आकर; सः—उसने; पापः—पापी; क्षीण—घटी हुई; जीवितः—आयु वाला।

इस तरह उसका मन उनकी सलाह से प्रभावित हो गया और दुष्ट शतधन्वा ने लोभ में आकर सत्राजित को सोते हुए मार डाला। इस तरह पापी शतधन्वा ने अपनी आयु क्षीण कर ली।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार *असत्तमः* शब्द सूचक है कि शतधन्वा मूलतः दुष्ट बुद्धि था और सत्राजित से अत्यन्त घृणा करता था।

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत् ।
हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; विक्रोशमानानाम्—चीखती; क्रन्दन्तीनाम्—तथा चिल्लाती; अनाथ—जिनके कोई रक्षक न हो, ऐसे व्यक्ति; वत्—सदृश; हत्वा—मार कर; पशून्—पशुओं को; सौनिक—कसाई; वत्—सदृश; मणिम्—मणि को; आदाय—लेकर; जग्मिवान्—चला गया।

जब सत्राजित के महल की स्त्रियाँ चीख रही थीं और असहाय की तरह रो रही थीं तब शतधन्वा ने वह मणि ले लिया और वहाँ से चलता बना जैसे कुछ पशुओं का वध करने के बाद कोई कसाई करता है।

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता ।
व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सत्यभामा—रानी सत्यभामा; च—तथा; पितरम्—अपने पिता को; हतम्—मारा हुआ; वीक्ष्य—देख कर; शुचा-अर्पिता—शोकमग्न; व्यलपत्—विलाप करती; तत तात—हे पिता, हे पिता; इति—इस प्रकार; हा—हाय; हता—मारी गई; अस्मि—हूँ; इति—इस प्रकार; मुह्यती—मूर्च्छित हुई।

जब सत्यभामा ने अपने मृत पिता को देखा तो वे शोक में डूब गईं। "मेरे पिता, मेरे पिता! हाय, मैं मारी गयी" विलाप करती हुई वे मूर्छित होकर गिर गईं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार अपने पिता की मृत्यु पर सत्यभामा की वेदनापूर्ण भावनाएँ तथा शब्द कृष्ण की *लीला शक्ति* द्वारा प्रेरित थे और वे शतधन्वा के विरुद्ध भगवान् की उग्र प्रतिक्रिया को तैयार करने के लिए थे।

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ।

कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताचख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तैल—तेल के; द्रोण्याम्—विशाल पात्र में; मृतम्—शव को; प्रास्य—रख कर; जगाम—गई; गज-साह्वयम्—कुरु-राजधानी हस्तिनापुर; कृष्णाय—कृष्ण को; विदित-अर्थाय—जो पहले से ही अवगत थे; तप्ता—शोकयुक्त; आचख्यौ—उसने कह सुनाया; पितुः—अपने पिता का; वधम्—वध।

रानी सत्यभामा अपने पिता के शव को तेल के एक विशाल कुंड में रख कर हस्तिनापुर गईं जहाँ उन्होंने अपने पिता की हत्या के बारे में बहुत ही शोकातुर होकर कृष्ण को बतलाया जो पहले से इस स्थिति को जान रहे थे।

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ।
अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसे; आकर्ण्य—सुनकर; ईश्वरौ—दोनों प्रभु; राजन्—हे राजन् (परीक्षित); अनुसृत्य—अनुकरण करते हुए; नृ-लोकताम्—मानव समाज की रीति; अहो—हाय; नः—हमारे लिए; परमम्—महानतम; कष्टम्—दुख; इति—इस प्रकार; अस्र—आँसू-भरे; अक्षौ—दोनों नेत्रों में; विलेपतुः—दोनों ने विलाप किया।

हे राजन्, जब कृष्ण तथा बलराम ने यह समाचार सुना तो वे आह भर उठे, ‘‘हाय! यह तो हमारे लिए सबसे बड़ी दुर्घटना (विपत्ति) है!’’ इस तरह मानव समाज की रीतियों का अनुकरण करते हुए वे शोक करने लगे और उनकी आँखें आँसुओं से डबडबा आईं।

आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ।
शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥ ॥

शब्दार्थ

आगत्य—लौट कर; भगवान्—भगवान्; तस्मात्—उस स्थान से; स-भार्यः—अपनी पत्नी सहित; स-अग्रजः—तथा अपने बड़े भाई के साथ; पुरम्—अपनी राजधानी में; शतधन्वानम्—शतधन्वा को; आरेभे—तैयारी की; हन्तुम्—मारने के लिए; हर्तुम्—छीन लेने के लिए; मणिम्—मणि को; ततः—उससे।

भगवान् अपनी पत्नी तथा बड़े भाई के साथ अपनी राजधानी लौट आये। द्वारका आकर उन्होंने शतधन्वा को मारने और उससे मणि छीन लेने की तैयारी की।

सोऽपि कृतोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ।
साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (शतधन्वा); अपि—भी; कृत-उद्यमम्—अपने को तैयार किये हुए; ज्ञात्वा—जान कर; भीतः—डरा हुआ; प्राण—अपना प्राण; परीप्सया—बचाने की इच्छा से; साहाय्ये—सहायता के लिए; कृतवर्माणम्—कृतवर्मा से; अयाचत—याचना की; सः—उसने; च—तथा; अब्रवीत्—कहा।

यह जान कर कि भगवान् कृष्ण उसे मार डालने की तैयारी कर रहे हैं, शतधन्वा भयभीत हो उठा। वह अपने प्राण बचाने के लिए कृतवर्मा के पास गया और उससे सहायता माँगी किन्तु कृतवर्मा ने इस प्रकार उत्तर दिया।

नाहमीस्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ।
को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२॥
कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ।
जरासन्धः सप्तदशसंयुगाद्विरथो गतः ॥ १॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; ईश्वरयोः—दोनों प्रभुओं के प्रति; कुर्याम्—कर सकता हूँ; हेलनम्—अपराध; राम-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण के प्रति; कः—कौन; नु—निस्सन्देह; क्षेमाय—सौभाग्य; कल्पेत—प्राप्त कर सकता है; तयोः—उन दोनों को; वृजिनम्—कष्ट; आचरन्—पहुँचाते हुए; कंसः—कंस; सह—सहित; अनुगः—उसके अनुयायी; अपीतः—मृत; यत्—जिसके विरुद्ध; द्वेषात्—द्वेष से; त्याजितः—त्यक्त; श्रिया—अपने ऐश्वर्य से; जरासन्धः—जरासन्ध; सप्तदश—सत्रह; संयुगात्—युद्धों से; विरथः—रथविहीन; गतः—हो गया।

[कृतवर्मा ने कहा] : मैं भगवान् कृष्ण तथा बलराम के विरुद्ध अपराध करने का दुस्साहस नहीं कर सकता। भला उन्हें कष्ट देने वाला अपने सौभाग्य की आशा कैसे कर सकता है? कंस तथा उसके सारे अनुयायियों ने उनसे शत्रुतावश अपनी सम्पत्ति तथा अपने प्राण गँवाये और उनसे सत्रह बार युद्ध करने के बाद जरासन्ध के पास एक भी रथ नहीं बचा।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की व्याख्या है कि *हेलनम्* शब्द भगवान् की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने का सूचक है और *वृजिनम्* शब्द दोनों भगवानों के प्रति अपराध का द्योतक है।

प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ।
सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

प्रत्याख्यातः—मना किया गया; सः—वह, शतधन्वा; च—तथा; अक्रूरम्—अक्रूर से; पार्ष्णि-ग्राहम्—सहायता के लिए; अयाचत—विनती की; सः—वह, अक्रूर; अपि—भी; आह—बोला; कः—कौन; विरुध्येत—उनका विरोध कर सकता है; विद्वान्—जानते हुए; ईश्वरयोः—दोनों विभुओं के; बलम्—बल को।

अपनी याचना अस्वीकृत हो जाने पर शतधन्वा अक्रूर के पास गया और अपनी रक्षा के लिए उनसे अनुनय-विनय की। किन्तु अक्रूर ने भी उसी तरह उससे कहा : भला ऐसा कौन है, जो उन

दोनों के बल को जानते हुए उन दोनों विभुओं का विरोध करेगा?

य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ।
चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताजया ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; इदम्—इस; लीलया—खेल-खेल में; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; सृजति—उत्पन्न करता है; अवति—पालन करता है; हन्ति—नष्ट करता है; च—तथा; चेष्टाम्—प्रयोजन; विश्व-सृजः—ब्रह्माण्ड के (गौण) स्रष्टा (ब्रह्मा आदि); यस्य—जिसका; न विदुः—नहीं जानते; मोहिताः—मोहग्रस्त; अजया—अपनी मोहनी शक्ति द्वारा।

यह तो परमेश्वर ही हैं, जो अपनी लीला के रूप में इस ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं। यहाँ तक कि विश्व स्रष्टागण भी उनके प्रयोजन को नहीं समझ पाते क्योंकि वे उनकी माया द्वारा मोहग्रस्त रहते हैं।

तात्पर्य : *यः* शब्द एकवचन है। इसका प्रयोग सूचित करता है कि "कृष्ण तथा राम—दो ईश्वर" का प्रायः जो सन्दर्भ दिया जाता है, वह *श्रीमद्भागवत* में व्यक्त एकेश्वरवाद के दृढ़ सिद्धान्त के अनुरूप नहीं है। जैसाकि अनेक वैदिक ग्रंथों में बतलाया गया है एक परमेश्वर असंख्य रूपों में विस्तार करता है फिर भी वह एक सर्वशक्तिमान ईश्वर रहता है। उदाहरणार्थ, *ब्रह्म-संहिता* (५.) में यह कथन है—*अद्वैतमच्युतमनादिरनन्तरूपम्*—एक परमेश्वर अच्युत तथा अनादि है और वह असंख्य रूपों में विस्तार करता है। भगवान् की लीलाओं को सम्मान देने के लिए, जिनमें वे विस्तार करके अपने बड़े भाई बलराम के रूप में प्रकट होते हैं, यहाँ पर *भागवत* में "दो ईश्वरों" का उल्लेख हुआ है। किन्तु अन्तिम पंक्ति यह है कि भगवान् या परब्रह्म सत्य एक है, जो अपने आदि-कृष्ण रूप में प्रकट होता है।

यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ।
दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; सप्त—सात; हायनः—वर्षीय; शैलम्—पर्वत को; उत्पाट्य—उखाड़ कर; एकेन—केवल एक; पाणिना—हाथ से; दधार—धारण किया; लीलया—खेल-खेल में; बालः—निरा बालक; उच्छिलीन्ध्रम्—कुकुरमुत्ता; इव—सदृश; अर्भकः—एक बालक।

सात वर्षीय एक बालक के रूप में कृष्ण ने समूचा पर्वत उखाड़ लिया और आसानी से इसे ऊपर उठाये रखा जिस तरह एक बालक कुकुरमुत्ता उठा लेता है।

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥ १७॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तस्मै—उस; भगवते—भगवान् को; कृष्णाय—कृष्ण को; अद्भुत—चकित करने वाले; कर्मणे—जिसके कार्य; अनन्ताय—असीम; आदि-भूताय—समस्त जगत के उद्गम को; कूट-स्थाय—जगत के अचल केन्द्र को; आत्मने—परमात्मा को; नमः—नमस्कार।

''मैं उन भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ जिनका हर कार्य चकित करने वाला है। वे परमात्मा हैं, असीम स्रोत तथा समस्त जगत के स्थिर केन्द्र हैं।''

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ।
तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८॥

शब्दार्थ

प्रत्याख्यातः—अस्वीकार; सः—वह; तेन—उस (अक्रूर) के द्वारा; अपि—भी; शतधन्वा—शतधन्वा; महा-मणिम्—बहुमूल्य मणि को; तस्मिन्—उसके पास; न्यस्य—छोड़ कर; अश्वम्—घोड़े पर; आरुह्य—सवार होकर; शत—एक सौ; योजन—योजन (८ मील=१ योजन); गम्—जा सकने वाले; ययौ—रवाना हो गया।

जब अक्रूर ने भी उसकी याचना अस्वीकार कर दी तो शतधन्वा ने उस अमूल्य मणि को अक्रूर के संरक्षण में रख दिया और एक घोड़े पर चढ़ कर भाग गया जो एक सौ योजन (आठ सौ मील) यात्रा कर सकता था।

तात्पर्य : *न्यस्य* शब्द का आशय है कि शतधन्वा को अब विश्वास हुआ कि यह मणि उसी का है और वह अपने एक मित्र के पास छोड़े जा रहा है। कहने का अर्थ यह है कि यह चोर प्रवृत्ति है।

गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ।
अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन्गुरुद्रुहम् ॥ १९॥

शब्दार्थ

गरुड-ध्वजम्—झंडे में गरुड़ चिह्न वाले; आरुह्य—सवार होकर; रथम्—रथ में; राम—बलराम; जनार्दनौ—तथा कृष्ण ने; अन्वयाताम्—पीछा किया; महा-वेगैः—अत्यन्त तेज; अश्वैः—घोड़ों से; राजन्—हे राजा (परीक्षित); गुरु—अपने श्रेष्ठ की (सत्राजित की जो उनके श्वसुर थे); द्रुहम्—हिंसा करने वाला।

हे राजन्, कृष्ण तथा बलराम, कृष्ण के रथ पर सवार हुए जिस पर गरुड़चिन्हित ध्वजा फहरा रहा था और जिसमें अत्यन्त तेज घोड़े जुते थे। वे अपने श्रेष्ठ (श्वसुर) के हत्यारे का पीछा करने लगे।

मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् ।

पद्भ्यामधावत्सन्त्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मिथिलायाम्—मिथिला में; उपवने—एक उपवन में; विसृज्य—छोड़ कर; पतितम्—गिरे हुए; हयम्—घोड़े को; पद्भ्याम्—पैदल; अधावत्—दौड़ने लगा; सन्त्रस्तः—भयभीत; कृष्णः—कृष्ण; अपि—भी; अन्वद्रवत्—पीछे दौड़े; रुषा—क्रुद्ध होकर।

मिथिला के बाहर एक बगीचे में वह घोड़ा जिस पर शतधन्वा सवार था गिर गया। भयभीत होकर उसने घोड़ा वहीं छोड़ दिया और पैदल ही भागने लगा। कृष्ण क्रुद्ध होकर उसका पीछा कर रहे थे।

पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ।
चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

पदातेः—पैदल का; भगवान्—भगवान्; तस्य—उस; पदातिः—पैदल ही; तिग्म—तेज; नेमिना—धार वाले; चक्रेण—अपने चक्र से; शिरः—सिर; उत्कृत्य—काट कर; वाससोः—शतधन्वा के वस्त्रों के भीतर; व्यचिनोत्—ढूँढ़ा; मणिम्—मणि को।

चूँकि शतधन्वा पैदल ही भागा था इसलिए भगवान् ने भी पैदल ही जाते हुए अपने तेज धार वाले चक्र से उसका सिर काट लिया। तब भगवान् ने स्यमन्तक मणि के लिए शतधन्वा के सभी वस्त्रों को छान मारा।

अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् ।
वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

अलब्ध—न पाकर; मणिः—मणि; आगत्य—पास आकर; कृष्णः—कृष्ण ने; आह—कहा; अग्र-ज—अपने बड़े भाई के; अन्तिकम्—निकट; वृथा—व्यर्थ ही; हतः—मारा गया; शतधनुः—शतधन्वा; मणिः—मणि; तत्र—उसके पास; न विद्यते—नहीं है।

मणि न पाकर भगवान् कृष्ण अपने बड़े भाई के पास गये और कहने लगे, ''हमने व्यर्थ ही शतधन्वा को मार डाला। उसके पास वह मणि नहीं है।''

तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ।
कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; आह—कहा; बलः—बलराम ने; नूनम्—निश्चय ही; सः—वह; मणिः—मणि; शतधन्वना—शतधन्वा द्वारा; कस्मिंश्चित्—किसी विशेष; पुरुषे—व्यक्ति के पास; न्यस्तः—छोड़ी गई है; तम्—उसको; अन्वेष—ढूँढ़ो; पुरम्—पुरी में; व्रज—जाओ।

इस पर बलराम ने उत्तर दिया, ''निस्सन्देह, शतधन्वा ने मणि को किसी के संरक्षण में रख

छोड़ा होगा। तुम नगरी में लौट जाओ और उस व्यक्ति को ढूँढ़ो।''

अहं वैदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ।
इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदनन्दनः ॥ २४॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; वैदेहम्—विदेह के राजा को; इच्छामि—चाहता हूँ; द्रष्टुम्—देखना; प्रिय-तमम्—अत्यन्त प्रिय; मम—मेरा; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कह कर; मिथिलाम्—मिथिला (विदेह राज्य की राजधानी); राजन्—हे राजा (परीक्षित); विवेश—प्रवेश किया; यदु-नन्दनः—यदुवंशी बलराम ने।

''मैं विदेह के राजा से भेंट करना चाहता हूँ क्योंकि वे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं।'' हे राजन्, यह कह कर, प्रिय यदुवंशी बलराम ने मिथिला नगरी में प्रवेश किया।

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम ने अन्त में शतधन्वा को मिथिला के बाहरी क्षेत्र में पकड़ा था। चूँकि इस नगर का राजा बलदेव का प्रिय मित्र था इसलिए उन्होंने इस नगर में प्रवेश करने और वहीं कुछ समय बिताने का निश्चय किया।

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ।
अर्हयां आस विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥ २५॥

शब्दार्थ

तम्—उसको, बलराम को; दृष्ट्वा—देख कर; सहसा—तुरन्त; उत्थाय—उठ कर; मैथिलः—मिथिला के राजा ने; प्रीत-मानसः—स्नेह का अनुभव करते हुए; अर्हयाम् आस—उनका आदर किया; विधि-वत्—शास्त्रीय आदेशों के अनुसार; अर्हणीयम्—पूज्य; समर्हणैः—पूजा-सामग्री से।

जब मिथिला के राजा ने बलराम को समीप आते देखा तो वह तुरन्त अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। राजा ने बड़े प्रेम से विशद पूजा करके परम आराध्य प्रभु का सम्मान शास्त्रीय आदेशों के अनुसार किया।

उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ।
मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ।
ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ २६॥

शब्दार्थ

उवास—रहे; तस्याम्—उस; कतिचित्—कई; मिथिलायाम्—मिथिला में; समाः—वर्ष; विभुः—सर्वशक्तिमान श्री बलराम; मानितः—सम्मानित; प्रीति-युक्तेन—वत्सल; जनकेन—राजा जनक (विदेह) द्वारा; महा-आत्मना—महात्मा; ततः—तब; अशिक्षत्—सीखा; गदाम्—गदा; काले—समय में; धार्तराष्ट्रः—धृतराष्ट्र के पुत्र; सुयोधनः—दुर्योधन ने।

सर्वशक्तिमान भगवान् बलराम अपने प्रिय भक्त जनक महाराज से सम्मानित होकर मिथिला

में कई वर्षों तक रुके रहे। इसी समय धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने बलराम से गदा युद्ध करने की कला सीखी।

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ।
अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७॥

शब्दार्थ

केशवः—कृष्ण; द्वारकाम्—द्वारका में; एत्य—आकर; निधनम्—मृत्यु; शतधन्वनः—शतधन्वा की; अप्राप्तिम्—न मिलने से; च—तथा; मणेः—मणि; प्राह—कहा; प्रियायाः—अपनी प्रियतमा (सत्यभामा) के; प्रिय—आनन्दित; कृत्—करते हुए; विभुः—सर्वशक्तिमान प्रभु।

भगवान् केशव द्वारका आये और उन्होंने शतधन्वा की मृत्यु तथा स्यमन्तक मणि को खोज पाने में अपनी असफलता का विवरण दिया। वे इस तरह बोले जिससे उनकी प्रियतमा सत्यभामा प्रसन्न हो सकें।

तात्पर्य : स्वाभाविक है कि सत्यभामा को यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि उनके पिता का हत्यारा मारा गया। किन्तु उनके पिता की स्यमन्तक मणि मिलनी अभी शेष थी अतः उसे प्राप्त करने के कृष्ण के संकल्प को सुनकर भी वे प्रसन्न थीं।

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ।
साकं सुहृद्भिर्भगवान्या याः स्युः साम्परायिकीः ॥ २८॥

शब्दार्थ

ततः—तब; सः—उसने, कृष्ण ने; कारयाम् आस—सम्पन्न कराया; क्रिया—अनुष्ठान कर्म; बन्धोः—अपने सम्बन्धी (सत्राजित) का; हतस्य—मारे गये; वै—निस्सन्देह; साकम्—साथ साथ; सुहृद्भिः—शुभचिन्तकों के; भगवान्—भगवान्; याः याः—जो जो; स्युः—होना चाहिए; साम्परायिकीः—इस संसार से कूच करने के समय।

तब भगवान् कृष्ण ने अपने मृत सम्बन्धी सत्राजित के लिए विविध अन्तिम संस्कार सम्पन्न कराये। भगवान् परिवार के शुभचिन्तकों के साथ शवयात्रा में सम्मिलित हुए।

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ।
व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९॥

शब्दार्थ

अक्रूरः कृतवर्मा च—अक्रूर तथा कृतवर्मा; श्रुत्वा—सुनकर; शतधनोः—शतधन्वा का; वधम्—वध; व्यूषतुः—बाहर चले गये; भय-वित्रस्तौ—भय से त्रस्त; द्वारकायाः—द्वारका से; प्रयोजकौ—उकसाने वाले।

जब अक्रूर तथा कृतवर्मा ने, जिन्होंने शुरू में शतधन्वा को अपराध करने के लिए उकसाया

था, यह सुना कि वह मारा गया है, तो वे भय के कारण द्वारका से भाग गये और उन्होंने अन्यत्र जाकर शरण ली।

अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् ।
शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ० ॥

शब्दार्थ

अक्रूरे—अक्रूर के; प्रोषिते—प्रवास में रहते हुए; अरिष्टानि—अपशकुन; आसन्—उत्पन्न हुए; वै—निस्सन्देह; द्वारका-ओकसाम्—द्वारकावासियों के लिए; शारीराः—शारीरिक; मानसः—तथा मानसिक; तापाः—कष्ट; मुहुः—बारम्बार; दैविक—उच्चतर शक्तियों द्वारा उत्पन्न; भौतिकाः—अन्य प्राणियों द्वारा उत्पन्न ।.

अक्रूर की अनुपस्थिति में द्वारका में तमाम अपशकुन होने लगे और वहाँ के निवासी शारीरिक तथा मानसिक कष्टों के अतिरिक्त दैविक तथा भौतिक उत्पातों से भी त्रस्त रहने लगे।

तात्पर्य : यहाँ पर *दैविक* शब्द दैवी प्राणियों द्वारा उत्पन्न उत्पातों का द्योतक है। ये उत्पात प्राय: भूकम्प, समुद्री लहरों या मौसम की चरम अवस्था के रूप में प्रकट होते हैं। आजकल भौतिकतावादी लोग इन उत्पातों को पार्थिव कारणों से उत्पन्न मानते हैं। उन्हें इसकी अनुभूति नहीं होती कि ये अधिदेवों की ओर से दिये जाने वाले दंड होते हैं। *भौतिक* शब्द पृथ्वी के प्राणियों द्वारा यथा मनुष्यों, पशुओं तथा कीटों द्वारा उत्पन्न उत्पात का द्योतक है।

श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार अक्रूर स्यमन्तक मणि लेकर वाराणसी नगरी में रहने चला गया जहाँ वह 'दानपति' के नाम से विख्यात हो गया। वहाँ उसने सोने की वेदिकाओं में सुयोग्य पण्डितों की व्यापक सभा में कई अग्नि-यज्ञ सम्पन्न किये।

द्वारका के कुछ नागरिकों को ऐसा अनुभव हुआ कि ये असामान्य विपत्तियाँ अक्रूर की अनुपस्थिति से उत्पन्न हैं। वे यह भूल गये कि (जैसा अगले श्लोक में वर्णित है) द्वारका में भगवान् की उपस्थिति होने से ऐसा होना असम्भव था। जब भगवान् इस धरा पर आते हैं, तो उनकी लीलाएँ मनुष्यों जैसी होती हैं फलत: "लोकप्रियता से अवज्ञा पनपती है" वाला सिद्धान्त लागू होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक सन्तों के जीवन के दौरान तथा ईश्वर के अवतारों के समय कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अपने बीच ऐसे महापुरुषों के पद की प्रशंसा नहीं कर पाते या केवल कभी कभी करते हैं। किन्तु दूसरी ओर, भाग्यशाली तथा प्रबुद्ध लोग, जो भगवान् तथा उनके पार्षदों की असली स्थिति से परिचित होते हैं, परम धन्य हैं।

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ।
मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अङ्ग—हे प्रिय (राजा परीक्षित); उपदिशन्ति—प्रस्ताव कर रहे थे; एके—कुछ; विस्मृत्य—भूल कर; प्राक्—पूर्वकाल में; उदाहृतम्—कहा गया; मुनि—मुनियों के; वास—आवास में; निवासे—में रहते हुए; किम्—कैसे; घटेत—घटित हो सकती हैं; अरिष्ट—विपत्तियाँ; दर्शनम्—प्राकट्य।

कुछ लोगों ने प्रस्तावित तो किया [कि ये विपत्तियाँ अक्रूर की अनुपस्थिति के कारण हैं] : किन्तु वे भगवान् की उन महिमाओं को भूल गए थे, जिनका वर्णन वे प्राय: स्वयं किया करते थे। निस्सन्देह उस स्थान में विपत्तियाँ कैसे आ सकती हैं, जहाँ समस्त मुनियों के आश्रय रूप भगवान् निवास करते हों?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस श्लोक के विषय में निम्नलिखित अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। वाराणसी में अक्रूर सोने की वेदिका में यज्ञ करने तथा ब्राह्मणों को प्रभूत दान देने के लिए विख्यात हो गया। जब द्वारका के नागरिकों ने इसके विषय में सुना तो कुछ ने गप्प मारी कि कृष्ण ने अक्रूर को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ कर उसे निष्कासित कर दिया है। इस नवीन तथा अविश्वसनीय कलंक को मिटाने के लिए भगवान् कृष्ण ने द्वारका में अनेक विपत्तियों को जन्म दिया जिससे नागरिकों को अक्रूर की वापसी के लिए उत्प्रेरित किया जा सके। तब भगवान् ने इसकी आज्ञा दे दी।

देवेऽवर्षति काशीश: श्वफल्कायागताय वै ।
स्वसुतां गाण्दिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ २ ॥

शब्दार्थ

देवे—जब देवता, इन्द्र; अवर्षति—वर्षा नहीं करता था; काशी-ईश:—वाराणसी का राजा; श्वफल्काय—श्वफल्क (अक्रूर के पिता) को; आगताय—आये हुए; वै—निश्चय ही; स्व—अपनी; सुताम्—पुत्री; गान्दिनीम्—गान्दिनी को; प्रादात्—दे दिया; तत:—तब; अवर्षत्—वर्षा हुई; स्म—निस्सन्देह; काशिषु—काशी राज्य में।

[बड़े बूढ़ों ने कहा] : पूर्वकाल में जब इन्द्र ने काशी (बनारस) पर वर्षा करनी बन्द कर दी तो उस शहर के राजा ने अपनी पुत्री गान्दिनी श्वफल्क को दे दी जो उस समय उससे मिलने आया था। तब तुरन्त ही काशी राज्य में वर्षा हुई।

तात्पर्य : श्वफल्क अक्रूर का पिता था और नागरिकों ने सोचा कि पुत्र भी पिता की ही भाँति शक्तिसम्पन्न होगा। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि अक्रूर का सम्बन्ध काशी के राजा से था,

जो कि उसका नाना था, अत: विपत्ति के समय अक्रूर उस शहर को गया।

तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह ।
देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारीकाः ॥ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसका (श्वफल्क का); सुतः—पुत्र; तत्-प्रभावः—उसकी शक्ति से सम्पन्न; असौ—वह; अक्रूरः—अक्रूर; यत्र यत्र—जहाँ जहाँ; ह—निस्सन्देह; देवः—इन्द्र; अभिवर्षते—वर्षा करेगा; तत्र—वहाँ; न—नहीं; उपतापाः—कष्टप्रद उत्पात; न—नहीं; मारिकाः—असामयिक मृत्युएँ।

जहाँ भी इन्द्र के ही समान शक्तिशाली उसका बेटा अक्रूर ठहरता है, वहीं वह पर्याप्त वर्षा करेगा। निस्सन्देह, वह स्थान समस्त कष्टों तथा असामयिक मृत्युओं से रहित हो जायेगा।

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ।
इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; वृद्ध—वृद्धजनों के; वचः—शब्द; श्रुत्वा—सुनकर; न—नहीं; एतावत्—एकमात्र यह; इह—विचाराधीन बात का; कारणम्—कारण; इति—इस प्रकार; मत्वा—मान कर; समानाय्य—उसे वापस लाकर; प्राह—कहा; अक्रूरम्—अक्रूर से; जनार्दनः—भगवान् कृष्ण ने।

वृद्धजनों से ये वचन सुनकर भगवान् जनार्दन ने यह जानते हुए कि अपशकुनों का एकमात्र कारण अक्रूर की अनुपस्थिति नहीं थी, उन्हें द्वारका वापस बुलवाया और उनसे बोले।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् कृष्ण परम नियन्ता हैं इसलिए यह स्पष्ट था कि उन्हीं की इच्छा से द्वारका में कुछ उत्पात प्रकट हुए थे। ऊपर से ये उत्पात अक्रूर की अनुपस्थिति से उत्पन्न प्रतीत हो रहे थे और मंगलप्रद स्यमंतक मणि की अनुपस्थिति से भी। किन्तु हमें स्मरण रखना होगा कि द्वारका भगवान् कृष्ण का नित्य धाम है। यह दैवी आनन्द की नगरी है क्योंकि यहाँ भगवान् निवास करते हैं। फिर भी इस जगत के राजकुमार के रूप में अपनी लीलाएँ करने के लिए कृष्ण ने जो आवश्यक था उसे किया और अक्रूर को वापस बुलवा भेजा।

पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ।
विज्ञाताखिलचित्त ज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ५ ॥
ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ।
स्यमन्तको मणिः श्रीमान् विदितः पूर्वमेव नः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

पूजयित्वा—आदर करके; अभिभाष्य—सत्कार करके; एनम्—उसको (अक्रूर को); कथयित्वा—विचार-विमर्श करके; प्रियाः—मधुर; कथाः—कथाएँ; विज्ञात—पूर्णतया अवगत; अखिल—सारी बातों का; चित्त—(अक्रूर का) हृदय; ज्ञः—जानने वाले; स्मयमानः—हँसते हुए; उवाच ह—कहा; ननु—निश्चय ही; दान—दान के; पते—हे स्वामी; न्यस्तः—रखा गया; त्वयि—तुम्हारे संरक्षण में; आस्ते—है; शतधन्वना—शतधन्वा द्वारा; स्यमन्तकः मणिः—स्यमंतक मणि; श्री-मान्—ऐश्वर्यवान्; विदितः—ज्ञात; पूर्वम्—पहले ही; एव—निस्सन्देह; नः—हमारे द्वारा।

भगवान् कृष्ण ने अक्रूर का स्वागत-सत्कार किया, उनका गोपनीय तौर पर अभिवादन किया और उनसे मधुर शब्द कहे। तब हर बात जानने वाले होने के कारण भगवान्, जो कि अक्रूर के हृदय से भलीभाँति अवगत थे, हँसे और उनको सम्बोधित किया, ''हे दानपति, अवश्य ही वह ऐश्वर्यशाली स्यमन्तक मणि शतधन्वा तुम्हारे संरक्षण में छोड़ गया था और अब भी तुम्हारे पास है। असल में, हम इसे लगातार जानते रहे हैं।''

तात्पर्य : अक्रूर के साथ भगवान् कृष्ण का जो बर्ताव है उससे पुष्टि होती है कि वे (सचमुच) भगवान् के महान् भक्त हैं।

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ।
दायं निनीयापः पिण्डान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

सत्राजितः—सत्राजित के; अनपत्यत्वात्—पुत्ररहित होने से; गृह्णीयुः—लेना चाहिए; दुहितुः—उसकी पुत्री के; सुताः—पुत्रों को; दायम्—उत्तराधिकार; निनीय—अर्पित करके; आपः—जल; पिण्डान्—तथा पिंडदान; विमुच्य—ऋण चुका कर; ऋणम्—ऋण, कर्जा; च—तथा; शेषितम्—शेष।

''चूँकि सत्राजित के कोई पुत्र नहीं है, अतः उसकी पुत्री के पुत्र उसके उत्तराधिकारी होंगे। उन्हें ही श्राद्ध के निमित्त तर्पण तथा पिण्डदान करना चाहिए, अपने नाना का ऋण चुकता करना चाहिए और शेष धन अपने लिए रखना चाहिए।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने उत्तराधिकार से सम्बन्धित निम्नलिखित स्मृति आदेश उद्धृत किया है—*पत्नी दुहितरश्चैव पितरो भ्रातरस्तथा। तत्सुता गोत्रजा बन्धुः शिष्याः सब्रह्मचारिणः*—पहली उत्तराधिकारिणी पत्नी है, फिर (उसके मरने पर) पुत्रियाँ तब माता-पिता और फिर भाई और तब भाई के पुत्र, तब मरने वाले के ही गोत्र वाले पारिवारिक जन और अन्त में ब्रह्मचारी सहित शिष्यगण।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह कहते हैं कि चूँकि सत्राजित के कोई पुत्र न था और उसकी पत्नियाँ उसी के साथ मार डाली गई थीं और चूँकि उसकी पुत्री सत्यभामा को स्यमंतक मणि में कोई रुचि न

थी यद्यपि वह वैध उत्तराधिकारिणी थी इसलिए यह उसके पुत्रों की उचित सम्पत्ति थी।

श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में व्याख्या की है, ''इस कथन के द्वारा भगवान् कृष्ण ने संकेत किया कि सत्यभामा पहले से गर्भवती है और उसका पुत्र ही इस मणि का असली दावेदार होगा और वही इस मणि को अक्रूर से लेगा (यदि उन्होंने इसे छिपाने का प्रयत्न किया)।''

तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ।
किन्तु मामग्रजः सम्यङ्न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ८॥
दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह ।
अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ९॥

शब्दार्थ

तथा अपि—तो भी; दुर्धरः—धारण करना असम्भव; तु—लेकिन; अन्यैः—दूसरों के द्वारा; त्वयि—तुम्हारे पास; आस्ताम्—रहना चाहिए; सुव्रते—हे विश्वसनीय व्रतधारी; मणिः—मणि; किन्तु—केवल; मम्—मुझ पर; अग्र-जः—मेरे बड़े भाई; सम्यक्—पूरी तरह; न प्रत्येति—विश्वास करते हैं; मणिम् प्रति—मणि के सम्बन्ध में; दर्शयस्व—इसे दिखला दो; महा-भाग—हे परम भाग्यशाली; बन्धूनाम्—मेरे सम्बन्धियों को; शान्तिम्—शान्ति; आवह—लाओ; अव्युच्छिन्नाः—अविच्छिन्न; मखाः—यज्ञ; ते—तुम्हारे; अद्य—अब; वर्तन्ते—चल रहे हैं; रुक्म—सोने की; वेदयः—वेदियों वाले।

''तो भी, हे विश्वासपात्र अक्रूर, यह मणि तुम्हारे संरक्षण में रहना चाहिए क्योंकि अन्य कोई इसे सुरक्षित नहीं रख सकता। बस एक बार यह मणि दिखला दो क्योंकि मैंने इसके विषय में अपने अग्रज से जो कुछ कहा है वे उस पर पूरी तरह विश्वास नहीं करते। इस तरह हे परम भाग्यशाली, तुम मेरे सम्बन्धियों को शान्त कर सकोगे। [हर व्यक्ति जानता है कि मणि तुम्हारे पास है क्योंकि] तुम इस समय लगातार सोने की बनी वेदिकाओं में यज्ञ सम्पन्न कर रहे हो।''

तात्पर्य : यद्यपि शास्त्रीय विधि के अनुसार इस मणि पर सत्यभामा के पुत्रों का अधिकार था, तो भी कृष्ण ने उसे अक्रूर के संरक्षण में रहने देने का निश्चय किया क्योंकि वे मणि की सम्पत्ति से निरन्तर धार्मिक यज्ञ कर रहे थे। निस्सन्देह, सोने की वेदिकाओं पर यज्ञ करने की अक्रूर की क्षमता मणि की शक्ति का सूचक है।

एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ।
आदाय वाससाच्छन्नः ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४०॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सामभिः—समन्वयात्मक, सन्धिपूर्ण; आलब्धः—धिक्कारा हुआ; श्वफल्क-तनयः—श्वफल्क का पुत्र; मणिम्—स्यमन्तक मणि को; आदाय—लेकर; वाससा—अपने वस्त्र में; आच्छन्नः—छिपाया हुआ; ददौ—दे दिया; सूर्य—सूर्य के; सम—समान; प्रभम्—तेज।

इस तरह भगवान् कृष्ण के समन्वयात्मक शब्दों से लज्जित होकर श्वफल्क-पुत्र उस मणि को वहाँ से निकाल कर ले आया जहाँ उसने अपने वस्त्रों में छिपा रखा था और उसे भगवान् को दे दिया। यह चमकीला मणि सूर्य की तरह चमक रहा था।

तात्पर्य : इस अध्याय में हम यह देख सकते हैं कि किस तरह मूल्यवान मणि ने इतना उत्पात, हिंसा तथा कष्ट उत्पन्न किया। यह उन लोगों के लिए निश्चय ही अच्छा सबक है, जो बाधारहित आध्यात्मिक जीवन बिताने के इच्छुक हैं।

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ।
विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

स्यमन्तकम्—स्यमन्तक मणि को; दर्शयित्वा—दिखलाकर; ज्ञातिभ्यः—अपने सम्बन्धियों को; रजः—कल्मष; आत्मनः—अपने (झूठा थोपा हुआ); विमृज्य—पोंछ कर; मणिना—मणि से; भूयः—पुनः; तस्मै—उसको, अक्रूर को; प्रत्यर्पयत्—दे दिया; प्रभुः—भगवान् ने।

अपने सम्बन्धियों को स्यमन्तक मणि दिखला चुकने के बाद सर्वशक्तिमान भगवान् ने अपने विरुद्ध लगे झूठे आक्षेपों को दूर करते हुए उसे अक्रूर को लौटा दिया।

तात्पर्य : यह दूसरी बार है कि स्यमंतक मणि को लेकर भगवान् की ख्याति पर जो बट्टा लगा था उसे मणि के द्वारा ही दूर किया गया। निस्सन्देह भगवान् दूसरी बार वह मणि अपनी सच्चरित्रता सिद्ध करने के लिए द्वारका लाये। घटनाओं की यह विस्मयजनक शृंखला प्रदर्शित करती है कि जब भगवान् इस धरा पर अवतरित होते हैं, तो उनके ''समकक्षों'' में उनकी आलोचना करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। सारा भौतिक संसार छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति से दूषित है और इस अध्याय में भगवान् इसी अवाञ्छनीय गुण के स्वभाव को प्रदर्शित करते हैं।

यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णो-
वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ।
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा
दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो भी; तु—निस्सन्देह; एतत्—यह; भगवतः—भगवान् का; ईश्वरस्य—परम नियन्ता; विष्णोः—विष्णु का; वीर्य—पराक्रम से; आढ्यम्—समृद्ध; वृजिन—पापपूर्ण फल; हरम्—दूर करने वाला; सु-मङ्गलम्—अत्यन्त शुभ; च—तथा; आख्यानम्—कथानक; पठति—पढ़ता है; शृणोति—सुनता है; अनुस्मरेत्—स्मरण करता है; वा—अथवा; दुष्कीर्तिम्—अपकीर्ति; दुरितम्—तथा पाप को; अपोह्य—दूर करके; याति—प्राप्त करता है; शान्तिम्—शान्ति।

यह आख्यान, जो भगवान् विष्णु के पराक्रम के वर्णनों से युक्त है, पापपूर्ण फलों को दूर करता है और समस्त मंगल प्रदान करता है। जो कोई भी इसे पढ़ता, सुनता या स्मरण करता है, वह अपनी अपकीर्ति तथा पापों को भगा सकेगा और शान्ति प्राप्त करेगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''सत्राजित की हत्या और मणि की वापसी'' नामक सत्तावनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter अट्ठावन

श्रीकृष्ण का पाँच राजकुमारियों से विवाह

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण ने किस तरह कालिन्दी इत्यादि पाँच राजकुमारियों से विवाह किया और फिर पाण्डवों से मिलने इन्द्रप्रस्थ गये।

जब पाँचों पाण्डव अपना अज्ञातवास पूरा कर चुके तो भगवान् कृष्ण सात्यकि इत्यादि यदुओं के साथ उन्हें मिलने इन्द्रप्रस्थ गये। पाण्डवों ने भगवान् का सत्कार किया और बड़े ही आनन्द से उनका आलिंगन किया। पाण्डवों की नवविवाहिता पत्नी द्रौपदी लजाती हुई कृष्ण के पास आई और उसने उन्हें नमस्कार किया। तब पाण्डवों ने सात्यकि तथा भगवान् के अन्य संगियों को आसन प्रदान किया और समुचित रीति से स्वागत-सत्कार किया।

भगवान् कृष्ण महारानी कुन्ती से भेंट करने गये। उन्होंने उन्हें प्रणाम किया। उसके बाद दोनों ने एक-दूसरे से उनके कुटुम्बियों के बारे में पूछताछ की। कुन्तीदेवी ने अपने तथा अपने पुत्रों के ऊपर दुर्योधन द्वारा ढाई जाने वाली विविध विपत्तियों को बतलाया और कहा कि कृष्ण ही उनके एकमात्र रक्षक हैं। उन्होंने कहा, ''आप सारे ब्रह्माण्ड के शुभचिन्तक हैं और यद्यपि आप ''मेरा और पराया'' के मोह से मुक्त हैं, तो भी आप उन लोगों के हृदयों में वास करते हैं, जो आपका निरन्तर ध्यान करते हैं और हृदय के भीतर से ही उनके सारे कष्टों को नष्ट कर देते हैं।'' तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा,

''चूँकि हमने अनेक शुभ कार्य किये हैं केवल इसीलिए हम आपके चरणकमल देख पाने में समर्थ हो सके हैं, जिन्हें बड़े बड़े योगी भी नहीं प्राप्त कर पाते।'' राजा युधिष्ठिर से सम्मानित होते हुए श्रीकृष्ण अतिथि के रूप में कई महीनों तक सुखपूर्वक इन्द्रप्रस्थ में रहते रहे।

एक दिन कृष्ण तथा अर्जुन शिकार करने जंगल गये। यमुना नदी में स्नान करते हुए उन्होंने एक सुन्दर युवती देखी। कृष्ण के कहने पर अर्जुन उसके पास गये और उससे पूछा कि वह कौन है। उस सुन्दरी ने उत्तर दिया, ''मैं सूर्यपुत्री कालिन्दी हूँ। मैं भगवान् विष्णु को पति रूप में पाने की आशा से कठोर तपस्या करती रही हूँ। मैं किसी अन्य को पति रूप में स्वीकार नहीं करूँगी और जब तक वे मुझसे विवाह नहीं करते मैं यमुना में ही अपने पिता द्वारा बनवाये घर में रहूँगी।'' जब अर्जुन ने ये सारी बातें सर्वज्ञ कृष्ण को बतलाईं तो वे कालिन्दी को अपने रथ पर ले आये और तब तीनों व्यक्ति युधिष्ठिर के निवासस्थान में लौट गये।

बाद में पाण्डवों ने कृष्ण से अनुरोध किया कि वे उनके लिए एक नगर बनवा दें। उन्होंने देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा को भेजकर एक अत्यन्त आकर्षक नगरी तैयार करा दी। वहाँ अपने भक्तों के साथ कुछ काल तक रह कर भगवान् ने उन्हें तुष्ट किया। फिर अग्नि देवता को प्रसन्न करने के लिए कृष्ण ने अग्नि को खाण्डव वन देने की व्यवस्था की। कृष्ण ने अर्जुन से उस जंगल को जला डालने के लिए कहा और वे अर्जुन के साथ सारथी बन कर गए। अग्नि इस भेंट से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने अर्जुन को गाण्डीव धनुष, घोड़े, रथ, दो तूणीर तथा एक तरकस दिये। जब खाण्डव वन जल रहा था, तो अर्जुन ने मय नामक दानव को लपटों से बचाया। उसने भी बदले में अर्जुन के लिए एक शानदार महल तैयार किया। इसी महल में दुर्योधन को बाद में तालाब-तल के स्थान पर ठोस फर्श का भ्रम हुआ जिससे वह खूब गीला हुआ और परेशान हुआ।

इसके बाद कृष्ण ने अर्जुन तथा उनके अन्य सम्बन्धियों से विदा ली और अपने परिचरों सहित द्वारका लौट गये। वहाँ उन्होंने कालिन्दी से विवाह कर लिया। कुछ काल बाद वे अवन्तीपुर गये जहाँ अनेक राजाओं की उपस्थिति में उन्होंने अवन्तीराज की बहन मित्रविन्दा का अपहरण किया। वह उनके प्रति आकृष्ट थी।

अयोध्या में नग्नजित नाम का एक भक्त राजा था। उसकी कन्या अतीव सुन्दर एवं विवाह के योग्य

थी। उसका नाम सत्या या नाग्नजिती था। इस कन्या के सम्बन्धियों ने एक प्रतिज्ञा रखी थी कि जो भी व्यक्ति सात भयानक बैलों के समूह को वश में कर लेगा उसी के साथ उस कन्या का विवाह कर दिया जायेगा। जब कृष्ण ने इस राजकुमारी के विषय में सुना तो वे अपने साथ सैनिकों की एक विशाल टोली लेकर अयोध्या गये। राजा नग्नजित ने उनका सभी प्रकार से सत्कार किया और विविध भेंटों से उनकी हर्षपूर्वक पूजा की। जब सत्या ने कृष्ण को देखा तो वह तुरन्त उन्हें पति रूप में चाहने लगी। राजा नग्नजित अपनी पुत्री के मनोभाव जान गया तो उसने अपनी इच्छा के बारे में कृष्ण को अवगत कराते हुए प्रस्ताव रखा कि कृष्ण के साथ उसकी पुत्री का विवाह हो जाय। उसने कृष्ण से स्नेहपूर्वक कहा, ''अकेले आप ही मेरी पुत्री के उपयुक्त पति होंगे और यदि आप सातों बैलों को वश में कर लेंगे तो आप अवश्य ही उससे विवाह कर सकेंगे।''

तब कृष्ण सात पृथक्-पृथक् रूपों में प्रकट हुए और सातों बैलों को वश में कर लिया। राजा नग्नजित ने उन्हें यथोचित विधि से अपनी पुत्री समर्पित कर दी और साथ में प्रचुर उपहारों से युक्त पर्याप्त दहेज भी दिया। भगवान् ने सत्या को अपने रथ पर बैठाया और द्वारका के लिए चल पड़े। तभी बैलों से पराजित प्रतिद्वन्द्वी राजाओं ने भगवान् कृष्ण पर आक्रमण करना चाहा किन्तु अर्जुन ने उन सबों को पछाड़ दिया और कृष्ण नाग्नजिती के साथ द्वारका के लिए रवाना हो गये।

बाद में श्रीकृष्ण ने भद्रा को स्वयंवर उत्सव में से अपहरण करके उसके साथ विवाह किया। इसी तरह उन्होंने मद्र के राजा की पुत्री लक्ष्मणा के साथ भी विवाह किया।

श्रीशुक उवाच
एकदा पाण्डवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः ।
इन्द्रप्रस्थं गतः शृईमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एकदा—एक बार; पाण्डवान्—पाण्डु-पुत्रों को; द्रष्टुम्—देखने के लिए; प्रतीतान्—दृश्य; पुरुष-उत्तमः—भगवान्; इन्द्रप्रस्थम्—इन्द्रप्रस्थ, पाण्डवों की राजधानी; गतः—गये; श्री-मान्—समस्त ऐश्वर्य के स्वामी; युयुधान-आदिभिर्—युयुधान (सात्यकि) तथा अन्यों से; वृतः—घिर कर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एक बार परम ऐश्वर्यवान भगवान् पाण्डवों को देखने के लिए इन्द्रप्रस्थ गये जो पुनः जनता के बीच प्रकट हो चुके थे। भगवान् के साथ युयुधान तथा अन्य संगी थे।

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम को छोड़कर प्राय: हर व्यक्ति यही सोचता था कि पाण्डवों की मृत्यु दुर्योधन द्वारा लाक्षागृह में लगाई गई आग से हो चुकी है। चूँकि अब पाण्डव फिर से जनता के बीच प्रकट हो चुके थे, अत: कृष्ण उनसे भेंट करने गये।

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ।
उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥ २॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; तम्—उस; आगतम्—आया हुआ; पार्थाः—पृथा (कुन्ती) के पुत्र; मुकुन्दम्—कृष्ण को; अखिल—हर वस्तु के; ईश्वरम्—स्वामी; उत्तस्थुः—उठ खड़े हुए; युगपत्—एकसाथ; वीरः—वीरगण; प्राणाः—इन्द्रियाँ; मुख्यम्—मुख्य, प्राण को; इव—मानो; आगतम्—वापस आ गया।.

जब पाण्डवों ने देखा कि भगवान् मुकुन्द आए हैं, तो पृथा के वे वीर पुत्र एकसाथ उसी तरह उठ खड़े हुए जिस तरह इन्द्रियाँ प्राण के वापस आने पर सचेत हो उठती हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर प्रयुक्त उपमा अत्यन्त कवित्वमय है। जब कोई व्यक्ति बेहोश होता है, तो इन्द्रियाँ कार्य नहीं करतीं किन्तु जब शरीर में चेतना लौट आती है, तो सारी इन्द्रियों में तत्क्षण प्राण दौड़ जाता है और वे कार्य करने लगती हैं। इसी प्रकार अपने स्वामी श्रीकृष्ण का स्वागत करने के लिए सचेत होकर सारे पाण्डव तुरन्त उठ खड़े हुए।

परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः ।
सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ॥

शब्दार्थ

परिष्वज्य—आलिंगन करके; अच्युतम्—कृष्ण को; वीराः—उन वीरों ने; अङ्ग—उनके शरीर के; सङ्ग—स्पर्श से; हत—विनष्ट; एनसः—उनके सारे पापकर्म; स-अनुराग—स्नेहिल; स्मितम्—हँसी के साथ; वक्त्रम्—मुखमंडल को; वीक्ष्य—देखकर; तस्य—उसका; मुदम्—हर्ष; ययुः—अनुभव किया।.

इन वीरों ने भगवान् अच्युत का आलिंगन किया और उनके शरीर के स्पर्श से उन सबों के पाप दूर हो गये। उनके स्नेहिल, हँसी से युक्त मुखमण्डल को देख कर वे सब हर्ष से अभिभूत हो गये।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि चूँकि पाण्डव कभी भी पापयुक्त नहीं थे अत: *एनस:* शब्द कृष्ण के वियोग से उत्पन्न पीड़ा का द्योतक है। अब वही दुख भगवान् के आने से दूर हो गया था।

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥ ४॥

शब्दार्थ

युधिष्ठिरस्य भीमस्य—युधिष्ठिर तथा भीम के; कृत्वा—करके; पाद—पाँवों का; अभिवन्दनम्—नमस्कार; फाल्गुनम्—अर्जुन को; परिरभ्य—जोर से आलिंगन करके; अथ—तब; यमाभ्याम्—जुड़वा भाइयों, नकुल तथा सहदेव द्वारा; च—तथा; अभिवन्दितः—सादर सत्कार किये जाकर।

युधिष्ठिर तथा भीम के चरणों पर सादर नमस्कार करने तथा अर्जुन का प्रगाढ़ आलिंगन करने के बाद उन्होंने नकुल तथा सहदेव जुड़वाँ भाइयों का नमस्कार स्वीकार किया।

तात्पर्य : बाहर से कृष्ण पाण्डवों के ममेरे भाई थे और उनका सम्बन्ध ममेरे-फुफेरे भाइयों जैसा था। चूँकि युधिष्ठिर तथा भीम कृष्ण से बड़े थे अत: भगवान् ने उनके चरणों पर नमन किया किन्तु अपने समकक्ष अर्जुन का आलिंगन किया और छोटे भाइयों नकुल तथा सहदेव का नमस्कार स्वीकार किया। कभी कभी अनुभवहीन भक्तगण सोचते हैं कि कृष्णभावनामृत में बड़े भाई के सामने झुकना या उसका सम्मान करना पाप है। किन्तु कृष्ण के उदाहरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि कृष्णभावनामृत में ज्येष्ठ भ्राता का आदर करना पापमय नहीं है।

परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता ।
नवोढा व्रीडिता किञ्चिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

परम—उच्च; आसने—आसन पर; आसीनम्—बैठे हुए; कृष्णा—द्रौपदी ने; कृष्णम्—कृष्ण को; अनिन्दिता—दोषरहित; नव—हाल ही की; ऊढा—विवाहिता; व्रीडिता—लजीली; किञ्चित्—कुछ कुछ; शनैः—धीरे धीरे; एत्य—पास आकर; अभ्यवन्दत—नमस्कार किया।

पाण्डवों की नवविवाहिता पत्नी, जो कि दोषरहित थी, धीरे धीरे तथा कुछ कुछ लजाते हुए भगवान् कृष्ण के पास आई, जो उस समय उच्च आसन पर बैठे थे और उन्हें नमस्कार किया।

तात्पर्य : श्रीमती द्रौपदी कृष्ण के प्रति इतनी अनुरक्त थीं कि उनका नाम ही कृष्णा था, जो कृष्ण नाम का स्त्रीलिंग रूप है। इसी तरह अर्जुन भी कृष्ण के प्रति अनुराग के कारण कृष्ण कहलाते थे। इसी प्रकार से आधुनिक कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तगण प्राय: ''कृष्ण'' कहलाते हैं। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण के भक्तों को उनके नाम से पुकारने की प्रथा बहुत पुरानी है।

**तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः ।
निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत ॥ ६ ॥**

शब्दार्थ

तथा एव—इसी तरह; सात्यकिः—सात्यकि; पार्थैः—पृथा के पुत्रों द्वारा; पूजितः—पूजित; च—तथा; अभिवन्दितः—स्वागत किया गया; निषसाद—बैठ गया; आसने—आसन पर; अन्ये—अन्य लोग; च—तथा; पूजिताः—पूजित; पर्युपासत—चारों ओर बैठ गये।

सात्यकि ने भी पाण्डवों से पूजा तथा स्वागत प्राप्त करके सम्मानजनक आसन ग्रहण किया और भगवान् के अन्य संगी भी उचित सम्मान पाकर विविध स्थानों पर बैठ गये।

**पृथाम्समागत्य कृताभिवादन-
स्तयातिहार्दार्द्रदृशाभिरम्भितः ।
आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां
पितृष्वसारम्परिपृष्टबान्धवः ॥ ७ ॥**

शब्दार्थ

पृथाम्—महारानी कुन्ती तक; समागत्य—जाकर; कृत—करके; अभिवादनः—अपना नमस्कार; तया—उनके द्वारा; अति—अत्यन्त; हार्द—स्नेहपूर्वक; अर्द्र—नम; दृशा—जिनकी आँखें; अभिरम्भितः—आलिंगन किया; आपृष्टवान्—उन्होंने पूछा; ताम्—उनसे; कुशलम्—उनकी कुशलता के बारे में; सह—साथ; स्नुषाम्—अपनी पुत्रवधू द्रौपदी के साथ; पितृ—अपने पिता वसुदेव की; स्वसारम्—बहिन; परिपृष्ट—विस्तार से पूछा; बान्धवः—उनके सम्बन्धियों के (द्वारका में रह रहे) बारे में।

तब भगवान् अपनी बुआ महारानी कुन्ती को देखने गये। वे उनके समक्ष झुके और उन्होंने उनका आलिंगन किया, तो अति स्नेह से उनकी आँखें नम हो गईं। भगवान् कृष्ण ने उनसे तथा उनकी पुत्रवधू द्रौपदी से उनकी कुशलता पूछी और उन्होंने भगवान् से उनके सम्बन्धियों (द्वारका के) के विषय में पूछा।

तात्पर्य : विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह कल्पना करते हैं कि चूँकि भगवान् कृष्ण आसन पर बैठे थे अतएव उन्होंने अपनी बुआ कुन्ती को अतीव उत्सुकतापूर्वक उनको मिलने के लिए आते देखा। तब वे तुरन्त उठ खड़े हुए, तेजी से उनके पास गये और उन्हें नमस्कार किया। उनकी आँखें अत्यधिक प्रेम के कारण आर्द्र हो उठीं, उन्होंने उनका आलिंगन किया और उनका सिर सूँघा।

**तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना ।
स्मरन्ती तान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥**

शब्दार्थ

तम्—उनसे; आह—कहा; प्रेम—प्रेम का; वैक्लव्य—शोक के कारण; रुद्ध—अवरुद्ध; कण्ठा—कण्ठ वाली; अश्रु—आँसुओं से (पूरित); लोचना—आँखों वाली; स्मरन्ती—स्मरण करती; तान्—उन; बहून्—अनेक; क्लेशान्—क्लेशों को; क्लेश—क्लेश; अपाय—दूर करने के लिए; आत्म—स्वयं; दर्शनम्—दर्शन देने वाले।

महारानी कुन्ती प्रेम से इतनी अभिभूत हो गयी कि उनका गला रुँध गया और उनकी आँखें आँसुओं से भर गईं। उन्होंने उन तमाम कष्टों का स्मरण किया जिसे उन्होंने तथा उनके पुत्रों ने सहा था। इस तरह उन्होंने भगवान् कृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहा जो अपने भक्तों के समक्ष उनका कष्ट भगाने के लिए प्रकट होते हैं।

तदैव कुशलं नोऽभूत्सनाथास्ते कृता वयम् ।
ज्ञतीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; एव—केवल; कुशलम्—कुशल-क्षेम; नः—हमारी; अभूत्—हो गई; स—सहित; नाथाः—रक्षक; ते—तुम्हारे द्वारा; कृताः—निर्मित; वयम्—हम; ज्ञातीन्—तुम्हारे सम्बन्धी; नः—हमको; स्मरता—जिन्होंने स्मरण किया; कृष्ण—हे कृष्ण; भ्राता—भाई (अक्रूर); मे—मेरा; प्रेषितः—भेजा गया; त्वया—तुम्हारे द्वारा।

[महारानी कुन्ती ने कहा] : हे कृष्ण, हमारी कुशल-मंगल तो तभी आश्वस्त हो गई जब आपने अपने सम्बन्धियों का अर्थात् हमारा स्मरण किया और मेरे भाई (अक्रूर को) को हमारे पास भेज कर हमें अपना संरक्षण प्रदान किया।

न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ।
तथापि स्मरतां शश्वत्क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः ॥ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—तुम्हारे लिए; अस्ति—है; स्व—अपना; पर—तथा दूसरों का; भ्रान्तिः—भ्रम; विश्वस्य—ब्रह्माण्ड का; सुहृत्—शुभचिन्तक; आत्मनः—तथा आत्मा के लिए; तथा अपि—तो भी; स्मरताम्—स्मरण करने वाले के; शश्वत्—निरन्तर; क्लेशान्—क्लेशों को; हंसि—नष्ट करते हो; हृदि—हृदय में; स्थितः—स्थित।

आप जो कि ब्रह्माण्ड के शुभचिन्तक मित्र एवं परमात्मा हैं उनके लिए ''अपना'' तथा ''पराया'' का कोई मोह नहीं रहता। तो भी, सबों के हृदयों में निवास करने वाले आप उनके कष्टों को समूल नष्ट कर देते हैं, जो निरन्तर आपका स्मरण करते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर बुद्धिमान कुन्ती यह इंगित करती हैं कि यद्यपि भगवान् कृष्ण उनके साथ सम्बन्धी जैसा स्नेहपूर्ण बर्ताव कर रहे हैं किन्तु वे ब्रह्माण्ड के शुभचिन्तक आत्मा के रूप में अपने पद के साथ कोई समझौता नहीं कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् पक्षपात नहीं करते। जैसाकि वे *भगवद्गीता* (९.२९) में कहते हैं—*समोऽहं सर्वभूतेषु*—मैं सबों के लिए समान हूँ। अतः जब भगवान् सारी आत्माओं के साथ प्रतिदान करते हैं, तो यह स्वाभाविक है कि जो उनसे उत्कटता से प्रेम करते हैं,

वे विशेष ध्यानआकर्षण कर लेते हैं क्योंकि वे उन्हीं को चाहते हैं, अन्य किसी को नहीं।

युधिष्ठिर उवाच
किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर ।
योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

युधिष्ठिरः उवाच—युधिष्ठिर ने कहा; किम्—क्या; नः—हमारे द्वारा; आचरितम्—किया गया; श्रेयः—पुण्य-कर्म; न वेद—नहीं जानता; अहम्—मैं; अधीश्वर—हे परम नियन्ता; योग—योग के; ईश्वराणाम्—स्वामियों द्वारा; दुर्दर्शः—विरले ही दिखने वाला; यत्—वह; नः—हमारे द्वारा; दृष्टः—देखा हुआ; कु-मेधसम्—अज्ञानियों द्वारा।

राजा युधिष्ठिर ने कहा : हे परम नियन्ता, मैं नहीं जानता कि हम मूर्खों ने कौन से पुण्य-कर्म किये हैं कि आपका दर्शन पा रहे हैं जिसे बड़े बड़े विरले योगेश्वर ही कर पाते हैं।

इति वै वार्षिकान्मासान्राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ।
जनयन्नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; वै—निस्सन्देह; वार्षिकान्—वर्षा ऋतु के; मासान्—महीने; राज्ञा—राजा द्वारा; सः—वह; अभ्यर्थितः—अनुरोध किया गया; सुखम्—सुखपूर्वक; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; नयन—आँखों के लिए; आनन्दम्—आनन्द; इन्द्रप्रस्थ-ओकसाम्—इन्द्रप्रस्थ के निवासियों के; विभुः—सर्वशक्तिमान प्रभु।

जब राजा ने भगवान् कृष्ण को सबों के साथ रहने का अनुरोध किया, तो वर्षा ऋतु के महीनों में नगर के निवासियों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करते हुए भगवान् सुखपूर्वक इन्द्रप्रस्थ में रहते रहे।

तात्पर्य : *भागवत* के पाठकों को चाहिए कि यदि सम्भव हो तो संस्कृत श्लोकों का सही सही उच्चारण करने का प्रयास करें क्योंकि ये अत्यन्त काव्यमय हैं।

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम् ।
गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥ १ ॥
साकं कृष्णेन सन्नद्धो विहर्तुं विपिनं महत् ।
बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; रथम्—रथ में; आरुह्य—सवार होकर; विजयः—अर्जुन; वानर—बन्दर (हनुमान); ध्वजम्—जिसकी ध्वजा में; गाण्डीवम्—अपना गाण्डीव; धनुः—धनुष; आदाय—लेकर; तूणौ—दो तरकस; च—तथा; अक्षय—न चुकने वाले; सायकौ—बाण; साकम्—साथ; कृष्णेन—कृष्ण के; सन्नद्धः—कवच पहन कर; विहर्तुम्—आखेट करने; विपिनम्—जंगल

में; महत्—विशाल; बहु—अनेक; व्याल-मृग—शिकारी पशु; आकीर्णम्—भरे हुए; प्राविशत्—घुसा; पर—शत्रु; वीर—वीरों का; हा—मारने वाला।.

एक बार बलशाली शत्रुओं का हन्ता अर्जुन अपना कवच पहन कर, हनुमान से चिन्हित ध्वजा वाले अपने रथ पर सवार होकर, अपना धनुष तथा दो अक्षय तरकस लेकर, भगवान् कृष्ण के साथ एक विशाल जंगल में शिकार खेलने गया जो हिंस्र पशुओं से परिपूर्ण था।

तात्पर्य : यह घटना अवश्य ही खाण्डव वन के दहन के बाद की होगी क्योंकि अब अर्जुन गाण्डीव धनुष तथा उन अन्य हथियारों का प्रयोग कर रहा था, जो उसे उपर्युक्त घटना के अवसर पर प्राप्त हुए थे।

तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्शूकरान्महिषान्रुरून् ।
शरभान्गवयान्खड्गान्हरिणान्शशशल्लकान् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अविध्यत्—बींध दिया; शरैः—बाणों से; व्याघ्रान्—बाघों को; शूकरान्—सुअरों को; महिषान्—जंगली भैसों को; रुरून्—एक किस्म के हिरनों को; शरभान्—हिरनों को; गवयान्—नील-गायों को; खड्गान्—गैंडों को; हरिणान्—श्याम मृगों को; शश—खरगोशों; शल्लकान्—तथा साहियों को।.

अर्जुन ने अपने बाणों से उस जंगल के बाघों, सुअरों, जंगली भैसों, रुरूओं, शरभों, गवयों, गैडों, श्याम हिरनों, खरगोशों तथा साहियों को बेध डाला।

तान्निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते ।
तृट्परीतः परिश्रान्तो बिभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; निन्युः—ले गये; किङ्कराः—नौकर; राज्ञे—राजा तक; मेध्यान्—यज्ञ में बलि के योग्य; पर्वणि—विशेष अवसर (पर्व) पर; उपागते—पास आ रहे; तृट्—प्यास से; परीतः—हारे; परिश्रान्तः—थके; बिभत्सुः—अर्जुन; यमुनाम्—यमुना नदी के तट पर; अगात्—गया।.

नौकरों का एक दल मारे गये उन पशुओं को राजा युधिष्ठिर के पास ले गया जो किसी विशेष पर्व पर यज्ञ में अर्पित करने के योग्य थे। तत्पश्चात् प्यासे तथा थके होने से अर्जुन यमुना नदी के तट पर गया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद प्रायः कहा करते थे कि क्षत्रिय या योद्धा कई कारणों से जैसे अपने युद्ध-कौशल का अभ्यास करने, खूँखार जानवरों की जो मनुष्य के लिए संकट का कारण थे, जनसंख्या नियंत्रित रखने तथा वैदिक यज्ञों के लिए पशु प्रदान करने के उद्देश्य से जंगल में शिकार करते थे। यज्ञों

की शक्ति से मारे गये पशुओं को नवीन शरीर मिल जाते थे। चूँकि पुरोहितों में अब वह शक्ति नहीं रह गई है, अतः यज्ञ का अर्थ होगा केवल पशु-वध; इसलिए यज्ञ वर्जित हैं।

श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में हम देखते हैं कि नारदमुनि ने प्राचीनबर्हिषत् नामक राजा को वैध शिकार के इस नियम का दुरुपयोग करने के लिए बुरी तरह से प्रताड़ित किया है। वस्तुतः यह राजा आधुनिक शिकारियों जैसा बन गया था, जो एक तथाकथित शौक के रूप में पशुओं की निर्मम हत्या करते हैं।

तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ।
कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; उपस्पृश्य—नहाकर; विशदम्—स्वच्छ; पीत्वा—पीकर; वारि—जल; महा-रथौ—महारथी योद्धा; कृष्णौ—दोनों कृष्णों ने; ददृशतुः—देखा; कन्याम्—कन्या को; चरन्तीम्—विचरण करती; चारु-दर्शनाम्—देखने में सुन्दर।

दोनों कृष्णों ने वहाँ स्नान करने के बाद नदी का स्वच्छ जल पिया। तब दोनों महारथियों ने पास ही टहलती एक आकर्षक युवती को देखा।

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ।
पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

ताम्—उसके; आसाद्य—पास पहुँचकर; वरा—उत्तम; आरोहाम्—नितम्ब वाली; सु—सुन्दर; द्विजाम्—दाँतों वाली; रुचिर—आकर्षक; आननाम्—मुख वाली; पप्रच्छ—पूछा; प्रेषितः—भेजा गया; सख्या—मित्र श्रीकृष्ण द्वारा; फाल्गुनः—अर्जुन ने; प्रमदा—स्त्री से; उत्तमाम्—असाधारण।

अपने मित्र द्वारा भेजे जाने पर अर्जुन उस असाधारण युवती के पास गये। वह सुन्दर नितम्ब, उत्तम दाँत तथा आकर्षक मुख वाली थी। उन्होंने उससे इस प्रकार पूछा।

तात्पर्य : कृष्ण चाहते थे कि अर्जुन जाकर इस युवती की प्रगाढ़ भक्ति का पता लगाये। इसीलिए उन्होंने प्रारम्भिक पूछताछ करने के लिए आग्रह किया।

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतो वा किं चिकीर्षसि ।
मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥ १९॥

शब्दार्थ

का—कौन; त्वम्—तुम; कस्य—किसकी; असि—हो; सु-श्रोणि—हे सुन्दर कटि वाली; कुतः—कहाँ से; वा—अथवा; किम्—क्या; चिकीर्षसि—करना चाहती हो; मन्ये—मैं सोचता हूँ; त्वाम्—तुम; पतिम्—पति की; इच्छन्तीम्—खोज करती; सर्वम्—प्रत्येक वस्तु; कथय—कहो; शोभने—हे सुन्दरी।

[अर्जुन ने कहा] : हे सुन्दर कटि वाली, तुम कौन हो? तुम किसकी पुत्री हो और तुम कहाँ से आई हो? तुम यहाँ क्या कर रही हो? मैं सोच रहा हूँ कि तुम पति की आकांक्षी हो। हे सुन्दरी, मुझसे प्रत्येक बात बतला दो।

श्रीकालिन्द्युवाच

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ।
विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थितः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-कालिन्दी उवाच—श्री कालिन्दी ने कहा; अहम्—मैं; देवस्य—देवता की; सवितुः—सूर्य; दुहिता—पुत्री; पतिम्—पति रूप में; इच्छती—चाहती हुई; विष्णुम्—भगवान् विष्णु को; वरेण्यम्—सर्वश्रेष्ठ रुचि; वर-दम्—वर देने वाले; तपः—तपस्या में; परमम्—कठोर; आस्थितः—लगी हुई।

श्री कालिन्दी ने कहा : मैं सूर्यदेव की पुत्री हूँ। मैं परम सुन्दर तथा वरदानी भगवान् विष्णु को अपने पति के रूप में चाहती हूँ और इसीलिए मैं कठोर तपस्या कर रही हूँ।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं, श्रीमती कालिन्दी ने ठीक ही समझा था कि समस्त वरों के स्रोत होने से भगवान् विष्णु परम पति हैं और वे अपनी पत्नी की सारी इच्छाएँ पूरी कर सकते हैं।

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ।
तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अन्यम्—दूसरा; पतिम्—पति; वृणे—वरण करूँगी; वीर—हे वीर; तम्—उसके; ऋते—अतिरिक्त; श्री—लक्ष्मी का; निकेतनम्—धाम; तुष्यताम्—प्रसन्न हों; मे—मुझसे; सः—वह; भगवान्—भगवान्; मुकुन्दः—कृष्ण; अनाथ—स्वामीविहीन का; संश्रयः—आश्रय।

मैं उनको जो लक्ष्मी देवी के धाम हैं, छोड़कर और कोई पति स्वीकार नहीं करूँगी। वे भगवान् मुकुन्द, जो कि अनाथों के आश्रय हैं, मुझ पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : सुन्दर कालिन्दी ने यहाँ पर कुछ सन्देह प्रकट किया है। वे बल देती हैं कि उन्हें भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त कोई पति स्वीकार नहीं है। वे यह कहती हैं कि वे अनाथों के आश्रय हैं। चूँकि वे कोई अन्य आश्रय स्वीकार नहीं करेंगी इसलिए कृष्ण को चाहिए कि उन्हें शरण दें। यही नहीं, वे

कहती हैं—*तुष्यतां मे स भगवान्*—वे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों। यही उनकी विनती है।

जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं, यद्यपि कालिन्दी एकान्त स्थान में रह रही आश्रयहीन युवती है, तो भी वह भयभीत नहीं है। भगवान् कृष्ण के प्रति ऐसी गूढ़ श्रद्धा और भक्ति आदर्श कृष्णभावनामृत है और श्रीमती कालिन्दी की इच्छा शीघ्र ही पूरी हो जाएगी।

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ।
निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

कालिन्दी—कालिन्दी; इति—इस प्रकार; समाख्याता—नाम वाली; वसामि—रह रही हूँ; यमुना-जले—यमुना के जल में; निर्मिते—निर्मित; भवने—भवन में; पित्रा—अपने पिता द्वारा; यावत्—जब तक; अच्युत—भगवान् कृष्ण के; दर्शनम्—दर्शन।

मेरा नाम कालिन्दी है और मैं अपने पिता द्वारा यमुना जल के भीतर निर्मित भवन में रहती हूँ। मैं भगवान् अच्युत से भेंट होने तक यहीं रुकूँगी।

तात्पर्य : चूँकि कालिन्दी साक्षात् सूर्यदेव की प्रिय पुत्री थीं अतएव किसमें साहस था कि उन्हें छेड़ता? इस घटना से हम महात्माओं द्वारा विगत युगों में सम्पन्न सुन्दर आध्यात्मिक विधियों की सराहना कर सकते हैं। सांसारिक "प्रेम कार्यकलापों" के विपरीत, सुन्दर कालिन्दी का भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम शुद्ध और पूर्ण था। यद्यपि कालिन्दी अभी कोमल युवती थीं किन्तु कृष्ण से विवाह करने का संकल्प इतना प्रबल था कि उन्होंने अपने पिता से कह कर यमुना नदी के भीतर एक मकान बनवाने के लिए व्यवस्था की जहाँ वे तब तक कठिन तपस्या कर सकें जब तक उनका प्रियतम नहीं आ जाता।

तथावदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ।
रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तथा—इस प्रकार; अवदत्—कहा; गुडाकेशः—अर्जुन ने; वासुदेवाय—भगवान् कृष्ण से; सः—वह; अपि—तथा; ताम्—उसको; रथम्—रथ पर; आरोप्य—चढ़ा कर; तत्—इन सबसे; विद्वान्—अवगत; धर्म-राजम्—युधिष्ठिर के पास; उपागमत्—गया।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : अर्जुन ने ये सारी बातें वासुदेव से बतलाईं जो पहले से इनसे अवगत थे। तब भगवान् ने कालिन्दी को अपने रथ पर चढ़ा लिया और राजा युधिष्ठिर को

मिलने वापस चले गये।

यदैव कृष्ण: सन्दिष्ट: पार्थानां परमाद्भुतम् ।
कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४॥

शब्दार्थ

यदा एव—जब; कृष्ण:—कृष्ण; सन्दिष्ट:—प्रार्थना करने पर; पार्थानाम्—पृथा के पुत्रों के लिए; परम—अतीव; अद्भुतम्—अद्भुत; कारयाम् आस—बनवाया था; नगरम्—नगर; विचित्रम्—विविधता से युक्त; विश्वकर्मणा—देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा।

[एक पुरानी घटना बतलाते हुए शुकदेव गोस्वामी ने कहा]: पाण्डवों के अनुरोध पर भगवान् कृष्ण ने एक अत्यन्त अद्भुत एवं विचित्र नगरी का निर्माण विश्वकर्मा से कराया था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती उल्लेख करते हैं कि यह नगरी खाण्डव वन के जलने के पूर्व निर्मित हुई थी अत: कालिन्दी को पत्नी बनाने के पूर्व यह घटना घटी थी।

भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया ।
अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथि: ॥ २५॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; तत्र—वहाँ; निवसन्—रहते हुए; स्वानाम्—अपने (भक्तों) के लिए; प्रिय—आनन्द; चिकीर्षया—देने की इच्छा से; अग्नये—अग्नि को; खाण्डवम्—खाण्डव वन; दातुम्—देने के लिए; अर्जुनस्य—अर्जुन के; आस—बने; सारथि:—रथचालक।

भगवान् अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए उस नगरी में कुछ समय तक रहते रहे। एक अवसर पर श्रीकृष्ण ने अग्नि को दान के रूप में खाण्डव वन देना चाहा अत: वे अर्जुन के सारथी बने।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने पाण्डवों के साथ कृष्ण के रुकने की अवधि में घटी घटनाओं का अनुक्रम बतलाया है। वे कहते हैं कि पहले खाण्डव वन जलाया गया, फिर कालिन्दी प्राप्त हुई, तब नगरी बनी और तब जाकर पाण्डवों को सभा-भवन भेंट किया गया था।

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयान्श्वेतान्रथं नृप ।
अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभि: ॥ २६॥

शब्दार्थ

सः—उस; अग्निः—अग्निदेव ने; तुष्टः—प्रसन्न होकर; धनुः—धनुष; अदात्—दिया; हयान्—घोड़ों को; श्वेतान्—सफेद; रथम्—रथ; नृप—हे राजा (परीक्षित); अर्जुनाय—अर्जुन को; अक्षयौ—न समाप्त होने वाले; तूणौ—दो तरकस; वर्म—कवच; च—तथा; अभेद्यम्—न टूटने वाला; अस्त्रिभिः—हथियार चलाने वालों के द्वारा।

हे राजन्, अग्नि ने प्रसन्न होकर अर्जुन को एक धनुष, श्वेत घोड़ों की एक जोड़ी, एक रथ, कभी रिक्त न होने वाले दो तरकस दिये तथा एक कवच दिया जिसे कोई योद्धा हथियारों से भेद नहीं सकता था।

मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ।
यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥ २७॥

शब्दार्थ

मयः—मय नामक दानव ने; च—तथा; मोचितः—मुक्त हुआ; वह्नेः—अग्नि से; सभाम्—सभाभवन; सख्ये—अपने मित्र, अर्जुन को; उपाहरत्—भेंट किया; यस्मिन्—जिसमें; दुर्योधनस्य—दुर्योधन का; आसीत्—था; जल—जल; स्थल—तथा भूमि के; दृशि—देखने में; भ्रमः—भ्रम।

जब मय दानव अपने मित्र अर्जुन द्वारा अग्नि से बचा लिया गया तो उसने उन्हें एक सभाभवन भेंट किया जिसमें आगे चलकर दुर्योधन को जल के स्थान पर ठोस फर्श का भ्रम होता है।

स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ।
आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमखैर्वृतः ॥ २८॥

शब्दार्थ

सः—वह, कृष्ण; तेन—उसके (अर्जुन के) द्वारा; समनुज्ञातः—विदा होकर; सु-हृद्भिः—शुभचिन्तकों द्वारा; च—तथा; अनुमोदितः—अनुमति दिया गया; आययौ—गया; द्वारकाम्—द्वारका; भूयः—फिर; सात्यकि-प्रमुखैः—सात्यकि इत्यादि के; वृतः—साथ।

तब अर्जुन तथा अन्य शुभचिन्तक संबन्धियों एवं मित्रों से विदा लेकर भगवान् कृष्ण सात्यकि तथा अपने अन्य परिचरों समेत द्वारका लौट गये।

अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते ।
वितन्वन्परमानन्दं स्वानां परममङ्गलः ॥ २९॥

शब्दार्थ

अथ—तब; उपयेमे—विवाह किया; कालिन्दीम्—कालिन्दी से; सु—अत्यन्त; पुण्य—शुभ; ऋतु—ऋतु; ऋक्षे—तथा चान्द्र लग्न; ऊर्जिते—जिस दिन सूर्य तथा अन्य ग्रहों की स्थिति उत्तम थी; वितन्वन्—फैलाते हुए; परम—परम; आनन्दम्—आनन्द; स्वानाम्—अपने भक्तों के लिए; परम—अत्यन्त; मङ्गलः—शुभ।

तब परम ऐश्वर्यशाली भगवान् ने कालिन्दी के साथ उस दिन विवाह कर लिया जिस दिन

ऋतु, चन्द्र लग्न एवं सूर्य तथा अन्य ग्रहों की स्थिति इत्यादि सभी शुभ थे। इस तरह उन्होंने अपने भक्तों को परम आनन्द प्रदान किया।

विन्द्यानुविन्द्यावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ ।
स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥ ० ॥

शब्दार्थ

विन्द्य-अनुविन्द्यौ—विन्द्य तथा अनुविन्द्य; आवन्त्यौ—अवन्ती के दो राजा; दुर्योधन-वश-अनुगौ—दुर्योधन के अधीन; स्वयम्वरे—स्वयम्वर में; स्व—अपनी; भगिनीम्—बहन को; कृष्णे—कृष्ण को; सक्ताम्—जो आसक्त थी; न्यषेधताम्—रोक दिया।

विन्द्य तथा अनुविन्द्य जो अवन्ती के संयुक्त राजा थे, दुर्योधन के अनुयायी थे। जब स्वयंवर उत्सव में पति चुनने का अवसर आया तो उन्होंने अपनी बहिन (मित्रविन्दा) को कृष्ण का वरण करने से मना किया यद्यपि वह उनके प्रति अत्यधिक आसक्त थी।

तात्पर्य : कुरुओं तथा पाण्डवों में शत्रुभाव इतना प्रबल था कि मित्रविन्दा के भाइयों ने दुर्योधन से मित्रता के कारण उसे कृष्ण को अपना पति चुनने से मना कर दिया।

राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः ।
प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

राजाधिदेव्याः—राजाधिदेवी महारानी की; तनयाम्—पुत्री; मित्रविन्दाम्—मित्रविन्दा को; पितृ—पिता की; स्वसुः—बहन का; प्रसह्य—बलपूर्वक; हृतवान्—हरण कर लिया; कृष्णः—कृष्ण ने; राजन्—हे राजा (परीक्षित); राज्ञाम्—राजाओं के; प्रपश्यताम्—देखते हुए।

हे राजन्, अपनी बुआ राजाधिदेवी की पुत्री मित्रविन्दा को प्रतिद्वन्द्वी राजाओं की आँखों के सामने से भगवान् कृष्ण बलपूर्वक उठा ले गये।

नग्नजिन्नाम कौशल्य आसीद्राजातिधार्मिकः ।
तस्य सत्याभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥ २ ॥

शब्दार्थ

नग्नजित्—नग्नजित; नाम—नामक; कौशल्यः—कौशल्य (अयोध्या) का राजा; आसीत्—था; राजा—राजा; अति—अत्यन्त; धार्मिकः—धार्मिक; तस्य—उसकी; सत्या—सत्या; अभवत्—थी; कन्या—पुत्री; देवी—सुन्दर; नाग्नजिती—नाग्नजिती नाम भी था; नृप—हे राजा।

हे राजन्, कौशल्य के अत्यन्त धार्मिक राजा नग्नजित के एक सुन्दर कन्या थी जिसका नाम सत्या अथवा नाग्नजिती था।

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्तगोवृषान् ।
तीक्ष्णशृङ्गान्सुदुर्धर्षान्वीर्यगन्धासहान्खलान् ॥ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ताम्—उसको; शेकुः—समर्थ थे; नृपाः—राजागण; वोढुम्—ब्याहने के लिए; अजित्वा—हराये बिना; सप्त—सात; गो-वृषान्—बैलों को; तीक्ष्ण—तेज; शृङ्गान्—सींग वाले; सु—अत्यन्त; दुर्धर्षान्—वश में न आने वाले; वीर्य—वीरों की; गन्ध—महक; असहान्—सहन न करते हुए; खलान्—दुष्ट।

जो राजा ब्याहने के लिए आते थे उन्हें तब तक विवाह नहीं करने दिया जाता था जब तक वे तेज सींगों वाले सात बैलों को वश में न कर लें। ये बैल अत्यन्त दुष्ट तथा वश में न आने वाले थे और वे वीरों की गंध भी सहन नहीं कर सकते थे।

तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्वतां पतिः ।
जगाम कौशल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥ ४॥

शब्दार्थ

ताम्—उसके विषय में; श्रुत्वा—सुनकर; वृष—बैल; जित्—जीतने वाला; लभ्याम्—प्राप्तनीय; भगवान्—भगवान्; सात्वताम्—वैष्णवों के; पतिः—स्वामी; जगाम—गये; कौशल्य-पुरम्—कौशल्य राज्य की राजधानी में; सैन्येन—सेना से; महता—विशाल; वृतः—घिर कर।

जब वैष्णवों के स्वामी भगवान् ने उस राजकुमारी के बारे में सुना जो बैलों के विजेता द्वारा जीती जानी थी, तो वे विशाल सेना के साथ कौशल्य की राजधानी गये।

स कोशलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ।
अर्हणेनापि गुरुणा पूजयन्प्रतिनन्दितः ॥ ५॥

शब्दार्थ

सः—उस; कोशल-पतिः—कोशल के स्वामी ने; प्रीतः—प्रसन्न; प्रत्युत्थान—खड़े होकर; आसन—आसन; आदिभिः—इत्यादि प्रदान करके; अर्हणेन—तथा भेंटों से; अपि—भी; गुरुणा—पर्याप्त; पूजयन्—पूजा करते हुए; प्रतिनन्दितः—उसका भी सत्कार किया।

कोशल का राजा कृष्ण को देखकर हर्षित हुआ। उसने अपने सिंहासन से उठकर तथा प्रतिष्ठित पद एवं पर्याप्त उपहार देकर भगवान् कृष्ण की पूजा की। भगवान् कृष्ण ने भी राजा का आदरपूर्वक अभिवादन किया।

वरं विलोक्याभिमतं समागतं
नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ।

भूयादयं मे पतिराशिषोऽनलः
करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

वरम्—दूल्हे को; विलोक्य—देखकर; अभिमतम्—ग्राह्य; समागतम्—आई; नरेन्द्र—राजा की; कन्या—पुत्री; चकमे—इच्छा की; रमा—लक्ष्मी के; पतिम्—पति को; भूयात्—बन सके; अयम्—वह; मे—मेरा; पतिः—पति; आशिषः—आशाएँ; अनलः—अग्नि; करोतु—कर दे; सत्याः—सच; यदि—यदि; मे—मेरे द्वारा; धृतः—पालन किया गया; व्रतः—मेरा व्रत।

जब राजा की पुत्री ने देखा कि वह सर्वाधिक उपयुक्त दूल्हा आया है, तो उसने तुरन्त ही रमापति श्रीकृष्ण को पाने की कामना की। उसने प्रार्थना की, ''वे मेरे पति बनें। यदि मैंने व्रत किये हैं, तो पवित्र अग्नि मेरी आशाओं को पूरा करे।''

यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति
श्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः ।
लीलातनुः स्वकृतसेतुपरीप्सया यः
कालेऽदधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके; पाद—पैरों की; पङ्कज—कमल सदृश; रजः—धूलि; शिरसा—सिर पर; बिभर्ति—धारण करती है; श्रीः—लक्ष्मी; अब्ज-जः—कमल से जन्मे, ब्रह्माजी; स—सहित; गिरि-शः—कैलाश पर्वत के स्वामी, शिवजी; सह—सहित; लोक—लोकों के; पालैः—शासकों द्वारा; लीला—उनकी लीला के रूप में; तनुः—शरीर; स्व—अपने से; कृत—उत्पन्न; सेतु—धर्म-संहिता; परीप्सया—रक्षा करने की इच्छा से; यः—जिसने; काले—कालक्रम में; अदधत्—धारण किया; सः—वह; भगवान्—भगवान्; मम—मुझसे; केन—किस प्रकार से; तुष्येत्—प्रसन्न हो सकेंगे।

''देवी लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिव तथा विभिन्न लोकों के शासक उनके चरणकमलों की धूलि को अपने सिरों पर चढ़ाते हैं और जो अपने द्वारा निर्मित धर्म-संहिता की रक्षा के लिए विभिन्न कालों में लीलावतार धारण करते हैं। भला वे भगवान् मुझ पर कैसे प्रसन्न हो सकेंगे?''

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ।
आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

अर्चितम्—पूजे जाने वाले को; पुनः—और भी; इति—इस प्रकार; आह—(राजा नग्नजित ने) कहा; नारायण—हे नारायण; जगत्—ब्रह्माण्ड के; पते—हे स्वामी; आत्म—अपने भीतर; आनन्देन—आनन्द के साथ; पूर्णस्य—जो पूर्ण है उसका; करवाणि—कर सकता हूँ; किम्—क्या; अल्पकः—तुच्छ।

सर्वप्रथम राजा नग्नजित ने भगवान् की समुचित पूजा की और तब उन्हें सम्बोधित किया, ''हे नारायण, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, आप अपने आध्यात्मिक आनन्द में पूर्ण रहते हैं। अतः यह तुच्छ व्यक्ति आपके लिए क्या कर सकता है?''

श्रीशुक उवाच

तमाह भगवान्हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ।
मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तम्—उससे; आह—कहा; भगवान्—भगवान् ने; हृष्टः—प्रसन्न; कृत—किया हुआ; आसन—आसन; परिग्रहः—स्वीकृति; मेघ—बादल की तरह; गम्भीरया—गम्भीर; वाचा—वाणी में; स—सहित; स्मितम्—मन्द हँसी से; कुरु—कुरुओं के; नन्दन—हे प्रिय वंशज।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे कुरुनन्दन, भगवान् प्रसन्न थे और सुविधाजनक आसन स्वीकार करके वे मुसकाये तथा मेघ-गर्जना सदृश धीर-गम्भीर वाणी में राजा से बोले।

श्रीभगवानुवाच

नरेन्द्र याच्ञा कविभिर्विगर्हिता
राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः ।
तथापि याचे तव सौहृदेच्छया
कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; नर-इन्द्र—हे मनुष्यों के शासक; याच्ञा—माँगना; कविभिः—विद्वानों द्वारा; विगर्हिता—निन्दनीय; राजन्य—राजवर्ग के; बन्धोः—सदस्य के लिए; निज—अपने; धर्म—धार्मिक मानदण्ड में; वर्तिनः—स्थित; तथा अपि—तो भी; याचे—मैं माँग रहा हूँ; तव—तुमसे; सौहृद—मैत्री की; इच्छया—इच्छा से; कन्याम्—कन्या; त्वदीयाम्—तुम्हारी; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; शुल्क-दाः—कर देने वाले; वयम्—हम।

भगवान् ने कहा : हे मनुष्यों के शासक, विद्वानजन धर्म में रत राजवर्य व्यक्ति से याचना करने की निन्दा करते हैं। तो भी, तुम्हारी मित्रता का इच्छुक मैं तुमसे तुम्हारी कन्या को माँग रहा हूँ यद्यपि हम बदले में कोई भेंट नहीं दे रहे।

श्रीराजोवाच

कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ।
गुणैकधाम्नो यस्याङ्गे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा नग्नजित ने कहा; कः—कौन; अन्यः—दूसरा; ते—तुमसे; अभ्यधिकः—श्रेष्ठ; नाथ—हे स्वामी; कन्या—मेरी कन्या के लिए; वरः—दूल्हा; इह—इस संसार में; ईप्सितः—इच्छित; गुण—दिव्य गुणों का; एक—एकमात्र; धाम्नः—धाम; यस्य—जिसके; अङ्गे—शरीर में; श्रीः—लक्ष्मी; वसति—वास करती है; अनपायिनी—कभी न छोड़ने वाली।

राजा ने कहा : हे प्रभु, भला मेरी पुत्री के लिए आपसे बढ़कर और कौन वर हो सकता है? आप सभी दिव्य गुणों के धाम हैं। आपके शरीर पर साक्षात् लक्ष्मी निवास करती हैं और वे

किसी भी कारण से आपको कभी नहीं छोड़तीं।

किन्त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ ।
पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

किन्तु—लेकिन; अस्माभिः—हमारे (परिवार के) द्वारा; कृतः—बनाया; पूर्वम्—पहले की; समयः—प्रतिज्ञा; सात्वत-ऋषभ—हे सात्वतों के प्रमुख; पुंसाम्—मनुष्यों का (जो यहाँ आये हैं); वीर्य—पराक्रम; परीक्षा—परीक्षा के; अर्थम्—हेतु; कन्या—मेरी पुत्री के लिए; वर—दूल्हा, पति; परीप्सया—खोजने की इच्छा से।

किन्तु हे सात्वत-प्रमुख, अपनी पुत्री के लिए उपयुक्त पति सुनिश्चित करने के लिए हमने उसके संभावित वरों के पराक्रम की परीक्षा करने के लिए पहले से ही एक शर्त निश्चित की हुई है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार राजा द्वारा परीक्षा रखने का वास्तविक उद्देश्य श्रीकृष्ण को दामाद रूप में प्राप्त करना था क्योंकि एकमात्र वे ही बैलों को वश में कर सकते थे। ऐसी परीक्षा लिए बिना अपनी पुत्री के पाणिग्रहण के निमित्त आये अनेक योग्य प्रतीत होने वाले राजकुमारों तथा राजाओं को मना कर पाना नग्नजित के लिए कठिन होता।

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ।
एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

सप्त—सात; एते—ये; गो-वृषाः—बैल; वीर—हे वीर; दुर्दान्ताः—खूँखार; दुरवग्रहाः—अखंड; एतैः—उनके द्वारा; भग्नाः—पराजित; सु-बहवः—अनेकानेक; भिन्न—टूटे; गात्राः—अंगों वाले; नृप—राजाओं के; आत्म-जाः—पुत्र।

हे वीर, इन सातों खूँखार बैलों को वश में करना असम्भव है। इन्होंने (इन बैलों ने) अनेक राजकुमारों के अंगों को खण्डित करके उन्हें परास्त किया है।

यदिमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन ।
वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियःपते ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

यत्—यदि; इमे—वे; निगृहीताः—वशीभूत; स्युः—हो जाते हैं; त्वया—तुम्हारे द्वारा; एव—निस्सन्देह; यदु-नन्दन—हे यदुवंशी; वरः—दूल्हा; भवान्—आप; अभिमतः—स्वीकृत, अभीष्ट; दुहितुः—पुत्री के लिए; मे—मेरी; श्रियः—लक्ष्मी के; पते—हे पति।

हे यदुवंशी, यदि आप इन्हें वश में कर लें तो निश्चित रूप से, हे श्रीपति, आप ही मेरी पुत्री

के उपयुक्त वर होंगे।

एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ।
आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; समयम्—शर्त, प्रतिज्ञा; आकर्ण्य—सुनकर; बद्ध्वा—कस कर; परिकरम्—अपने वस्त्र; प्रभुः—प्रभु; आत्मानम्—अपने को; सप्तधा—सात रूप; कृत्वा—करके; न्यगृह्णात्—वश में कर लिया; लीलया—खेल खेल में; एव—केवल; तान्—उनको।

इन शर्तों को सुनकर भगवान् ने अपने वस्त्र कसे, अपने आपको सात रूपों में विस्तारित किया और बड़ी आसानी से बैलों को वश में कर लिया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार भगवान् कृष्ण ने अपने को सात रूपों में न केवल सात बैलों को खेल खेल में हराने के लिए विस्तारित किया अपितु राजकुमारी सत्या को यह दिखाने के लिए भी कि उसे उनकी अन्य रानियों से होड़ नहीं लेनी होगी क्योंकि वे सबों से एकसाथ केलि कर सकते हैं।

बद्ध्वा तान्दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान्हतौजसः ।
व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

बद्ध्वा—बाँध कर; तान्—उनको; दामभिः—रस्सियों से; शौरिः—भगवान् कृष्ण ने; भग्न—खण्डित; दर्पान्—घमंड; हत—विनष्ट; ओजसः—पराक्रम; व्यकर्षत्—घसीटा; लीलया—खेल खेल में; बद्धान्—बँधे हुए; बालः—बालक; दारु—लकड़ी के; मयान्—बने; यथा—जिस तरह।

भगवान् शौरि ने उन बैलों को बाँध लिया जिनका घमंड तथा बल अब टूट चुका था और उन्हें रस्सियों से इस तरह खींचा जिस तरह कोई बालक खेल में लकड़ी के बने बैलों के खिलौनों को खींचता है।

ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ।
तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; प्रीतः—प्रसन्न; सुताम्—अपनी पुत्री को; राजा—राजा ने; ददौ—दे दिया; कृष्णाय—कृष्ण को; विस्मितः—चकित; ताम्—उसको; प्रत्यगृह्णात्—स्वीकार किया; भगवान्—परम पुरुष ने; विधि-वत्—वैदिक विधि के अनुसार; सदृशीम्—अनुरूप; प्रभुः—भगवान् के।

तब प्रसन्न तथा चकित राजा नग्नजित ने अपनी पुत्री भगवान् कृष्ण को भेंट कर दी।

भगवान् ने इस अनुरूप दुलहन को वैदिक विधि के साथ स्वीकार किया।

तात्पर्य : *सदृशीम्* शब्द सूचित करता है कि सुन्दर राजकुमारी भगवान् के उपयुक्त दुलहन थी क्योंकि उसमें वे अद्‌भुत दिव्य गुण थे, जो भगवान् के पूरक थे। जैसाकि श्रील जीव गोस्वामी ने इंगित किया है *विस्मित:* शब्द सूचित करता है कि राजा नग्नजित सचमुच अपने जीवन में इन अनेक सहसा घटित होने वोली असामान्य घटनाओं से चकित था।

राजपत्न्यश्च दुहितु: कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ।
लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सव: ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

राज—राजा की; पत्न्य:—पत्नियाँ; च—तथा; दुहितु:—तथा उसकी पुत्री के; कृष्णम्—कृष्ण को; लब्ध्वा—प्राप्त करके; प्रियम्—प्रिय; पतिम्—पति; लेभिरे—अनुभव किया; परम—महानतम; आनन्दम्—आनन्द; जात:—उत्पन्न; च—तथा; परम—महानतम; उत्सव:—उत्सव।

राजकुमारी को भगवान् कृष्ण के प्रिय पति के रूप में प्राप्त होने पर राजा की पत्नियों को सर्वाधिक आनन्द प्राप्त हुआ और अतीव उत्सव का भाव जाग उठा।

शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिष: ।
नरा नार्य: प्रमुदिता: सुवास:स्रगलङ्कृता: ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; भेरी—तुरही; आनका:—तथा ढोल; नेदु:—बज उठे; गीत—गीत; वाद्य—वाद्य-संगीत; द्विज—ब्राह्मणों के; आशिष:—आशीर्वाद; नरा:—मनुष्य; नार्य:—स्त्रियाँ; प्रमुदिता:—प्रसन्न; सु-वास:—सुन्दर वस्त्रों; स्रक्—तथा मालाओं से; अलङ्कृता:—सुसज्जित।

गीत तथा वाद्य संगीत और ब्राह्मणों द्वारा आशीर्वाद देने की ध्वनियों के साथ साथ शंख, तुरही तथा ढोल बजने लगे। प्रमुदित नर-नारियों ने अपने को सुन्दर वस्त्रों तथा मालाओं से अलंकृत किया।

दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभु: ।
युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससम् ॥ ५० ॥
नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान्रथान् ।
रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

दश—दस; धेनु—गायों का; सहस्राणि—हजार; पारिबर्हम्—दहेज; अदात्—दिया; विभु:—शक्तिशाली (राजा नग्नजित); युवतीनाम्—युवतियों के; त्रि-साहस्रम्—तीन हजार; निष्क—सुनहरे आभूषण; ग्रीव—गर्दन में; सु—उत्तम; वाससम्—वस्त्र; नव—नौ; नाग—हाथियों का; सहस्राणि—हजार; नागात्—हाथियों की अपेक्षा; शत-गुणान्—सौ गुना अधिक (९,००,०००); रथान्—रथ; रथात्—रथों से; शत-गुणान्—सौ गुना अधिक; अश्वान्—घोड़े; अश्वात्—अश्वों की तुलना में; शत-गुणान्—एक सौ गुना अधिक (९ अरब); नरान्—मनुष्यों को।

शक्तिशाली राजा नग्नजित ने दहेज के रूप में दस हजार गौवें, तीन हजार युवा-दासियाँ जो अपने गलों में सोने के आभूषण पहने थीं तथा सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत थीं, नौ हजार हाथी, हाथियों के एक सौ गुना रथ, रथों के एक सौ गुना घोड़े तथा घोड़ों के सौ गुने नौकर दिये।

दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ।
स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोशलः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

दम्-पती—जोड़ी; रथम्—रथ पर; आरोप्य—बैठाकर; महत्या—विशाल; सेनया—सेना से; वृतौ—युक्त; स्नेह—स्नेह से; प्रक्लिन्न—द्रवित; हृदयः—हृदय वाला; यापयाम् आस—विदा किया; कोशलः—कोशल के राजा ने।

स्नेह से द्रवीभूत हृदय से, कोशल के राजा ने वर-वधू को उनके रथ पर बैठा दिया और तब एक विशाल सेना के साथ उन्हें विदा कर दिया।

श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम् ।
भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; एतत्—यह; रुरुधुः—रोक दिया; भू-पाः—राजाओं ने; नयन्तम्—ले जा रहे; पथि—रास्ते में; कन्यकाम्—दुलहन को; भग्न—खण्डित; वीर्याः—शक्ति वाले; सु—अत्यन्त; दुर्मर्षाः—असहिष्णु; यदुभिः—यदुओं द्वारा; गो-वृषैः—बैलों से; पुरा—पहले।

जब स्वयंवर में आये असहिष्णु प्रतिद्वन्द्वी राजाओं ने सारी घटना के बारे में सुना तो उन्होंने भगवान् कृष्ण को, अपनी दुलहन घर ले जाते समय मार्ग में रोकना चाहा। किन्तु जिस तरह इसके पूर्व बैलों ने राजाओं के बल को तोड़ दिया था उसी तरह अब यदु-योद्धाओं ने उनके बल को तोड़ दिया।

तानस्यतः शरव्रातान्बन्धुप्रियकृदर्जुनः ।
गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; अस्यतः—फेंकते हुए; शर—बाणों के; व्रातान्—झुंड के झुंड; बन्धु—उसके मित्र (श्रीकृष्ण); प्रिय—प्रसन्न करने के लिए; कृत्—करते हुए; अर्जुनः—अर्जुन ने; गण्डीवी—गाण्डीव धनुष का स्वामी; कालयाम् आस—भगा दिया; सिंहः—सिंह; क्षुद्र—तुच्छ; मृगान्—पशुओं को; इव—जिस तरह।

गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन अपने मित्र कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए सदैव उत्सुक रहते थे अतः उन्होंने उन सारे प्रतिद्वन्द्वियों को भगा दिया जो भगवान् पर बाणों की झड़ी लगाये हुए थे। उन्होंने यह सब वैसे ही किया जिस तरह एक सिंह क्षुद्र पशुओं को खदेड़ देता है।

पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ।
रेमे यदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

पारिबर्हम्—दहेज; उपागृह्य—लेकर; द्वारकाम्—द्वारका में; एत्य—आकर; सत्यया—सत्या के साथ; रेमे—विलास किया; यदूनाम्—यदुओं के; ऋषभः—प्रमुख; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र ने।

तब यदुओं के प्रधान भगवान् देवकीसुत दहेज तथा सत्या को लेकर द्वारका गये और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे।

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रां उपयेमे पितृष्वसुः ।
कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः सन्तर्दनादिभिः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

श्रुतकीर्तेः—श्रुतकीर्ति की; सुताम्—पुत्री; भद्राम्—भद्रा को; उपयेमे—ब्याहा; पितृ-स्वसुः—अपने पिता की बहन की; कैकेयीम्—कैकेय की राजकुमारी; भ्रातृभिः—उसके भाइयों द्वारा; दत्ताम्—दी हुई; कृष्णः—कृष्ण; सन्तर्दन-आदिभिः—सन्तर्दन इत्यादि द्वारा।

भद्रा कैकेय राज्य की राजकुमारी तथा कृष्ण की बुआ श्रुतकीर्ति की पुत्री थी। जब सन्तर्दन इत्यादि उसके भाइयों ने उसे कृष्ण को भेंट किया, तो उन्होंने भद्रा से विवाह कर लिया।

सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्यताम् ।
स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥ ५७॥

शब्दार्थ

सुताम्—पुत्री को; च—तथा; मद्र-अधिपतेः—मद्र देश के शासक की; लक्ष्मणाम्—लक्ष्मणा को; लक्षणैः—सारे सद्गुणों से; युताम्—युक्त; स्वयम्-वरे—स्वयंवर उत्सव में; जहार—हर ले गया; एकः—अकेले; सः—वह, कृष्ण; सुपर्णः—गरुड़; सुधाम्—अमृत को; इव—जिस तरह।

तब भगवान् ने मद्रराज की कन्या लक्ष्मणा से विवाह किया। कृष्ण अकेले ही उसके स्वयंवर समारोह में गये थे और उसे उसी तरह हर ले आये जिस तरह गरुड़ ने एक बार देवताओं का अमृत चुरा ले गया था।

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः ।
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

अन्याः—अन्य; च—तथा; एवम्-विधाः—इन्हीं की तरह; भार्याः—पत्नियाँ; कृष्णस्य—कृष्ण की; आसन्—हुईं; सहस्रशः—हजारों; भौमम्—भौम असुर को; हत्वा—मार कर; तत्—उस भौम से; निरोधात्—उनके बन्दीगृह से; आहृताः—हरण की गई; चारु—सुन्दर; दर्शनाः—जिनकी सूरत।

भगवान् कृष्ण ने इन्हीं के समान अन्य हजारों पत्नियाँ तब प्राप्त कीं जब उन्होंने भौमासुर को मारा और उसके द्वारा बन्दी बनाई गई सुन्दरियों को छुड़ाया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''श्रीकृष्ण का पाँच राजकुमारियों से ब्याह'' नामक अट्ठावनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter उनसठ

नरकासुर का वध

इस अध्याय में बताया गया है कि भगवान् कृष्ण ने देवी पृथ्वी के पुत्र नरकासुर को किस तरह मारा और असुर के द्वारा अपहरण की गईं हजारों युवतियों से विवाह किया। इसमें यह भी बताया गया है कि भगवान् ने किस प्रकार स्वर्ग से पारिजात वृक्ष चुराया और अपने हर महल में किस तरह सामान्य गृहस्थ जैसा व्यवहार किया।

जब नरकासुर ने भगवान् वरुण का छाता, माता अदिति के कुण्डल तथा देवताओं का मणिपर्वत नामक क्रीड़ा क्षेत्र चुरा लिये तो इन्द्र ने द्वारका जाकर भगवान् कृष्ण से उस असुर के अतिक्रमण का हाल कह सुनाया। अतः भगवान् कृष्ण सत्यभामा सहित अपने वाहन गरुड़ पर सवार हुए और नरकासुर की राजधानी जा पहुँचे। नगर के बाहर एक खेत में भगवान् ने अपने चक्र से मुर नामक असुर का सिर काट लिया। इसके बाद वे मुर के सात पुत्रों से लड़े और उन्हें यम-धाम पहुँचाया। तत्पश्चात् नरकासुर स्वयं हाथी पर सवार होकर युद्धभूमि में आया। उसने श्रीकृष्ण पर अपना शक्ति नामक भाला छोड़ा किन्तु यह हथियार बेकार हो गया और भगवान् ने असुर की सारी सेना को क्षत-विक्षत कर डाला। अन्त में कृष्ण ने अपने तेज धार वाले चक्र से नरकासुर का सिर काट लिया।

तब देवी पृथ्वी भगवान् कृष्ण के पास पहुँची और उन्हें नरकासुर द्वारा चुराई गई विविध वस्तुएँ प्रदान कीं। उन्होंने भगवान् की स्तुति की और नरकासुर के भयभीत पुत्र को लाकर भगवान् के चरणकमलों में डाल दिया। उस असुर-पुत्र को सान्त्वना देकर कृष्ण नरकासुर के महल में घुसे जहाँ उन्हें सोलह हजार एक सौ युवतियाँ मिलीं। ज्योंही उन्होंने कृष्ण को देखा, उन सबों ने उन्हें ही अपने पति रूप में स्वीकार करने का निर्णय लिया। भगवान् ने उन्हें प्रचुर कोष के साथ द्वारका भेज दिया और तब वे सत्यभामा के साथ इन्द्र-धाम गये। वहाँ उन्होंने अदिति के कुंडल लौटाये और इन्द्र तथा इन्द्र-पत्नी शची देवी ने उनकी पूजा की। सत्यभामा के अनुरोध पर कृष्ण ने स्वर्गिक पारिजात वृक्ष उखाड़ लिया और उसे गरुड़ की पीठ पर रख लिया। फिर इस वृक्ष को ले जाने का विरोध कर रहे इन्द्र तथा अन्य देवताओं को हराकर कृष्ण सत्यभामा समेत द्वारका लौट आये जहाँ उन्होंने सत्यभामा के महल के निकट उस वृक्ष को एक बगीचे में रोप दिया।

इन्द्र मूलतः कृष्ण की स्तुति करने और उनसे नरकासुर का वध करने की याचना करने आया था किन्तु जब उसका काम पूरा हो गया तो वह भगवान् से झगड़ पड़ा। देवताओं में क्रुद्ध होने की प्रवृत्ति है क्योंकि वे अपने ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त हो उठते हैं।

अच्युत भगवान् ने अपने सोलह हजार एक सौ पृथक्-पृथक् रूप धारण किये और उनके अलग-अलग भवनों में सोलह हजार एक सौ युवतियों से विवाह किया। वे अपनी अनेक पत्नियों से विभिन्न प्रकार की सेवाएँ कराते हुए सामान्य पुरुष जैसा गृहस्थ जीवन बिताने लगे।

श्रीराजोवाच यथा हतो भगवता भौमो येने च ताः स्त्रियः ।
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (परीक्षित) ने कहा; यथा—कैसे; हतः—मारा गया; भगवता—भगवान् द्वारा; भौमः—नरकासुर, भूमि या पृथ्वीदेवी का पुत्र; येन—जिसके द्वारा; च—तथा; ताः—वे; स्त्रियः—स्त्रियाँ; निरुद्धाः—बन्दी; एतत्—यह; आचक्ष्व—कहिये; विक्रमम्—शौर्य; शार्ङ्ग-धन्वनः—शार्ङ्ग धनुष के स्वामी कृष्ण का।

[राजा परीक्षित ने कहा] : अनेक स्त्रियों का अपहरण करने वाला भौमासुर किस तरह भगवान् द्वारा मारा गया ? कृपा करके भगवान् शार्ङ्गधन्वा के इस शौर्य का वर्णन कीजिये।

श्रीशुक उवाच

इन्द्रेण हृतछत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना ।
हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ।
सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ २॥
गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ।
मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ॥ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इन्द्रेण—इन्द्र द्वारा; हृत-छत्रेण—जिससे (वरुण का) छाता चुरा लिया गया; हृत-कुण्डल—कुण्डलों की चोरी; बन्धुना—उसके सम्बन्धियों (माता अदिति) के; हृत—तथा चोरी; अमर-अद्रि—देवताओं के पर्वत (मन्दर) पर; स्थानेन—विशेष स्थान (पर्वत की चोटी पर बने क्रीड़ास्थल, मणिपर्वत) पर; ज्ञापितः—सूचित किया; भौम-चेष्टितम्—भौम के कार्यकलापों का; स—सहित; भार्यः—अपनी पत्नी (सत्यभामा); गरुड-आरूढः—गरुड़ पर सवार होकर; प्राग्-ज्योतिष-पुरम्—भौम की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम में स्थित-वर्तमान तेजपुर); ययौ—गया; गिरि—पर्वत; दुर्गैः—किलेबन्दी द्वारा; शस्त्र—हथियारों से युक्त; दुर्गैः—किलेबन्दी द्वारा; जल—जल; अग्नि—आग; अनिल—तथा वायु के; दुर्गमम्—किलेबन्दी से दुर्गम बनाया गया; मुर-पाश—केबलों (तारों) की घातक दीवाल से; अयुतैः—दसियों हजार; घोरैः—भयावना; दृढैः—तथा मजबूत; सर्वतः—सभी दिशाओं से; आवृतम्—घिरा हुआ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भौम ने इन्द्र की माता के कुंडलों के साथ साथ वरुण का छत्र तथा मन्दर पर्वत की चोटी पर स्थित देवताओं की क्रीड़ास्थली को चुरा लिया तो इन्द्र कृष्ण के पास गया और उन्हें इन दुष्कृत्यों की सूचना दी। तब भगवान् अपनी पत्नी सत्यभामा को साथ लेकर गरुड़ पर सवार होकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिए रवाना हो गये जो चारों ओर से पर्वतों, बिना पुरुषों के चलाये जाने वाले हथियारों, जल, अग्नि तथा वायु से और मुर पाशतारों (फन्दों) के अवरोधों से घेरा हुआ था।

तात्पर्य : आचार्यों ने विभिन्न युक्तिसंगत विधियों के द्वारा व्याख्या की है कि भगवान् कृष्ण अपने साथ सत्यभामा को क्यों ले गये थे। श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि भगवान् अपनी साहसिक पत्नी को विशिष्ट अनुभव करवाना चाहते थे इसीलिए वे इस असामान्य युद्ध-क्षेत्र में उन्हें ले गये। यही नहीं, कृष्ण ने एक बार भूमि, देवी पृथ्वी, को आशीर्वाद दिया था कि वे उसकी अनुमति के बिना उसके असुर-पुत्र का संहार नहीं करेंगे। चूँकि भूमि सत्यभामा की अंश है, अत: सत्यभामा उन्हें अत्यन्त दुष्ट भौमासुर से निपटने के लिए अधिकृत कर सकती थीं।

अन्तिम बात यह थी कि जब नारदमुनि रुक्मिणी के लिए दैवी पारिजात पुष्प लाये तो सत्यभामा का क्रोध जाग उठा था। अत: सत्यभामा को सान्त्वना देते हुए भगवान् ने उनसे वादा किया था, ''मैं तुम्हारे लिए इन फूलों का पूरे का पूरा वृक्ष ला दूँगा'' अत: उन्होंने अपने कार्यक्रम में इस स्वर्गिक वृक्ष के लाने को भी सम्मिलित कर लिया।

आज भी पत्नी समर्पित पति अपनी पत्नियों को खरीदारी के लिए बाजार में साथ ले जाते हैं अत: भगवान् कृष्ण उस स्वर्गिक वृक्ष को लाने के लिए सत्यभामा को स्वर्गलोक ले गये। साथ ही वे उन वस्तुओं को भी वापस लाने और उन्हें उनके असली मालिकों को लौटाने के लिए वहाँ गये थे जिन्हें भौमासुर चुरा ले गया था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि युद्ध में तेजी आने पर सत्यभामा स्वभावत: कृष्ण की सुरक्षा के प्रति व्यग्र हो जाएँगी और युद्ध के अन्त होने के लिए प्रार्थना करेंगी। इस तरह वे अपने ही अंश भूमि के पुत्र का वध करने के लिए कृष्ण को अनुमति दे देंगी।

गदया निर्बिभेदाद्रीन्शस्त्रदुर्गाणि सायकै: ।
चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४॥

शब्दार्थ

गदया—अपनी गदा से; निर्बिभेद—तोड़ डाला; अद्रीन्—पर्वतों को; शस्त्र-दुर्गाणि—अवरोधक हथियार; सायकै:—अपने बाणों से; चक्रेण—अपने चक्र से; अग्निम्—अग्नि को; जलम्—जल को; वायुम्—तथा वायु को; मुर-पाशान्—तारों के फंदों के अवरोधों को; तथा—इसी तरह; असिना—अपनी तलवार से।.

भगवान् ने अपनी गदा से चट्टानी किलेबन्दी को, अपने बाणों से हथियारों की नाकेबन्दी को, अपने चक्र से अग्नि, जल तथा वायु की किलेबन्दी को और अपनी तलवार से मुर पाश की तारों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ।
प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधर: ॥ ५॥

शब्दार्थ

शङ्ख—अपने शंख की; नादेन—ध्वनि से; यन्त्राणि—योग के तिलिस्मों को; हृदयानि—हृदयों को; मनस्विनाम्—बहादुरों के; प्राकारम्—परकोटे को; गदया—अपनी गदा से; गुर्व्या—भारी; निर्बिभेद—तोड़ डाला; गदाधर:—भगवान् कृष्ण ने।.

तब गदाधर ने अपने शंख की ध्वनि से दुर्ग के जादुई तिलिस्मों को और उसी के साथ उसके वीर रक्षकों के हृदयों को ध्वस्त कर दिया। उन्होंने अपनी भारी गदा से किले के मिट्टी से बने परकोटे को ढहा दिया।

पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्तशनिभीषणम् ।
मुर: शयान उत्तस्थौ दैत्य: पञ्चशिरा जलात् ॥ ६॥

शब्दार्थ

पाञ्चजन्य—कृष्ण के शंख की; ध्वनिम्—आवाज को; श्रुत्वा—सुनकर; युग—ब्रह्माण्ड के युग के; अन्त—अन्त में; अशनि—बिजली की (ध्वनि के समान); भीषणम्—दिल दहलाने वाली; मुरः—मुर; शयानः—सोया हुआ; उत्तस्थौ—उठ गया; दैत्यः—असुर; पञ्च-शिराः—पाँच सिरों वाला; जलात्—(किले के चारों ओर की खाई के) जल में से।

जब पाँच सिरों वाले असुर मुर ने भगवान् कृष्ण के पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनी, जो युग के अन्त में बिजली (वज्र) की कड़क की भाँति भयावनी थी तो नगर की खाई की तली में सोया हुआ वह असुर जग गया और पानी से बाहर निकल आया।

त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो
युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः ।
ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखै-
रभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७॥

शब्दार्थ

त्रि-शूलम्—अपना त्रिशूल; उद्यम्य—उठाकर; सु—अत्यन्त; दुर्निरीक्षणः—जिसकी ओर देख पाना कठिन था; युग-अन्त—युग के अन्त में; सूर्य—सूर्य; अनल—अग्नि (वत्); रोचिः—जिसका तेज; उल्बणः—भीषण; ग्रसन्—निगलते हुए; त्रि-लोकीम्—तीनों लोकों को; इव—मानो; पञ्चभिः—अपने पाँच; मुखैः—मुखों से; अभ्यद्रवत्—आक्रमण किया; तार्क्ष्य-सुतम्—तार्क्ष्य के पुत्र, गरुड़ पर; यथा—जिस तरह; उरगः—सर्प।

युगान्त के समय की सूर्य की अग्नि सदृश अन्धा बना देने वाले भयंकर तेज से चमकता हुआ, मुर अपने पाँचों मुखों से तीनों लोकों को निगलता-सा प्रतीत हो रहा था। उसने अपना त्रिशूल उठाया और तार्क्ष्य-पुत्र गरुड़ पर वैसे ही टूट पड़ा जिस तरह आक्रमण करता हुआ सर्प।

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते
निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पञ्चभिः ।
स रोदसी सर्वदिशोऽम्बरं महा-
नापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥ ८॥

शब्दार्थ

आविध्य—घुमाते हुए; शूलम्—अपना त्रिशूल; तरसा—बलपूर्वक; गरुत्मते—गरुड़ पर; निरस्य—फेंककर; वक्त्रैः—मुखों से; व्यनदत्—गर्जना की; सः—उसने; पञ्चभिः—पाँचो; सः—वह; रोदसी—पृथ्वी तथा आकाश; सर्व—सभी; दिशः—दिशाएँ; अम्बरम्—बाह्य आकाश; महान्—महान् (गर्जना); आपूरयन्—पूर्ण करते हुए; अण्द—ब्रह्माण्ड के अंडे जैसे आवरणों के; कटाहम्—कड़ाह को; आवृणोत्—ढक दिया।

मुर ने अपना त्रिशूल घुमाया और अपने पाँचों मुखों से दहाड़ते हुए उसे गरुड़ पर बड़ी उग्रता से फेंक दिया। यह ध्वनि पृथ्वी, आकाश, सभी दिशाओं तथा बाह्य अंतरिक्ष की सीमाओं में भर कर ब्रह्माण्ड की खोल से टकराकर प्रतिध्वनित होने लगी।

तदापतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते
हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधोजसा ।
मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्
तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब; आपतत्—उड़ती हुई; वै—निस्सन्देह; त्रि-शिखम्—त्रिशूल; गरुत्मते—गरुड़ की ओर; हरिः—भगवान् कृष्ण ने; शराभ्याम्—दो बाणों से; अभिनत्—खंड कर दिया; त्रिधा—तीन भागों में; ओजसा—बलपूर्वक; मुखेषु—उसके मुखों पर; तम्—उसको, मुर को; च—तथा; अपि—भी; शरैः—बाणों से; अताडयत्—प्रहार किया; तस्मै—उस (कृष्ण) पर; गदाम्—अपनी गदा को; सः—उसने, मुर ने; अपि—तथा; रुषा—क्रोध में; व्यमुञ्चत—छोड़ा।

तब भगवान् हरि ने गरुड़ की ओर उड़ते हुए त्रिशूल पर दो बाणों से प्रहार किया और उसे तीन खण्डों में काट डाला। इसके बाद भगवान् ने मुर के मुखों पर कई बाण मारे और असुर ने भी क्रुद्ध होकर भगवान् पर अपनी गदा फेंकी।

तामापतन्तीं गदया गदां मृधे
गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ।
उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः
शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; आपतन्तीम्—अपनी ओर आती हुई; गदया—अपनी गदा से; गदाम्—गदा को; मृधे—युद्धभूमि में; गद-अग्रजः—गद के बड़े भाई, कृष्ण ने; निर्बिभिदे—तोड़ डाला; सहस्रधा—हजारों टुकड़ों में; उद्यम्य—उठाकर; बाहून्—अपनी भुजाएँ; अभिधावतः—उसकी ओर दौड़ने वाले का; अजितः—अजेय कृष्ण; शिरांसि—सिरों को; चक्रेण—अपने चक्र से; जहार—अलग कर दिया; लीलया—आसानी से।

जब युद्धभूमि में मुर की गदा कृष्ण की ओर लपकी तो गदाग्रज ने अपनी गदा से उसे बीच में ही रोक दिया और उसे हजारों टुकड़ों में तोड़ डाला। तब मुर ने अपनी बाहें ऊपर उठा लीं और अजेय भगवान् की ओर दौड़ा जिन्होंने अपने चक्र से उसके सिरों को सरलता से काट गिराया।

व्यसुः पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो
निकृत्तशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ।
तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः
प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

व्यसुः—प्राणविहीन; पपात—गिर पड़ा; अम्भसि—जल के भीतर; कृत्त—कटे हुए; शीर्षः—सिरों; निकृत्त—कटा हुआ; शृङ्गः—चोटी; अद्रिः—पर्वत; इव—मानो; इन्द्र—इन्द्र की; तेजसा—शक्ति से (उसके वज्र से); तस्य—उस (मुर) के; आत्म-

जाः—पुत्रगण; सप्त—सात; पितुः—अपने पिता के; वध—मारे जाने से; आतुराः—अत्यन्त दुखित; प्रतिक्रिया—बदले के लिए; अमर्ष—क्रोध; जुषः—भावना; समुद्यताः—सन्नद्ध।

प्राणविहीन मुर का सिरकटा शरीर पानी में उसी तरह गिर पड़ा जैसे कोई पर्वत जिसकी चोटी इन्द्र के वज्र की शक्ति से छिन्न हो गई हो। अपने पिता की मृत्यु से क्रुद्ध होकर असुर के सात पुत्र बदला लेने के लिए उद्यत हो गये।

ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसु-
वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ।
पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे
भौमप्रयुक्ता निरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ताम्रः अन्तरिक्षः श्रवणः विभावसुः—ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण तथा विभावसु; वसुः नभस्वान्—वसु तथा नभस्वान; अरुणः—अरुण; च—तथा; सप्तमः—सातवाँ; पीठम्—पीठ को; पुरः-कृत्य—आगे करके; चमू-पतिम्—अपने सेनापति को; मृधे—युद्धभूमि में; भौम—भौमासुर द्वारा; प्रयुक्ताः—नियुक्त; निरगन्—(किले से) बाहर निकल आये; धृत—धारण किये; आयुधाः—हथियार।

भौमासुर का आदेश पाकर ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् तथा अरुण नामक सातों पुत्र अपने हथियार धारण किये पीठ नामक अपने सेनापति के पीछे पीछे युद्ध-क्षेत्र में आ गये।

प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन्गदाः
शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ।
तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणै-
रमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १ ॥

शब्दार्थ

प्रायुञ्जत—प्रयोग किया; आसाद्य—आक्रमण करके; शरान्—बाणों; असीन्—तलवारों; गदाः—गदाओं; शक्ति—भालों; ऋष्ति—ऋष्टि; शूलानि—तथा त्रिशूलों से; अजिते—अजित भगवान् कृष्ण पर; रुषा—क्रोधपूर्वक; उल्बणाः—भयानक; तत्—उनके; शस्त्र—हथियारों के; कूटम्—पर्वत को; भगवान्—भगवान् ने; स्व—अपने; मार्गणैः—बाणों से; अमोघ—अचूक; वीर्यः—जिनका पराक्रम; तिलशः—तिल जितने छोटे छोटे कणों में; चकर्त ह—काट डाला।

इन भयानक योद्धाओं ने क्रुद्ध होकर बाणों, तलवारों, गदाओं, भालों, ऋष्टियों तथा त्रिशूलों से अजेय भगवान् कृष्ण पर आक्रमण कर दिया किन्तु भगवान् ने अपनी अमोघ शक्ति से हथियारों के इस पर्वत को अपने बाणों से छोटे छोटे टुकड़ों में काट डाला।

तान्पीठमुख्याननयद्यमक्षयं

निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मण: ।
स्वानीकपानच्युतचक्रसायकै-
स्तथा निरस्तान्नरको धरासुत: ।
निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदै-
र्गजै: पयोधिप्रभवैर्निराक्रमात् ॥ १४॥

शब्दार्थ

तान्—उन; पीठ-मुख्यान्—पीठ इत्यादि को; अनयत्—भेज दिया; यम—मृत्यु के स्वामी यम के; क्षयम्—धाम को; निकृत्त—कटे हुए; शीर्ष—सिर; ऊरु—जाँघें; भुज—बाँहें; अङ्घ्रि—पाँव; वर्मण:—तथा कवच; स्व—अपनी; अनीक—सेना के; पान्—नायक; अच्युत—भगवान् कृष्ण के; चक्र—चक्र; सायकै:—तथा बाणों से; तथा—इस प्रकार; निरस्तान्—हटाया गया; नरक:—भौम; धरा—पृथ्वीदेवी का; सुत:—पुत्र; निरीक्ष्य—देखकर; दुर्मर्षण:—सहन करने में अक्षम; आस्रवत्—चू रहे थे; मदै:—उन्मत्त हाथियों के गण्डस्थल से निकलने वाला चिपचिपा द्रव; गजै:—हाथियों के साथ; पय:-धि—क्षीर सागर से; प्रभवै:—उत्पन्न; निराक्रमात्—वह बाहर आया।

भगवान् ने पीठ इत्यादि प्रतिद्वन्द्वियों के सिर, जाँघें, बाँहें, पाँव तथा कवच काट डाले और उन सबों को यमराज के लोक भेज दिया। जब पृथ्वी-पुत्र नरकासुर ने अपने सेना-नायकों का यह हाल देखा तो उसका क्रोध आपे में न रह सका। अत: वह क्षीर सागर से उत्पन्न हाथियों के साथ, जो उन्मत्तता के कारण अपने गण्डस्थल से मद चूआ रहे थे, अपने दुर्ग से बाहर आया।

दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं
सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा ।
कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं
योधाश्च सर्वे युगपच्च विव्यधु: ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; स-भार्यम्—अपनी पत्नी के साथ; गरुड-उपरि—गरुड़ के ऊपर; स्थितम्—आसीन; सूर्य—सूर्य से; उपरिष्टात्—ऊँचा; स-तडित्—बिजली से युक्त; घनम्—बादल को; यथा—जिस तरह; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; स:—उसने, भौम ने; तस्मै—उस पर; व्यसृजत्—छोड़ा; शत-घ्नीम्—शतघ्नी (भाले का नाम); योधा:—उसके सैनिकों ने; च—तथा; सर्वे—सभी; युगपत्—एक ही साथ; च—तथा; विव्यधु:—आक्रमण कर दिया।

गरुड़ पर आसीन भगवान् कृष्ण और उनकी पत्नी सूर्य को ढकने वाले बिजली से युक्त बादल जैसे प्रतीत हो रहे थे। भगवान् को देखकर भौम ने उन पर अपना शतघ्नी हथियार छोड़ा। तत्पश्चात् भौम के सारे सैनिकों ने एकसाथ अपने अपने हथियारों से आक्रमण कर दिया।

तद्भौमसैन्यं भगवान्गदाग्रजो
विचित्रवाजैर्निशितै: शिलीमुखै: ।
निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं
चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस; भौम-सैन्यम्—भौमासुर की सेना को; भगवान्—भगवान्; गदाग्रजः—कृष्ण ने; विचित्र—नाना प्रकार के; वाजैः—पंखों वाले; निशितैः—नुकीले; शिलीमुखैः—बाणों से; निकृत्त—काट दिया; बाहु—बाँहें; ऊरु—जाँघें; शिरः-ध्र—तथा गर्दन; विग्रहम्—शरीरों को; चकार—बनाया; तर्हि एव—उसी क्षण; हत—मार डाला; अश्व—घोड़ों; कुञ्जरम्—तथा हाथियों को।

उस क्षण भगवान् गदाग्रज ने अपने तीक्ष्ण बाण भौमासुर की सेना पर छोड़े। नाना प्रकार के पंखों से युक्त इन बाणों ने उस सेना को शरीरों के ढेर में बदल दिया जिनकी बाँहें, जाँघें तथा गर्दनें कटी थीं। इसी तरह कृष्ण ने विपक्षी घोड़ों तथा हाथियों को मार डाला।

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ।
हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रीभिः ॥ १७॥
उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ।
गुरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखेर्गजाः ॥ १८ ॥
पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यानि—वे जो; योधैः—योद्धाओं द्वारा; प्रयुक्तानि—प्रयुक्त; शस्त्र—काटने वाले हथियार; अस्त्राणि—तथा फेंककर चलाये जाने वाले हथियार; कुरु-उद्वह—हे कुरुओं के वीर (राजा परीक्षित); हरिः—भगवान् कृष्ण ने; तानि—उनको; अच्छिनत्—खण्ड खण्ड कर दिया; तीक्ष्णैः—नुकीले; शरैः—बाणों से; एक-एकशः—एक एक करके; त्रिभिः—तीन; उह्यमानः—ले जाये गये; सु-पर्णेन—बड़े बड़े पंखो वाले (गरुड़) द्वारा; पक्षाभ्याम्—दोनों पंखों से; निघ्नता—प्रहार करता; गजान्—हाथियों को; गुरुत्मता—गरुड़ द्वारा; हन्यमानाः—मारा जाकर; तुण्ड—चोंच; पक्ष—पंखों; नखेः—तथा पंजों से; गजाः—हाथी; पुरम्—नगर में; एव—निस्सन्देह; आविशन्—फिर से भीतर जाकर; आर्ताः—दुखी; नरकः—नरक (भौम); युधि—युद्ध में; अयुध्यत—लड़ता रहा।

हे कुरुवीर, तब भगवान् हरि ने उन सारे अस्त्रों तथा शस्त्रों को मार गिराया जिन्हें शत्रु-सैनिकों ने उन पर फेंका था और हर एक को तीन तेज बाणों से नष्ट कर डाला। इस बीच, भगवान् को उठाकर ले जाते हुए गरुड़ ने अपने पंखों से शत्रु के हाथियों पर प्रहार किया। ये हाथी गरुड़ के पंखों, चोंच तथा पंजों से प्रताड़ित होने से भाग कर नगर के भीतर जा घुसे जिससे कृष्ण का सामना करने के लिए युद्धभूमि में केवल नरकासुर बच रहा।

दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकं ।
तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ।
नाकम्पत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; विद्रावितम्—भगाई हुई; सैन्यम्—सेना के; गरुडेन—गरुड़ द्वारा; अर्दितम्—तंग की गई; स्वकम्—अपनी; तम्—उस पर, गरुड़ पर; भौमः—भौमासुर ने; प्राहरत्—प्रहार किया; शक्त्या—अपने भाले से; वज्रः—(इन्द्र का) वज्र;

प्रतिहतः—उलट कर प्रहार किया गया; यतः—जिससे; न अकम्पत—वह (गरुड़) हिला नहीं; तया—उससे; विद्धः—प्रहार किया गया; माला—फूलों की माला से; आहतः—मारा गया; इव—सदृश; द्विपः—हाथी।.

जब भौम ने देखा कि गरुड़ द्वारा उसकी सेना खदेड़ी तथा सतायी जा रही है, तो उसने गरुड़ पर अपने उस भाले से आक्रमण किया जिससे उसने एक बार इन्द्र के वज्र को परास्त किया था। किन्तु उस शक्तिशाली हथियार से प्रहार किये जाने पर भी गरुड़ तिलमिलाये नहीं। निस्सन्देहवे फूलों की माला से प्रहार किए जाने वाले हाथी के समान थे।

शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः ।
तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ।
अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

शूलम्—त्रिशूल को; भौमः—भौम ने; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; हन्तुम्—मारने के लिए; आददे—ग्रहण किया; वितथ—व्यग्र; उद्यमः—प्रयास; तत्—उसके; विसर्गात्—छोड़ने से; पूर्वम्—पहले; एव—भी; नरकस्य—भौम का; शिरः—सिर; हरिः—भगवान् कृष्ण ने; अपाहरत्—काट दिया; गज—हाथी पर; स्थस्य—बैठे हुए; चक्रेण—चक्र से; क्षुर—छुरे सी; नेमिना—धार वाले।.

तब अपने सारे प्रयासों में विफल भौम ने भगवान् कृष्ण को मारने के लिए अपना त्रिशूल उठाया। किन्तु इसके पहले कि वह उसे चलाये, भगवान् ने अपने तेज धार वाले चक्र से हाथी के ऊपर बैठे हुए उस असुर के सिर को काट डाला।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार ज्योंही भौम ने अपना अजेय त्रिशूल उठाया, भगवान् के साथ गरुड़ पर आसीन सत्यभामा ने कृष्ण से कहा, ''उसका तत्क्षण वध कीजिये'' और कृष्ण ने वैसा ही किया।

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं
बभौ पृथिव्यां पतितम्समुज्ज्वलम् ।
ह हेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा
माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईदिरे ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

स—सहित; कुण्डलम्—कुण्डल; चारु—सुन्दर; किरीट—मुकुट से; भूषणम्—सुशोभित; बभौ—चमकने लगा; पृथिव्याम्—पृथ्वी पर; पतितम्—गिरा हुआ; समुज्ज्वलम्—चमकीला; हा हा इति—हाय हाय; साधु इति—बहुत अच्छा; ऋषयः—ऋषियों ने; सुर-ईश्वरः—तथा प्रमुख देवताओं ने; माल्यैः—फूल की मालाओं से; मुकुन्दम्—भगवान् कृष्ण की; विकिरन्तः—बिखरते हुए; ईडिरे—पूजा की।.

भूमि पर गिरे हुए भौमासुर का सिर तेजी से चमक रहा था क्योंकि यह कुण्डलों तथा

आकर्षक मुकुट से सज्जित था। ज्यों ही ''हाय हाय'' तथा ''बहुत अच्छा हुआ'' के क्रन्दन उठने लगे, त्योंही ऋषियों तथा प्रमुख देवताओं ने फूल-मालाओं की वर्षा करते हुए भगवान् मुकुन्द की पूजा की।

ततश्च भू: कृष्णमुपेत्य कुण्डले
प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे ।
सवैजयन्त्या वनमालयार्पयत्
प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; भूः—भूमिदेवी; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण के; उपेत्य—पास आकर; कुण्डले—दोनों कुण्डल (जो अदिति के थे); प्रतप्त—चमकीले; जाम्बूनद—सोना; रत्न—रत्नों से; भास्वरे—चमकते हुए; स—सहित; वैजयन्त्या—वैजयन्ती नामक; वन-मालया—तथा फूलों की माला से; अर्पयत्—भेंट किया; प्राचेतसम्—वरुण का; छत्रम्—छाता; अथ उ—तत्पश्चात; महा-मणिम्—मन्दर पर्वत की चोटी, मणिपर्वत।.

तब भूमिदेवी भगवान् कृष्ण के पास आईं और भगवान् को अदिति के कुण्डल भेंट किये जो चमकीले सोने के बने थे और जिसमें चमकीले रत्न जड़े थे। उसने उन्हें एक वैजयन्ती माला, वरुण का छत्र तथा मन्दर पर्वत की चोटी भी दी।

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ।
प्राञ्जलिः प्रणता राजन्भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४॥

शब्दार्थ

अस्तौषीत्—स्तुति की; अथ—तब; विश्व—ब्रह्माण्ड के; ईशम्—स्वामी की; देवी—देवी; देव—देवतागण का; वर—श्रेष्ठ; अर्चितम्—पूजित; प्राञ्जलिः—अपने हाथ जोड़ कर; प्रणता—प्रणाम किया; राजन्—हे राजा (परीक्षित); भक्ति—भक्ति; प्रवणया—से पूरित; धिया—प्रवृत्ति से।.

हे राजन्, उनको प्रणाम करके तथा उनके समक्ष हाथ जोड़े खड़ी वह देवी भक्ति-भाव से पूरित होकर ब्रह्माण्ड के उन स्वामी की स्तुति करने लगी जिनकी पूजा श्रेष्ठ देवतागण करते हैं।

भूमिरुवाच
नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर ।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

भूमिः उवाच—भूमिदेवी ने कहा; नमः—नमस्कार; ते—आपको; देव-देव—देवताओं के स्वामी; ईश—हे ईश्वर; शङ्ख—शंख; चक्र—चक्र; गदा—गदा; धर—हे धारण करने वाले; भक्त—अपने भक्तों की; इच्छा—इच्छा से; उपात्त—धारण किये हुए; रूपाय—आपके रूपों को; परम-आत्मन्—हे परमात्मा; नमः—नमस्कार; अस्तु—होए; ते—आपको।.

भूमिदेवी ने कहा : हे देवदेव, हे शंख, चक्र तथा गदा के धारणकर्ता, आपको नमस्कार है। हे परमात्मा, आप अपने भक्तों की इच्छाओं को पूरा करने के लिए विविध रूप धारण करते हैं। आपको नमस्कार है।

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्तेपङ्कजाङ्घ्रये ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

नमः—सादर नमस्कार; पङ्कज-नाभाय—भगवान् को, जिनके उदर के बीच में कमल के फूल जैसा गड्ढा है; नमः—नमस्कार; पङ्कज-मालिने—जो सदैव कमल के फूलों की माला से सुसज्जित रहते हैं; नमः—नमस्कार; पङ्कज-नेत्राय—जिनकी चितवन कमल के फूल जैसी शीतलता प्रदान करने वाली है; नमः ते—आपको नमस्कार; पङ्कज-अङ्घ्रये—आपको, जिनके पैरों के तलवों पर कमल के फूल अंकित हैं।

हे प्रभु, आपको मेरा सादर नमस्कार है। आपके उदर में कमल के फूल जैसा गड्ढा अंकित है, आप सदैव कमल के फूल की मालाओं से सुसज्जित रहते हैं, आपकी चितवन कमल जैसी शीतल है और आपके चरणों में कमल अंकित हैं।

तात्पर्य : महारानी कुन्ती ने भी यही स्तुति की थी जो *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कंध (१.८.२२) में पाई जाती है। इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद द्वारा की गई टीका से लिये गये हैं।

यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि कुन्ती द्वारा की गई स्तुति *श्रीमद्भागवत* में पहले आई है किन्तु यहाँ वर्णित घटना के अनेक वर्षों बाद उन्होंने यह स्तुति की थी।

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ।
पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; भगवते—भगवान् को; तुभ्यम्—आपको; वासुदेवाय—वासुदेव को, जो समस्त प्राणियों के आश्रय हैं; विष्णवे—सर्वव्यापक विष्णु को; पुरुषाय—आदि-पुरुष को; आदि—मूल, आदि; बीजाय—बीज को; पूर्ण—पूर्ण; बोधाय—ज्ञान को; ते—आपको; नमः—नमस्कार।

हे वासुदेव, हे विष्णु, हे आदि-पुरुष, हे आदि-बीज भगवान्, आपको सादर नमस्कार है। हे सर्वज्ञ, आपको नमस्कार है।

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अजाय—अजन्मा को; जनयित्रे—जनक; अस्य—इस (ब्रह्माण्ड) के; ब्रह्मणे—ब्रह्म को; अनन्त—असीम; शक्तये—जिनकी शक्तियाँ; पर—श्रेष्ठ; अवर—तथा निकृष्ट; आत्मन्—हे आत्मा; भूत—भौतिक जगत का; आत्मन्—हे आत्मा; परम-आत्मन्—हे परमात्मा जो सर्वव्यापी हैं; नमः—नमस्कार; अस्तु—हो; ते—आपको।

अनन्त शक्तियों वाले, इस ब्रह्माण्ड के अजन्मा जनक ब्रह्म, आपको नमस्कार है। हे वर तथा अवर के आत्मा, हे सृजित तत्त्वों के आत्मा, हे सर्वव्यापक परमात्मा, आपको नमस्कार है।

त्वं वै सिसृक्षुरज उत्कटं प्रभो
तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते
कालः प्रधानं पुरुषो भवान्परः ॥ २९॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; वै—निस्सन्देह; सिसृक्षुः—सृजन करने की इच्छा वाले; अजः—अजन्मा; उत्कटम्—प्रमुख; प्रभो—हे प्रभु; तमः—तमो गुण; निरोधाय—संहार के लिए; बिभर्षि—धारण करते हो; असंवृतः—अनावृत; स्थानाय—पालन के लिए; सत्त्वम्—सतो गुण; जगतः—ब्रह्माण्ड के; जगत्-पते—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; कालः—काल, समय; प्रधानम्—भौतिक प्रकृति (अपने आदि-रूप में); पुरुषः—स्रष्टा (भौतिक प्रकृति के साथ अंतः क्रिया करने वाला); भवान्—आप; परः—पृथक्, परे।

हे अजन्मा प्रभु, सृजन की इच्छा करके आप वृद्धि करते हैं और तब रजो गुण धारण करते हैं। इसी तरह जब आप ब्रह्माण्ड का संहार करना चाहते हैं, तो तमो गुण और जब इसका पालन करना चाहते हैं, तो सतो गुण धारण करते हैं। तो भी आप इन गुणों से अनाच्छादित रहते हैं। हे जगत्पति, आप काल, प्रधान तथा पुरुष हैं फिर भी आप पृथक् एवं भिन्न रहते हैं।

तात्पर्य : तृतीय पंक्ति में आया *जगत:* शब्द सूचित करता है कि सृजन, पालन तथा संहार के कार्य ब्रह्माण्ड के संदर्भ में आये हैं। *उत्कम्* शब्द सूचित करता है कि जब कोई कार्य किया जा रहा होता है—चाहे वह ब्रह्माण्ड का सृजन हो या पालन या संहार—तो उस कार्य से सम्बद्ध विशेष भौतिक गुण प्रधान बन जाता है।

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो
मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि ।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं
त्वय्यद्वितीये भगवनयं भ्रमः ॥ ०॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं (पृथ्वी); पयः—जल; ज्योतिः—अग्नि; अथ—तथा; अनिलः—वायु; नभः—आकाश; मात्राणि—विभिन्न इन्द्रिय-विषय (पाँच स्थूल तत्त्वों के संगत); देवाः—देवतागण; मनः—मन; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; कर्ता—करने वाले, मिथ्या

अहंकार; महान्—समग्र भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व); इति—इस प्रकार; अखिलम्—सम्पूर्ण; चर—चलायमान; अचरम्—जड़; त्वयि—तुम्हारे भीतर; अद्वितीये—अद्वितीय; भगवन्—हे प्रभु; अयम्—यह; भ्रमः—मोह।

यह भ्रम है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्रिय-विषय, देवता, मन, इन्द्रियाँ, मिथ्या अहंकार तथा महत् तत्त्व आपसे स्वतंत्र होकर विद्यमान हैं। वास्तव में वे सब आपके भीतर हैं क्योंकि हे प्रभु, आप अद्वितीय हैं।

तात्पर्य : भू-देवी अपनी स्तुति में दिव्य दर्शन की बारीकियों पर प्रकाश डालती हुई स्पष्ट करती हैं कि यद्यपि भगवान् अद्वितीय हैं और अपनी सृष्टि से पृथक् हैं किन्तु उनकी सृष्टि का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है और वह उन्हीं के भीतर टिकी हुई है। इस प्रकार भगवान् तथा उनकी सृष्टि एक ही समय अभिन्न तथा भिन्न हैं (अचिन्त्य भेदाभेद) जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने ५०० वर्ष पूर्व बतलाया था।

यह कहना कि हर वस्तु, बिना किसी भेद के, ईश्वर है निरर्थक है क्योंकि कोई भी ईश्वर की तरह कर्म नहीं कर सकता। कुत्ते, जूते तथा मनुष्य जैसी वस्तुएँ न तो सर्वशक्तिमान या सर्वज्ञ होते हैं, न ही वे जगत की रचना कर सकते हैं। दूसरी ओर, जिस बात में सारी वस्तुएँ एक हैं उसमें अर्थ निहित है क्योंकि हर वस्तु उसी परम सत्य का अंश है। चैतन्य महाप्रभु ने सूर्य तथा सूर्य-किरणों का अत्यन्त सार्थक दृष्टान्त दिया है। सूर्य तथा उसकी धूप एक ही यथार्थ हैं क्योंकि सूर्य वह स्वर्गिक पिंड है, जो चमकता है। दूसरी ओर सूर्य-गोला (मण्डल) तथा सूर्य-किरणों में आसानी से अन्तर किया जा सकता है। इस प्रकार ईश्वर का अपनी सृष्टि से एकत्व तथा उससे भिन्नता वास्तविकता की अन्तिम और संतोषप्रद व्याख्या है। जो कुछ भी विद्यमान है, वह ईश्वर की शक्ति है फिर भी वे उच्च शक्तिरूप जीवों को मुक्त इच्छा प्रदान करते हैं जिससे वे उनके निर्णयों तथा कार्यों के नैतिक तथा आध्यात्मिक गुण के लिए उत्तरदायी हो सकें।

इस समग्र दिव्य विज्ञान का स्पष्ट एवं ग्राह्य विवेचन *श्रीमद्भागवत* में पाया जाता है।

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं
भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ।
तत्पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं
शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका (भौमासुर का); आत्म-जः—पुत्र; अयम्—यह; तव—तुम्हारे; पाद—पाँव; पङ्कजम्—कमल सदृश; भीतः—डरा हुआ; प्रपन्न—शरणागत; आर्ति—दुख, शोक; हर—हे हरने वाले; उपसादितः—पास आया है; तत्—इसलिए; पालय—रक्षा करें; एनम्—उसकी; कुरु—रखिये; हस्त-पङ्कजम्—अपना कर-कमल; शिरसि—सिर पर; अमुष्य—उसके; अखिल—सारे; कल्मष—पाप; अपहम्—समूल नष्ट करने वाले।

यह भौमासुर का पुत्र है। यह भयभीत है और आपके चरणकमलों के समीु आ रहा है क्योंकि आप उन सबों के कष्टों को हर लेते हैं, जो आपकी शरण में आते हैं। कृपया इसकी रक्षा कीजिये। आप इसके सिर पर अपना कर-कमल रखें जो समस्त पापों को दूर करने वाला है।

तात्पर्य : यह भूमिदेवी अपने पोते के लिए संरक्षण माँगती है, जो अभी हाल ही में घटी भयावह घटनाओं से बुरी तरह डरा हुआ है।

श्रीशुक उवाच
इति भूम्यर्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया ।
दत्त्वाभयं भौमगृहम्प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; भूमि—भूमिदेवी द्वारा; अर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; वाग्भिः—उन शब्दों से; भगवान्—भगवान्; भक्ति—भक्तिपूर्वक; नम्रया—विनीत; दत्त्वा—देकर; अभयम्—अभय; भौम-गृहम्—भौमासुर के घर में; प्राविशत्—प्रविष्ट हुए; सकल—समस्त; ऋद्धि—ऐश्वर्य से; मत्—युक्त।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह विनीत भक्ति के शब्दों से भूमिदेवी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर परमेश्वर ने उसके पोते को अभय प्रदान किया और तब भौमासुर के महल में प्रवेश किया जो सभी प्रकार के ऐश्वर्य से पूर्ण था।

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; राजन्य—राजवर्ग की; कन्यानाम्—कन्याओं का; षट्-सहस्र—छह हजार; अधिक—से अधिक; अयुतम्—दस हजार; भौम—भौम द्वारा; आहृतानाम्—छीन ली गईं; विक्रम्य—बल से; राजभ्यः—राजाओं से; ददृशे—देखा; हरिः—भगवान् कृष्ण ने।

वहाँ भगवान् कृष्ण ने सोलह हजार से अधिक राजकुमारियाँ देखीं, जिन्हें भौम ने विभिन्न राजाओं से बलपूर्वक छीन लिया था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी पराशर मुनि का वह साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं जैसाकि *विष्णु पुराण* (५.२९.१) में उद्धृत है, जिसके अनुसार भौम के महल में १६ ० राजकुमारियाँ बन्दी थीं :

कन्यापुरे स कन्यानां षोडशातुल्यविक्रमः ।

शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामते॥

"हे विज्ञ! अद्वितीय पराक्रम वाले भगवान् ने राजकुमारियों के आवास-गृह से १६ ० कुमारियाँ ढूँढ़ निकालीं।"

विष्णु पुराण (५.२९.९) का अन्य प्रासंगिक श्लोक इस प्रकार है—

देवसिद्धासुरादीनां नृपानां च जनार्दन।

हृत्वा हि सोऽसुरः कन्या रुरोध निजमन्दिरे॥

"हे जनार्दन! वह असुर (भौमासुर) देवताओं, सिद्धों, असुरों तथा राजाओं की अविवाहिता पुत्रियों का हरण करके ले गया और उन्हें अपने महल में बन्दी बना लिया।"

तम्प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवर्यं विमोहिताः ।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; प्रविष्टम्—प्रवेश करते हुए; स्त्रियः—स्त्रियाँ; वीक्ष्य—देखकर; नर—मनुष्यों में; वर्यम्—श्रेष्ठ; विमोहिताः—मुग्ध; मनसा—अपने मनों में; वव्रिरे—चुना; अभीष्टम्—अभीष्ट; पतिम्—पति के रूप में; दैव—भाग्य से; उपसादितम्—लाई गई।

जब स्त्रियों ने पुरुषों में सर्वोत्तम पुरुष को प्रवेश करते देखा तो वे मोहित हो गईं। उन्होंने मन ही मन उन्हें, जो कि वहाँ भाग्यवश लाये गये थे, अपने अभीष्ट पति के रूप में स्वीकार कर लिया।

भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ।
इति सर्वाः पृथक्कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥ ५॥

शब्दार्थ

भूयात्—बन सके; पतिः—पति; अयम्—वह; मह्यम्—मेरा; धाता—विधाता; तत्—वह; अनुमोदताम्—स्वीकृति प्रदान करें; इति—इस प्रकार; सर्वाः—वे सभी; पृथक्—अलग-अलग; कृष्णे—कृष्ण में; भावेन—भाव से; हृदयम्—अपने हृदयों में; दधुः—रख लिया।

हर राजकुमारी ने इस विचार से कि "विधाता इस पुरुष को मेरा पति बनने का वर दें" अपने हृदय को कृष्ण के विचार में लीन कर दिया।

ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः ।
नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महात् ॥ ६॥

शब्दार्थ

ताः—उनको; प्राहिणोत्—भेजा; द्वारवतीम्—द्वारका तक; सु-मृष्ट—स्वच्छ; विरजः—निष्कलंक; अम्बराः—वस्त्रों से; नर-यानैः—मनुष्यों के वाहनों (पालकियों) द्वारा; महा—विशाल; कोशान्—खजाने; रथ—रथ; अश्वान्—तथा घोड़े; द्रविणम्—धन-सम्पदा; महत्—विस्तृत।

भगवान् ने राजकुमारियों को स्वच्छ, निर्मल वस्त्रों से सजवाया और फिर उन्हें रथ, घोड़े तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं के विशाल कोषों समेत पालकियों में द्वारका भिजवा दिया।

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः ।
पाण्डुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेरयामास केशवः ॥ ७॥

शब्दार्थ

ऐरावत—इन्द्र के वाहन ऐरावत के; कुल—कुल से; इभान्—हाथियों को; च—भी; चतुः—चार; दन्तान्—दाँत वाले; तरस्विनः—तेज; पाण्डुरान्—श्वेत; च—तथा; चतुः-षष्टिम्—चौंसठ; प्रेरयाम् आस—भेज दिया; केशवः—भगवान् कृष्ण ने।

भगवान् कृष्ण ने ऐरावत प्रजाति के कुल के चौंसठ तेज, सफेद एवं चार दाँतों वाले हाथी भी भिजवा दिये।

गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वादित्यै च कुण्डले ।
पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण महेन्द्र्याण्या च सप्रियः ॥ ८॥
चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारीजातं गरुत्मति ।
आरोप्य सेन्द्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ९॥

शब्दार्थ

गत्वा—जाकर; सुर—देवताओं के; इन्द्र—राजा के; भवनम्—धाम में; दत्त्वा—देकर; अदित्यै—इन्द्र की माता अदिति को; च—तथा; कुण्डले—उसके कुंडल; पूजितः—पूजा किया गया; त्रिदश—तीस (मुख्य देवताओं); इन्द्रेण—प्रधान द्वारा; महा-इन्द्र्याण्या—इन्द्राणी द्वारा; च—तथा; स—सहित; प्रियः—प्रियतमा (सत्यभामा); चोदितः—प्रेरित; भार्यया—अपनी पत्नी द्वारा; उत्पाट्य—उखाड़ कर; पारिजातम्—पारिजात वृक्ष को; गरुत्मति—गरुड़ पर; आरोप्य—रख कर; स-इन्द्रान्—इन्द्र सहित; विबुधान्—देवताओं को; निर्जित्य—हरा कर; उपानयत्—ले गया; पुरम्—अपनी नगरी में।

भगवान् तब इन्द्र के घर गये और माता अदिति को उनके कुंडल प्रदान किये। वहाँ इन्द्र तथा उसकी पत्नी ने कृष्ण तथा उनकी प्रिया सत्यभामा की पूजा की। फिर सत्यभामा के अनुरोध पर भगवान् ने स्वर्गिक पारिजात वृक्ष उखाड़ लिया और उसे गरुड़ की पीठ पर रख दिया। इन्द्र तथा अन्य सारे देवताओं को परास्त करने के बाद कृष्ण उस पारिजात को अपनी राजधानी ले आये।

स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ।
अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गन्धासवलम्पटाः ॥ ४०॥

शब्दार्थ

स्थापित:—स्थापित किया; सत्यभामाया:—सत्यभामा के; गृह—घर के; उद्यान—बाग को; उपशोभन:—सुन्दर बनाते हुए; अन्वगु:—पीछे लग गये; भ्रमरा:—भौंरे; स्वर्गात्—स्वर्ग से; तत्—उसकी; गन्ध—सुगन्ध; आसव—तथा मीठे रस के; लम्पटा:—लालची।

एक बार रोप दिये जाने पर पारिजात वृक्ष ने रानी सत्यभामा के महल के बाग को मनोहर बना दिया। इस वृक्ष की सुगन्ध तथा मधुर रस के लालची भौंरे स्वर्ग से ही इसका पीछा करने लगे थे।

ययाच आनम्य किरीटकोटिभि:
पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महा-
नहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

ययाच—उसने (इन्द्र ने) विनती की; आनम्य—झुक कर; किरीट—मुकुट की; कोटिभि:—नोकों से; पादौ—उनके चरणों; स्पृशन्—स्पर्श करते हुए; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; अर्थ—उसके (इन्द्र के) कार्य; साधनम्—पूरा करने के लिए; सिद्ध—पूरा हुआ; अर्थ:—जिसका प्रयोजन; एतेन—उनके साथ; विगृह्यते—झगड़ता है; महान्—महात्मा; अहो—निस्सन्देह; सुराणाम्—देवताओं के; च—तथा; तम:—अंधकार; धिक्—धिक्कार है; आढ्यताम्—उनकी सम्पत्ति को।

भगवान् अच्युत को नमस्कार करने, उनके पैरों को अपने मुकुट की नोकों से स्पर्श करने तथा अपनी इच्छा पूरी करने के लिए भगवान् से याचना करने के बाद भी, उस महान् देवता ने अपना काम सधवाने के बाद भगवान् से झगड़ना चाहा। देवताओं में कैसा अज्ञान समाया है! धिक्कार है उनके ऐश्वर्य को।

तात्पर्य : यह सुविदित है कि भौतिक सम्पत्ति तथा अधिकार से उच्छृंखलता आती है, अत: प्राय: ऐश्वर्यमय जीवन नरक का मार्ग प्रशस्त करने वाला बनता है।

अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ता: स्त्रिय: ।
यथोपयेमे भगवान्तावद्रूपधरोऽव्यय: ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अथ उ—और तब; मुहूर्ते—शुभ समय पर; एकस्मिन्—उसी; नाना—अनेक; अगारेषु—भवनों में; ता:—वे; स्त्रिय:—स्त्रियाँ; यथा—उचित रीति से; उपयेमे—विवाह किया; भगवान्—भगवान्; तावत्—उतने; रूप—रूप; धर:—धारण करते हुए; अव्यय:—अव्यय।

तब उन अव्यय महापुरुष ने प्रत्येक दुलहन (वधू) के लिए पृथक् रूप धारण करते हुए एकसाथ सारी राजकुमारियों से उनके अपने अपने भवनों में विवाह कर लिया।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील श्रीधर गोस्वामी की व्याख्या है, यहाँ पर *यथा* शब्द सूचित करता है कि

हर विवाह उचित रीति से सम्पन्न हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् के सारे सम्बन्धी, जिनमें उनकी माता देवकी भी सम्मिलित थीं, प्रत्येक महल में प्रकट हुए और हर विवाह में सम्मिलित हुए। चूँकि ये सारे विवाह एक ही समय सम्पन्न हुए, अत: यह घटना निश्चित रूप से भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का प्राकट्य था।

जब भगवान् कृष्ण कोई कार्य करते हैं, तो वे उसे अपने ढंग से करते हैं। अत: यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भगवान् एक ही समय १६ ० राजमहलों में स म्पन्न हो रहे १६ ० विवाहोत्सवों में प्रत्येक महल में अपने सारे सम्बन्धियों सहित प्रकट हुए। निस्सन्देह, भगवान् से ऐसी ही आशा की जाती है। आखिर, वे कोई सामान्य पुरुष तो हैं नहीं।

श्रील श्रीधर स्वामी यह भी कहते हैं कि इस विशेष अवसर पर भगवान् ने अपने हर महल में अपना आदि-रूप प्रकट किया। दूसरे शब्दों में, विवाह-प्रतिज्ञा में भाग लेने के लिए उन्होंने सारे महलों में एक से रूप (*प्रकाश*) प्रकट किये।

गृहेषु तासामनपाय्यतर्ककृ-
न्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थित: ।
रेमे रमाभिर्निजकामसम्प्लुतो
यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४॥

शब्दार्थ

गृहेषु—घरों में; तासाम्—उनके; अनपायी—कभी न छोड़ते हुए; अतर्क—अचिन्त्य; कृत्—किये गये कार्य; निरस्त—निराकरण किये गये; साम्य—समानता; अतिशयेषु—तथा श्रेष्ठता; अवस्थित:—रहते हुए; रेमे—रमण किया; रमाभि:—मनोहर स्त्रियों के साथ; निज—अपने; काम—आनन्द में; सम्प्लुत:—लीन; यथा—जिस प्रकार; इतर:—कोई अन्य व्यक्ति; गार्हक-मेधिकान्—गृहस्थ जीवन के कार्य; चरन्—सम्पन्न करता हुआ।

अचिन्त्य कृत्य करने वाले भगवान् निरन्तर अपनी प्रत्येक रानी के महल में रहने लगे जो अन्य किसी आवास की तुलना में अद्वितीय थे। वहाँ पर उन्होंने अपनी मनोहर पत्नियों के साथ रमण किया यद्यपि वे अपने आपमें पूर्ण तुष्ट रहते हैं और सामान्य पति की तरह अपने गृहस्थ कार्य सम्पन्न किये।

तात्पर्य : यहाँ पर *अतर्क-कृत्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *अतर्क* का अर्थ है "तर्क से परे।" भगवान् ऐसा कार्य कर सकते हैं (*कृत्*) जो संसारी तर्क से परे है, अत: अचिन्त्य है। किन्तु तो भी जो लोग उनके शरणागत हैं, वे कुछ हद तक भगवान् के कार्यों को सराह सकते हैं और समझ सकते हैं। *भक्ति*

का—भगवान् के प्रति प्रेमाभक्ति का—यही रहस्य है।

श्रील श्रीधर स्वामी की टीका है कि भगवान् सदैव घर पर रहते थे, सिवाय तब जब उन्हें सामान्य गृहस्थी के कार्यों से बाहर जाना पड़ता था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि चूँकि वैकुण्ठ में नारायण केवल लक्ष्मी के साथ ही रमण करते हैं जबकि द्वारका में कृष्ण हजारों रानियों के साथ रमण करते हैं अत: द्वारका को वैकुण्ठ से श्रेष्ठ मानना चाहिए। इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *स्कन्द पुराण* से निम्नलिखित उद्धरण दिये हैं—

षोडशैव सहस्राणि गोप्यस्तत्र समागत:।

हंस एव मत: कृष्ण: परमात्मा जनार्दन:॥

तस्यैता: शक्तयो देवि षोडशैव प्रकीर्तिता:।

चन्द्ररूपी मत: कृष्ण: कलारूपास्तु ता: स्मृता:॥

सम्पूर्णमण्डला तासां मालिनी षोडशी कला।

षोडशैव कला यासु गोपीरूपा वरांगने॥

एकैकशस्ता: सम्भिन्ना: सहस्रेण पृथक् पृथक्।

''उस स्थान पर सोलह हजार गोपियाँ कृष्ण के साथ एकत्र हुईं जिन्हें परमात्मा या समस्त जीवों का आश्रय कहा जाता है। हे देवी! ये गोपियाँ उनकी विख्यात सोलह शक्तियाँ हैं। कृष्ण चन्द्रमा के समान हैं, गोपियाँ उसकी कलाएँ हैं और गोपियों का सारा वृन्द चन्द्रमा की सोलह कलाओं की पूरी सरणि के तुल्य है। हे वरांगना! गोपियों के इन सोलह विभागों में से हर विभाग एक हजार अंशों में विभाजित है।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *पद्म पुराण* के *कार्तिक-माहात्म्य* से भी उद्धरण दिया है—*कैशोरे गोपकन्यास्ता यौवने राजकन्यका:*—वे जो अपनी किशोरावस्था में ग्वालों की पुत्रियाँ थीं वे ही अपनी युवावस्था में राजकुमारियाँ बन गईं। आचार्य ने आगे कहा है, ''जिस तरह द्वारका के ईश श्री वृन्दावन के परम पूर्ण भगवान् के अंश हैं उसी तरह उनकी पटरानियाँ उनकी परम पूर्ण ह्लादिनी शक्तियों—गोपियों—की पूर्ण अंश हैं।''

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता
ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुराग-
हासावलोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; रमा-पतिम्—लक्ष्मी-पति को; अवाप्य—प्राप्त करके; पतिम्—अपने पति रूप में; स्त्रियः—स्त्रियाँ; ताः—वे; ब्रह्मा-आदयः—ब्रह्मा तथा अन्य देवता; अपि—भी; न विदुः—नहीं जानते; पदवीम्—प्राप्त करने की विधियों को; यदीयाम्—जिसको; भेजुः—भाग लिया; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; अविरतम्—निरन्तर; एधितया—वर्धित; अनुराग—प्रेम का आकर्षण; हास—हँसी; अवलोक—चितवन; नव—नवीन; सङ्गम—साथ; जल्प—हास-परिहास; लज्जाः—तथा शर्म।

इस तरह उन स्त्रियों ने लक्ष्मी-पति को अपने पति के रूप में प्राप्त किया यद्यपि ब्रह्मा जैसे बड़े से बड़े देवता भी उन तक पहुँचने की विधि नहीं जानते। वे उनके प्रति निरन्तर वृद्धिमान अनुराग का अनुभव करतीं, उनसे हँसीयुक्त चितवन का आदान-प्रदान करतीं और हास-परिहास तथा स्त्रियोन्वित लज्जा से पूर्ण नित नवीन घनिष्ठता का आदान-प्रदान करतीं।

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपदशौच-
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैः
दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

प्रत्युद्गम—पास जाकर; आसन—बैठने का स्थान; वर—उच्च कोटि का; अर्हण—पूजा; पाद—उनके पाँव; शौच—प्रक्षालन; ताम्बूल—पान; विश्रमण—(उनके पाँव दबाकर) विश्राम करने में सहायता करतीं; वीजन—पंखा झलतीं; गन्ध—सुगन्धित वस्तुएँ (भेंट करतीं); माल्यैः—तथा फूल-मालाओं से; केश—बाल; प्रसार—सँवारती; शयन—बिस्तर पर लेटती; स्नपन—नहलातीं; उपहार्यैः—तथा भेंटें देकर; दासी—सेविकाएँ; शताः—सैकड़ों; अपि—यद्यपि; विभोः—शक्तिशाली भगवान् के लिए; विदधुः स्म—सम्पन्न किया; दास्यम्—सेवा।

यद्यपि भगवान् की प्रत्येक रानी के पास सैकड़ों दासियाँ थीं तो भी वे भगवान् के पास विनयपूर्वक जाकर, उन्हें आसन प्रदान करके, उत्तम सामग्री से उनकी पूजा करके, उनके पाँवों का प्रक्षालन करके तथा मालिश करके, उन्हें खाने के लिए पान देकर, उन्हें पंखा झलकर, उन्हें सुगन्धित चन्दन-लेप से लेपित करके, फूलों की माला से सजाकर, उनके बाल सँवारकर, उनका बिस्तर ठीक करके, उन्हें नहलाकर तथा उन्हें विविध उपहार देकर स्वयं उनकी सेवा करना पसन्द करतीं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''नरकासुर का वध'' नामक उनसठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter साठ

रुक्मिणी के साथ कृष्ण का परिहास

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण ने किस तरह अपने परिहास से महारानी रुक्मिणी को रुठाया और फिर शान्त किया और इस तरह प्रेमियों के कलह रूपी ऐश्वर्य का प्रदर्शन किया।

एक दिन भगवान् कृष्ण रानी रुक्मिणी के शयनागार में आराम से बैठे थे और रुक्मिणी तथा उनकी दासियाँ अनेक प्रकार से उनकी सेवा कर रही थीं। रुक्मिणी सदैव कृष्ण की मन:स्थिति अनुसार उत्तर देती थीं, चाहे वे जैसी भी हो। इस अवसर पर भगवान् ने रुक्मिणी की ओर ताका जिसका सौन्दर्य अनिन्द्य था और उसे तंग करने लगे, ''पूर्वकाल में अनेक धनी, रूपवान तथा चरित्रवान राजा तुमसे ब्याह करना चाहते थे। हाँ, तुम्हारे पिता तथा भाई तुम्हारी शादी शिशुपाल से करना चाहते थे। तो फिर तुमने मुझ जैसे अनुपयुक्त पति को क्यों चुना, जो एक बार जरासन्ध के भय से अपना राज्य छोड़कर, समुद्र की ओर भाग आया? यही नहीं, मैं सांसारिक नैतिकता का उल्लंघन करने वाला हूँ और पास में कुछ न होने के कारण निर्धनों को प्रिय हूँ। निश्चय ही जो लोग सम्पन्न हैं, वे मुझ जैसे की पूजा करना नहीं चाहेंगे।

''जब पुरुष तथा स्त्री एक ही समान सामाजिक श्रेणी, प्रभाव, शारीरिक सौन्दर्य इत्यादि के होते हैं, तभी उनमें विवाह या मैत्री निभ सकती है। किन्तु अपनी संकुचित दृष्टि के कारण तुमने ऐसा पति चुना है, जिसमें सभी सद्गुणों का अभाव है और जो केवल भिक्षुकों द्वारा प्रशंसित है। अच्छा होता कि तुमने किसी प्रमुख योद्धा से ब्याह किया होता। तब तुम इस जीवन में तथा अगले जीवन में सुखी रह सकती थी। तुम्हारा भाई रुक्मी तथा शिशुपाल जैसे राजा मुझसे द्वेष रखते हैं और इन लोगों के गर्व को चूर करने के लिए ही मैंने तुम्हारा हरण किया था। किन्तु जहाँ तक शरीर, घर, पत्नी तथा बच्चों की बात है, मैं उनके प्रति अन्यमनस्क हूँ क्योंकि मैं आत्मतुष्ट ईश्वर हूँ, जो समस्त संसारी कार्यों के परे है।''

इस तरह रुक्मिणी के इस आत्मविश्वास को भंग करते हुए कि वे अपने पति की कृपापात्र हैं, श्रीकृष्ण ने बातें समाप्त कर दीं। इस पर रुक्मिणी फूट-फूटकर रोने लगीं और अतीव भय, पीड़ा तथा

दुख से स्तम्भित होकर अचेत हो गईं। श्रीकृष्ण ने देखा कि रुक्मिणी ने उनके परिहास को गलत समझा है अतएव उनके प्रति करुणा उमड़ आई। उन्होंने रुक्मिणी को फर्श से उठाकर मुख चूमते हुए सान्त्वना दी, ''मैं जानता हूँ कि तुम पूरी तरह मुझमें अनुरक्त हो। मैंने तो तुम्हारे कमल-मुख को तिलमिलाते देखने की उत्सुकता से तुम्हें तंग किया है। अपनी प्राणप्रिया से परिहास करना गृहस्थों का सबसे बड़ा आनन्द है।''

इन शब्दों से रुक्मिणी के मन से तिरस्कृत होने का भय जाता रहा। यह देखकर कि कृष्ण ने यह सब परिहास में कहा है, वे बोलीं, ''आपने हम दोनों के बीच जिस असमानता की बात कही है, वह वास्तव में सही है। निस्सन्देह कोई भी आपके तुल्य नहीं है। आप तो तीनों देवों—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—के सर्वशक्तिमान स्वामी हैं।'' यह दिखाने के लिए कि कृष्ण ने अपने को तुच्छ बताने वाली जो बातें कहीं हैं, वे वास्तव में प्रशंसा हैं, रुक्मिणी आगे बोलती रहीं।

तब कृष्ण ने अतीव स्नेहपूर्वक रुक्मिणी से कहा, ''मैंने अपने परिहास से तुम्हारे मन को क्षुब्ध नहीं करना चाहा था। मैं तो तुम्हारे सतीत्व की शक्ति का प्रदर्शन देखना चाहता था। जो भी व्यक्ति गृहस्थजीवन में इन्द्रिय-तृप्ति तथा सुख के लिए मुझसे प्रार्थना करता है, वह मेरी मोहिनी शक्ति माया द्वारा ठगा जाता है। ऐसा व्यक्ति अधम जन्म प्राप्त करेगा। शायद दुष्ट इच्छाओं वाली सामान्य स्त्रियाँ श्रद्धापूर्वक मेरी वैसी पूजा नहीं कर पातीं जैसे कि तुमने की है। अपने विवाह के समय तुमने किसी राजसी वर के प्रति रुचि नहीं दिखलाई प्रत्युत तुमने मेरे पास ब्राह्मण-दूत भेजा। इस तरह तुम निश्चित रूप से मेरी समस्त प्रियतमाओं में सर्वाधिक प्रिय हो।''

इस तरह ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी रूपी लक्ष्मी के साथ परिहास में आनन्द प्राप्त किया। इसी तरह उन्होंने अन्य रानियों के महलों में गृहस्थ के सारे कर्तव्यों को पूरा किया।

श्रीबादरायणिरुवाच
कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ।
पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः—बादरायण व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गोस्वामी ने; उवाच—कहा; कर्हिचित्—एक अवसर पर; सुखम्—सुखपूर्वक; आसीनम्—बैठे हुए; स्व—अपने; तल्प—बिस्तर में; स्थम्—स्थित; जगत्—ब्रह्माण्ड के; गुरुम्—गुरु; पतिम्—अपने पति को; पर्यचरत्—सेवा कर रही थी; भैष्मी—रुक्मिणी; व्यजनेन—पंखे से; सखी-जनैः—अपनी सखियों सहित।

श्री बादरायणि ने कहा : एक बार अपनी दासियों के साथ महारानी रुक्मिणी ब्रह्माण्ड के आध्यात्मिक गुरु अपने पति की सेवा कर रही थीं। वे उनके बिस्तर पर विश्राम कर रहे थे तथा वे उन पर पंखा झल रही थीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने काव्यात्मक टिप्पणी में कहा है कि इस अध्याय में रुक्मिणी उस सुगंधित कपूर की तरह हैं, जिन्हें भगवान् कृष्ण की वाणी की सिल पर पीस दिया गया हो। दूसरे शब्दों में, रुक्मिणी के मनोहर सात्विक गुणों का प्राकट्य भगवान् कृष्ण के ऊपरी असंवेदनशील वचनों के फलस्वरूप होगा, जिस प्रकार कपूर की सुगन्ध कपूर के खण्डों को सिल पर पीसने से प्रकट होती है। आचार्य ने यह भी इंगित किया है कि रुक्मिणी भगवान् की सेवा स्वयं इसलिए कर रही हैं, क्योंकि वे *जगद्गुरुम्* तथा *पतिम्* अर्थात् जगत् गुरु तथा उनके पति हैं।

यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ।
स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; तु—तथा; एतत्—यह; लीलया—खेल की तरह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; सृजति—उत्पन्न करता है; अत्ति—निगल जाता है; अवति—रक्षा करता है; ईश्वरः—परम नियन्ता; सः—वह; हि—निस्सन्देह; जातः—उत्पन्न; स्व—निजी; सेतूनाम्—नियमों की; गोपीथाय—सुरक्षा के लिए; यदुषु—यदुओं के मध्य; अजः—अजन्मा प्रभु।

इस ब्रह्माण्ड को खेल-खेल में उत्पन्न करने वाले, उसका पालन करने वाले तथा अन्त में उसको निगल जाने वाले अजन्मे परम नियन्ता भगवान् ने अपने नियमों को सुरक्षित रखने के लिए यदुओं के मध्य जन्म लिया।

तात्पर्य : जैसाकि *श्रीमद्भागवत* के छठे स्कंध (६..१९) में कहा गया है— *धर्मं तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतम्*—अर्थात् धर्म भगवान् द्वारा स्थापित कानून है। *सेतु* का अर्थ है "सीमा" जैसी कि बाँध में होती है। किसी नदी या नहर के दोनों ओर मिट्टी उठा दी जाती है, जिससे पानी अपने सही मार्ग से विचलित न हो। इसी प्रकार ईश्वर नियमों की स्थापना करते हैं जिससे उन्हें पालन करने वाले लोग भगवद्धाम वापस जा सकें। मानव आचरण का मार्गदर्शन कराने वाले ये नियम *सेतु* कहलाते हैं।

सेतु शब्द पर एक और टिप्पणी यह है कि *सेतु* का प्रयोग खेतों के पृथक्करण अथवा उन पर बनी मेड़ या पुल बनाने के लिए भी होता है। अतः *भागवत* के नवें स्कंध में भगवान् रामचन्द्र द्वारा लंका जाने के लिए जो पुल बनाया गया उसे *सेतु* कहा गया है। चूँकि ईश्वर के नियम हमें भौतिक जीवन से

मुक्त दिव्य जीवन तक ले जाने के लिए पुल का काम करते हैं इसलिए *सेतु* शब्द का ऐसा व्यवहार दृष्टव्य है।

तस्मिनन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना ।
विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ॥
मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ।
जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४॥
पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ।
धूपैरगुरुजै राजन्जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५॥
पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे ।
उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥ ६॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उसमें; अन्तः-गृहे—महल के भीतरी भाग में; भ्राजत्—चमकीली; मुक्ता—मोतियों की; दाम—डोरियों से; विलम्बिना—लटकती हुई; विराजिते—चमकीली; वितानेन—चँदोवे से; दीपैः—दीपकों से; मणि—मणियों के; मयैः—निर्मित; अपि—भी; मल्लिका—चमेली की; दामभिः—मालाओं से; पुष्पैः—फूलों से; द्विरेफ—भौंरों के; कुल—झुंड के साथ; नादिते—शब्दायमान; जाल—झरोखों के; रन्ध्र—छोटे छोटे छेदों से होकर; प्रविष्टैः—प्रविष्ट; च—तथा; गोभिः—किरणों से; चन्द्रमसः—चन्द्रमा की; अमलैः—निर्मल; पारिजात—पारिजात वृक्षों के; वन—कुंज के; आमोद—सुगंध (वहन करते); वायुना—हवा द्वारा; उद्यान—बगीचे की; शालिना—उपस्थिति लाते हुए; धूपैः—धूप से; अगुरु—अगुरु से; जैः—उत्पन्न; राजन्—हे राजा (परीक्षित); जाल-रन्ध्र—झरोखे के छेदों से; विनिर्गतैः—बाहर निकलते हुए; पयः—दूध के; फेन—झाग; निभे—सदृश; शुभ्रे—चमकीला; पर्यङ्के—बिस्तर पर, सेज पर; कशिपु—तकिया पर; उत्तमे—सर्वश्रेष्ठ; उपतस्थे—सेवा कर रही थी; सुख—सुखपूर्वक; आसीनम्—बैठे; जगताम्—सारे लोकों के; ईश्वरम्—परम नियन्ता; पतिम्—अपने पति की।.

महारानी रुक्मिणी के कमरे अत्यन्त सुन्दर थे। उसमें एक चँदोवे से मोतियों की चमकीली लड़ें लटक रही थीं और तेजोमय मणियाँ दीपकों का काम दे रही थीं। उसमें यत्र-तत्र चमेली तथा अन्य फूलों की मालाएँ लटक रही थीं जिनसे गुनगुनाते भौंरों के समूह आकृष्ट हो रहे थे और चन्द्रमा की निर्मल किरणें जाली की खिड़कियों के छेदों से होकर चमक रही थीं। हे राजन्, जब इन खिड़कियों के छेदों में से अगुरु की सुगंध बाहर निकलती तो पारिजात कुंज की सुगंध को ले जाने वाली मन्द बयार कमरे के भीतर बगीचे का वातावरण पैदा कर देती। इस कमरे में महारानी समस्त लोकों के परमेश्वर अपने पति की सेवा कर रही थीं जो उनके मुलायम तथा दूध के फेन जैसे सफेद बिस्तर पर एक भव्य तकिये के सहारे बैठे थे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार रुक्मिणी का महल आज की ही तरह तब भी विख्यात था। यह वर्णन उसके ऐश्वर्य की झाँकी प्रस्तुत करता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि इस

श्लोक के *अमलै* का पाठान्तर *अरुणै* भी हो सकता है, जो यह सूचित करेगा कि जब यह लीला हो रही थी तब चन्द्रमा उसी समय उदय हुआ था और सारे महल को सुन्दर चाँदनी की लालिमा से नहला रहा था।

वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् ।
तेन वीजयती देवी उपासां चक्र ईश्वरम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

वाल—चमरी के बाल के; व्यजनम्—पंखे को; आदाय—लेकर; रत्न—रत्न की; दण्डम्—डंडी वाले; सखी—अपनी सहेली के; करात्—हाथ से; तेन—उससे; वीजयती—पंखा झलती; देवी—देवी; उपासाम् चक्रे—पूजा की; ईश्वरम्—अपने स्वामी की।.

देवी रुक्मिणी ने अपनी दासी के हाथ से रत्नों की डंडी वाला चमरी के बाल का पंखा ले लिया और तब अपने पति पर पंखा झलकर सेवा करने लगीं।

सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां
रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ।
वस्त्रान्तगूढकुचकुङ्कुमशोणहार-
भासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या ॥ ८॥

शब्दार्थ

सा—वह; उप—समीप; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण के; क्वणयती—शब्द करती; मणि—मणिजटित; नूपुराभ्याम्—अपने नूपुरों से; रेजे—सुन्दर लग रही थी; अङ्गुलीय—अँगूठी; वलय—चूड़ियाँ; व्यजन—तथा पंखे सहित; अग्र-हस्ता—अपने हाथ में; वस्त्र—अपने वस्त्र के; अन्त—छोर से; गूढ—छिपे; कुच—स्तनों से; कुङ्कुम—सिंदूर से; शोण—लाल हुए; हार—गले के हार की; भासा—चमक से; नितम्ब—उसके कूल्हे पर; धृतया—पहनी हुई; च—तथा; परार्ध्य—बहुमूल्य; काञ्च्या—करधनी से।.

महारानी रुक्मिणी का हाथ अँगूठियों, चूड़ियों तथा चामर पंखे से सुशोभित था और वे भगवान् कृष्ण के निकट खड़ी हुई अतीव सुन्दर लग रही थीं। उनके रत्नजटित पायल शब्द कर रहे थे तथा उनके गले की माला चमचमा रही थी जो उनकी साड़ी के पल्ले से ढके उनके स्तनों पर लगे कुमकुम से लाल लाल हो रही थी। वे अपनी कमर में अमूल्य करधनी पहने थीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि जब महारानी रुक्मिणी तेजी से भगवान् पर पंखा झल रही थीं तो उनके सुन्दर अंगों के रत्न तथा स्वर्णाभूषण शब्द कर रहे थे।

तां रूपिणीं श्रीयमनन्यगतिं निरीक्ष्य
या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ।

प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठ-
वक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; रूपिणीम्—रूप धारण किये; श्रीयम्—लक्ष्मी को; अनन्य—जिसके कोई अन्य न हो, एकमात्र; गतिम्—लक्ष्य; निरीक्ष्य—देखकर; या—जो; लीलया—लीला के रूप में; धृत—धारण करने वाले; तनोः—शरीरों के; अनुरूप—संगत; रूपा—जिसके रूप; प्रीतः—प्रसन्न; स्मयन्—हँसते हुए; अलक—बालों के गुच्छे; कुण्डल—कान के आभूषण; निष्क—गले का आभूषण; कण्ठ—गले में; वक्त्र—मुखमंडल; उल्लसत्—चमकता हुआ एवं सुखी; स्मित—हँसी; सुधाम्—अमृत; हरिः—कृष्ण ने; आबभाषे—कहा।

ज्योंही भगवान् कृष्ण ने उनका लक्ष्मी के रूप में चिन्तन किया, जो केवल उन्हें ही चाहती हैं, तो उन्हें मन्द हँसी आ गई। भगवान् अपनी लीलाएँ करने के लिए नाना रूप धारण करते हैं और वे यह सोच कर अत्यन्त प्रसन्न थे कि लक्ष्मी ने जो रूप धारण कर रखा था वह उनकी प्रेयसी होने के अनुरूप था। उनका मनोहर मुखमण्डल घुँघराले बालों, कुण्डलों, गले में पड़े हार तथा उनकी उज्जवल प्रसन्न मुसकान के अमृत से सुशोभित था। तब भगवान् ने उनसे इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने *विष्णु पुराण* का एक रोचक श्लोक उद्धृत किया है, जो श्री पराशर द्वारा कहा गया है—

देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपं वै करोत्येषात्मनस्तनुम्॥

''जब भगवान् देवता के रूप में प्रकट होते हैं, तो वे (लक्ष्मी) देवी का रूप धारण करती हैं और जब वे मनुष्य रूप में प्रकट होते हैं, तो वे भी मानुषी रूप धारण करती हैं। इस तरह उनके द्वारा धारण किया हुआ शरीर भगवान् विष्णु द्वारा धारण किये गये रूप से मेल खाता है।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि भगवान् कृष्ण वैकुण्ठ-पति से भी अधिक सुन्दर हैं और कृष्ण की प्रेयसी रुक्मिणीदेवी वैकुण्ठ-लोक की लक्ष्मी से भी अधिक रूपवती हैं।

श्रीभगवानुवाच
राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ।
महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; राज-पुत्रि—हे राजकुमारी; ईप्सिता—(तुम्हीं) अभीष्ट (थीं); भू-पैः—राजाओं द्वारा; लोक—लोकों के; पाल—शासकों जैसे; विभूतिभिः—शक्तियों वाले; महा—महान्; अनुभावैः—प्रभाव वाले; श्री-मद्भिः—ऐश्वर्यशाली; रूप—सौन्दर्य से युक्त; औदार्य—उदारता; बल—तथा शारीरिक बल; ऊर्जितैः—समन्वित।

भगवान् ने कहा : हे राजकुमारी, तुम्हारे साथ लोकपालों जैसे शक्तिशाली अनेक राजा पाणिग्रहण करना चाहते थे। वे सभी राजनैतिक प्रभाव, सम्पत्ति, सौन्दर्य, उदारता तथा शारीरिक शक्ति से ऊर्जित थे।

तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ।
दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; प्राप्तान्—आये हुए; अर्थिनः—चाहने वालों को; हित्वा—अस्वीकार करके; चैद्य—शिशुपाल; आदीन्—इत्यादि को; स्मर—कामदेव द्वारा; दर्मदान्—उन्मत्त; दत्ता—दी गई; भ्रात्रा—तुम्हारे भाई द्वारा; स्व—अपने; पित्रा—पिता द्वारा; च—तथा; कस्मात्—क्यों; नः—हमको; ववृषे—तुमने चुना; असमान्—असमान।

जब तुम्हें तुम्हारे भाई तथा पिता ने उनको अर्पित कर दिया था, तो फिर तुमने चेदि के राजा तथा उन अन्य विवाहार्थियों को क्यों अस्वीकार कर दिया जो कामदेव द्वारा उन्मत्त हुए तुम्हारे समक्ष खड़े थे? तुमने हमें क्यों चुना जो रंच-भर भी तुम्हारे समान नहीं हैं?

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रु समुद्रं शरणं गतान् ।
बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

राजभ्यः—राजाओं से; बिभ्यतः—भयभीत; सु-भ्रु—हे सुन्दर भौंहों वाली; समुद्रम्—समुद्र के पास; शरणम्—शरण के लिए; गतान्—गए हुए; बल-वद्भिः—बलवानों के प्रति; कृत-द्वेषान्—शत्रुता दिखला चुके हुए; प्रायः—अधिकांशतः; त्यक्त—छोड़ा हुआ; नृप—राजा के; आसनान्—आसन को।

हे सुन्दर भौंहों वाली, इन राजाओं से भयभीत होकर हमने समुद्र में शरण ली। हम शक्तिशाली व्यक्तियों के शत्रु बन गए और हमने अपने राज सिंहासन को प्रायः त्याग दिया था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : ‘‘यहाँ भगवान् की मनोवृत्ति को इस प्रकार समझा जा सकता है : ‘जब मैंने रुक्मिणी को स्वर्गिक पारिजात वृक्ष का एक फूल लाकर दिया था, तो सत्यभामा ने इतना क्रोध प्रकट किया कि मैं उसके चरणों पर अपना सिर झुकाकर भी उसे शान्त नहीं कर पाया था। जब मैंने उसे पूरा पारिजात वृक्ष लाकर दिया तब जाकर वह प्रसन्न हुई थी। किन्तु रुक्मिणी ने जब मुझे सत्यभामा को पूरा वृक्ष देते हुए देखा तो भी कोई क्रोध प्रदर्शित नहीं किया। तो भला मैं किस तरह इस पत्नी के क्रुद्ध वचनों का अमृतपान कर सकता हूँ जो

ईर्ष्यारहित है, जो अत्यन्त गम्भीर है और जो सदैव मधुर वचन बोलती है?'' इस प्रकार विचार करते हुए भगवान् ने निश्चय किया, 'यदि मैं उससे इस तरह बोलूँ तो इसका क्रोध उभार सकूँगा।' कुछ विद्वान कृष्ण के रुक्मिणी के प्रति ऐसे बोलने की व्याख्या इस तरह से करते हैं।''

आचार्य के अनुसार *बलवद्‌भिः कृतद्वेषान् प्रायः* शब्दों से यह सूचित होता है कि कृष्ण ने अपने अवतार के समय प्रायः समस्त समकालीन राजाओं का विरोध किया और केवल कुछ को—यथा पाण्डवों तथा अपने कुल के स्वामिभक्त सदस्यों को—ही अपना मित्र बनाया। निस्सन्देह, जैसाकि दशम स्कंध के प्रारम्भ में कहा गया है, भगवान् कृष्ण विशेष रूप से इसीलिए प्रकट हुए क्योंकि पृथ्वी असंख्य घटिया राजाओं से बोझिल हो चुकी थी और वे इस बोझ को दूर करना चाहते थे।

अन्त में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि *त्यक्तनृपासनान्* शब्द इस बात को सूचित करता है कि कंस का वध कर देने के बाद कृष्ण ने राजसिंहासन नम्रता से अपने नाना उग्रसेन को दे दिया था यद्यपि वे स्वयं इसके अधिकारी थे।

अस्पष्टवर्त्मनाम्पुंसामलोकपथमीयुषाम् ।
आस्थिताः पदवीं सुभ्रु प्रायः सीदन्ति योषितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

अस्पष्ट—अनिश्चित; वर्त्मनाम्—आचरण वाले; पुंसाम्—पुरुषों के; अलोक—सामान्य समाज द्वारा अस्वीकार्य; पथम्—मार्ग को; ईयुषां—ग्रहण करने वाले; आस्थिताः—अनुसरण करते हुए; पदवीम्—मार्ग को; सु-भ्रु—हे सुन्दर भौंहों वाली; प्रायः—सामान्यतया; सीदन्ति—कष्ट पाती हैं; योषितः—स्त्रियाँ।

हे सुन्दर भौंहों वाली, जब स्त्रियाँ ऐसे पुरुषों के साथ रहती हैं जिनका आचरण अनिश्चित होता है और जो समाज-सम्मत मार्ग का अनुसरण नहीं करते तो प्रायः उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है।

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ।
तस्मा त्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥ १४॥

शब्दार्थ

निष्किञ्चनाः—जिनके पास कुछ भी नहीं है; वयम्—हम; शश्वत्—सदैव; निष्किञ्चन-जन—उन्हें, जिनके पास कुछ भी नहीं है; प्रियाः—प्रिय; तस्मात्—इसलिए; प्रायेण—प्रायः; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; आढ्याः—धनी; माम्—मुझको; भजन्ति—पूजते हैं; सु-मध्यमे—हे सुन्दर कटि वाली।

हमारे पास भौतिक सम्पत्ति नहीं है और हम उन्हें ही प्रिय हैं जिनके पास हमारी ही तरह कुछ भी नहीं होता। इसलिए हे सुमध्यमे, धनी लोग शायद ही हमारी पूजा करते हों।

तात्पर्य : भगवान् की ही तरह उनके भक्तगण भी कृष्णभावनामृत के श्रेष्ठ आनन्द के प्रति जागृत होने से भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति में अरुचि रखते हैं। जो लोग भौतिक सम्पत्ति से मदान्ध हैं, वे भगवद्धाम की परम सम्पत्ति को नहीं जान पाते।

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।
तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ययोः—जिन दो का; आत्म-समम्—अपने समान; वित्तम्—सम्पत्ति; जन्म—जन्म; ऐश्वर्य—प्रभाव; आकृतिः—तथा शारीरिक स्वरूप; भवः—भावी सन्तान; तयोः—दोनों का; विवाहः—विवाह; मैत्री—मित्रता; च—तथा; न—नहीं; उत्तम—श्रेष्ठ का; अधमयोः—तथा निम्न; क्वचित्—कभी।

विवाह तथा मैत्री उन दो मनुष्यों के बीच ही उचित होती है जो समान सम्पत्ति, जन्म, प्रभाव, आकृति तथा उत्तम सन्तान की क्षमता वाले हों, किन्तु उत्तम तथा अधम के बीच कभी नहीं।

तात्पर्य : उत्तम तथा अधम गुणों वाले व्यक्ति स्वामी तथा सेवक या गुरु तथा शिष्य के रूप में एकसाथ रह सकते हैं किन्तु विवाह तथा मैत्री केवल समान पद वालों में ठीक रहती है। विवाह के प्रसंग में *भव* शब्द सूचित करता है कि दम्पत्ति में अच्छी सन्तान उत्पन्न करने की समान क्षमता होनी चाहिए।

यहाँ पर भगवान् कृष्ण अपने आपको भौतिक दृष्टि से अयोग्य ठहराते हैं। वस्तुतः भगवान् में कोई भी भौतिक गुण नहीं पाया जाता—वे नितान्त शुद्ध आध्यात्मिक जगत में रहते हैं। इस प्रकार भगवान् का सारा ऐश्वर्य शाश्वत होता है। वह घटिया संसारी किस्म का नहीं होता।

वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयादीर्घसमीक्षया ।
वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

वैदर्भि—हे विदर्भ की राजकुमारी; एतत्—यह; अविज्ञाय—न जानते हुए; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अदीर्घ-समीक्षया—दूर-दृष्टि के बिना; वृताः—चुना; वयम्—हम; गुणैः—सद्गुणों से; हीनाः—रहित; भिक्षुभिः—भिखारियों द्वारा; श्लाघिताः—प्रशंसित; मुधा—मोहवश।

हे वैदर्भी, दूरदर्शी न होने से तुमने इसका विचार नहीं किया और इसीलिए तुमने अपने पति रूप में हमें चुना है यद्यपि हममें कोई सद्गुण नहीं हैं और मुग्ध भिखारी ही हमारी प्रशंसा करते हैं।

अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ।
येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७॥

शब्दार्थ

अथ—अब; आत्मनः—अपने; अनुरूपम्—उपयुक्त; वै—निस्सन्देह; भजस्व—स्वीकार करो; क्षत्रिय-ऋषभम्—किसी उच्च कोटि के राजवर्ग को; येन—जिससे; त्वम्—तुम; आशिषः—आशाएँ; सत्याः—पूरी हो सकने वाली; इह—इस जीवन में; अमुत्र—अगले जीवन में; च—भी; लप्स्यसे—प्राप्त करोगी।

अब तुम्हें चाहिए कि अधिक उपयुक्त किसी उच्च कोटि के राजन्य पुरुष को स्वीकार कर लो जो तुम्हें इस जीवन तथा अगले जीवन में भी ऐसी प्रत्येक वस्तु को प्राप्त करने में सहायता कर सके, जो तुम चाहती हो।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण अपनी सुन्दर पत्नी का प्रणयकोप जागृत करके उसे तंग करने जा रहे हैं।

चैद्यशाल्वजरासन्ध दन्तवक्रादयो नृपाः ।
मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

चैद्य-शाल्व-जरासन्ध-दन्तवक्र-आदयः—चैद्य (शिशुपाल), शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र इत्यादि; नृपाः—राजागण; मम—मुझसे; द्विषन्ति—घृणा करते हैं; वाम-ऊरु—हे सुन्दर जाँघों वाली; रुक्मी—रुक्मी; च अपि—भी; तव—तुम्हारा; अग्र-जः—बड़ा भाई।

हे सुन्दर जांघों वाली भद्रे, शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध तथा दन्तवक्र जैसे सभी राजा मुझसे घृणा करते हैं और उसी तरह तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी भी करता है।

तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ।
आनितासि मया भद्रे तेजोपहरतासताम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उन सबों का; वीर्य—अपनी शक्ति के; मद—नशे से; अन्धानाम्—अन्धे हुए; दृप्तानाम्—घमंडी; स्मय—उद्दंडता; नुत्तये—दूर करने के लिए; आनिता असि—तुम्हें विवाह में हर लिया गया; मया—मेरे द्वारा; भद्रे—कल्याणी, भद्र महिला; तेजः—बल; उपहरता—हटाते हुए; असताम्—दुष्टों के।

इन्हीं राजाओं की उद्दंडता को दूर करने के लिए ही, हे कल्याणी, मैं तुम्हें हर ले आया क्योंकि वे सभी शक्ति के मद से अन्धे हो चले थे। मेरा उद्देश्य दुष्टों की शक्ति को चूर करना था।

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ।
आत्मलब्ध्यास्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

उदासीनाः—अन्यमनस्क; वयम्—हम; नूनम्—निस्सन्देह; न—नहीं; स्त्री—पत्नियों; अपत्य—सन्तानों; अर्थ—तथा धन के लिए; कामुकाः—लालसा करते हुए, लोलुप; आत्म-लब्ध्या—आत्मतुष्ट होकर; आस्महे—हम रह रहे हैं; पूर्णाः—पूर्ण; गेहयोः—शरीर तथा घर के प्रति; ज्योतिः—अग्नि की तरह; अक्रियाः—किसी कार्य में न लगे हुए।

हम स्त्रियों, बच्चों तथा सम्पत्ति की तनिक भी परवाह नहीं करते। सदैव आत्मतुष्ट रहते हुए हम शरीर तथा घर के लिए कार्य नहीं करते बल्कि प्रकाश की तरह हम केवल साक्षी रहते हैं।

श्रीशुक उवाच

एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ।
मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एतावत्—इतना; उक्त्वा—कहकर; भगवान्—भगवान्; आत्मानम्—अपने आप; वल्लभाम्—प्रिया को; इव—सदृश; मन्यमानाम्—मानते हुए; अविश्लेषात्—(उससे) कभी विलग न होने से; तत्—उस; दर्प—घमंड का; घ्नः—विनाश करने वाला; उपारमत्—बन्द कर दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : रुक्मिणी ने अपने को भगवान् की विशिष्ट प्रिया समझ रखा था क्योंकि उन्होंने कभी उनका संग नहीं छोड़ा था। ये बातें कहकर भगवान् ने उनके गर्व को दूर कर दिया और तब बोलना बन्द कर दिया।

इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः
प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ।
आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथु-
श्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; त्रि-लोक—तीनों लोकों के; ईश—स्वामियों के; पतेः—स्वामी के; तदा—तब; आत्मनः—अपने ही; प्रियस्य—प्रेमी का; देवी—देवी रुक्मिणी ने; अश्रुत—कभी न सुना गया; पूर्वम्—पहले; अप्रियम्—अप्रियता; आश्रुत्य—सुनकर; भीता—भयभीत; हृदि—अपने हृदय में; जात—उत्पन्न; वेपथुः—कम्पन; चिन्ताम्—चिन्ता; दुरन्ताम्—भयानक; रुदती—सिसकती; जगाम ह—अनुभव किया।

रुक्मिणीदेवी ने इसके पूर्व कभी भी अपने प्रिय त्रिलोकेश-पति से ऐसी अप्रिय बातें नहीं सुनी थीं अतः वे भयभीत हो उठीं। उनके हृदय में कँपकपी शुरू हो गई और भीषण उद्विग्नता में वे रोने लगीं।

पदा सुजातेन नखारुणश्रीया
भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ।
आसिञ्चती कुङ्कुमरूषितौ स्तनौ

तस्थावधोमुख्यतिदु:खरुद्धवाक् ॥ २॥

शब्दार्थ

पदा—अपने पाँव से; सु-जातेन—अत्यन्त कोमल; नख—नाखूनों के; अरुण—लाल लाल; श्रीया—तेज वाले; भुवम्—पृथ्वी को; लिखन्ती—कुरेदती हुई; अश्रुभि:—अपने आँसुओं से; अञ्जन—काजल; असितै:—काले; आसिञ्चती—सींचती हुई; कुङ्कुम—कुंकुम-चूर्ण से; रूषितौ—लाल; स्तनौ—दोनों स्तन; तस्थौ—शान्त खड़ी हो गईं; अध:—नीचे की ओर; मुखी—मुख किये; अति—अत्यन्त; दु:ख—दुख से; रुद्ध—रुकी; वाक्—वाणी।

वे लाल-लाल चमकीले वाले नाखुनों से युक्त अपने कोमल पाँव से भूमि कुरेदने लगीं और अपनी आँख में लगे काजल द्वारा काले हुए आँसुओं से कुंकुम के कारण लाल हुए स्तनों को भिगो दिया। वे मुख नीचा किये खड़ी रहीं और अत्यधिक शोक से उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई।

तस्या: सुदु:खभयशोकविनष्टबुद्धे-
र्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ।
देहश्च विक्लवधिय: सहसैव मुह्यन्
रम्भेव वायुविहतो प्रविकीर्य केशान् ॥ २४॥

शब्दार्थ

तष्या:—उसके; सु-दु:ख—अत्यधिक दुख; भय—डर; शोक—तथा शोक से; विनष्ट—नष्ट हुई; बुद्धे:—बुद्धि वाली; हस्तात्—हाथ से; श्लथत्—खिसकते हुए; वलयत:—चूड़ियों वाली; व्यजनम्—पंखा; पपात—गिर गया; देह:—उसका शरीर; च—भी; विक्लव—विकल; धिय:—जिसका मन; सहसा एव—सहसा; मुह्यन्—मूर्छित हुई; रम्भा—केले के वृक्ष; इव—सदृश; वायु—वायु से; विहत:—उखाड़े गये; प्रविकीर्य—बिखराते हुए; केशान्—अपने बाल।

रुक्मिणी का मन दुख, भय तथा शोक से अभिभूत हो गया। उनकी चूड़ियाँ उनके हाथ से सरक गईं और उनका पंखा जमीन पर गिर पड़ा। वे मोहवश सहसा मूर्छित हो गईं, उनके बाल इधर-उधर बिखर गये और उनका शरीर भूमि पर इस तरह गिर गया जिस तरह हवा से उखड़ा हुआ केले का वृक्ष गिर पड़ता है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण के शब्दों से मर्माहत होने से रुक्मिणी यह नहीं समझ पाईं कि भगवान् उन्हें केवल सता रहे हैं इसीलिए उनमें शोक के ये भाव दिखे जिन्हें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *सात्विक* भाव कहा है, जो स्तम्भित होने से लेकर मरण दशा तक विस्तीर्ण होते हैं।

तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्ण: प्रियाया: प्रेमबन्धनम् ।
हास्यप्रौढिमजानन्त्या: करुण: सोऽन्वकम्पत ॥ २५॥

शब्दार्थ

तत्—यह; दृष्ट्वा—देखकर; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; प्रियायाः—अपनी प्रिया के; प्रेम—शुद्ध ईश प्रेम के; बन्धनम्—बन्धन; हास्य—उनके परिहास का; प्रौढिम्—पूर्ण आशय; अजानन्त्याः—न जान सकने वाली; करुणः—दयालु; सः—उन्होंने; अन्वकम्पत—दया का अनुभव किया।

यह देखकर कि उनकी प्रिया उनके प्रेम से इस तरह बँधी हैं, वे उनके तंग करने के पूरे आशय को नहीं समझ सकीं, दयालु भगवान् कृष्ण को उन पर दया आ गई।

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ।
केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

पर्यङ्कात्—बिस्तर से; अवरुह्य—उतर कर; आशु—जल्दी से; ताम्—उसको; उत्थाप्य—उठाते हुए; चतुर्-भुजः—चार भुजाएँ प्रदर्शित करते; केशान्—उसके बालों को; समुह्य—ठीक करते; तत्—उसके; वक्त्रम्—मुख को; प्रामृजत्—पोंछा; पद्म-पाणिना—अपने कर-कमल से।

भगवान् तुरन्त बिस्तर से उतर आये। चार भुजाएँ प्रकट करते हुए उन्होंने उन्हें (रुक्मिणी को) उठाया, उनके बाल ठीक-ठाक किए और अपने कर-कमलों से उनका मुख सहलाया।

तात्पर्य : भगवान् ने चार भुजाएँ इसलिए प्रकट कीं कि वे सारे कार्य एकसाथ पूरा कर सकें।

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ।
आश्लिष्य बाहुना राजननन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥
सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ।
हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

प्रमृज्य—पोंछकर; अश्रु-कले—आँसुओं से पूरित; नेत्रे—उसकी आँखें; स्तनौ—दो स्तनों को; च—तथा; उपहतौ—बिखरे; शुचा—शोकयुक्त आँसुओं से; अश्लिष्य—उसका आलिंगन करके; बाहुना—अपनी बाँह से; राजन्—हे राजा (परीक्षित); अनन्य—कोई अन्य नहीं; विषयाम्—जिसकी इच्छित वस्तु; सतीम्—सती को; सान्त्वयाम् आस—सान्त्वना दी; सान्त्व—सान्त्वना विधियों के; ज्ञः—जानने वाले; कृपया—कृपापूर्वक; कृपणाम्—दयनीय; प्रभुः—भगवान्; हास्य—अपने परिहास का; प्रौढि—चतुरता से; भ्रमत्—मोहित हुए; चित्ताम्—चित्त वाले; अतत्-अर्हाम्—उसके योग्य नहीं; सताम्—शुद्ध भक्तों का; गतिः—गन्तव्य।

हे राजन्, उनके अश्रुपूरित नेत्रों तथा संताप के आँसुओं से सने हुए उनके स्तनों को पोंछ कर अपने भक्तों के लक्ष्य भगवान् ने अपनी सती पत्नी का आलिंगन किया जो एकमात्र उन्हीं को चाह रही थीं। सान्त्वना देने की कला में पटु श्रीकृष्ण ने दयनीय रुक्मिणी को मृदुता से ढाढ़स बँधाया जिनका मन भगवान् के चातुरीपूर्ण हास-परिहास से भ्रमित था और जो इस तरह कष्ट भोगने के योग्य न थीं।

श्रीभगवानुवाच
मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ।
त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; मा—मत; मा—मुझसे; वैदर्भि—हे वैदर्भी; असूयेथाः—रुष्ट होओ; जाने—मैं जानता हूँ; त्वाम्—तुम; मत्—मुझमें; परायणाम्—पूर्णतया समर्पित; त्वत्—तुम्हारे; वचः—शब्द; श्रोतु—सुनने की; कामेन—इच्छा करते हुए; क्ष्वेल्या—हँसी में; आचरितम्—कार्य किया; अङ्गने—हे अंगना (स्त्री)।

भगवान् ने कहा : हे वैदर्भी, तुम मुझसे नाराज मत होओ। मैं जानता हूँ कि तुम पूरी तरह मुझमें समर्पित हो। हे प्रिय देवी, मैंने तो ठिठोली में ऐसा कहा था क्योंकि मैं सुनना चाहता था कि तुम क्या कहोगी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार भगवान् कृष्ण ने यह उक्ति इसलिए कही क्योंकि उन्होंने सोचा कि यदि वे उन्हें विचलित करने के लिए और कुछ कहेंगे तो वे डर जायेंगी या फिर उनके किये हुए पर वे रुष्ट हो जायेंगी।

मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ।
कटाक्षेपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥ ० ॥

शब्दार्थ

मुखम्—मुख; च—तथा; प्रेम—प्रेम के; संरम्भ—कोप से; स्फुरित—हिलते; अधरम्—होठों से; ईक्षितुम्—देखने के लिए; कटा—तिरछी चितवन के; क्षेप—फेंके जाने से; अरुण—लाल लाल; अपाङ्गम्—आँखों के कोर; सुन्दर—सुन्दर; भ्रु—भौंहों का; कुटी—गहराना; तटम्—किनारों पर।

मैं यह भी चाहता था कि प्रणयकोप में काँपते तुम्हारे अधर, तिरछी चितवनों वाली तुम्हारी आँखों के लाल-लाल कोर तथा क्रोध से तनी तुम्हारी सुन्दर भौंहों की रेखा से युक्त तुम्हारा मुख देख सकूँ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती व्याख्या करते हैं कि सामान्यतया भगवान् की दिव्य इच्छा से उनके शुद्ध भक्त उनके साथ ऐसा आदान-प्रदान करते हैं जिससे उनकी आध्यात्मिक इच्छाओं की तुष्टि हो सके। किन्तु रुक्मिणी का प्रेम इतना प्रबल था कि उनकी अद्वितीय मुद्रा इस परिस्थिति में प्रधान बन गई और वे कुपित होने की बजाय मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। इस तरह कृष्ण को अप्रसन्न करना तो दूर रहा, उनके प्रति सर्वव्यापक प्रेम प्रदर्शित करते हुए उन्होंने उनके दिव्य आनन्द में वृद्धि कर दी।

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ।

यन्नर्मैरीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ १ ॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; हि—निस्सन्देह; परमः—परम; लाभः—लाभ; गृहेषु—गृहस्थ जीवन में; गृह-मेधिनाम्—संसारी गृहस्थों के लिए; यत्—जो; नर्मैः—परिहास से; ईयते—बिताया जाता है; यामः—समय; प्रियया—प्रियतमा के साथ; भीरु—हे डरपोक; भामिनि—हे तुनुकमिजाज।.

हे भीरु एवं चंचल, संसारी गृहस्थजन घर में जो सबसे बड़ा आनन्द लूट सकते हैं वह है अपनी प्रियतमाओं के साथ परिहास करने में बिताया जाने वाला समय।

तात्पर्य : *भामिनि* शब्द क्रुद्ध, कामिनी, चंचल स्त्री का सूचक है। चूँकि प्रिया रुक्मिणी इतने उकसाने के बावजूद क्रुद्ध नहीं हुईं इसलिए भगवान् अब भी परिहास कर रहे हैं।

श्रीशुक उवाच
सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसान्त्विता ।
ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सा—वह; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; राजन्—हे राजन्; वैदर्भी—महारानी रुक्मिणी; परिसान्त्विता—पूर्णतया सान्त्वना दी गई, समझाई-बुझाई गई; ज्ञात्वा—जान कर; तत्—उसके; परिहास—मजाक में कहे गये; उक्तिम्—शब्द; प्रिय—अपने प्रेमी द्वारा; त्याग—परित्याग के; भयम्—भय को; जहौ—त्याग दिया।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, महारानी वैदर्भी भगवान् द्वारा पूरी तरह परिशान्त कर दी गईं और वे यह समझ गईं कि भगवान् ने परिहास में वे शब्द कहे हैं। इस तरह उनका यह भय जाता रहा कि उनके पति उनका परित्याग कर देंगे।

बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् ।
सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन भारत ॥ ॥

शब्दार्थ

बभाष—बोली; ऋषभम्—अत्यन्त प्रसिद्ध; पुंसाम्—पुरुष से; वीक्षन्ती—देखती हुई; भगवत्—भगवान् के; मुखम्—मुख को; स-व्रीड—सलज्ज; हास—हँसी से युक्त; रुचिर—आकर्षक; स्निग्ध—स्नेहिल; अपाङ्गेन—तथा चितवन से; भारत—हे भरतवंशी।.

हे भरतवंशी, भगवान् के मुख पर अपनी आकर्षक तथा स्नेहिल चितवन डालते हुए रुक्मिणी लज्जा से हँसते हुए नर-श्रेष्ठ भगवान् से इस प्रकार बोलीं।

श्रीरुक्मिण्युवाच
नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह

यद्वै भवान्भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः
क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-रुक्मिणी उवाच—श्री रुक्मिणी ने कहा; ननु—ठीक है; एवम्—ऐसी ही हो; एतत्—यह; अरविन्द-विलोचन—हे कमल जैसे नेत्रों वाले; आह—कहा; यत्—जो; वै—निस्सन्देह; भवान्—आप; भगवतः—भगवान् के; असदृशी—असमान; विभूम्नः—सर्वशक्तिमान से; क्व—कहाँ, तुलना में; स्वे—अपनी; महिम्नि—महिमा में; अभिरतः—आनन्द लेते हुए; भगवान्—भगवान्; त्रि—तीन (मुख्य देवता, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) के; अधीशः—नियन्ता; क्व—तथा कहाँ; अहम्—मैं; गुण—गुणों का; प्रकृतिः—स्वभाव; अज्ञ—मूर्ख व्यक्तियों द्वारा; गृहीत—पकड़े हुए; पादा—जिनके चरण।

श्री रुक्मिणी ने कहा : हे कमल-नयन, आपने जो कहा है वस्तुतः वह सच है। मैं सचमुच सर्वशक्तिमान भगवान् के अनुपयुक्त हूँ। कहाँ तीन प्रमुख देवों के स्वामी एवं अपनी ही महिमा में मग्न रहने वाले भगवान् और कहाँ मैं संसारी गुणों वाली स्त्री जिसके चरण मूर्खजन ही पकड़ते हैं?

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी उन दोषों की सूची देते हैं, जिन्हें कृष्ण ने अपने में होने के बारे में बतलाते हुए अपने को रुक्मिणी का पति होने के अयोग्य घोषित किया था। इसमें समरूप न होना, भयभीत रहना, समुद्र में शरण लेना, बली लोगों से झगड़ना, अपना राज्य छोड़ना, अपने स्वरूप के बारे में अनिश्चय, सामान्य आचरण के मापदण्डों के विरुद्ध कार्य करना, सद्गुणों से विहीन होना, केवल भिखमंगों द्वारा झूठे ही प्रशंसित होना, एकान्तप्रियता, गृहस्थ जीवन की इच्छा का अभाव सम्मिलित हैं। भगवान् ने दावा किया कि रुक्मिणी उनके इन दुर्गुणों को पहचान नहीं पाईं। अब वे भगवान् के सभी कथनों का जवाब देती हैं।

सर्वप्रथम वे श्लोक ११ में आये श्रीकृष्ण के कथन—*कस्मान् नो ववृषेऽसमान्*—तुमने हमें क्यों चुना जब हम तुम्हारे समान नहीं हैं? का उत्तर देती हैं। यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी कहती हैं कि वे तथा श्रीकृष्ण निश्चय ही समान नहीं हैं क्योंकि कोई भी भगवान् के समान नहीं हो सकता। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने यह भी इंगित किया है कि रुक्मिणी विनयवश अपनी पहचान भगवान् की बहिरंगा शक्ति से कर रही हैं, जो वस्तुतः उनकी अंश है क्योंकि रुक्मिणी स्वयं लक्ष्मी हैं।

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः
शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा ।
नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं

त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

सत्यम्—सच; भयात्—भय से; इव—मानो; गुणेभ्य:—भौतिक गुणों के; उरुक्रम—हे दिव्य कौशल करने वाले; अन्त:—भीतर; शेते—शयन करते हो; समुद्रे—समुद्र में; उपलम्भन-मात्र:—पूर्ण भिज्ञता; आत्मा—परमात्मा; नित्यम्—सदैव; कत्—बुरा; इन्द्रिय-गणै:—समस्त इन्द्रियों के विरुद्ध; कृत-विग्रह:—युद्ध करते हुए; त्वम्—तुम; त्वत्—तुम्हारे; सेवकै:—सेवकों द्वारा; नृप—राजा का; पदम्—पद; विधुतम्—अस्वीकृत, दुत्कारा गया; तम:—अंधकार; अन्धम्—घना।

हाँ, भगवान् उरुक्रम, आप समुद्र के भीतर शयन करते हैं मानो भौतिक गुणों से भयभीत हों और इस तरह आप शुद्ध चेतना में हृदय के भीतर परमात्मा रूप में प्रकट होते हैं। आप निरन्तर मूर्ख इन्द्रियों के विरुद्ध संघर्ष करते रहते हैं, यहाँ तक कि आपके दास भी अज्ञान के अंधकार में ले जाने वाले साम्राज्य के अवसर को दुत्कार देते हैं।

तात्पर्य : श्लोक १२ में कृष्ण ने कहा था—*राजभ्यो बिभ्यत: सुभ्रु समुद्रं शरणं गतान्*—हमने राजाओं के भय से समुद्र में जाकर शरण ली। यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी इंगित करती हैं कि इस जगत के असली शासक तो प्रकृति के भौतिक *गुण* हैं, जो सारे जीवों को कर्म करने के लिए बाध्य करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि चूँकि भगवान् कृष्ण डरते रहते हैं कि उनके भक्त गुणों के प्रभाव में आ जायेंगे और इन्द्रिय-तृप्ति में फँस जायेंगे इसलिए वे उनके हृदयों के आन्तरिक समुद्र में प्रवेश करते हैं जहाँ वे सर्वज्ञपरमात्मा के रूप में रहने लगते हैं (*उपलम्भनमात्र आत्मा*)। इस तरह वे अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। *उपलम्भनमात्र:* शब्द से यह भी सूचित होता है कि भगवान् अपने भक्तों की ध्यान के साधन हैं।

श्लोक १२ में कृष्ण ने यह भी कहा है—*बलवद्भि: कृतद्वेषान्*—हमने बलवानों से शत्रुता मोल ली है। यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी इंगित करती हैं कि वस्तुत: इस जगत में भौतिक इन्द्रियाँ ही प्रबल हैं। भगवान् ने अपने भक्तों के हित में इन्द्रिय-तृप्ति के विरुद्ध युद्ध छेड़ रखा है और इस तरह आध्यात्मिक शुद्धि के उनके संघर्ष में वे निरन्तर उनकी सहायता करते रहते हैं। जब भक्तगण अवांछित भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाते हैं, तो भगवान् उनके समक्ष प्रकट होते हैं और तब भगवान् तथा उनके भक्तों के मध्य का प्रेममय सम्बन्ध एक अटल तथ्य बन जाता है।

उसी श्लोक में कृष्ण ने कहा है—*त्यक्तनृपासनान्*—हमने राजसिंहासन को छोड़ दिया। किन्तु यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी इंगित करती हैं कि इस संसार में राजनैतिक श्रेष्ठता का पद तथाकथित सशक्त नेताओं को गहन अंधकार में फँसा देता है। कहावत है—''प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं।'' इस प्रकार

भगवान् के प्रिय दास तक राजनैतिक छल तथा शक्ति की राजनीति से कतराते हैं। भगवान् अपने ही आध्यात्मिक आनन्द से तुष्ट रहने के कारण शायद ही संसारी राजनैतिक पद ग्रहण करने में रुचि रखते हों। इस प्रकार श्रीमती रुक्मिणीदेवी भगवान् के कार्यों को उनकी दिव्य प्रकृति के साक्षी के रूप में सही-सही विश्लेषण करती हैं।

त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां
वर्त्मास्फुटं खपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ।
यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य
भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

त्वत्—तुम्हारे; पाद—पैरों की; पद्म—कमल जैसे; मकरन्द—मधु, शहद; जुषाम्—आस्वादन करने वाले; मुनीनाम्—मुनियों का; वर्त्म—(आपका) मार्ग; अस्फुटम्—अप्रकट; नृ—मनुष्य रूप में; पशुभिः—पशुओं द्वारा; ननु—निश्चय ही, तब; दुर्विभाव्यम्—समझ पाना असम्भव; यस्मात्—क्योंकि; अलौकिकम्—अलौकिक; इव—मानो; ईहितम्—कार्यकलाप; ईश्वरस्य—भगवान् के; भूमन्—हे सर्वशक्तिमान; तव—तुम्हारे; ईहितम्—कार्यकलाप; अथ उ—अतः; अनु—अनुसरण करते हुए; ये—जो; भवन्तम्—आपको।

जब आपकी गतिविधियाँ, उन मुनियों के लिए भी अस्पष्ट हैं, जो आपके चरणकमलों के मधु का आस्वादन करते हैं, तो फिर वे निश्चय ही मनुष्यों की समझ में न आने वाली हैं, जो पशुओं जैसा आचरण करते हैं। और हे सर्वशक्तिमान प्रभु, जिस तरह आपके कार्यकलाप दिव्य हैं उसी तरह आपके अनुयायियों के भी हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर रुक्मिणी श्लोक १ में व्यक्त भगवान् कृष्ण के कथन का उत्तर देती हैं—

अस्पष्टवर्त्मनां पुंसाम् अलोकपथमीयुषाम् ।

आस्थिताः पदवीं सुभ्रु प्रायः सीदन्ति योषितः ॥

"हे सुन्दर भौंहों वाली! जब स्त्रियाँ ऐसे पुरुषों के साथ रहती हैं जिनका आचरण अनिश्चित होता है और जो समाज-सम्मत मार्ग का अनुसरण नहीं करते तो प्रायः उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है।"

इस श्लोक में आगत *अलोक-पथम्* का अर्थ रुक्मिणीदेवी "असंसारी पथ" लगा रही हैं। संसारी आचरण में फँसे लोग इस संसार का भोग लगभग पशुओं जैसा कर रहे हैं। यदि ऐसे लोग "सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नत" भी हों तो उन्हें परिष्कृत पशु ही माना जाना चाहिए। श्रीमती रुक्मिणीदेवी इंगित करती हैं कि चूँकि भगवान् के कार्यकलाप सदैव दिव्य होते हैं अतएव वे सामान्य व्यक्तियों के

लिए *अस्पष्ट* होते हैं। यहाँ तक कि मुनिगण भी जो भगवान् को जानने का प्रयास करते हैं, इन कार्यकलापों को ठीक से नहीं समझ पाते।

निष्किञ्चनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किञ्चिद्
यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ।
न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः
प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

निष्किञ्चनः—सम्पत्तिविहीन; ननु—निस्सन्देह; भवान्—आप; न—नहीं; यतः—जिसके परे; अस्ति—है; किञ्चित्—कुछ भी; यस्मै—जिसको; बलिम्—भेंट; बलि—भेंट का; भुजः—भोक्ता; अपि—भी; हरन्ति—वहन करते हैं; अज-आद्याः—ब्रह्मा इत्यादि; न—नहीं; त्वा—तुमको; विदन्ति—जानते हैं; असु-तृपः—शरीर से तुष्ट रहने वाले व्यक्ति; अन्तकम्—मृत्यु के रूप में; आढ्यता—सम्पत्ति के अपने पद द्वारा; अन्धाः—अन्धे हुए; प्रेष्ठः—परम प्रिय; भवान्—आप; बलि-भुजाम्—उपहार के परम भोक्ता के लिए; अपि—भी; ते—वे; अपि—भी; तुभ्यम्—तुमको (प्रिय हैं)।

आपके पास कुछ भी नहीं है क्योंकि आपसे परे कुछ भी नहीं है। बलि के परम भोक्ता, ब्रह्मा तथा अन्य देवता तक आपको नमस्कार करते हैं। जो लोग अपनी सम्पत्ति से अन्धे हुए रहते हैं और अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने में लीन रहते हैं, वे काल रूप आपको नहीं पहचान पाते। बलि के भोक्ता देवताओं को आप उसी तरह परम प्रिय हैं जिस तरह कि वे आपको हैं।

तात्पर्य : यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी श्लोक १४ में भगवान् कृष्ण के कथन का उत्तर देती हैं। कथन है—

निष्किञ्चना वयं शश्वन् निष्किञ्चनजनप्रियाः ।

तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥

''हमारे पास कोई भौतिक सम्पत्ति नहीं है और हम उन्हीं को प्रिय हैं जिनके पास हमारी ही तरह कुछ नहीं है। अतः हे नाजुक कटि वाली! धनी लोग शायद ही मेरी पूजा करते हों।''

महारानी रुक्मिणी *निष्किञ्चनो ननु* से अपनी बात शुरू करती हैं। *किञ्चन्* शब्द का अर्थ है ''कुछ'' और *निर्* या *निष्* उपसर्ग निषेधवाची है। अतः *निष्किञ्चन्* का सामान्य अर्थ ''वह जिसके पास कुछ भी नहीं होता'' या दूसरे शब्दों में ''निर्धन'' है।

किन्तु प्रस्तुत श्लोक में रुक्मिणी कहती हैं कि भगवान् कृष्ण के पास ''कुछ भी नहीं'' है इसलिए नहीं कि वे कंगाल है, प्रत्युत इसलिए कि वे ही सर्वस्व हैं। दूसरे शब्दों में, चूँकि कृष्ण परम सत्य हैं

अतएव जो कुछ विद्यमान है, वह उनके भीतर है। उन्हें अन्य किसी बाह्य वस्तु को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरणार्थ, मनुष्य के पास घर, कार, पुत्र या धन हो सकता है किन्तु ये वस्तुएँ मनुष्य नहीं हो सकतीं क्योंकि ये उससे बाहर विद्यमान हैं। हम कहते हैं कि ये वस्तुएँ उसकी हैं केवल इसलिए कि इन पर उसका नियंत्रण रहता है। किन्तु भगवान् अपनी सृष्टि का केवल नियंत्रण ही नहीं करते हैं अपितु उनकी सृष्टि का अस्तित्व वस्तुतः उनके भीतर रहता है। इस तरह उनकी कोई भी वस्तु उस अर्थ में उनसे बाहर नहीं है, जिस तरह हमारे पास बाह्य वस्तुएँ होती हैं।

आचार्यों ने *निष्किञ्चन्* की व्याख्या इस प्रकार की है—इस कथन से कि किसी व्यक्ति के पास कोई वस्तु है यह अर्थ निकलता है कि उसके पास सारी वस्तुएँ नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, यदि हम कहें कि मनुष्य के पास कुछ सम्पत्ति है, तो हमारा आशय यही रहता है कि सारी सम्पत्ति उसकी नहीं है अपितु उसका एक विशेष भाग उसका है। अमरीका के एक मानक शब्दकोष के अनुसार 'कुछ' का अर्थ होता है : कोई अनिश्चित अथवा अविशेष संख्या, राशि इत्यादि जो शेष से भिन्न है। संस्कृत के *किञ्चन* शब्द से कुल के एक अंश का बोध होता है। इस तरह इस विचार का निराकरण करने के लिए ही कृष्ण को *निष्किञ्चन* कहा गया है कि उनके पास सौन्दर्य, यश, सम्पत्ति, बुद्धि इत्यादि का केवल कुछ अंश ही है। प्रत्युत उनके पास अनन्त सौन्दर्य, सम्पत्ति, बुद्धि इत्यादि है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे परम सत्य हैं।

श्रीमद्‌भागवत के प्रथम स्कंध, भाग एक की भूमिका का शुभारम्भ जो हमारी वर्तमान चर्चा से पूरी तरह संबद्ध है, श्रील प्रभुपाद इस तरह करते हैं, ''ईश्वर की धारणा तथा परब्रह्म की धारणा दोनों समान स्तर पर नहीं हैं। श्रीमद्‌भागवत में परब्रह्म को लक्ष्य बनाया गया है। ईश्वर की धारणा नियन्ता की सूचक है, जबकि परब्रह्म की धारणा समस्त शक्तियों के चरम उद्‌गम की सूचक है।'' यहाँ पर श्रील प्रभुपाद ने मूल दार्शनिक बात उठाई है। ईश्वर की सम्मान्य परिभाषा ''परम व्यक्ति'' है और शब्दकोश में *परम* के चार अर्थ हैं (१) सर्वोच्च पद, सत्ता इत्यादि (२) गुण, उपलब्धि, कुशलता में सर्वोच्च ( ) सर्वोच्च कोटि (४) अन्तिम, चरम। इनमें से कोई भी परिभाषा परम सत्ता को पूरी तरह बोध नहीं कराती।

उदाहरणार्थ, हम कह सकते हैं कि एक विशेष अमरीकी व्यक्ति सर्वाधिक धनी है या यह कि उच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है किन्तु हमारे कथनों से यही अर्थ निकलता है कि वह अमरीकी

व्यक्ति अन्य किसी से भी अधिक धनी है या वह न्यायालय देश के न्यायालयों से सबसे उच्च है यद्यपि इसे सभी राजनीतिक एवं सामाजिक मामलों में निश्चय ही पूर्ण अधिकार नहीं होते क्योंकि इन क्षेत्रों में इसकी सत्ता विधान सभा और राष्ट्रपति से बँटी होती है। इस तरह *परम* समस्त जीवों में सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वोच्च का सूचक है किन्तु यहाँ विद्यमान हर वस्तु के उद्‌गम का नहीं है। इस तरह श्रील प्रभुपाद विशेष रूप से इंगित करते हैं कि परम सत्य कृष्ण की धारणा परम व्यक्ति की धारणा से उच्च है और वैष्णव दर्शन समझने के लिए यह परम सत्य होनी चाहिए।

भगवान् कृष्ण मात्र सर्वोपरि व्यक्ति ही नहीं, अपितु वे परम पुरुष हैं और उनकी पत्नी यही कहना चाह रही हैं। इस तरह से *निष्किञ्चन* शब्द यह नहीं सूचित करता कि कृष्ण के पास *कोई* ऐश्वर्य नहीं है अपितु यह कि उनके पास *सम्पूर्ण* ऐश्वर्य है। इस अर्थ में वे कृष्ण की निष्किञ्चन की परिभाषा स्वीकार करती हैं।

श्लोक १४ में कृष्ण ने यह भी कहा था *निष्किञ्चन-जन-प्रिय:*—मैं दरिद्रों का प्रिय हूँ। किन्तु यहाँ पर रुक्मिणी संकेत करती हैं कि ब्रह्माण्ड के सबसे धनी जीव देवतागण भगवान् को नियमित बलि देते रहते हैं। हम यह मान सकते हैं कि भगवान् द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि होने के नाते सारे देवता यह जानते हैं कि हर वस्तु उन्हीं की है क्योंकि हर वस्तु उनका अंश है जैसाकि ऊपर कहा गया है। अत: *निष्किञ्चन-जन-प्रिय:* इस विचार से सही है कि भगवान् तथा उनकी शक्तियों के अलावा कुछ भी नहीं है, भले ही भगवान् की पूजा करने वाले व्यक्ति कितने ही धनी क्यों न प्रतीत हों, वे ईश्वर को प्रेममय कार्य के रूप में वस्तुत: उन्हीं की शक्ति अर्पित कर रहे होते हैं। यही विचार गंगाजल द्वारा गंगा की पूजा करने में या कि पिता के जन्मदिवस पर पिता से प्राप्त धन से उसके पुत्र द्वारा खरीद कर भेंट की जाने वाली वस्तु से प्रकट होता है। यद्यपि पिता ही अपनी भेंट के लिए धन देता है किन्तु वह जिस वस्तु में रुचि रखता है, वह है अपने पुत्र का प्रेम। इसी तरह भगवान् इस विराट जगत को उत्पन्न करते हैं और तब बद्ध-आत्माएँ भगवान् की सृष्टि में से विविध वस्तुएँ संग्रह कर लेती हैं। पवित्रात्माएँ अपने संग्रह में से कुछ सर्वोत्कृष्ट वस्तुएँ बलि के रूप में भगवान् को अर्पित करती हैं और इस तरह अपने को पवित्र बनाती हैं। चूँकि सारा ब्रह्माण्ड तथा सारी वस्तुएँ भगवान् की शक्ति मात्र हैं अतएव हम यह कह सकते हैं कि जो लोग भगवान् की पूजा करते हैं उनके पास कुछ भी नहीं होता।

अधिक रूढ़िगत रुप से तो यह कह सकते हैं कि जिन्हें अपनी विशाल सम्पत्ति का गर्व है वे ईश्वर के समक्ष नतमस्तक नहीं होते। रानी रुक्मिणी भी इन मूर्खों का उल्लेख करती हैं। वे अपने नश्वर शरीरों से सन्तुष्ट रहकर मृत्यु की दैवी शक्ति को जो उनका चुपके से शिकार करती है, नहीं समझ पाते। किन्तु देवतागण जो सर्वाधिक धनी जीव हैं भगवान् को नियमित बलि चढ़ाते हैं और इस तरह जैसा यहाँ वर्णित है भगवान् उन्हें सर्वाधिक प्रिय हैं।

त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा
यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् ।
तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः
पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; वै—निस्सन्देह; समस्त—सारे; पुरुष—मानव जीवन के; अर्थ—लक्ष्यों से; मयः—युक्त; फल—चरम लक्ष्य के; आत्मा—आत्मा; यत्—जिसके लिए; वाञ्छया—इच्छा से; सु-मतयः—बुद्धिमान व्यक्ति; विसृजन्ति—त्याग देते हैं; कृत्स्नम्—हर वस्तु को; तेषाम्—उनके लिए; विभो—हे सर्वशक्तिमान; समुचितः—समुचित; भवतः—आपका; समाजः—सान्निध्य; पुंसः—मनुष्य; स्त्रियाः—तथा स्त्री के लिए; च—तथा; रतयोः—विषय-भोग में अनुरक्त; सुख-दुःखिनोः—सुख तथा दुख का अनुभव करने वाले; न—नहीं।

आप समस्त मानवीय लक्ष्यों के साकार रूप हैं और आप ही जीवन के अन्तिम लक्ष्य हैं। हे सर्वशक्तिमान विभु, आपको प्राप्त करने के इच्छुक बुद्धिमान व्यक्ति अन्य सारी वस्तुओं का परित्याग कर देते हैं। वे ही आपके सान्निध्य के पात्र हैं, न कि वे स्त्री तथा पुरुष जो पारस्परिक विषय-वासना से उत्पन्न सुख तथा दुख में लीन रहते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर महारानी रुक्मिणी श्लोक १५ में आये भगवान् कृष्ण के निम्नलिखित कथन का निराकरण करती हैं—

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।

तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित ॥

''विवाह तथा मैत्री उन दो व्यक्तियों के मध्य उचित है, जो धन, जन्म, प्रभाव, आकृति तथा जनन-क्षमता में समान हों। किन्तु उत्तम तथा अधम के बीच ऐसा कभी नहीं होता।'' निस्सन्देह जिन्होंने इन्द्रिय-तृप्ति की भौतिक धारणा का परित्याग करते हुए भगवान् की भक्ति को ग्रहण किया है वे ही समझ सकते हैं कि उनका असली मित्र तथा संगी कौन है—वह स्वयं श्रीकृष्ण हैं।

त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव
आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ।
हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेग
ध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; न्यस्त—जिन्होंने त्याग दिया है; दण्ड—संन्यासी का दंड; मुनिभिः—मुनियों द्वारा; गदित—कहा गया; अनुभावः—जिसका पराक्रम; आत्मा—परमात्मा; आत्मा—स्वयं आप; दः—देने वाला; च—भी; जगताम्—सारे जगतों के; इति—इस प्रकार; मे—मेरे द्वारा; वृतः—चुना हुआ; असि—हो; हित्वा—त्याग कर; भवत्—आपकी; भ्रुवः—भौंहों से; उदीरित—उत्पन्न; काल—समय के; वेग—वेग से; ध्वस्त—नष्ट-भ्रष्ट; आशिषः—जिनकी आशाएँ; अब्ज—कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा); भव—शिवजी; नाक—स्वर्ग के; पतीन्—स्वामियों को; कुतः—तो फिर क्या; अन्ये-ओथेर्स्.

यह जानते हुए कि सन्यासियों का दंड त्यागे हुए महामुनि आपके यश का बखान करते हैं, कि आप तीनों जगतों के परमात्मा हैं और आप इतने दानी हैं कि अपने आपको भी दे डालते हैं, मैंने ब्रह्मा, शिव तथा स्वर्ग के शासकों को, जिनकी महत्वाकांक्षाएँ आपकी भ्रकुटी से उत्पन्न काल के वेग से नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं, त्याग कर आपको अपने पति रूप में चुना है। तो फिर अन्य किसी विवाहार्थी में मेरी क्या रुचि हो सकती थी ?

तात्पर्य : श्लोक १६ में आये कृष्ण के कथन का यह निराकरण है, जो महारानी रुक्मिणी द्वारा किया गया है। उसमें भगवान् कृष्ण ने कहा था—*भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा*—मेरा यशोगान भिक्षुकों द्वारा किया जाता है। किन्तु रानी रुक्मिणी संकेत करती हैं कि वे तथाकथित भिक्षुक वास्तव में परमहंस अवस्था को प्राप्त मुनिजन हैं—ऐसे संन्यासी जिन्होंने सर्वोच्च आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर ली है और इस तरह संन्यासी-दंड का परित्याग कर दिया है। श्लोक १६ में कृष्ण ने अपनी पत्नी पर दो दोषारोपण भी किये हैं। उन्होंने कहा—*वैदर्भ्येतद् अविज्ञाय*—हे वैदर्भी, तुम परिस्थिति से अवगत न थी तथा *त्वयादीर्घसमीक्षया*—क्योंकि तुममें दूरदर्शिता नहीं थी। इस श्लोक में रुक्मिणी का कथन *इति मे वृतोऽसि*—मैंने तुम्हें पति रूप में इसलिए चुना क्योंकि तुममें उपर्युक्त गुण हैं। मैंने जल्दबाजी में चुनाव नहीं किया था। रुक्मिणी यह भी कहती हैं कि उन्होंने ब्रह्मा, शिव तथा स्वर्ग के अन्य शासकों को इसलिए छोड़ दिया था क्योंकि यद्यपि वे, भौतिकता की दृष्टि से, महापुरुष हैं किन्तु ये कृष्ण की भ्रकुटी से उत्पन्न काल की प्रबल तरंगों से हताश हो जाते हैं। इसलिए रुक्मिणी में दूरदर्शिता का अभाव नहीं था अपितु उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिस्थिति की थाह लेने के बाद ही कृष्ण को चुना था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती रुक्मिणी के भाव की व्याख्या इस प्रकार देते हैं: ''हे पति! आपका यह आरोप कि मुझमें दूरदर्शिता का अभाव है यह दिखलाता है कि आप मेरी दूरदर्शिता को जानते थे। वस्तुत: मैंने आपको इसीलिए चुना क्योंकि मैं आपके असली यश को जानती थी।''

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्
विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ।
सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं
तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

जाड्यम्—मूर्खता; वचः—शब्द; तव—तुम्हारे; गदाग्रज—हे गदाग्रज; यः—जो; तु—भी; भू-पान्—राजाओं को; विद्राव्य—भगाकर; शार्ङ्ग—शार्ङ्ग की, तुम्हारे धनुष की; निनदेन—टंकार से; जहर्थ—ले गये; माम्—मुझको; त्वम्—तुम; सिंहः—सिंह; यथा—जिस तरह; स्व—आपकी; बलिम्—बलि, भेंट; ईश—हे प्रभु; पशून्—पशुओं को; स्व-भागम्—अपना भाग; तेभ्यः—उनके; भयात्—भय से; यत्—जिसने; उदधिम्—समुद्र की; शरणं-प्रपन्नः—शरण ग्रहण की।

हे प्रभु, जिस तरह सिंह भेंट का अपना उचित भाग लेने के लिए छोटे पशुओं को भगा देता है उसी तरह आपने अपने शार्ङ्ग धनुष की टंकार से एकत्रित राजाओं को भगा दिया और फिर मुझे अपने उचित भाग के रूप में अपना बना लिया। अत: हे गदाग्रज, आपके द्वारा यह कहना निरी मूर्खता है कि आपने उन राजाओं के भय से समुद्र में शरण ग्रहण की। ।

तात्पर्य : श्लोक १२ में कृष्ण ने कहा है—*राजभ्यो बिभ्यत: सुभ्रु समुद्रं शरणं गतान्*—उन राजाओं से भयभीत होकर हमने समुद्र में शरण ली। आचार्यों के अनुसार भगवान् कृष्ण ने ऐसे लोगों की प्रशंसा करके जो उनके पति होने की संभावना रखते थे रुक्मिणी का पूर्णरूपेण क्रोध-वर्धन किया। अत: वे क्षुब्ध होकर उनसे कहती हैं कि वे अज्ञानी नहीं हैं अपितु भगवान् ने ही मूर्खतापूर्ण वचन कहे हैं। वे कहती हैं, ''तुमने सिंह की तरह उन सभी राजाओं के देखते-देखते मेरा हरण कर लिया और उन्हें अपने शार्ङ्ग धनुष से भगा दिया, इसलिए यह कहना निरी मूर्खता है कि उन्हीं राजाओं के डर से तुम समुद्र में गये।'' श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार जब महारानी रुक्मिणी ये वचन कह रही थीं तो वे भौंहें चढ़ाकर क्रुद्ध दिखती थीं और भगवान् को क्रुद्ध तिरछी नजरों से देख रही थीं।''

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽन्गवैन्य-
जायन्तनाहुषगयादय ऐक्यपत्यम् ।
राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष

सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके लिए; वाञ्छया—इच्छा से; नृप—राजाओं के; शिखामणयः—मुकुट के मणि; अङ्ग-वैन्य-जायन्त-नाहुष-गय-आदयः—अंग (वेन का पिता), वैन्य (वेन का पुत्र, पृथु), जायन्त (भरत), नाहुष (ययाति), गय आदि; ऐक्य—एकमात्र; पत्यम्—प्रभुसत्ता युक्त, एकछत्र; राज्यम्—उनके राज्य; विसृज्य—त्याग कर; विविशुः—प्रवेश किया; वनम्—जंगल में; अम्बुज-अक्ष—हे कमल-नेत्र; सीदन्ति—कष्ट उठाते हैं, हताश होते हैं; ते—तुम्हारे; अनुपदवीम्—पथ पर; ते—वे; इह—इस जगत में; आस्थिताः—स्थिर; किम्—क्या।

आपका सान्निध्य प्राप्त करने की अभिलाषा से अंग, वैन्य, जायन्त, नाहुष, गय तथा अन्य श्रेष्ठ राजाओं ने अपने मरा पूरा साम्राज्य त्याग कर आपकी खोज करने के लिए जंगल में प्रवेश किया। हे कमल-नेत्र, भला वे राजा क्योंकर इस जगत में हताश होंगे?

तात्पर्य : यहाँ पर रुक्मिणी ने श्लोक १ में कृष्ण द्वारा प्रस्तुत विचारों का निराकरण किया है। वस्तुतः श्रीमती रुक्मिणीदेवी भगवान् कृष्ण के ही शब्दों को दुहराती हैं। भगवान् ने कहा था—*आस्थिताः पदवीं सुभ्रु प्रायः सीदन्ति योषितः*—जो स्त्रियाँ मेरे मार्ग का अनुसरण करतीं है वे सामान्यतः कष्ट भोगती हैं। यहाँ रुक्मिणीदेवी कहती हैं—*सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम्*—जो लोग आपके मार्ग में स्थित हैं, वे इस जगत में क्योंकर कष्ट भोगें? वे अनेक महान् राजाओं का उदाहरण देती हैं जिन्होंने जंगल में प्रवेश करने के लिए अपने एकछत्र साम्राज्य का परित्याग किया जहाँ उन्होंने तपस्या की और उनकी दिव्य संगति प्राप्त करने की इच्छा से भगवान् की पूजा की। इस तरह श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार श्रीमती रुक्मिणीदेवी यहाँ श्रीकृष्ण को बतलाना चाहती हैं "आपने कहा है कि मैं राजा की पुत्री होने के कारण अज्ञानी तथा हताश हूँ क्योंकि मैंने आपसे विवाह किया है। किन्तु आप इन महान् प्रबुद्ध राजाओं पर अज्ञानी होने का आरोप कैसे लगा सकते हैं? वे सर्वाधिक बुद्धिमान पुरुष थे फिर भी उन्होंने आपका अनुसरण करने के लिए सर्वस्व त्याग दिया और इसके फलस्वरूप वे कभी हताश नहीं हुए। निस्सन्देह उन्होंने आपका सान्निध्य प्राप्त किया।"

कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्ध-
माघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम् ।
लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य
मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

का—कौन स्त्री; अन्यम्—दूसरे पुरुष की; श्रयेत—शरण ग्रहण करेगी; तव—तुम्हारे; पाद—चरण की; सरोज—कमल रूपी; गन्धम्—सुगन्ध; आघ्राय—सूँघ कर; सत्—महान् सन्तों द्वारा; मुखरितम्—वर्णित; जनता—सारे लोगों के लिए; अपवर्गम्—

मोक्ष प्रदान करते हुए; लक्ष्मी—लक्ष्मी का; आलयम्—निवासस्थान; तु—लेकिन; अविगणय्य—गम्भीरतापूर्वक न लेकर; गुण—दिव्य गुणों के; आलयस्य—धाम का; मर्त्या—मर्त्य; सदा—सदैव; उरु—महान्; भयम्—भय; अर्थ—स्वार्थ; विविक्त—निश्चित करते हुए; दृष्टिः—दृष्टि।

आपके चरणकमलों की सुगन्ध, जिसकी महिमा बड़े बड़े सन्त गाते हैं, लोगों को मोक्ष प्रदान करती है और यही लक्ष्मीजी का धाम है। इस सुगन्ध को सूँघ कर कौन स्त्री होगी जो किसी अन्य पुरुष की शरण में जायेगी? चूँकि आप दिव्य गुणों के धाम हैं अतः ऐसी कौन-सी मर्त्य स्त्री होगी जो अपने सच्चे स्वार्थ को पहचानने की अन्तर्दृष्टि से युक्त होकर उस सुगन्ध का अनादर करेगी और किसी ऐसे पर आश्रित होगी जो सदैव महान् भय से आतंकित रहता हो?

तात्पर्य : श्लोक १६ में कृष्ण ने दावा किया था कि वे *गुणैर्हीना*—समस्त गुणों से हीन हैं। इस दावे के निराकरण हेतु भक्त रुक्मिणी यहाँ कहती हैं कि भगवान् *गुणालय*—समस्त गुणों के धाम—हैं। एक ही क्षण में इस संसार के तथाकथित शक्तिशाली व्यक्ति एकदम असहाय और निरीह बन जाते हैं। निस्सन्देह सारे शक्तिशाली नर-प्राणियों के भाग्य में विनाश लिखा है। किन्तु भगवान् का नित्य आध्यात्मिक शरीर सर्वशक्तिमान तथा अतीव सुन्दर है इसीलिए, जैसाकि महारानी रुक्मिणी यहाँ तर्क करती हैं, भला कोई समझदार, प्रबुद्ध स्त्री भगवान् कृष्ण को छोड़कर और किसी की शरण क्यों लेने लगी?

तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीश-
मात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ।
स्यान्मे तवाङ्घ्रिररणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या
यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४॥

शब्दार्थ

तम्—उस; त्वा—आपको; अनुरूपम्—उपयुक्त; अभजम्—मैंने चुना है; जगताम्—सारे संसारों के; अधीशम्—अनन्तिम स्वामी को; आत्मानम्—परमात्मा को; अत्र—इस जीवन में; च—तथा; परत्र—अगले जीवन में; च—भी; काम—इच्छाओं का; पूरम्—पूरा करने वाला; स्यात्—वे होयें; मे—मेरे लिए; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रिः—चरण; अरणम्—शरण; सृतिभिः—विविध चक्करों द्वारा (एक योनि से दूसरी योनि में); भ्रमन्त्याः—भ्रमण कर रहे; यः—जो (चरण); वै—निस्सन्देह; भजन्तम्—उनका पूजक, भजन करने वाला; उपयाति—पहुँचते हैं; अनृत—असत्य से; अपवर्गः—मोक्ष।

चूँकि आप मेरे अनुरूप हैं इसलिए मैंने तीनों जगत के स्वामी तथा परमात्मा आपको ही चुना है, जो इस जीवन में तथा अगले जीवन में हमारी इच्छाओं को पूरा करते हैं। आपके चरण जो अपने उन पूजकों के पास पहुँच कर मोह से मुक्ति दिलाते हैं, जो एक योनि से दूसरी योनि में भ्रमण करते रहे हैं, मुझे शरण प्रदान करें।

तात्पर्य : *सृतिभि:* के स्थान पर अन्य पाठ *श्रुतिभि:* भी मिलता है, जिसके अनुसार रुक्मिणी के भाव इस प्रकार होंगे, ''मैं विविध धार्मिक शास्त्रों में वर्णित अनेकानेक अनुष्ठानों तथा उत्सवों एवं उनसे मिलने वाले फलों की वचन बद्धताओं के विषय में सुन कर मोहग्रस्त होती रही हूँ।'' श्रील श्रीधर गोस्वामी ने यह व्याख्या की है किन्तु श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *श्रुतिभि:* शब्द से रुक्मिणी द्वारा एक अन्य विचार प्रस्तुत किये जाने की बात कही है : ''हे मेरे प्रिय कृष्ण! मैं आपके अनेक अवतारों के बारे में सुनकर भ्रमित हो गई थी। मैंने सुना है कि आपने राम का अवतार लेकर अपनी पत्नी सीता का परित्याग किया और इस जीवन में आपने गोपियों का परित्याग किया है। इसीलिए मैं भ्रमित हो गई थी।''

यह सुविदित है कि श्रीमती रुक्मिणीदेवी भगवान् कृष्ण की नित्यमुक्त प्रियतमा हैं किन्तु इस श्लोक में वे भगवान् की शरण में आई मर्त्य स्त्री की भूमिका अदा कर रही हैं।

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः
स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वविडालभृत्याः ।
यत्कर्णमूलमन्कर्षण नोपयायाद्
युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥ ४४॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसके; स्युः—(पतियों को) होने दो; अच्युत—हे अच्युत कृष्ण; नृपाः—राजा; भवता—आपके द्वारा; उपदिष्टाः—कथित; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; गृहेषु—घरों में; खर—गधा; गो—बैल; श्व—कुत्ते; विडाल—बिल्ली; भृत्याः—तथा नौकर; यत्—जिसके; कर्ण—कान के; मूलम्—आन्तरिक भाग; अरि—आपके शत्रु; कर्षण—हे तंग करने वाले; न—कभी नहीं; उपयायात्—पास आते हैं; युष्मत्—आपके विषय में; कथा—विचार-विमर्श; मृड—शिव; विरिञ्च—तथा ब्रह्मा की; सभासु—विद्वानों की मण्डली; गीता—गाया हुआ।

हे अच्युत कृष्ण, आपने जिन-जिन राजाओं के नाम लिये हैं उनमें से हर एक राजा ऐसी स्त्री का पति बन जाये जिसके कानों ने कभी भी आपकी उस महिमा का श्रवण नहीं किया जो शिव तथा ब्रह्मा की सभाओं में गाई जाती है। कुछ भी हो ऐसी स्त्रियों के घरों में ये राजा गधों, बैलों, कुत्तों, बिल्लियों तथा नौकरों की तरह रहते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार श्रीमती रुक्मिणीदेवी के ये कटु-वचन श्लोक में आये भगवान् कृष्ण के प्रारम्भिक कथन के उत्तर स्वरूप हैं। भगवान् ने कहा था, ''हे राजकुमारी! तुम्हें लोकपाल जैसे शक्ति सम्पन्न अनेक राजा चाहते थे। वे प्रचुर राजनैतिक प्रभाव, सम्पत्ति, सौन्दर्य,

उदारता तथा शारीरिक शक्ति से सम्पन्न थे।'' श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार यहाँ पर महारानी रुक्मिणी कृष्ण की ओर तर्जनी करके क्रोध से बोल रही हैं। वे तथाकथित बड़े बड़े राजाओं की उपमा गधों से देती हैं क्योंकि वे काफी भौतिक बोझा ढोते हैं। वे राजा अपने वृत्तिपरक कार्यों के करने से बैलों की तरह दुखी रहते हैं। वे अपनी पत्नियों द्वारा अनादरित होते रहने से कुत्तों के समान हैं। वे स्वार्थी तथा क्रूर होने के कारण बिल्लियों जैसे हैं और पारिवारिक मामलों में परतंत्र होने के कारण वे नौकरों जैसे हैं। ऐसे राजा उस मूर्ख स्त्री के उपयुक्त हो सकते हैं जिसने न तो कभी श्रीकृष्ण की महिमा सुनी है, न उसे समझा है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि ऐसे राजा गधों के तुल्य हैं क्योंकि उनकी पत्नियाँ उन्हें कभी कभी लतियाती हैं, वे कुत्तों की तरह हैं क्योंकि वे बाहरी लोगों के प्रति शत्रुवत व्यवहार करते हैं जिससे वे अपने घरों की रक्षा कर सकें। वे बिल्लियों की तरह होते हैं क्योंकि वे अपनी पत्नियों द्वारा छोड़ी गई जूठन खाते हैं।

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त-
मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा
या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

त्वक्—चमड़ी; श्मश्रु—मूँछें; रोम—रोएँ; नख—नाखुन; केश—तथा सिर के बाल से; पिनद्धम्—ढके हुए; अन्तः—भीतर; मांस—मांस; अस्थि—हड्डी; रक्त—खून; कृमि—कीड़े; विट्—मल; कफ—बलगम; पित्त—पित्त; वातम्—तथा वायु; जीवत्—जीवित; शवम्—मृत शरीर; भजति—पूजा करता है; कान्त—पति या प्रेमी; मतिः—विचार; विमूढा—पूर्णतया मोहग्रस्त; या—जो; ते—तुम्हारे; पद-अब्ज—चरणकमलों का; मकरन्दम्—मधु; अजिघ्रती—न सूँघते हुए; स्त्री—स्त्री।

जो स्त्री आपके चरणकमलों के मधु की सुगन्धि का आस्वादन करने से वंचित रह जाती है, वह पूरी तरह मूर्ख (मूढ) बन कर रह जाती है और चमड़ी, मूँछ, नाखून, बाल तथा रोओं से ढके और माँस, अस्थियों, रक्त, कीट, मल, कफ, पित्त तथा वायु से भरे जीवित शव को पति या प्रेमी रूप में स्वीकार करती है।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण की सती पत्नी भौतिक शरीर पर आधारित भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति के विषय में दो टूक बातें कहती हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : *स वै पतिः स्याद् अकुतो भयः स्वयम्*—किसी का पति वह बने जो सारे भय को दूर कर सके—

इस प्रमाण के अनुसार श्रीकृष्ण हर काल में समस्त स्त्रियों के असली पति हैं। इस तरह जो स्त्री अन्य किसी को पति रूप में पूजती है, वह मात्र शव की पूजा करती है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती आगे भी टीका करते हैं: इस तरह रुक्मिणी ने विचार किया कि यद्यपि कृष्ण के चरणकमलों की माधुरी सर्वविदित है और उनका शरीर सच्चिदानन्द स्वरूप है, तो भी मूर्ख स्त्रियाँ उनका तिरस्कार करती हैं। सामान्य पति का शरीर बाहर से चमड़ी तथा बालों के ढका रहता है अन्यथा वह रक्त, मल, मांस, पित्त इत्यादि से पूरित होने के कारण दुर्गन्धयुक्त तथा अन्य घृणाजनक गुण होने से मक्खियों तथा अन्य कीटों से आकृष्ट होता है।

जिन्हें कृष्ण या कृष्णभावनामृत के सौन्दर्य तथा शुद्धि का व्यावहारिक अनुभव नहीं है वे ही ऐसी भौतिक शारीरिक तृप्ति की प्रतिकूल भर्त्सना के विषय में गुमराह रहते हैं। किन्तु जो लोग कृष्णभावनामृत में रह कर प्रबुद्ध हैं, वे ऐसे पूर्णतया सत्य कथनों से गतिशील तथा प्रोत्साहित होंगे।

अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग
आत्मन्रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ।
यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो
मामीक्षसे तदु ह नः परमानुकम्पा ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

अस्तु—हो; अम्बुज-अक्ष—हे कमल-नयन; मम—मेरा; ते—तुम्हारे; चरण—चरणों के प्रति; अनुरागः—स्थायी आकर्षण; आत्मन्—आपमें; रतस्य—आनन्द लेने वाले का; मयि—मेरे प्रति; च—तथा; अनतिरिक्त—अपर्याप्त; दृष्टेः—जिसकी दृष्टि; यर्हि—जब; अस्य—इस ब्रह्माण्ड की; वृद्धये—वृद्धि के लिए; उपात्त—कल्पना करते हुए; रजः—रजोगुण का; अति-मात्रः—आधिक्य; माम्—मुझ पर; ईक्षसे—आप देखते हैं; तत्—वह; उ ह—निस्सन्देह; नः—हमारे लिए; परम—सर्वाधिक; अनुकम्पा—कृपा का प्रदर्शन।

हे कमल-नयन, यद्यपि आप अपने में तुष्ट रहते हैं जिससे शायद ही कभी मेरी ओर ध्यान देते हैं, तो भी कृपा करके मुझे अपने चरणकमलों के प्रति स्थायी प्रेम का आशीर्वाद दें। जब आप ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने के लिए रजोगुण की प्रधानता धारण करते हैं तभी आप मुझ पर दृष्टि डालते हैं, जो निस्सन्देह मेरे ऊपर आपकी महती कृपा होती है।

तात्पर्य : इस अध्याय के श्लोक २० में कृष्ण ने कहा था, ''हम सदैव आत्मतुष्ट रहने के कारण अपनी पत्नियों, बच्चों तथा सम्पत्ति की तनिक भी परवाह नहीं करते।'' यहाँ पर रुक्मिणीदेवी विनीत-भाव से उत्तर देती हैं, ''हाँ, आप अपने भीतर आनन्द का अनुभव करते हैं इसीलिए मेरी ओर विरले ही

देखते हैं।''

इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के प्रति अपने प्रेम की घोषणा पहले ही कर दी थी (भागवत .५.२)— *तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि*—मैं उसके विषय में भी सोचता रहता हूँयहाँ तक कि मुझे रात में नींद नहीं आती। कृष्ण अपने में तुष्ट रहने वाले हैं और यदि हम यह स्मरण रखें कि श्रीमती रुक्मिणीदेवी उनकी अन्तरंगा शक्ति हैं, तो हम समझ सकते हैं कि उनके साथ कृष्ण के प्रेमालाप उनके शुद्ध आध्यात्मिक सुख की अभिव्यक्तियाँ हैं।

किन्तु यहाँ पर महारानी रुक्मिणी भगवान् की बहिरंगा शक्ति के रूप में अपनी पहचान करती हैं, जो कि उनकी अंशरूपा हैं। इसीलिए वे कहती हैं, ''यद्यपि आप प्राय: मेरी ओर नहीं देखते किन्तु जब आप भौतिक ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने वाले होते हैं और रजोगुण के माध्यम से, जो कि आपकी शक्ति है, कार्य करना शुरू करते हैं, तो आप मुझ पर दृष्टि डालते हैं। इस तरह आप मुझ पर अपनी महती दया प्रदर्शित करते हैं।'' इस तरह आचार्य विश्वनाथ बतलाते हैं कि देवी रुक्मिणी के कथन को दो प्रकार से समझा जा सकता है। और असल में सारे वैष्णवजन प्रामाणिक आचार्यों से कृष्ण-दर्शन को भलीभाँति समझ कर भगवान् तथा उनके महान् भक्तों के मध्य के इन प्रेमालापों का आनन्द लूटते हैं।

नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ।
अम्बाया एव हि प्राय: कन्याया: स्याद्रति: क्वचित् ॥ ४७॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अलीकम्—असत्य; अहम्—मैं; मन्ये—सोचती हूँ; वच:—शब्दों को; ते—तुम्हारे; मधु-सूदन—हे मधु-हन्ता; अम्बाया:—अम्बा का; एव हि—निश्चय ही; प्राय:—सामान्यतया; कन्याया:—कन्या का; स्यात्—उत्पन्न हुआ; रति:—आकर्षण (शाल्व के प्रति); क्वचित्—एक बार।

हे मधु-सूदन, मैं आपके वचनों को वास्तव में असत्य नहीं मानती। प्राय: अविवाहिता लड़की पुरुष के प्रति आकृष्ट हो जाती है जैसा अम्बा के साथ हुआ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण द्वारा कही गई सारी बातों को काट कर अब श्रीमती रुक्मिणी उनके कथनों की सत्यता की शिष्टाचार-भाव से प्रशंसा करती हैं। दूसरे शब्दों में, वे स्वीकार करती हैं कि भगवान् कृष्ण ने सामान्य नारी मनोविज्ञान को स्पष्ट करने के लिए उन्हें उदाहरण बनाया। काशी-नरेश के तीन कन्याएँ थीं—अम्बा, अम्बालिका तथा अम्बिका। इनमें से अम्बा शाल्व के प्रति आकृष्ट थी। *महाभारत* में यह कथा कही गई है।

व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ।
बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

व्यूढायाः—विवाहित स्त्री का; च—तथा; अपि—भी; पुंश्चल्याः—पुंश्चली, कुलटा; मनः—मन; अभ्येति—आकृष्ट होता है; नवम् नवम्—नये से नये (प्रेमी) के प्रति; बुधः—बुद्धिमान; असतीम्—कुलटा स्त्री को; न बिभ्यात्—पालन नहीं करना चाहिए; ताम्—उसका; बिभ्रत्—पालन; उभय—दोनों (इस लोक में तथा परलोक में) से; च्युतः—गिरी हुई।

कुलटा स्त्री का मन सदैव नवीन प्रेमियों के लिए लालायित रहता है, चाहे वह विवाहिता क्यों न हो। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह ऐसी कुलटा स्त्री को अपने साथ न रखे क्योंकि यदि वह ऐसा करेगा तो वह इस जीवन में तथा अगले जीवन में सौभाग्य से वंचित रहेगा।

श्रीभगवानुवाच
साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्री प्रलम्भिता ।
मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; साध्वि—हे साधु नारी; एतत्—यह; श्रोतु—सुनने के लिए; कामैः—(हमारे द्वारा) अभीष्ट; त्वम्—तुम; राज-पुत्रि—हे राजकुमारी; प्रलम्भिता—बेवकूफ बनाई गई; मया—मेरे द्वारा; उदितम्—कहे गये; यत्—जो; अन्वात्थ—तुमने जिनके उत्तर दिये; सर्वम्—सभी; तत्—वह; सत्यम्—सही; एव हि—निस्सन्देह।

भगवान् ने कहा : हे साध्वी, हे राजकुमारी, हमने तुम्हें इसीलिए झुठलाया क्योंकि हम तुम्हें इस प्रकार बोलते सुनना चाहते थे। निस्सन्देह तुमने हमारे वचनों के उत्तर में जो बातें कही हैं, वे एकदम सही हैं।

यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ।
सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यद ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

यान् यान्—जो जो; कामयसे—कामना करती हो; कामान्—वरों को; मयि—मुझसे; अकामाय—इच्छा से रहित होने के लिए; भामिनि—हे सुन्दरी; सन्ति—हैं; हि—निस्सन्देह; एक-अन्त—नितान्त; भक्तायाः—भक्तों के लिए; तव—तुम्हारे; कल्याणि—हे कल्याणी; नित्यदा—सदैव।

हे सुन्दर तथा सुशील स्त्री, तुम भौतिक इच्छाओं से मुक्त होने के लिए जिस भी वर की आशा रखती हो वे तुम्हारे हैं क्योंकि तुम मेरी अनन्य भक्त हो।

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ।
यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

उपलब्धम्—अनुभूत; पति—पति के लिए; प्रेम—शुद्ध-प्रेम; पाति—पति के प्रति; व्रत्यम्—सती व्रत का दृढ़ता से पालन; च—तथा; ते—तुम्हारा; अनघे—हे निष्पाप; यत्—जो; वाक्यैः—शब्दों से; चाल्यमानायाः—विचलित हुए; न—नहीं; धीः—तुम्हारा मन; मयि—मुझमें अनुरक्त; अपकर्षिता—दूर खींचा गया।

हे निष्पाप, अब मैंने तुम्हारा शुद्ध पति-प्रेम तथा पातिव्रत्य देख लिया है। यद्यपि तुम मेरे वचनों से विचलित थीं किन्तु तुम्हारा मन मुझसे दूर नहीं ले जाया जा सका।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं जिसमें रुक्मिणी तथा कृष्ण के शुद्ध-प्रेम का वर्णन हुआ है—

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।

यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः ॥

''जब एक युवक तथा युवती के बीच का स्नेह-बन्धन, उसके टूटने का कारण उपस्थित होते हुए भी, कभी टूटता नहीं तो उनके बीच का यह अनुराग शुद्ध-प्रेम कहलाता है।'' भगवान् कृष्ण तथा उनके शुद्ध दम्पति-संगियों के मध्य नित्य प्रेमालाप की यही प्रकृति है।

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया ।
कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; माम्—मुझको; भजन्ति—पूजता है; दाम्पत्ये—गृहस्थ जीवन में रहने के लिए; तपसा—तपस्या द्वारा; व्रत—व्रतों को; चर्यया—सम्पन्न करके; काम-आत्मानः—प्रकृति से कामुक विषयी; अपवर्ग—मोक्ष का; ईशम्—नियन्ता; मोहिताः—मोहित; मम—मेरी; मायया—भ्रामक भौतिक-शक्ति द्वारा।

यद्यपि मुझमें आध्यात्मिक मोक्ष प्रदान करने की शक्ति है किन्तु विषयी लोग अपने संसारी गृहस्थ जीवन के लिए मेरा आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए तपस्या तथा व्रतों द्वारा मेरी पूजा करते हैं। ऐसे लोग मेरी माया-शक्ति द्वारा मोहग्रस्त रहते हैं।

तात्पर्य : *दाम्पत्ये* शब्द पति तथा पत्नी के सम्बन्ध का सूचक है। विषयी तथा मोहित व्यक्ति इस सम्बन्ध को बढ़ाने के लिए भगवान् की पूजा करते हैं यद्यपि वे जानते हैं कि भगवान् उन्हें नश्वर वस्तुओं के प्रति उनकी वृथा की आसक्ति से मुक्त कर सकते हैं।

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसम्पदं
वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत्पतिम् ।

ते मन्दभागा निरयेऽपि ये नृणां
मात्रात्मकत्वात्निरयः सुसङ्गमः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; प्राप्य—पाकर; मानिनि—हे प्रेम की आगार; अपवर्ग—मोक्ष का; सम्पदम्—कोष; वाञ्छन्ति—चाहते हैं; ये—जो; सम्पदः—(भौतिक) कोष; एव—केवल; तत्—ऐसे; पतिम्—पति को; ते—वे; मन्द-भागाः—कम भाग्यशाली; निरये—नरक में; अपि—भी; ये—जो; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; मात्रा-आत्मकत्वात्—इन्द्रिय-तृप्ति में लीन रहने के कारण; निरयः—नरक; सु-सङ्गमः—उपयुक्त ।

हे मानिनी, अभागे वे हैं, जो मोक्ष तथा भौतिक सम्पदा दोनों ही के स्वामी मुझको पाकर के भी, केवल भौतिक सम्पदा के लिए ही लालायित रहते हैं। ये सांसारिक लाभ तो नरक में भी पाये जा सकते हैं। चूँकि ऐसे व्यक्ति इन्द्रिय-तृप्ति में लीन रहते हैं इसलिए नरक ही उनके लिए उपयुक्त स्थान है।

तात्पर्य : इसमें तर्क यह है कि जब भगवान् कृष्ण समस्त आनन्द तथा समस्त ऐश्वर्य के उद्गम हैं, तो वे ही परम आनन्द तथा सर्वाधिक ऐश्वर्यवान हैं। इसलिए हमारा असली स्वार्थ इसी में है कि हम अपने को भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति में सदैव लगायें। जैसाकि प्रह्लाद महाराज कहते हैं (भागवत ७.५.१)— *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*—अज्ञानी यह नहीं जानते कि उनका असली स्वार्थ भगवान् विष्णु (कृष्ण) को पाने में निहित है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार, मनुष्य को स्त्री-संग तथा अन्य इन्द्रिय-भोग नरक में भी प्राप्य हैं। यह व्यावहारिक अनुभव है कि कूकर, शूकर तथा कबूतर को भी संभोग करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त हैं। यह दुर्भाग्य ही है कि आधुनिक मानव, जिन्हें कृष्णभावनाभावित होने का स्वर्णिम अवसर मिला हुआ है, कुत्तों, बिल्लियों की तरह विषय-सुख को श्रेयस्कर समझते हैं। और यह सब भौतिक उन्नति के नाम पर हो रहा है।

दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया
कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ।
सुदुष्करासौ सुतरां दुराशिषो
ह्यसुंभराया निकृतिं जुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्यवश; गृह—घर की; ईश्वरी—स्वामिनी; असकृत्—निरन्तर; मयि—मुझमें; त्वया—तुम्हारे द्वारा; कृता—की हुई; अनुवृत्तिः—श्रद्धापूर्ण सेवा; भव—संसार से; मोचनी—मुक्ति दिलाने वाली; खलैः—ईर्ष्यालुओं के लिए; सु-दुष्करा—करना अत्यन्त कठिन; असौ—यह; सुतराम्—विशेष रूप से; दुराशिषः—दुष्ट मनोभावों वाले; हि—निस्सन्देह; असुम्—उसका प्राण; भरायाः—जो (एकमात्र) पालन करती है; निकृतिम्—छलावा; जुषः—लिप्त; स्त्रियाः—स्त्री के लिए ।

हे गृहस्वामिनी, सौभाग्यवश तुमने मेरी श्रद्धापूर्वक भक्ति की है, जो मनुष्य को संसार से मुक्त कराती है। ईर्ष्यालु के लिए यह सेवा अत्यन्त कठिन है, विशेषतया उस स्त्री के लिए जिसके मनोभाव दूषित हैं और जो शारीरिक क्षुधा शान्त करने के लिए ही जीवित है और जो छलछद्म में लिप्त रहती है।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी यह प्रश्न करते हैं: चूँकि भक्ति से मनुष्य को आसानी से मुक्ति मिल जाती है, तो फिर क्या ऐसा नहीं हो सकता कि सारे लोग मुक्त हो जाँय और यह संसार रहे ही न? वे इसका उत्तर देते हैं कि ऐसा कोई खतरा नहीं है क्योंकि ईर्ष्यालु, छलछद्ममय, विषयी लोगों के लिए भगवान् की श्रद्धापूर्वक सेवा कर पाना बहुत कठिन है और संसार में ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं है।

न त्वादृशीम्प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु
पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ।
प्राप्तान्नृपान्न विगणय्य रहोहरो मे
प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्वादृशीम्—तुम जैसी; प्रणयिनीम्—प्रेम करने वाली; गृहिणीम्—पत्नी को; गृहेषु—मेरे आवासों में; पश्यामि—देखता हूँ; मानिनि—हे आदरणीय; यया—जिससे; स्व—अपने; विवाह—विवाह के; काले—समय में; प्राप्तान्—आये हुए; नृपान्—राजाओं को; न विगणय्य—परवाह न करते हुए; रहः—गुप्त सन्देश का; हरः—ले जाने वाला; मे—मेरे पास; प्रस्थापितः—भेजा गया; द्विजः—ब्राह्मण; उपश्रुत—सुनी हुई; सत्—सच्ची; कथस्य—जिसके विषय में कथाएँ।.

हे सर्वाधिक आदरणीया, मुझे अपने सारे आवासों में तुम जैसी प्रेम करने वाली अन्य पत्नी ढूँढ़े नहीं मिलती। जब तुम्हारा ब्याह होने वाला था, तो तुमसे विवाह करने के इच्छुक जितने राजा एकत्र हुए थे उनकी परवाह तुमने नहीं की और क्योंकि तुमने मेरे विषय में प्रामाणिक बातें ही सुन रखी थीं तुमने अपना गुप्त सन्देश एक ब्राह्मण के हाथ मेरे पास भेजा।

भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य
प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ।
दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या
नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

भ्रातुः—तुम्हारे भाई का; विरूप-करणम्—विरूप किया जाना; युधि—युद्ध में; निर्जितस्य—पराजित; प्रोद्वाह—विवाहोत्सव का (रुक्मिणी के पौत्र अनिरुद्ध का); पर्वणि—नियत दिन पर; च—तथा; तत्—उसका; वधम्—मारा जाना; अक्ष-गोष्ठ्याम्—द्यूत-क्रीड़ा (चौसर) के समय; दुःखम्—दुख; समुट्थम्—पूर्णरूप से अनुभवी; असहः—असह्य; अस्मत्—हमसे;

अयोग—वियोग के; भीत्या—भय से; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अब्रवी:—तुमने कहा; किम् अपि—कुछ भी; तेन—उससे; वयम्—हम; जिताः—जीते गये; ते—तुम्हारे द्वारा।.

जब तुम्हारा भाई युद्ध में पराजित होकर विरूप कर दिया गया और अनिरुद्ध के विवाह के दिन चौसर खेलते समय मार डाला गया तो तुम्हें असह्य दुख हुआ। फिर भी तुमने मुझसे विलग होने के भय से एक शब्द भी नहीं कहा। अपनी इस चुप्पी से तुमने मुझे जीत लिया है।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण एक घटना का उल्लेख करते हैं, जो अगले अध्याय में वर्णित की जायेगी। इस प्रकार रुक्मिणी से कृष्ण की यह वार्ता अनिरुद्ध के विवाह के बाद हुई होगी।

दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमन्त्रः
प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ।
मत्वा जिहास इदं अङ्गमनन्ययोग्यं
तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥

शब्दार्थ

दूतः—दूत; त्वया—तुम्हारे द्वारा; आत्म—मुझको; लभने—प्राप्त करने के लिए; सु-विविक्त—अत्यन्त गोपनीय; मन्त्रः—सलाह; प्रस्थापितः—भेजा; मयि—जब मैंने; चिरायति—विलम्ब हुआ; शून्यम्—रिक्त; एतत्—यह (संसार); मत्वा—सोच कर; जिहासे—तुमने त्यागना चाहा; इदम्—यह; अङ्गम्—शरीर; अनन्य—किसी दूसरे के लिए नहीं; योग्यम्—उपयुक्त; तिष्ठेत—रुक सकता है; तत्—वह; त्वयि—तुममें; वयम्—हम; प्रतिनन्द-यामः—प्रसन्न होकर उत्तर देते हैं।.

जब तुमने अपनी अत्यन्त गुप्त योजना के साथ अपना दूत भेजा था और तब मुझे तुम्हारे पास जाने में विलम्ब हुआ था, तो तुम्हें सारा संसार शून्य जैसा दिखने लगा था और तुम अपना वह शरीर त्यागना चाह रही थी जिसे तुम मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं दे सकती थी। तुम्हारी यह महानता सदैव तुममें बनी रहे। मैं इसके बदले में तुम्हें तुम्हारी भक्ति के लिए हर्षपूर्वक धन्यवाद देने के अतिरिक्त कर ही क्या सकता हूँ!

तात्पर्य : श्रीमती रुक्मिणीदेवी के मन में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को पति बनाने का कभी कोई मन्तव्य नहीं था जैसाकि उन्होंने कृष्ण के पास भेजे गये अपने सन्देश में कहा था (*भागवत* .५२.४)— *यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं। जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभि: स्यात्*—यदि आपने कृपा नहीं की तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी जो मेरी तपस्या के कारण अत्यन्त क्षीण हो चुका होगा। तब हो सकता है सैकड़ों जीवन तक प्रयास के बाद मैं आपकी कृपा पा सकूँ। *श्रीमद्भागवत* द्वारा महारानी रुक्मिणीदेवी की अद्वितीय महिमा स्थापित होती है।

श्रीशुक उवाच
एवं सौरतसंलापैर्भगवान्जगदीश्वरः ।
स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सौरत—सुरति सम्बन्धी; संलापैः—बातचीत से; भगवान्—भगवान्; जगत्—ब्रह्माण्ड के; ईश्वरः—स्वामी; स्व—अपने में; रतः—आनन्दमग्न; रमया—रमा या लक्ष्मी के साथ (अर्थात् रुक्मिणी के साथ); रेमे—रमण किया; नर-लोकम्—मनुष्यों के संसार का; विडम्बयन्—अनुकरण करते हुए।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह ब्रह्माण्ड के स्वामी आत्माराम भगवान् ने उन्हें प्रेमियों की वार्ता में लगाकर और इस तरह मानव समाज की रीतियों का अनुकरण करते हुए लक्ष्मी के साथ रमण किया।

तात्पर्य : *विडम्बयन्* शब्द का अर्थ है ''अनुकरण करते हुए'' तथा ''उपहास करते हुए।'' भगवान् इस जगत के पति के समान कार्य कर रहे थे किन्तु उनकी लीलाएँ दिव्य हैं और दैहिक इन्द्रिय-तुष्टि को लक्ष्य करके की गई संसारी गतिविधियों की विकृति का पर्दाफाश करने वाली हैं।

तथान्यासामपि विभुर्गृहेसु गृहवानिव ।
आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मान्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

तथा—इसी तरह से; अन्यासाम्—अन्यों (रानियों) के; अपि—भी; विभुः—सर्वशक्तिमान भगवान्; गृहेषु—घरों में; गृह-वान्—गृहस्थ; इव—मानो; आस्थितः—पूरी की गई; गृह-मेधीयान्—पवित्र गृहस्थों के; धर्मान्—धार्मिक कर्तव्य; लोक—सारे जगतों के; गुरुः—गुरु; हरिः—कृष्ण ने।.

समस्त लोकों के गुरु सर्वशक्तिमान भगवान् हरि ने इसी तरह से अपनी अन्य रानियों के महलों में गृहस्थ के धार्मिक कृत्य सम्पन्न करते हुए पारम्परिक गृहस्थ की तरह आचरण किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''रुक्मिणी के साथ कृष्ण का परिहास'' नामक साठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter इकसठ

बलराम द्वारा रुक्मी का वध

इस अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्रों, पौत्रों तथा अन्य सन्तानों की सूची दी गई है। इसमें इसका भी वर्णन है कि बलराम ने अनिरुद्ध के विवाहोत्सव के समय रुक्मी को किस तरह मारा और

कृष्ण ने किस तरह अपने पुत्रों तथा पुत्रियों के विवाह की व्यवस्था की।

श्रीकृष्ण के बारे में पूरी सच्चाई न समझने के कारण उनकी प्रत्येक पत्नी यही सोचती थी कि चूँकि वे उसके महल में निरन्तर रहते हैं अतएव वही उनकी प्रिय पत्नी है। वे सभी भगवान् के सौन्दर्य एवं अपने साथ उनके मधुर वार्तालाप पर मुग्ध थीं किन्तु वे न तो अपनी भौंहों के नचाने से या अन्य किसी साधन से उनके मन को चलायमान कर पाती थीं। श्रीकृष्ण जो कि ब्रह्मा जैसे देवताओं के लिए अगम्य हैं, उन्हें अपने पति के रूप में पाकर भगवान् की सारी रानियाँ उनके साथ रहने के लिए सदा उत्सुक रहती थीं। इस तरह लाखों दासियों के होते हुए भी वे स्वयं उनकी छोटी से छोटी सेवा तक करती थीं।

भगवान् की प्रत्येक पत्नी से दस दस पुत्र हुए जिनके भी अनेक पुत्र तथा पौत्र थे। रुक्मी की पुत्री रुक्मावती के पति प्रद्युम्न से उसे अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ। यद्यपि श्रीकृष्ण ने रुक्मी का अनादर किया था किन्तु अपनी बहन को खुश करने के लिए रुक्मी ने अपनी पुत्री का विवाह प्रद्युम्न के साथ कर दिया और पौत्री का विवाह अनिरुद्ध के साथ कर दिया। कृतवर्मा के पुत्र बली ने रुक्मिणी की पुत्री चारुमती के साथ विवाह किया।

अनिरुद्ध के विवाह में बलदेव, श्रीकृष्ण तथा अन्य यादव भोजकट नगर में रुक्मी के महल में गये। विवाह के बाद रुक्मी ने बलदेव को चौसर खेलने के लिए ललकारा। पहली बाजी में रुक्मी ने बलदेव को हरा दिया अत: कलिंगराज उन पर हँसा जिससे उसके सारे दाँत दिखने लगे। अगली बाजी बलदेव जीत गये किन्तु रुक्मी ने अपनी हार नहीं मानी। तभी आकाशवाणी हुई कि बलदेव जीते हैं। किन्तु रुक्मी ने दुष्ट राजाओं के बहकावे में आकर बलदेव का अपमान यह कहकर किया कि वे गाय चराने में तो पटु हैं किन्तु चौसर खेलने में शून्य हैं। इस तरह अपमानित होने पर बलदेव ने अपनी गदा से रुक्मी पर प्रहार किया जिससे वह मर गया। कलिंगराज ने भागना चाहा किन्तु बलदेव ने उसे पकड़ लिया और उसके सारे दाँत तोड़ दिये। तत्पश्चात् अन्य अपराधी–राजा सभी दिशाओं में भाग गये। उनकी बाहें, जाँघें तथा सिर बलदेव के वारों से क्षत–विक्षत हो चुके थे और उनसे काफी खून निकल रहा था। श्रीकृष्ण ने अपने साले की मृत्यु पर न तो सहमति प्रकट की न असहमति क्योंकि उन्हें भय था कि इससे रुक्मिणी या बलदेव से उनके प्रेमपूर्ण सम्बन्ध छिन्न हो सकते हैं।

इसके बाद बलदेव तथा अन्य यादवों ने अनिरुद्ध तथा उसकी पत्नी को सुन्दर रथ पर बैठाया और

द्वारका के लिए रवाना हो गये।

श्रीशुक उवाच
एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दशदशाबआः ।
अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एक-एकशः—एक एक करके; ताः—वे; कृष्णस्य—कृष्ण के; पुत्रान्—पुत्रों को; दश-दश—हर एक के दस दस; अबलाः—पत्नियों ने; अजीजनन्—जन्म दिया; अनवमान्—उत्तम; पितुः—उनके पिता का; सर्व—सारा; आत्म—निजी; सम्पदा—ऐश्वर्य।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् कृष्ण की हर पत्नी से दस दस पुत्र हुए जो अपने पिता से कम नहीं थे और जिनके पास अपने पिता का सारा निजी ऐश्वर्य था।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण के १६,८ पत्नियाँ थीं औ र इस श्लोक के अनुसार कृष्ण के १,६१,०८० पुत्र थे।

गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ।
प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

गृहात्—अपने महलों से; अनपगम्—कभी बाहर न जाते; वीक्ष्य—देखकर; राज-पुत्र्यः—राजाओं की पुत्रियाँ; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; स्थितम्—रहते हुए; प्रेष्ठम्—अत्यन्त प्रिय; न्यमंसत—उन्होंने विचार किया; स्वम् स्वम्—अपने अपने; न—नहीं; तत्—उसके विषय में; तत्त्व—सचाई; विदः—जानने वाली; स्त्रियः—स्त्रियाँ।

चूँकि इनमें से हर राजकुमारी यह देखती थीं कि भगवान् अच्युत कभी उसके महल से बाहर नहीं जाते अतएव हर एक अपने को भगवान् की प्रिया समझती थी। ये स्त्रियाँ उनके विषय में पूरी सच्चाई नहीं समझ पाईं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर लिखते हैं कि भगवान् कृष्ण अपनी पत्नियों की अनुमति से ही महलों से बाहर जाते थे इसलिए हर पत्नी अपने को उनकी परम-प्रिया मानती थी।

चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्र-
सप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ।
सम्मोहिता भगवतो न मनो विजेतुं
स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभून्मः ॥ ॥

शब्दार्थ

चारु—सुन्दर; अब्ज—कमल के; कोश—कोश के समान; वदन—मुख से; आयत—विस्तृत; बाहु—अपनी बाहुओं से; नेत्र—तथा आँखों से; स-प्रेम—प्रेमपूर्ण; हास—हास्य के; रस—रस में; वीक्षित—चितवनों से; वल्गु—आकर्षक; जल्पैः—तथा अपनी बातों से; सम्मोहिताः—पूर्णतया मोहित; भगवतः—भगवान् के; न—नहीं; मनः—मन के; विजेतुम्—जीतने के लिए; स्वैः—अपने; विभ्रमैः—प्रलोभनों से; समशकन्—समर्थ थीं; वनिताः—स्त्रियाँ; विभूम्नः—परम पूर्ण का।

भगवान् की पत्नियाँ उनके कमल जैसे सुन्दर मुख, उनकी लम्बी बाँहों तथा बड़ी बड़ी आँखों, हास्य से पूर्ण उनकी प्रेममयी चितवनों तथा अपने साथ उनकी मनोहर बातों से पूरी तरह मोहित थीं। किन्तु ये स्त्रियाँ अपने समस्त आकर्षण के होते हुए भी सर्वशक्तिमान भगवान् के मन को नहीं जीत पाईं।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में कहा गया है कि भगवान् कृष्ण की रानियाँ भगवान् के सत्य को नहीं समझ सकीं। इसी सत्य की विवेचना इस श्लोक में की गई है। भगवान् सर्वशक्तिमान, अनन्त ऐश्वर्य से युक्त अपने में पूर्ण हैं।

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि-
भ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु शोडशसहस्त्रमनङ्गबाणै-
र्यस्येन्द्रियं विमथितुम्करणैर्न शेकुः ॥ ४॥

शब्दार्थ

स्माय—छिपी हँसी से; अवलोक—चितवन का; लव—रंच-भर भी; दर्शित—प्रदर्शित किया; भाव—भावों से; हारि—मोहक; भ्रू—भौंहों के; मण्डल—गोलाकृति से; प्रहित—भेजती थीं; सौरत—काम कला; मन्त्र—संदेशों का; शौण्डैः—निर्भीकता की अभिव्यक्तियों से; पत्न्यः—पत्नियाँ; तु—लेकिन; षोडश—सोलह; सहस्त्रम्—हजार; अनङ्ग—कामदेव के; बाणैः—बाणों से; यस्य—जिसकी; इन्द्रियम्—इन्द्रियाँ; विमथितुम्—उद्वेलित करने के लिए; करणैः—तथा (अन्य) साधनों से; न शेकुः—असमर्थ थीं।

इन सोलह हजार रानियों की टेढ़ी भौंहें उनके गुप्त मनोभावों को लजीली हास्ययुक्त तिरछी चितवनों से व्यक्त करती थीं। इस तरह उनकी भौंहें निडर होकर माधुर्य सन्देश भेजती थीं। तो भी कामदेव के इन बाणों तथा अन्य साधनों से वे सब भगवान् कृष्ण की इन्द्रियों को उद्वेलित नहीं बना सकीं।

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता
ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुराग-
हासावलोकनवसङ्गमलालसाद्यम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; रमा-पतिम्—लक्ष्मी के पति को; अवाप्य—प्राप्त करके; पतिम्—पति रूप में; स्त्रियः—स्त्रियाँ; ताः—वे; ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा तथा अन्य देवता; अपि—भी; न विदुः—नहीं जानते; पदवीम्—प्राप्त करने के साधन; यदीयाम्—जिनको; भेजुः—भाग लिया; मुदा—हर्षपूर्वक; अविरतम्—निरन्तर; एधितया—वर्धित; अनुराग—प्रेमाकर्षण; हास—हँसी; अवलोक—चितवन; नव—नया; सङ्गम—घनिष्ठ साथ की; लालस—उत्सुकता; आद्यम्—इत्यादि।

इस तरह इन स्त्रियों ने लक्ष्मीपति को अपने पति रूप में प्राप्त किया यद्यपि ब्रह्मा जैसे बड़े बड़े देवता भी उन तक पहुँचने की विधि नहीं जानते। प्रेम में निरन्तर वृद्धि के साथ वे उनके प्रति अनुराग का अनुभव करतीं, उनसे हास्ययुक्त चितवनों का आदान-प्रदान करतीं, नित नवीन घनिष्ठता के साथ उनसे समागम की लालसा करती हुई अन्यान्य अनेक विधियों से रमण करतीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में रानियों द्वारा अनुभूत भगवान् कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ माधुर्य आकर्षण का वर्णन है।

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौच-
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैः
दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

प्रत्युद्गम—पास जाकर; आसन—आसन प्रदान करके; वर—उच्च कोटि का; अर्हण—पूजा; पाद—उसके पाँव; शौच—मार्जन; ताम्बूल—पान (की भेंट); विश्रमण—(उनके पाँव दबाकर) विश्राम करने में सहायता करते हुए; वीजन—पंखा झलना; गन्ध—सुगंधित वस्तुएँ (भेंट करके); माल्यैः—तथा फूल की मालाओं से; केश—उनके बाल; प्रसार—सँवार कर; शयन—बिछौने की व्यवस्था; स्नपन—स्नान कराकर; उपहार्यैः—तथा भेंटें प्रदान करके; दासी—नौकरानियाँ; शताः—सैकड़ों; अपि—यद्यपि; विभोः—सर्वशक्तिमान प्रभु की; विदधुः-स्म—सम्पन्न किया; दास्यम्—सेवा।

यद्यपि भगवान् की रानियों में से हर एक के पास सैकड़ों दासियाँ थीं, फिर भी वे विनयपूर्वक उनके पास जाकर, उन्हें आसन देकर, उत्तम सामग्री से उनकी पूजा करके, उनके चरणों का प्रक्षालन करके तथा दबाकर, उन्हें खाने के लिए पान देकर, उन्हें पंखा झलकर, सुगन्धित चन्दन का लेप करके, फूल की मालाओं से सजाकर, उनके केश सँवार कर, उनका बिस्तर ठीक करके, उन्हें नहलाकर तथा उन्हें नाना प्रकार की भेंटें देकर स्वयं उनकी सेवा करती थीं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि शुकदेव गोस्वामी भगवान् कृष्ण तथा उनकी रानियों की दिव्य लीलाओं का वर्णन करने के लिए इतने उत्सुक रहते थे कि उन्होंने इन श्लोकों की पुनरावृत्ति कर दी है। उदाहरणार्थ, इस अध्याय का श्लोक ५ इसी स्कंध के उनसठवें अध्याय के श्लोक ४४ के

ही समान है और श्लोक ६ उसी अध्याय के श्लोक ४५ के समान है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि *वरार्हण* शब्द सूचित करता है कि रानियों ने भगवान् को अंजुली भर फूल (*पुष्पाञ्जलि*) तथा अंजुली भर रत्न (*रत्नाञ्जलि*) भेंट किए।

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ।
अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥ ७॥

शब्दार्थ

तासाम्—उनमें से; याः—जो; दश—दस; पुत्राणाम्—पुत्रों के; कृष्ण-स्त्रीणाम्—कृष्ण की स्त्रियों के; पुरा—पहले; उदिताः—उल्लिखित; अष्टौ—आठ; महिष्यः—पटरानियाँ; तत्—उनके; पुत्रान्—पुत्रों को; प्रद्युम्न-आदीन्—प्रद्युम्न आदि; गृणामि—मैं कहूँगा; ते—तुम्हारे लिए।

भगवान् कृष्ण की पत्नियों में से हर एक के दस दस पुत्र थे। उन पत्नियों में से आठ पटरानियाँ थीं, इसका उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ। अब मैं तुम्हें उन आठों रानियों के पुत्रों के नाम बतलाऊँगा जिनमें प्रद्युम्न मुख्य थे।

चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ।
सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥ ८॥
चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ।
प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९॥

शब्दार्थ

चारुदेष्णः सुदेष्णः च—चारुदेष्ण तथा सुदेष्ण; चारुदेहः—चारुदेह; च—तथा; वीर्य-वान्—शक्तिशाली; सुचारुः चारुगुप्तः च—सुचारु तथा चारुगुप्त; भद्रचारुः—भद्रचारु; तथा—भी; अपरः—दूसरा; चारुचन्द्रः विचारः च—चारुचन्द्र तथा विचारु; चारः—चारु; च—भी; दशमः—दसवाँ; हरेः—भगवान् हरि द्वारा; प्रद्युम्न-प्रमुखाः—प्रद्युम्न इत्यादि; जातः—उत्पन्न; रुक्मिण्याम्—रुक्मिणी के; न—नहीं; अवमाः—निकृष्ट, कम; पितुः—अपने पिता से।

महारानी रुक्मिणी का प्रथम पुत्र प्रद्युम्न था। उन्हीं के पुत्रों में चारुदेष्ण, सुदेष्ण, बलशाली चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु तथा दसवाँ पुत्र चारु थे। भगवान् हरि के इन पुत्रों में से कोई भी अपने पिता से कम नहीं था।

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ।
चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः ॥ ॥
श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ।
साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्त्रजित् ॥ ११॥
विययश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः ।

जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसम्मताः ॥ १२॥

शब्दार्थ

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः—भानु, सुभानु तथा स्वर्भानु; प्रभानः भानुमान्—प्रभानु तथा भानुमान; तथा—भी; चन्द्रभानुः बृहद्भानुः—चन्द्रभानु तथा बृहद्भानु; अतिभानुः—अतिभानु; तथा—भी; अष्टमः—आठवाँ; श्रीभानुः—श्रीभानु; प्रतिभानुः—प्रतिभानु; च—तथा; सत्यभामा—सत्यभामा के; आत्मजाः—पुत्र; दश—दस; साम्बः सुमित्रः पुरुजित् शतजित् च सहस्रजित्—साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, शतजित तथा सहस्रजित; विजयः चित्रकेतुः च—विजय तथा चित्रकेतु; वसुमान् द्रविडः क्रतुः—वसुमान, द्रविड़ तथा क्रतु; जाम्बवत्याः—जाम्बवती के; सुताः—पुत्र; हि—निस्सन्देह; एते—ये; साम्ब-आद्याः—साम्ब आदि; पितृ—उनके पिता के; सम्मताः—प्यारे।

सत्यभामा से दस पुत्र थे—भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु (आठवाँ), श्रीभानु तथा प्रतिभानु। जाम्बवती के पुत्रों के नाम थे—साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, सतजित, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड़ तथा क्रतु। साम्ब आदि ये दसों अपने पिता के अत्यन्त लाड़ले थे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने इस श्लोक में आए *पितृसम्मताः* सामासिक पद का ''अपने पिता द्वारा अत्यधिक सम्मानित'' अर्थ किया है। उक्त शब्द यह भी बतलाता है कि ये पुत्र, पूर्वोक्त पुत्रों की ही तरह अपने पिता यशस्वी कृष्ण के समान माने जाते थे।

वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान्वृषः ।
आमः शङ्कुर्वसुः श्रीमान्कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

वीरः चन्द्रः अश्वसेनः च—वीर, चन्द्र तथा अश्वसेन; चित्रगुः वेगवान् वृषः—चित्रगु, वेगवान् तथा वृष; आमः शङ्कुः वसुः—आम, शंकु तथा वसु; श्री-मान्—ऐश्वर्यशाली; कुन्तिः—कुन्ति; नाग्नजितेः—नाग्नजिती के; सुताः—पुत्र।

नाग्नजिती के पुत्र थे वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, वसु तथा ऐश्वर्यशाली कुन्ति।

श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ।
शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्रुतः कविः वृषः वीरः—श्रुत, कवि, वृष तथा वीर; सुबाहुः—सुबाहु; भद्रः—भद्र; एकलः—इनमें से एक; शान्तिः दर्शः पूर्णमासः—शान्ति, दर्श तथा पूर्णमास; कालिन्द्याः—कालिन्दी के; सोमकः—सोमक; अवरः—सबसे छोटा।

श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श तथा पूर्णमास कालिन्दी के पुत्र थे। उनका सबसे छोटा पुत्र सोमक था।

प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्धगः ।
माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

प्रघोषः गात्रवान् सिंहः—प्रघोष, गात्रवान तथा सिंह; बलः प्रबलः ऊर्धगः—बल, प्रबल तथा ऊर्धग; माद्र्याः—माद्रा के; पुत्राः—पुत्र; महाशक्तिः सहः ओजः अपराजितः—महाशक्ति, सह, ओज तथा अपराजित।

माद्रा के पुत्र थे प्रघोष, गात्रवान, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्धग, महाशक्ति, सह, ओज तथा अपराजित।

तात्पर्य : माद्रा का दूसरा नाम लक्ष्मणा भी है।

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोन्नाद एव च ।
महांसः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

वृकः हर्षः अनिलः गृध्रः—वृक, हर्ष, अनिल तथा गृध्र; वर्धन-उन्नादः—वर्धन तथा उन्नाद; एव च—भी; महांसः पावनः वह्निः—महांस, पावन तथा वह्नि; मित्रविन्दा—मित्रविन्दा के; आत्मजाः—पुत्र; क्षुधिः—क्षुधि।

मित्रविन्दा के पुत्रों के नाम थे वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद, महांस, पावन, वह्नि तथा क्षुधि।

सङ्ग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ।
जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सङ्ग्रामजित् बृहत्सेनः—संग्रामजित तथा बृहत्सेन; शूरः प्रहरणः अरिजित्—शूर, प्रहरण तथा अरिजित; जयः सुभद्रः—जय तथा सुभद्र; भद्रायाः—भद्रा (शैब्या) के; वामः आयुश् च सत्यकः—वाम, आयुर् तथा सत्यक।

भद्रा के पुत्र थे संग्रामजित, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयुर् तथा सत्यक।

दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ।
प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ।
पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

दीप्तिमान् ताम्रतप्त-आद्याः—दीप्तिमान, ताम्रतप्त तथा अन्य; रोहिण्याः—रोहिणी (शेष १६ ० रानियों में से प्रमुख) ; तनयाः—पुत्र; हरेः—भगवान् कृष्ण के; प्रद्युम्नात्—प्रद्युम्न से; च—तथा; अनिरुद्धः—अनिरुद्ध; अभूत्—उत्पन्न हुआ; रुक्मवत्याम्—रुक्मवती से; महा-बलः—अत्यन्त बलवान; पुत्र्याम्—पुत्री से; तु—निस्सन्देह; रुक्मिणः—रुक्मी की; राजन्—हे राजा (परीक्षित); नाम्ना—नामक; भोजकटे पुरे—भोजकट(रुक्मी के राज्य में) नगर में।

दीप्तिमान, ताम्रतप्त इत्यादि भगवान् कृष्ण द्वारा रोहिणी से उत्पन्न किये गये पुत्र थे। भगवान्

कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने रुक्मी की पुत्री रुक्मवती के गर्भ से शक्तिशाली अनिरुद्ध को जन्म दिया। हे राजन्, यह सब तब हुआ जब वे भोजकटक नगर में रह रहे थे।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण की आठ पटरानियाँ हैं—रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, नाग्नजिती, कालिन्दी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा तथा भद्रा। इन आठों के पुत्रों का वर्णन कर चुकने के बाद अब शुकदेव गोस्वामी अन्य १६ ० रानियों के पुत्र ों का सन्दर्भ देते हुए रोहिणी नामक प्रधानरानी के दो प्रमुख पुत्रों का उल्लेख करते हैं।

एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ।
मातरः कृष्णजातीनां सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

एतेषाम्—इनके; पुत्र—पुत्र; पौत्राः—तथा पौत्र; च—तथा; बभूवुः—उत्पन्न हुए; कोटिशः—करोड़ों; नृप—हे राजा; मातरः—माताओं से; कृष्ण-जातीनाम्—भगवान् कृष्ण के वंशजों के; सहस्राणि—हजारों; च—तथा; षोडश—सोलह।

हे राजन्, कृष्ण के पुत्रों के पुत्रों तथा पौत्रों की संख्या करोड़ों में थी। सोलह हजार माताओं ने इस वंश को आगे बढ़ाया।

श्रीराजोवाच
कथं रुक्म्यरीपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि ।
कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ।
एतदाख्याहि मे विद्वन्द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; कथम्—कैसे; रुक्मी—रुक्मी ने; अरि—अपने शत्रु के; पुत्राय—पुत्र को; प्रादात्—दिया; दुहितरम्—अपनी पुत्री को; युधि—युद्ध में; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; परिभूतः—पराजित; तम्—उसको (कृष्ण को); हन्तुम्—मारने के लिए; रन्ध्रम्—सुअवसर की; प्रतीक्षते—प्रतीक्षा कर रहा था; एतत्—यह; आख्याहि—कृपया बतलाइये; मे—मुझको; विद्वन्—हे विद्वान; द्विषोः—दो शत्रुओं के; वैवाहिकम्—विवाह का प्रबंध; मिथः—दोनों के बीच।

राजा परीक्षित ने कहा : रुक्मी ने कैसे अपने शत्रु के पुत्र को अपनी पुत्री प्रदान की? रुक्मी तो युद्ध में भगवान् कृष्ण द्वारा पराजित किया गया था और उन्हें मार डालने की ताक में था। हे विद्वान, कृपा करके मुझे बतलाइये कि ये दोनों शत्रु-पक्ष किस तरह विवाह के माध्यम से जुड़ सके।

अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ।

विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक्पश्यन्ति योगिनः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अनागतम्—अभी घटित नहीं हुआ; अतीतम्—भूतकाल; च—भी; वर्तमानम्—वर्तमान; अतीन्द्रियम्—इन्द्रियों की सीमा से परे; विप्रकृष्टम्—सुदूर; व्यवहितम्—अवरुद्ध; सम्यक्—भलीभाँति; पश्यन्ति—देखते हैं; योगिनः—योगीजन।

जो अभी घटित नहीं हुआ तथा भूतकाल या वर्तमान की बातें जो इन्द्रियों के परे, सुदूर या भौतिक अवरोधों से अवरुद्ध हैं, उन्हें योगीजन भलीभाँति देख सकते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर राजा परीक्षित शुकदेव गोस्वामी को यह बतलाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं कि रुक्मी ने अपनी पुत्री भगवान् कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को क्यों दी। परीक्षित बल देकर कहते हैं कि शुकदेव गोस्वामी जैसे महान् योगी हर बात को जानते हैं अतः वे इसे भी अवश्य जानते होंगे और उत्सुक राजा से इसे बतलाना चाहिए।

श्रीशुक उवाच
**वृतः स्वयंवरे साक्षादनण्गोऽण्गयुतस्तया ।
राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥ २२ ॥**

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; वृतः—चुना हुआ; स्वयं-वरे—उसके स्वयंवर उत्सव में; साक्षात्—प्रकट; अनङ्गः—कामदेव; अङ्ग-यतः—अवतार; तया—उसके द्वारा; राज्ञः—राजाओं को; समेतान्—एकत्र; निर्जित्य—हराकर; जहार—ले गया; एक-रथः—केवल एक रथ का स्वामी; युधि—युद्ध में।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने स्वयंवर उत्सव में रुक्मावती ने स्वयं ही प्रद्युम्न को चुना, जो कि साक्षात् कामदेव थे। तब एक ही रथ पर अकेले लड़ते हुए प्रद्युम्न ने एकत्र राजाओं को युद्ध में पराजित किया और वे उसे हर ले गये।

**यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ।
व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन्स्वसुः प्रियम् ॥ २ ॥**

शब्दार्थ

यदि अपि—यद्यपि; अनुस्मरन्—सदैव स्मरण करते हुए; वैरम्—अपनी शत्रुता; रुक्मी—रुक्मी; कृष्ण—कृष्ण द्वारा; अवमानितः—अपमानित; व्यतरत्—स्वीकृति दे दी; भागिनेयाय—अपनी बहन के बेटे को; सुताम्—अपनी पुत्री; कुर्वन्—करते हुए; स्वसुः—अपनी बहन का; प्रियम्—प्रसन्न करना।

यद्यपि रुक्मी कृष्ण के प्रति अपनी शत्रुता को सदैव स्मरण रखे रहा क्योंकि उन्होंने उसका अपमानित किया था किन्तु अपनी बहन को प्रसन्न करने के लिए उसने अपनी पुत्री का विवाह अपने भाञ्जे के साथ होने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

तात्पर्य : यहाँ पर राजा परीक्षित के प्रश्न का उत्तर दिया गया है। अन्ततोगत्वा अपनी बहन रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए रुक्मी ने प्रद्युम्न के साथ अपनी पुत्री का विवाह किये जाने की सहमति दे दी।

रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली ।
उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥ २४॥

शब्दार्थ

रुक्मिण्याः—रुक्मिणी की; तनयाम्—पुत्री को; राजन्—हे राजन्; कृतवर्म-सुतः—कृतवर्मा के पुत्र ने; बली—बली नामक; उपयेमे—विवाह लिया; विशाल—बड़े बड़े; अक्षीम्—नेत्रों वाली; कन्याम्—युवती को; चारुमतीम्—चारुमती नामक; किल—निस्सन्देह।

हे राजन्, कृतवर्मा के पुत्र बली ने रुक्मिणी की विशाल नेत्रों वाली तरुण कन्या चारुमती से विवाह कर लिया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि भगवान् की प्रत्येक महारानी से एक एक पुत्री उत्पन्न हुई थी। यहाँ चारुमती के विवाह का उल्लेख इन सारी राजकुमारियों के विवाह का अप्रत्यक्ष सन्दर्भ है।

दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्याददाद्धरेः ।
रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।
जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

दौहित्राय—अपनी पुत्री के पुत्र; अनिरुद्धाय—अनिरुद्ध के लिए; पौत्रीम्—अपनी पौत्री को; रुक्मी—रुक्मी ने; आददात्—दे दिया; हरेः—भगवान् कृष्ण के; रोचनाम्—रोचना नामक; बद्ध—बँधा हुआ; वैरः—शत्रुता में; अपि—यद्यपि; स्वसुः—अपनी बहन; प्रिय-चिकीर्षया—प्रसन्न करने की इच्छा से; जानन्—जानते हुए; अधर्मम्—अधर्म को; तत्—वह; यौनम्—विवाह; स्नेह—स्नेह की; पाश—रस्सियों से; अनुबन्धनः—जिसका बन्धन।

रुक्मी ने अपनी पौत्री रोचना को अपनी कन्या के पुत्र अनिरुद्ध को दे दिया यद्यपि भगवान् हरि से उसकी घोर शत्रुता थी। इस विवाह को अधार्मिक मानते हुए भी रुक्मी स्नेह-बन्धन से बँधकर अपनी बहन को प्रसन्न करने का इच्छुक था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि लौकिक मानदण्डों के अनुसार अपनी प्रिय पौत्री अपने कट्टर शत्रु के पौत्र को नहीं देनी चाहिए। इस तरह हमें यह आदेश प्राप्त होता है *द्विषदन्नं न भोक्तव्यं द्विषन्तं नैव भोजयेत्*—मनुष्य को चाहिए कि न तो शत्रु का भोजन करे, न शत्रु को खिलाये। इसके अतिरिक्त भी निषेध हैं—*अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु*—स्वर्ग की यात्रा को रोकने वाले या

मानव समाज के लिए निन्द्य धार्मिक आदेशों का पालन नहीं करना चाहिए।

यहाँ यह इंगित कर दिया जाय कि भगवान् कृष्ण वास्तव में किसी के भी शत्रु नहीं हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (५.२९) में भगवान् कहते हैं—*सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति*—यह समझ कर कि मैं हर जीव का शुभचिन्तक मित्र हूँ मनुष्य शान्ति प्राप्त कर सकता है। यद्यपि भगवान् कृष्ण हरएक के मित्र हैं किन्तु रुक्मी इसे नहीं समझ सका और वह भगवान् कृष्ण को अपना शत्रु मानता रहा। फिर भी अपनी बहन के स्नेहवश उसने अपनी पौत्री का विवाह अनिरुद्ध के साथ कर दिया।

उपर्युक्त निषेध के बावजूद हमें ध्यान देना होगा कि आध्यात्मिक जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों का परित्याग इसलिए नहीं करना चाहिए कि ऐसे सिद्धान्त आम जनता में लोकप्रिय नहीं हैं। जैसाकि भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (१८.६६) में में कहा है—*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।* आध्यात्मिक कर्तव्यों में परम कर्तव्य है भगवान् की शरणागति और वह कर्तव्य बाकी सभी आदेशों से ऊपर है। यही नहीं, इस युग में श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक ऐसी शुद्ध विधि प्रदान की है, जो समस्त निष्ठावान व्यक्तियों को भगवान् की शरण में जाने के लिए आकृष्ट करेगी। चैतन्य महाप्रभु के कीर्तन, नृत्य, भोज तथा दर्शन की विवेचना वाली आनन्दपूर्ण विधि का पालन करके कोई भी व्यक्ति आनन्द तथा ज्ञानमय जीवन बिताने के लिए सुगमता से भगवद्धाम जा सकता है।

तो भी कोई यह दलील पेश कर सकता है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को पाश्चात्य देशों में उन उत्सवों या कार्यकलापों का अभ्यास नहीं करना चाहिये जो आम जनता को अप्रसन्न करते हों। इस पर हमारा उत्तर यह है कि यदि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के कार्यकलापों को पाश्चात्य देशों के लोगों के समक्ष ठीक से रखा जाय तो वे इस महान् आध्यात्मिक संगठन की प्रशंसा करेंगे। जो लोग ईश्वर से विशेष रूप से द्वेष रखते हैं उन्हें किसी भी तरह का धार्मिक आन्दोलन नहीं भायेगा। चूँकि ऐसे लोग क्षुद्र पशुओं के तुल्य हैं अत: वे महान् कृष्णभावनामृत आन्दोलन में बाधक नहीं हो सकते जिस तरह ईर्ष्यालु रुक्मी भगवान् कृष्ण की शुद्ध लीलाओं में बाधक नहीं बन सका।

तस्मिन्नभ्युदये राजन्रुक्मिणी रामकेशवौ ।
पुरं भोजकटं जग्मु: साम्बप्रद्युम्नकादय: ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस; अभ्युदये—हर्ष की घड़ी में; राजन्—हे राजन्; रुक्मिणी—रुक्मिणी; राम-केशवौ—बलराम तथा कृष्ण; पुरम्—नगरी में; भोजकटम्—भोजकट; जग्मु:—गये; साम्ब-प्रद्युम्नक-आदय:—साम्ब, प्रद्युम्न तथा अन्य।.

हे राजा, उस विवाह के उल्लासपूर्ण अवसर पर महारानी रुक्मिणी, बलराम, कृष्ण तथा कृष्ण के अनेक पुत्र, जिनमें साम्ब तथा प्रद्युम्न मुख्य थे, भोजकट नगर गये।

तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपा: ।
दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७॥
अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ।
इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षैरुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उसके; निवृत्ते—समाप्त हो जाने पर; उद्वाहे—विवाहोत्सव में; कालिङ्ग-प्रमुखा:—कालिंगराज इत्यादि; नृपा:—राजा; दृप्ता:—घमंडी; ते—वे; रुक्मिणम्—रुक्मी से; प्रोचु:—बोले; बलम्—बलराम को; अक्षै:—चौसर से; विनिर्जय—जीत लो; अनक्ष-ज्ञ:—चौसर खेलने में पटु नहीं; हि—निस्सन्देह; अयम्—वह; राजन्—हे राजा; अपि—यद्यपि; तत्—उससे; व्यसनम्—उसके व्यसन को; महत्—महान्; इति—इस प्रकार; उक्त:—कहा गया; बलम्—बलराम को; आहूय—बुलाकर; तेन—उससे; अक्षै:—चौसर से; रुक्मी—रुक्मी; अदीव्यत—खेलने लगा।.

विवाह हो चुकने के बाद कालिंगराज इत्यादि दम्भी राजाओं की टोली ने रुक्मी से कहा, ''तुम्हें चाहिए कि बलराम को चौसर में हरा दो। हे राजन्, वे चौसर में पटु नहीं हैं फिर भी उन्हें इसका व्यसन है।'' इस तरह सलाह दिये जाने पर रुक्मी ने बलराम को ललकारा और उनके साथ चौसर की बाजी खेलने लगा।

शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ।
तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिङ्ग: प्राहसद्बलम् ।
दन्तान्सन्दर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुध: ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

शतम्—एक सौ; सहस्रम्—एक हजार; अयतम्—दस हजार; राम:—बलराम; तत्र—उस (खेल) में; आददे—स्वीकार किया; पणम्—दाँव को; तम्—उस; तु—लेकिन; रुक्मी—रुक्मी; अजयत्—जीत गया; तत्र—तत्पश्चात; कालिङ्ग:—कालिंग का राजा; प्राहसत्—जोर से हँस पड़ा; बलम्—बलराम पर; दन्तान्—अपने दाँत; सन्दर्शयन्—दिखाते हुए, निपोरते हुए; उच्चै:—खुलकर; न अमृष्यत्—क्षमा नहीं किया; तत्—यह; हल-आयुध:—हल धारण करने वाले, बलराम ने।.

उस स्पर्धा में सर्वप्रथम बलराम ने एक सौ सिक्कों की बाजी स्वीकार की, फिर एक हजार की और तब दस हजार की। रुक्मी ने इस पहली पारी को जीत लिया तो कालिंगराज अपने सारे दाँत निपोर कर बलराम पर ठहाका मारकर हँसा। बलराम इसे सहन नहीं कर पाये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि बाजी सोने के सिक्कों की थी। जब बलराम ने कलिंगराज के गवारू दुष्कृत्य से वे अत्यधिक क्रुद्ध हो उठे।

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद्ग्लहं तत्राजयद्बलः ।
जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ० ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; लक्षम्—एक लाख; रुक्मी—रुक्मी ने; अगृह्णात्—स्वीकार किया; ग्लहम्—बाजी; तत्र—उसमें; अजयत्—जीता; बलः—बलराम; जितवान्—जीत गया हूँ; अहम्—मैं; इति—इस प्रकार; आह—कहा; रुक्मी—रुक्मी ने; कैतवम्—छलावे में; आश्रितः—आश्रित।

इसके बाद रुक्मी ने एक लाख सिक्कों की बाजी लगाई जिसे बलराम ने जीत लिया। किन्तु रुक्मी ने यह घोषित करते हुए धोका देना चाहा कि ''मैं विजेता हूँ।''

मन्युना क्षुभितः श्रीमान्समुद्र इव पर्वणि ।
जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मन्युना—क्रोध से; क्षुभितः—क्षुब्ध; श्री-मान्—सौन्दर्य से युक्त या सुन्दरी लक्ष्मी से युक्त; समुद्रः—समुद्र; इव—सदृश; पर्वणि—पूर्णमासी के दिन; जात्या—प्रकृति द्वारा; अरुण—लाल-लाल; अक्षः—नेत्रों वाली; अति—अत्यधिक; रुषा—क्रोध से; न्यर्बुदम्— करोड़ ; ग्लहम्—दाँव या बाजी; आददे—लगाई।

रूपवान बलराम ने जिनके लाल लाल नेत्र क्रोध से और अधिक लाल हो रहे थे, पूर्णमासी के दिन उफनते समुद्र की भाँति क्रुद्ध होकर दस करोड़ मुहरों की बाजी लगाई।

तं चापि जितवान्रामो धर्मेण छलमाश्रितः ।
रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; च अपि—भी; जितवान्—जीत लिया; रामः—बलराम ने; धर्मेण—न्यायपूर्वक; छलम्—छल का; आश्रितः—आश्रय लेकर; रुक्मी—रुक्मी; जितम्—जीत गया; मया—मुझसे; अत्र—इस बार; इमे—ये; वदन्तु—कह दें; प्राश्निकाः—गवाह; इति—इस प्रकार।

इस बाजी को भी बलराम ने स्पष्टतः जीत लिया किन्तु रुक्मी ने फिर से छल करके यह घोषित किया, ''मैं जीता हूँ। यहाँ उपस्थित ये गवाह कहें जो कुछ उन्होंने देखा है।''

तात्पर्य : जब रुक्मी ने गवाहों से कहने के लिए कहा तो निस्सन्देह उसके मन में उसके साथी थे। किन्तु जब उसके गवाहों ने अपने छली मित्र की सहायता करनी चाही तो एक अद्‌भुत घटना घट गई जिसका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

तदाब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ।

धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब; अब्रवीत्—कहा; नभः—आकाश में; वाणी—शब्द; बलेन—बलराम द्वारा; एव—निस्सन्देह; जितः—जीती गई; ग्लहः—बाजी; धर्मतः—न्यायपूर्वक; वचनेन—शब्दों से; एव—निश्चय ही; रुक्मी—रुक्मी; वदति—कहता है; वै—निस्सन्देह; मृषा—झूठ।

तभी आकाशवाणी हुई ''इस बाजी को बलराम ने न्यायपूर्वक जीता है। रुक्मी निश्चित रूप से झूठ बोल रहा है।''

तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ।
सङ्कर्षणं परिहसन्बभाषे कालचोदितः ॥ ४॥

शब्दार्थ

ताम्—उस (वाणी) को; अनादृत्य—अनादर करके; वैदर्भः—विदर्भ का राजकुमार, रुक्मी; दुष्ट—दुष्ट; राजन्य—राजाओं द्वारा; चोदितः—प्रेरित, उभाड़ा गया; सङ्कर्षणम्—बलराम की; परिहसन्—हँसी उड़ाते हुए; बभाषे—बोला; काल—समय के बल से; चोदितः—प्रेरित।

दुष्ट राजाओं द्वारा उभाड़े जाने से रुक्मी ने इस दैवी वाणी की उपेक्षा कर दी। वस्तुतः साक्षात् भाग्य रुक्मी को प्रेरित कर रहा था अतः उसने बलराम की इस तरह हँसी उड़ाई।

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ।
अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥ ५॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अक्ष—चौसर खेलने में; कोविदाः—दक्ष; यूयम्—तुम; गोपालाः—ग्वाले; वन—जंगल में; गोचराः—गाय चराते हुए; अक्षैः—चौसर से; दीव्यन्ति—खेलते हैं; राजानः—राजा लोग; बाणैः—बाणों से; च—तथा; न—नहीं; भवादृशाः—आप जैसे।

[रुक्मी ने कहा] : तुम ग्वाले तो जंगलों में घूमते रहते हो चौसर के बारे में कुछ भी नहीं जानते। चौसर खेलना और बाण चलाना तो एकमात्र राजाओं के लिए हैं, तुम जैसों के लिए नहीं।

रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ।
क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ६॥

शब्दार्थ

रुक्मिणा—रुक्मी द्वारा; एवम्—इस प्रकार; अधिक्षिप्तः—अपमानित; राजभिः—राजाओं द्वारा; च—तथा; उपहासितः—मजाक उड़ाया गया; क्रुद्धः—क्रुद्ध; परिघम्—अपनी गदा को; उद्यम्य—उठाकर; जघ्ने—मार डाला; तम्—उसको; नृम्ण-संसदि—उस शुभ सभा में।

इस प्रकार रुक्मी द्वारा अपमानित करने तथा राजाओं द्वारा उपहास किये जाने पर बलराम

का क्रोध भड़क उठा। उन्होंने शुभ विवाह की सभा में ही अपनी गदा उठाई और रुक्मी को मार डाला।

कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ।
दन्तानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ७॥

शब्दार्थ

कलिङ्ग-राजम्—कलिंग के राजन् को; तरसा—तेजी से; गृहीत्वा—पकड़ कर; दशमे—उसके दसवें; पदे—पग (भागते हुए) पर; दन्तान्—उसके दाँतों को; अपातयत्—तोड़ डाला; क्रुद्धः—क्रुद्ध; यः—जो; अहसत्—हँसा था; विवृतैः—खुले हुए; द्विजैः—दाँतों से।

कलिंग के राजन् ने, जो बलराम पर हँसा था और जिसने अपने दाँत निपोरे थे, भागने का प्रयास किया किन्तु क्रुद्ध बलराम ने तेजी से उसे दसवें कदम में ही पकड़ लिया और उसके सारे दाँत तोड़ डाले।

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ।
राजानो दुद्रवर्भीता बलेन पङ्घार्दिताः ॥ ८॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्य; निर्भिन्न—टूटे; बाहु—भुजाएँ; ऊरु—जाँघें; शिरसः—तथा सिरों वाले; रुधिर—रक्त से; उक्षिताः—सने; राजानः—राजागण; दुद्रुवुः—भागे; भीताः—डरे हुए; बलेन—बलराम द्वारा; परिघ—अपनी गदा से; अर्दिताः—चोट खाकर।

बलराम की गदा से चोट खाकर अन्य राजा भय के मारे भाग खड़े हुए। उनकी बाहें, जाँघें तथा सिर टूटे थे और उनके शरीर रक्त से लथपथ थे।

निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ।
रक्मिणीबलयो राजन्स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ॥ ९॥

शब्दार्थ

निहते—मारे जाने पर; रुक्मिणि—रुक्मी के; श्याले—उसके साले; न अब्रवीत्—नहीं कहा; साधु—अच्छा; असाधु—बुरा; वा—अथवा; रुक्मिणी-बलयोः—रुक्मिणी तथा बलराम के; राजन्—हे राजा; स्नेह—स्नेह; भङ्ग—टूटने के; भयात्—भय से; हरिः—भगवान् कृष्ण ने।

हे राजन्, जब भगवान् कृष्ण का साला मार डाला गया तो उन्होंने न तो इसे सराहा न ही विरोध प्रकट किया। क्योंकि उन्हें भय था कि रुक्मिणी या बलराम से स्नेह-बन्धन बिगड़ सकते हैं।

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं
रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ।
रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः
सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अनिरुद्धम्—अनिरुद्ध को; सह—साथ; सूर्यया—उसकी पत्नी के; वरम्—दूल्हा; रथम्—रथ पर; समारोप्य—बैठाकर; ययुः—वे चले गये; कुशस्थलीम्—कुशस्थली (द्वारका); राम-आदयः—बलराम इत्यादि; भोजकटात्—भोजकट से; दशार्हाः—दशार्हवंशी; सिद्ध—पूर्ण; अखिल—समस्त; अर्थाः—कार्य; मधुसूदन—भगवान् कृष्ण के; आश्रयाः—शरणागत।

तब बलराम इत्यादि दशार्हों ने अनिरुद्ध तथा उसकी पत्नी को एक सुन्दर रथ में बैठा लिया और भोजकट से द्वारका के लिए प्रस्थान कर गये। भगवान् मधुसूदन की शरण ग्रहण करने से उनके सारे कार्य पूर्ण हो गये।

तात्पर्य : यद्यपि रुक्मिणी समस्त दशार्हों को अतीव प्रिय थीं किन्तु उनका भाई रुक्मी रुक्मिणी के विवाह के समय से ही कृष्ण का निरन्तर विरोध और अपमान करता रहता था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि इसी कारण से कृष्ण के संगियों को रुक्मी की आकस्मिक मृत्यु से कोई संताप नहीं हुआ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''बलराम द्वारा रुक्मी का वध'' नामक इकसठवें अध्याय का श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत शिष्यों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बासठ

ऊषा-अनिरुद्ध मिलन

इस अध्याय में अनिरुद्ध तथा उषा के मिलन एवं बाणासुर के साथ अनिरुद्ध के युद्ध का वर्णन हुआ है।

राजा बलि के एक सौ पुत्रों में बाणासुर सबसे बड़ा था। वह शिवजी का महान् भक्त था और वे बाण का इतना पक्ष लेते थे कि इन्द्र जैसे देवता भी उसकी चाकरी किया करते थे। एक बार बाणासुर ने शिवजी के ताण्डव-नृत्य करते समय अपने एक हजार भुजाओं से संगीत-वाद्य बजा कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। बदले में शिवजी ने उसे मुँहमाँगा वर दिया। बाण ने शिवजी से याचना की कि वे उसकी नगरी के रक्षक बन जाँय।

एक दिन बाण को युद्ध करने का मन हुआ तो उसने शिवजी से कहा: ''आपको छोड़कर पूरे

संसार में कोई योद्धा इतना बलशाली नहीं है, जो मुझसे युद्ध कर सके। इसलिए आप द्वारा प्रदत्त ये हजार बाहुएँ मेरे लिए केवल भार हैं।'' इन शब्दों से क्रुद्ध होकर शिवजी बोले, ''तुम्हारा यह गर्व तब चूर होगा जब तुम मुझ जैसे बल वाले से युद्ध करोगे। तब तुम्हारे रथ की ध्वजा टूट कर भूमि पर गिर जायेगी।''

एक बार बाणासुर की पुत्री उषा ने स्वप्न में एक प्रेमी को देखा। ऐसा कई रातों तक लगातार चलता रहा किन्तु एक दिन वह प्रेमी सपने में नहीं आया। अत: वह जोर से उस प्रेमी से घबराहट में बोलती हुई जाग पड़ी किन्तु जब उसने अपने पास अपनी दासी को देखा तो वह घबड़ा उठी। उषा की सखी चित्रलेखा ने उससे पूछा कि तुम किसको बुला रही थी तो उषा ने उसे सारी बातें बता दीं। उषा के स्वप्न-प्रेमी के विषय में सुनकर चित्रलेखा ने गन्धर्वों, अन्य दैवी पुरुषों एवं विभिन्न वृष्णिवंशियों के चित्र खींच कर अपनी सखी के कष्ट को कम करना चाहा। उसने उषा से कहा कि वह सपने में देखे गये पुरुष को चुन ले तो उषा ने अनिरुद्ध के चित्र की ओर संकेत किया। चित्रलेखा में योगशक्ति थी अत: वह तुरन्त जान गई कि उसकी सखी ने जिस युवक की ओर इंगित किया है, वह कृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध है। तब उषा अपनी योगशक्ति द्वारा आकाश-मार्ग से उड़ कर द्वारका गई, अनिरुद्ध को खोज निकाला और उसे बाणासुर की राजधानी शोणितपुर लेकर लौट आई। उसने उसे लाकर उषा को सौंप दिया।

इच्छित पुरुष को पाकर उषा अपने उस निजी कक्ष में जिसमें कोई व्यक्ति नहीं जा सकता था, स्नेहपूर्वक उसकी सेवा करने लगी। कुछ काल बाद अन्त:पुर की रक्षिकाओं को उषा के शरीर में संभोग के चिह्न दिखे तो वे दौड़कर बाणासुर को बताने गईं। वह अत्यधिक विचलित हो उठा और अनेक अंगरक्षकों समेत अपनी पुत्री के कक्ष में भागा हुआ पहुँचा। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने अनिरुद्ध को वहाँ देखा। जब अंगरक्षकों ने उस पर आक्रमण किया, तो उसने अपनी गदा से कइयों का काम तमाम कर दिया। फिर तो शक्तिशाली बाणासुर ने उसे अपने नागपाश से बाँध लिया। उषा बेचारी शोक से विह्वल हो उठी।

श्रीराजोवाच

बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ।
तत्र युद्धमभूद्धोरं हरिशङ्करयोर्महत् ।
एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (परीक्षित महाराज) ने कहा; बाणस्य—बाणासुर की; तनयाम्—पुत्री; ऊषाम्—उषा को; उपयेमे—ब्याहा; यदु-उत्तमः—यदुओं में श्रेष्ठ (अनिरुद्ध ने); तत्र—उसी सन्दर्भ में; युद्धम्—युद्ध; अभूत्—हुआ; घोरम्—भयावह; हरि-शङ्करयोः—हरि (कृष्ण) तथा शंकर (शिव) के बीच; महत्—महान्; एतत्—यह; सर्वम्—सब; महा-योगिन्—हे महान् योगी; समाख्यातुम्—बतलाने के लिए; त्वम्—तुम; अर्हसि—योग्य हो।

राजा परीक्षित ने कहा : यदुओं में श्रेष्ठ (अनिरुद्ध) ने बाणासुर की पुत्री ऊषा से विवाह किया। फलस्वरूप हरि तथा शंकर के बीच महान् युद्ध हुआ। हे महायोगी, कृपा करके इस घटना के विषय में विस्तार से बतलाइये।

श्रीशुक उवाच
बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ।
येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥
तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ।
मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसन्धो दृढव्रतः ।
शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत्पुरा ॥
तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव तेऽमराः ।
सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; बाणः—बाण; पुत्र—पुत्रों में; शत—एक सौ; ज्येष्ठः—सबसे बड़ा; बलेः—महाराज बलि के; आसीत्—था; महा-आत्मनः—महात्मा; येन—जिसके (बलि) द्वारा; वामन-रूपाय—वामनदेव के रूप में; हरये—भगवान् हरि को; अदायि—दी गई; मेदिनी—पृथ्वी; तस्य—उसके; औरसः—वीर्य से; सुतः—पुत्र; बाणः—बाण; शिव-भक्ति—शिवजी की भक्ति में; रतः—स्थिर; सदा—सदैव; मान्यः—सम्मानित; वदान्यः—दयालु; धी-मान्—बुद्धिमान; च—तथा; सत्य-सन्धः—सत्यवादी; दृढ-व्रतः—अपने व्रत में दृढ़; शोणित-आख्ये—शोणित नामक; पुरे—नगर में; रम्ये—सुहावने; सः—वह; राज्यम् अकरोत्—अपना राज्य बनाया; पुरा—प्राचीनकाल में; तस्य—उस; शम्भोः—शम्भु (शिव) की; प्रसादेन—खुशी से; किङ्कराः—दास; इव—मानो; ते—वे; अमराः—देवतागण; सहस्र—एक हजार; बाहुः—बाहें; वाद्येन—बाजा बजाने से; ताण्डवे—उनके ताण्डव-नृत्य करते समय; अतोषयत्—प्रसन्न कर लिया; मृडम्—शिवजी को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : बाण महान् सन्त बलि महाराज के एक सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था। जब भगवान् हरि वामनदेव के रूप में प्रकट हुए थे तो बलि महाराज ने सारी पृथ्वी उन्हें दान में दे दी थी। बलि महाराज के वीर्य से उत्पन्न बाणासुर शिवजी का महान् भक्त हो गया। उसका आचरण सदैव सम्मानित था। वह उदार, बुद्धिमान, सत्यवादी तथा अपने व्रत का पक्का था। शोणितपुर नामक सुन्दर नगरी उसके अधीनस्थ में थी। चूँकि बाणासुर को शिवजी का वरदहस्त प्राप्त था इसलिए देवता तक तुच्छ दासों की तरह उसकी सेवा में लगे रहते थे। एक बार जब

शिवजी ताण्डव-नृत्य कर रहे थे तो बाण ने अपने एक हजार हाथों से वाद्य-यंत्र बजाकर उन्हें विशेष रूप से प्रसन्न कर लिया था।

भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
वरेण छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—प्रभु; सर्व—समस्त; भूत—जीवगण के; ईशः—स्वामी; शरण्यः—शरण देने वाला; भक्त—अपने भक्तों के प्रति; वत्सलः—दयालु; वरेण—वर द्वारा; छन्दयाम् आस—तुष्ट किया; सः—उस बाण ने; तम्—उस (शिव) को; वव्रे—चुना; पुर—अपनी नगरी का; अधिपम्—प्रहरी, संरक्षक।

समस्त जीवों के स्वामी, अपने भक्तों के दयामय आश्रय ने बाणासुर को उसका मनचाहा वर देकर खूब प्रसन्न कर दिया। बाण ने उन्हें (शिवजी को) अपनी नगरी के संरक्षक के रूप में चुना।

स एकदाह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ।
किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—वह, बाणासुर; एकदा—एक बार; आह—बोला; गिरि-शम्—शिवजी से; पार्श्व—अपनी बगल में; स्थम्—उपस्थित; वीर्य—अपने बल से; दुर्मदः—उन्मत्त; किरीटेन—अपने मुकुट से; अर्क—सूर्य जैसे; वर्णेन—रंग वाले; संस्पृशन्—छूते हुए; तत्—उसके, शिवजी के; पद-अम्बुजम्—चरणकमल।

बाणासुर अपने बल से उन्मत्त था। एक दिन जब शिवजी उसकी बगल में खड़े थे, तो बाणासुर ने अपने सूर्य जैसे चमचमाते मुकुट से उनके चरणकमलों का स्पर्श किया और उनसे इस प्रकार कहा।

नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ।
पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

नमस्ये—मैं नमस्कार करता हूँ; त्वाम्—तुमको; महा-देव—हे देवताओं में सबसे महान्; लोकानाम्—सारे लोकों के; गुरुम्—आध्यात्मिक गुरु को; ईश्वरम्—नियन्ता को; पुंसाम्—मनुष्यों के लिए; अपूर्ण—अपूर्ण; कामानाम्—इच्छाओं वाले; काम-पूर—इच्छा पूरी करते हुए; अमर-अङ्घ्रिपम्—स्वर्ग के वृक्ष या कल्पवृक्ष (सदृश)।

[बाणासुर ने कहा] : हे महादेव, मैं समस्त लोकों के आध्यात्मिक गुरु तथा नियन्ता, आप को नमस्कार करता हूँ। आप उस स्वर्गिक-वृक्ष की तरह हैं, जो अपूर्ण इच्छाओं वाले व्यक्तियों की इच्छाएँ पूरी करता है।

दो:सहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ।
त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

दोः—भुजाएँ; सहस्रम्—एक हजार; त्वया—तुम्हारे द्वारा; दत्तम्—प्रदान की हुई; परम्—केवल; भाराय—बोझ; मे—मेरे लिए; अभवत्—बन गई हैं; त्रि-लोक्यम्—तीनों लोकों में; प्रतियोद्धारम्—विपक्षी योद्धा; न लभे—मुझे नहीं मिल रहा; त्वत्—तुम्हारे; ऋते—सिवाय; समम्—समान।

आपके द्वारा प्रदत्त ये एक हजार भुजाएँ मेरे लिए केवल भारी बोझ बनी हुई हैं। तीनों लोकों में मुझे आपके सिवाय लड़ने के योग्य कोई व्यक्ति नहीं मिल पा रहा।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार बाणासुर के कहने का भाव यह है ''अत: जब मैं आपको हरा चुकूँगा तो मेरी दिग्विजय पूरी हो जायेगी और युद्ध करने की मेरी इच्छा तुष्ट हो जायेगी।''

कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ।
आद्यायां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

कण्डूत्या—खुजलाती; निभृतैः—पूरित; दोर्भिः—मेरी भुजाओं से; युयुत्सुः—लड़ने के लिए उत्सुक; दिक्—दिशाओं के; गजान्—हाथियों से; अहम्—मैं; आद्य—हे आदि-देव; अयम्—गया; चूर्णयन्—चूर्ण करते हुए; अद्रीन्—पर्वतों को; भीताः—भयभीत; ते—वे; अपि—भी; प्रदुद्रुवुः—भाग गये।

हे आदि-देव, दिशाओं पर शासन करने वाले हाथियों से लड़ने के लिए उत्सुक मैं युद्ध के लिए खुजला रही अपनी भुजाओं से पर्वतों को चूर करते हुए आगे बढ़ता गया। किन्तु वे बड़े बड़े हाथी भी डर के मारे भाग गये।

तच्छ्रुत्वा भगवान्क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ।
त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; श्रुत्व—सुनकर; भगवान्—भगवान्; क्रुद्धः—क्रुद्ध; केतुः—ध्वजा; ते—तुम्हारी; भज्यते—टूट जायेगी; यदा—जब; त्वत्—तुम्हारा; दर्प—घमंड; घ्नम्—विनष्ट; भवेत्—हो जायेगा; मूढ—रे मूर्ख; संयुगम्—युद्ध में; मत्—मेरे; समेन—समान वाले से; ते—तुम्हारा।

यह सुनकर शिवजी क्रुद्ध हो उठे और बोले, ''रे मूर्ख! जब तू मेरे समान व्यक्ति से युद्ध कर चुकेगा तो तेरी ध्वजा टूट जायेगी। उस युद्ध से तेरा दर्प नष्ट हो जायेगा।''

तात्पर्य : शिवजी चाहते तो तुरन्त ही बाणासुर को दण्ड देते और उसका गर्व चूर कर देते लेकिन बाणासुर उनका इतना आज्ञाकारी सेवक था कि शिवजी ने ऐसा नहीं किया।

इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ।
प्रतीक्षन्गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनम्कुधीः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहे जाने पर; कु-मतिः—मूर्ख; हृष्टः—प्रसन्न; स्व—अपने; गृहम्—घर में; प्राविशत्—प्रवेश किया; नृप—हे राजा (परीक्षित); प्रतीक्षन्—प्रतीक्षा करते हुए; गिरिश—शिव की; आदेशम्—भविष्यवाणी को; स्व-वीर्य—अपने पराक्रम से; नशनम्—विनाश; कु-धीः—अज्ञानी ।.

इस प्रकार उपदेश दिये जाने पर अज्ञानी बाणासुर प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् हे राजन्, गिरीश ने जो भविष्यवाणी की थी उसकी प्रतीक्षा करने—अपने पराक्रम के विनाश की प्रतीक्षा करने—वह अपने घर चला गया।

तात्पर्य : यहाँ पर बाणासुर को *कुधी* तथा *कुमति* बतलाया गया है क्योंकि उसने वास्तविक स्थिति का दूसरा ही अर्थ लगाया। यह असुर इतना गर्वीला था कि उसे विश्वास हो गया कि उसे कोई भी नहीं हरा सकता। वह यह सुनकर प्रसन्न था कि शिवजी जितना बलशाली कोई व्यक्ति उससे लड़ने आयेगा और युद्ध करने की उसकी खुजलाहट को दूर करेगा। यद्यपि शिवजी ने यह बतला दिया था कि वह व्यक्ति बाणासुर की ध्वजा तोड़ कर उसके पराक्रम को चूर-चूर कर देगा किन्तु वह इतना मूर्ख था कि उसने उस कथन को गम्भीरता से नहीं लिया और उत्सुकतापूर्वक युद्ध करने की प्रतीक्षा करने लगा।

आज के समय में भी भौतिकतावादी व्यक्ति इन्द्रिय-तृप्ति की नाना अभूतपूर्व सुविधाओं से प्रसन्न हो जाते हैं। यद्यपि उनको यह स्पष्ट रहता है कि व्यष्टि तथा समष्टि रूप से मृत्यु उनके पास आ रही है किन्तु आधुनिक इन्द्रियलोलुप अपरिहार्य विनाश को भूले हुए हैं। जैसाकि *भागवत* (२.१.४) में कहा गया है—*पश्यन्नपि न पश्यति*—यद्यपि उनका विनाश सन्निकट होता है किन्तु यौन-सुख तथा पारिवारिक अनुरक्ति के कारण वे मदान्ध रहते हैं और अंधे की भाँति उसे नहीं देखते हैं। इसी तरह बाणासुर अपने भौतिक पराक्रम के कारण मदोन्मत्त था और उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि उसका पतन होने वाला है।

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ।
कन्यालभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा ॥ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसकी; ऊषा नाम—उषा नामक; दुहिता—पुत्री; स्वप्ने—स्वप्न में; प्राद्युम्निना—प्रद्युम्न के पुत्र (अनिरुद्ध) के साथ; रतिम्—संभोग; कन्या—अविवाहिता कुमारी; अलभत—प्राप्त किया; कान्तेन—अपने प्रेमी के साथ; प्राक्—इसके पूर्व; अदृष्ट—कभी न देखा हुआ; श्रुतेन—या सुना हुआ; सा—उसने।.

बाण की पुत्री कुमारी ऊषा ने स्वप्न में प्रद्युम्न के पुत्र के साथ संभोग किया यद्यपि उसने इसके पूर्व कभी भी अपने प्रेमी को देखा या सुना नहीं था।

तात्पर्य : अब जो घटनाएँ वर्णित होंगी उनसे शिवजी द्वारा भविष्यवाणी किया गया युद्ध होगा। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *विष्णु पुराण* के निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं, जो उषा के स्वप्न को बतलाने वाले हैं—

ऊषा बाणसुता विप्र पार्वतीम् शम्भुना सह।

क्रीडन्तीमुपलक्ष्योच्चै स्पृहां चक्रे तदाश्रयाम्॥

''हे ब्राह्मण! जब बाण-पुत्री उषा ने पार्वती को अपने पति शम्भु के साथ क्रीड़ा करते देखा तो उषा को भी वही भाव अनुभव करने की तीव्र इच्छा हुई।''

ततः सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भाविनीम्।

अलमत्यर्थतापेन भर्ता त्वमपि रंस्यसे॥

''उस समय हर हृदय की बात जानने वाली देवी गौरी (पार्वती) ने उस भावुक तरुणी से कहा, ''तुम इतनी विचलित मत होओ। तुम्हें अपने पति के साथ रमण करने का अवसर प्राप्त होगा।''

इत्युक्ता सा तदा चक्रे कदेति मतिमात्मनः।

को वा भर्ता ममेत्येनां पुनरप्याह पार्वती॥

''यह सुनकर उषा ने मन में सोचा, ''किन्तु कब? और कौन होगा मेरा पति?'' इसके उत्तर में पार्वती ने एक बार फिर कहा।''

वैशाखशुक्लद्वादश्यां स्वप्ने योऽभिभवं तव।

करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्री भविष्यति॥

''हे राजकुमारी! वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को स्वप्न में जो व्यक्ति तुम्हारे पास आयेगा वही तुम्हारा पति बनेगा।''

सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेति वादिनी ।

सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; तत्र—वहाँ (स्वप्न में); तम्—उसको; अपश्यन्ती—न देखती हुई; क्व—कहाँ; असि—हो; कान्त—मेरे प्रिय; इति—इस प्रकार; वादिनी—बोलती हुई; सखीनाम्—अपनी सखियों के; मध्ये—बीच में; उत्तस्थौ—उठी; विह्वला—विक्षुब्ध; व्रीडिता—चिन्तित; भृशम्—अत्यधिक।

स्वप्न में उसे न देखकर ऊषा अपनी सखियों के बीच में यह चिल्लाते हुए अचानक उठ बैठी, ''कहाँ हो, मेरे प्रेमी?'' वह अत्यन्त विचलित एवं हड़बड़ाई हुई थी।

तात्पर्य : चेत होने पर तथा यह स्मरण करके कि वह अपनी सखियों के बीच में है इस प्रकार से चिल्ला उठने से उषा के लिए उलझन में होना स्वाभाविक था। साथ ही वह उस प्रेमी व्यक्ति के प्रति अनुरक्ति के कारण भी विह्वल थी जो उसे स्वप्न में दिखा था।

बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ।
सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

बाणस्य—बाण का; मन्त्री—सचिव; कुम्भाण्डः—कुम्भाण्ड; चित्रलेखा—चित्रलेखा; च—तथा; तत्—उसकी; सुता—पुत्री; सखी—सहेली; अपृच्छत्—पूछा; सखीम्—अपनी सहेली; ऊषाम्—उषा से; कौतूहल—उत्सुकता से; समन्विता—पूर्ण।

बाणासुर का मंत्री कुम्भाण्ड था जिसकी पुत्री चित्रलेखा थी। वह ऊषा की सखी थी, अतः उसने उत्सुकतापूर्वक अपनी सखी से पूछा।

कं त्वं मृगयसे सुभ्रु कीदृशस्ते मनोरथः ।
हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १ ॥

शब्दार्थ

कम्—किसको; त्वम्—तुम; मृगयसे—ढूँढ़ रही हो; सु-भ्रु—हे सुन्दर भौंहों वाली; कीदृषः—किस तरह की; ते—तुम्हारी; मनः-रथः—लालसा; हस्त—हाथ का; ग्राहम्—ग्रहण करने वाला; न—नहीं; ते—तुम्हारा; अद्य अपि—आज तक; राज-पुत्रि—हे राजकुमारी; उपलक्षये—मैं देख रही हूँ।

[चित्रलेखा ने कहा] : हे सुन्दर भौंहों वाली, तुम किसे ढूँढ़ रही हो? तुम यह कौन-सी इच्छा अनुभव कर रही हो? हे राजकुमारी, अभी तक मैंने किसी को तुमसे पाणिग्रहण करते नहीं देखा।

दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ।
पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

दृष्टः—देखा हुआ; कश्चित्—कोई; नरः—मनुष्य; स्वप्ने—सपने में; श्यामः—गहरा नीला, साँवला; कमल—कमल सदृश; लोचनः—आँखों वाला; पीत—पीला; वासाः—वस्त्र धारण किये; बृहत्—बलिष्ठ; बाहुः—बाहों वाला; योषिताम्—स्त्रियों के; हृदयम्—हृदयों को; गमः—स्पर्श करता हुआ।

[ऊषा ने कहा] : मैंने सपने में एक पुरुष देखा जिसका रंग साँवला था, जिसकी आँखें कमल जैसी थीं, जिसके वस्त्र पीले थे और भुजाएँ बलिष्ठ थीं। वह ऐसा था, जो स्त्रियों के हृदयों को स्पर्श कर जाता है।

तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाधरं मधु ।
क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; अहम्—मैं; मृगये—ढूँढ़ रही हूँ; कान्तम्—प्रेमी को; पाययित्वा—पिलाकर; आधरम्—अपने होंठों की; मधु—शहद; क्व अपि—कहीं; यातः—चला गया है; स्पृहयतीम्—उसके लिए लालायित, तरसती; क्षिप्त्वा—फेंक कर; माम्—मुझको; वृजिन—दुख के; अर्णवे—समुद्र में।

मैं उसी प्रेमी को ढूँढ़ रही हूँ। मुझे अपने अधरों की मधु पिलाकर वह कहीं और चला गया है और इस तरह उसने मुझे दुख के सागर में फेंक दिया है। मैं उसके लिए अत्यधिक लालायित हूँ।

चित्रलेखोवाच

व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ।
तमानेष्ये वरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

चित्रलेखा उवाच—चित्रलेखा ने कहा; व्यसनम्—दुख; ते—तुम्हारा; अपकर्षामि—दूर कर लूँगी; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; यदि—यदि; भाव्यते—मिल पायेगा; तम्—उसको; आनेष्ये—लाऊँगी; वरम्—होने वाले पति को; यः—जो; ते—तुम्हारा; मनः—हृदय का; हर्ता—चोर; तम्—उसको; आदिश—जरा संकेत तो करो।

चित्रलेखा ने कहा : मैं तुम्हारी व्याकुलता दूर कर दूँगी। यदि वह तीनों लोकों के भीतर कहीं भी मिलेगा तो मैं तुम्हारे चित्त को चुराने वाले इस भावी पति को ले आऊँगी। तुम मुझे बतला दो कि आखिर वह है कौन।

तात्पर्य : यह बात रुचिकर है कि चित्रलेखा नाम ऐसी स्त्री का सूचक है जो चित्र बनाने में निपुण हो। *चित्र* का अर्थ है "उत्तम" या "नाना प्रकार के" और *लेखा* का अर्थ है "चित्र बनाने की कला।" जैसाकि अगले श्लोक में बतलाया गया है चित्रलेखा अपने नाम को सार्थक कर देती है।

इत्युक्त्वा देवगन्धर्व सिद्धचारणपन्नगान् ।

दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च यथालिखत् ॥ १७॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कह कर; देव-गन्धर्व—देवताओं तथा गन्धर्वों; सिद्ध-चारण-पन्नगान्—सिद्धों, चारणों तथा पन्नगों को; दैत्य-विद्याधरान्—असुरों तथा विद्याधरों को; यक्षान्—यक्षों को; मनु-जान्—मनुष्यों को; च—भी; यथा—सही सही; अलिखत्—उसने चित्रित किया।

यह कह कर चित्रलेखा विविध देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों, चारणों, पन्नगों, दैत्यों, विद्याधरों, यक्षों तथा मनुष्यों के सही सही चित्र बनाती गयी।

मनुजेषु च सा वृष्णीन्शूरमानकदुन्दुभिम् ।
व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥ १८॥
अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषावाङ्मुखी ह्रिया ।
सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ १९॥

शब्दार्थ

मनुजेषु—मनुष्यों में से; च—तथा; सा—वह (चित्रलेखा); वृष्णीन्—वृष्णियों को; शूरम्—शूरसेन को; आनकदुन्दुभिम्—वसुदेव को; व्यलिखत्—अंकित किया; राम-कृष्णौ—बलराम तथा कृष्ण; च—और; प्रद्युम्नम्—प्रद्युम्न को; वीक्ष्य—देखकर; लज्जिता—लज्जित होकर; अनिरुद्धम्—अनिरुद्ध को; विलिखितम्—अंकित किया हुआ; वीक्ष्य—देखकर; ऊषा—उषा; अवाक्—झुकाकर; मुखी—अपना सिर; ह्रिया—उलझन से; सः असौ असौ इति—''वही है, वही है''; प्राह—उसने कहा; स्मयमाना—हँसती हुई; मही-पते—हे राजन्।

हे राजन्, चित्रलेखा ने मनुष्यों में से वृष्णियों के चित्र खींचे जिनमें शूरसेन, आनकदुन्दुभि, बलराम तथा कृष्ण सम्मिलित थे। जब ऊषा ने प्रद्युम्न का चित्र देखा तो वह लजा गई और जब उसने अनिरुद्ध का चित्र देखा तो उलझन के मारे उसने अपना सिर नीचे झुका लिया। उसने हँसते हुए कहा, ''यही है, यही है, वह।''

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती और भी अन्तर्दृष्टि देते हैं: जब उषा ने प्रद्युम्न का चित्र देखा तो वह लज्जित हो उठी क्योंकि उसने सोचा, ''यह तो मेरे श्वसुर हैं,'' तब उसने अपने प्रेमी अनिरुद्ध का चित्र देखा और हर्ष के मारे चीख उठी।

चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ।
ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २०॥

शब्दार्थ

चित्रलेखा—चित्रलेखा; तम्—उसको; आज्ञाय—पहचान कर; पौत्रम्—पौत्र के रूप में; कृष्णस्य—कृष्ण के; योगिनी—योगिन; ययौ—गई; विहायसा—आकाश-मार्ग द्वारा; राजन्—हे राजन्; द्वारकाम्—द्वारका; कृष्ण-पालिताम्—कृष्ण द्वारा रक्षित।

योगशक्ति से चित्रलेखा ने उसे कृष्ण के पौत्र (अनिरुद्ध) रूप में पहचान लिया। हे राजन्,

तब वह आकाश-मार्ग से द्वारका नगरी गई जो कृष्ण के संरक्षण में थी।

**तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता ।
गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २१ ॥**

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; सुप्तम्—सोया हुआ; सु—सुन्दर; पर्यङ्के—बिस्तर पर; प्रद्युम्निम्—प्रद्युम्न के पुत्र को; योगम्—योगशक्ति; आस्थिता—प्रयोग करते हुए; गृहीत्वा—लेकर; शोणित-पुरम्—बाणासुर की राजधानी, शोणितपुर में; सख्यै—अपनी सखी के पास; प्रियम्—उसके प्रेमी को; अदर्शयत्—दिखलाया।

वहाँ पर उसने प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध को एक सुन्दर बिस्तर पर सोते पाया। उसे वह अपनी योगशक्ति से शोणितपुर ले गई जहाँ उसने अपनी सखी ऊषा को उसका प्रेमी लाकर भेंट कर दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : "यहाँ यह बतलाया गया है कि चित्रलेखा ने योगशक्ति का प्रयोग किया (*योगमास्थिता*)। जैसाकि *हरिवंश* तथा अन्य ग्रन्थों में बतलाया गया है, उसे अपनी शक्ति का प्रयोग इसलिए करना पड़ा क्योंकि जब वह द्वारका पहुँची तो वह भगवान् कृष्ण की नगरी में प्रवेश करने में अपने को अक्षम पा रही थी। उसी समय श्री नारदमुनि ने उसे प्रवेश करने की योग-कला का उपदेश दिया। कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि चित्रलेखा स्वयं योगमाया की अंश थी।"

**सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना ।
दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥ २२ ॥**

शब्दार्थ

सा—वह; च—तथा; तम्—उसको; सुन्दर-वरम्—अतीव सुन्दर पुरुष; विलोक्य—देखकर; मुदित—प्रसन्न; आनना—मुख वाली; दुष्प्रेक्ष्ये—जो देखा नहीं जा सकता था; स्व—अपने; गृहे—घर में; पुम्भिः—पुरुषों द्वारा; रेमे—उसने रमण किया; प्रद्युम्निना समम्—प्रद्युम्न के पुत्र के साथ।

जब ऊषा ने पुरुषों में सर्वाधिक सुन्दर उस पुरुष को देखा तो प्रसन्नता के मारे उसका चेहरा खिल उठा। वह प्रद्युम्न के पुत्र को अपने निजी कक्ष में ले गयी जिसे मनुष्यों को देखने तक की मनाही थी और वहाँ उसने उसके साथ रमण किया।

**परार्ध्यवासःस्त्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः ।
पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषणार्चितः ॥ २ ॥**

गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया ।
नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयापहृतेन्द्रियः ॥ २४॥

शब्दार्थ

परार्ध्य—अमूल्य; वासः—वस्त्रों; स्रक्—मालाओं; गन्ध—सुगन्धियों; धूप—धूप; दीप—दीपकों; आसन—बैठने के स्थान; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; पान—पेयों; भोजन—चबाकर खाया जाने वाला भोजन; भक्ष्यैः—बिना चबाये खाया जाने वाला भोजन; च—भी; वाक्यैः—शब्दों से; शुश्रूषण—श्रद्धापूर्ण सेवा से; अर्चितः—पूजा किया गया; गूढः—छिपाकर रखा; कन्या-पुरे—कुमारियों के कक्ष में; शश्वत्—निरन्तर; प्रवृद्ध—अत्यधिक बढ़ा हुआ; स्नेहया—स्नेह से; तया—उसके द्वारा; न—नहीं; अहः-गणान्—दिन; सः—वह; बुबुधे—देखा; ऊषया—उषा द्वारा; अपहृत—मोड़ी हुई, वशीभूत; इन्द्रियः—उसकी इन्द्रियाँ।

ऊषा ने अमूल्य वस्त्रों के साथ साथ मालाएँ, सुगन्धियाँ, धूप, दीपक, आसन इत्यादि देकर श्रद्धापूर्ण सेवा द्वारा अनिरुद्ध की पूजा की। उसने उसे पेय, सभी प्रकार के भोजन तथा मधुर शब्द भी प्रदान किये। इस तरह तरुणियों के कक्ष में छिप कर रहते हुए अनिरुद्ध को समय बीतने का कोई ध्यान न रहा क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ ऊषा द्वारा मोहित कर ली गई थीं। उसके प्रति ऊषा का स्नेह निरन्तर बढ़ता जा रहा था।

तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ।
हेतुभिर्लक्षयां चक्रुरापृईतां दुरवच्छदैः ॥ २५॥
भटा आवेदयां चक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ।
विचेष्टितं लक्षयाम कन्यायाः कुलदूषणम् ॥ २६॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; तथा—इस प्रकार; यदु-वीरेण—यदुओं के वीर द्वारा; भुज्यमानाम्—भोग किया जाता; हत—टूटा; व्रताम्—(कौमार्य) व्रत; हेतुभिः—लक्षणों से; लक्षयाम् चक्रुः—उन्होंने निश्चित किया; आ-प्रीताम्—जो अत्यधिक सुखी था; दुरवच्छदैः—वेश बदलना असम्भव; भटाः—रक्षिकाएँ; आवेदयाम् चक्रुः—घोषित किया; राजन्—हे राजन्; ते—तुम्हारी; दुहितुः—पुत्री का; वयम्—हमने; विचेष्टितम्—अनुचित आचरण; लक्षयामः—देखा है; कन्यायाः—कुमारी का; कुल—परिवार; दूषणम्—बट्टा लगाने वाला।

अंत में रक्षिकाओं ने ऊषा में संभोग (सहवास) के अचूक लक्षण देखे जिसने अपना कौमार्य-व्रत भंग कर दिया था और यदुवीर द्वारा भोगी जा रही थी तथा जिसमें माधुर्य-सुख के लक्षण प्रकट हो रहे थे। ये रक्षिकाएँ बाणासुर के पास गईं और उससे कहा, "हे राजन्, हमने आपकी पुत्री में अनुचित आचरण देखा है, जो किसी तरुणी के परिवार की ख्याति को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला है।"

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *भटाः* शब्द की परिभाषा "स्त्री रक्षिका" दी है, जबकि जीव गोस्वामी इसकी परिभाषा "जनखा तथा अन्य" के रूप में दी है। व्याकरण की दृष्टि से दोनों ही ठीक हैं।

रक्षकों को भय था कि यदि बाणासुर को अन्य स्रोत से उषा के कार्यकलापों का पता चल जायेगा तो वह उन्हें कठोर दण्ड देगा इसीलिए उन्होंने स्वयं जाकर उसे जानकारी दी कि उसकी युवा पुत्री अब निर्दोष नहीं रही।

अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ।
कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्ष्याया न विद्महे ॥ २७॥

शब्दार्थ

अनपायिभिः—जो कभी बाहर नहीं गये; अस्माभिः—हमारे द्वारा; गुप्तायाः—जिसकी रखवाली की जा रही हो, उसका; च—तथा; गृहे—महल के भीतर; प्रभो—हे स्वामी; कन्यायाः—कुमारी का; दूषणम्—दूषित होना; पुम्भिः—मनुष्यों द्वारा; दुष्प्रेक्ष्यायाः—जिसको देख पाना असम्भव हो; न विद्महे—हमारी समझ में नहीं आता।

"हे स्वामी, हम अपने स्थानों से कहीं नहीं हटीं और सतर्कतापूर्वक उसकी निगरानी करती रही हैं अतः यह हमारी समझ में नहीं आता कि यह कुमारी जिसे कोई पुरुष देख भी नहीं पा सकता महल के भीतर कैसे दूषित हो गई है।"

तात्पर्य : आचार्यों का कहना है कि *अनपायिभिः* का अर्थ "कभी बाहर न जाते हुए" अथवा "कभी ठगे नहीं गये" हो सकता है। यदि हम *दुष्प्रेक्ष्याया* के स्थान पर *दुष्प्रेष्यायाः* पाठ मानें तो रक्षकगण उषा के विषय में कहते हैं, "वह जिसकी दुष्ट सखी दूत बनाकर भेजी गई है।"

ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ।
त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ २८॥

शब्दार्थ

ततः—तब; प्रव्यथितः—अत्यन्त क्षुब्ध; बाणः—बाणासुर; दुहितुः—अपनी पुत्री का; श्रुत—सुना हुआ; दूषणः—कलंक, व्यभिचार; त्वरितः—तुरन्त; कन्यका—अविवाहित लड़कियों के; आगारम्—आवासों में; प्राप्तः—पहुँचकर; अद्राक्षीत्—देखा; यदु-उद्वहम्—यदुओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध।

अपनी पुत्री के व्यभिचार को सुनकर अत्यन्त क्षुब्ध बाणासुर तुरन्त ही कुमारियों के आवासों की ओर लपका। वहाँ उसने यदुओं में विख्यात अनिरुद्ध को देखा।

कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं
श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् ।
बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा
स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥ २९॥
दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाभिनृम्णया

तदङ्गसङ्गस्तनकुङ्कुमस्त्रजम् ।
बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां
तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ० ॥

शब्दार्थ

काम—कामदेव (प्रद्युम्न) के; आत्मजम्—पुत्र को; तम्—उस; भुवन—सारे लोकों का; एक—एकमात्र; सुन्दरम्—सौन्दर्य; श्यामम्—साँवले रंग का; पिशङ्ग—पीला; अम्बरम्—वस्त्र को; अम्बुज—कमलों जैसी; ईक्षणम्—आँखों को; बृहत्—बलवान; भुजम्—भुजाओं को; कुण्डल—कुण्डलों के; कुन्तल—तथा बालों के गुच्छों की; त्विषा—चमक से; स्मित—हँसते हुए; अवलोकेन—चितवनों से; च—भी; मण्डित—सुशोभित; आननम्—मुखमण्डल को; दीव्यन्तम्—खेलते हुए; अक्षैः—पाँसों से; प्रियया—अपनी प्रिया के साथ; अभिनृम्णया—सर्व मंगलमय; तत्—उसके साथ; अङ्ग—शारीरिक; सङ्ग—स्पर्श के कारण; स्तन—उसके स्तनों से; कुङ्कुम—कुंकुम से युक्त; स्त्रजम्—फूलमाला को; बाह्वोः—उसकी बाहुओं के बीच में; दधानम्—पहने; मधु—वसन्त ऋतु; मल्लिका—चमेली का; आश्रिताम्—बना हुआ; तस्याः—उसके; अग्रे—सामने; आसीनम्—बैठा हुआ; अवेक्ष्य—देखकर; विस्मितः—चकित।

बाणासुर ने अपने समक्ष अद्वितीय सौन्दर्य से युक्त, साँवले रंग का, पीतवस्त्र पहने कमल-जैसे नेत्रों वाले एवं विशाल बाहुओं वाले कामदेव के आत्मज को देखा। उसका मुखमंडल तेजोमय कुण्डलों तथा केश से तथा हँसीली चितवनों से सुशोभित था। जब वह अपनी अत्यन्त मंगलमयी प्रेमिका के सम्मुख बैठा हुआ उसके साथ चौसर खेल रहा था, तो उसकी भुजाओं के बीच में वासन्ती चमेली की माला लटक रही थी जिस पर कुंकुम पुता था, जो उसके द्वारा आलिंगन करने पर उसके स्तनों पर से माला में चुपड़ गया था। यह सब देखकर बाणासुर चकित था।

तात्पर्य : बाणासुर अनिरुद्ध की निर्भीकता पर चकित था: यह राजकुमार उस तरुणी के कक्ष में शान्तिपूर्वक बैठा था और बाणासुर की कुमारी कन्या के साथ खेल कर रहा था। वैदिक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में ऐसी घटना देखना अविश्वसनीय था।

स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभि-
र्भटैरनीकैरवलोक्य माधवः ।
उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो
यथान्तको दण्डधरो जिघांसया ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, अनिरुद्ध; तम्—उसको, बाणासुर को; प्रविष्टम्—प्रविष्ट हुआ; वृतम्—घिरा हुआ; आततायिभिः—हथियार लिये हुए; भटैः—रक्षकों द्वारा; अनीकैः—अनेक; अवलोक्य—देखकर; माधवः—अनिरुद्ध; उद्यम्य—उठ कर; मौर्वम्—मुरु लोहे की बनी; परिघम्—गदा को; व्यवस्थितः—दृढ़तापूर्वक खड़े होकर; यथा—सदृश; अन्टकः—साक्षात् काल; दण्ड—डंडा; धरः—लिए हुए; जिघांसया—मारने के लिए उद्यत।

बाणासुर को अनेक सशस्त्र रक्षकों सहित घुसते हुए देखकर अनिरुद्ध ने अपनी लोहे की

गदा उठाई और अपने ऊपर आक्रमण करने वाले पर प्रहार करने के लिए सन्नद्ध होकर तनकर खड़ा हो गया। वह दण्डधारी साक्षात् काल की तरह लग रहा था।

तात्पर्य : उसकी गदा सामान्य लोहे की नहीं अपितु विशेष प्रकार के लोहे की—मुरु की—बनी थी।

जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः
शुनो यथा शूकरयूथपोऽहनत् ।
ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता
निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

जिघृक्षया—दबोच लेने के लिए; तान्—उनको; परितः—चारों ओर से; प्रसर्पतः—पास आकर; शुनः—कुत्ते; यथा—जिस प्रकार; शूकर—सुअरों के; यूथ—झुंड का; पः—नायक, अगुआ; अहनत्—उसने प्रहार किया; ते—वे; हन्यमानाः—प्रहार किये गये; भवनात्—महल से; विनिर्गताः—बाहर चले गये; निर्भिन्न—टूटे हुए; मूर्ध—सिर; ऊरु—जाँघें; भुजाः—तथा भुजाएँ; प्रदुद्रुवुः—वे भाग गये।

जब रक्षकगण उसे पकड़ने के प्रयास में चारों ओर से उसकी ओर टूट पड़े तो अनिरुद्ध ने उन पर उसी तरह वार किया जिस तरह कुत्तों पर सूअरों का झुंड मुड़ कर प्रहार करता है। उसके वारों से आहत रक्षकगण महल से अपनी जान बचाकर भाग गये। उनके सिर, जाँघें तथा बाहुएँ टूट गई थीं।

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली
घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह ।
ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला
बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौत्सीत् ॥ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; नाग-पाशैः—नाग-पाश से; बलि-नन्दनः—बलि-पुत्र (बाणासुर) ने; बली—बलशाली; घ्नन्तम्—प्रहार करते हुए; स्व—अपनी; सैन्यम्—सेना पर; कुपितः—क्रुद्ध होकर; बबन्ध ह—बाँध लिया; ऊषा—उषा; भृशम्—अत्यन्त; शोक—शोक; विषाद—तथा हताशा से; विह्वला—अभिभूत; बद्धम्—बँधा हुआ; निशम्य—सुनकर; अश्रु-कला—आँसुओं की बूँदों से; अक्षी—आँखों में; अरौत्सीत्—चिल्लाई।

किन्तु जब अनिरुद्ध बाण की सेना पर प्रहार कर रहा था, तो शक्तिशाली बलि-पुत्र ने क्रोधपूर्वक उसे नागपाश से बाँध लिया। जब ऊषा ने अनिरुद्ध का बाँधा जाना सुना तो वह शोक तथा विषाद से अभिभूत हो गई। उसकी आँखें आँसू से भर आईं और वह रोने लगी।

तात्पर्य : आचार्यों का कहना है कि बाणासुर भगवान् कृष्ण के बलवान पौत्र को वास्तव में बाँध

नहीं पाया। किन्तु भगवान् की लीला-शक्ति से ऐसा हो सका जिससे आगे होने वाली घटनाएँ घट सकें।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''ऊषा-अनिरुद्ध मिलन'' नामक बासठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तिरसठ

बाणासुर और भगवान् कृष्ण का युद्ध

इस अध्याय में कृष्ण तथा शिव के बीच युद्ध का एवं कृष्ण द्वारा बाणासुर की भुजाएँ काटे जाने के बाद शिव द्वारा कृष्ण की स्तुति का विवरण दिया हुआ है।

जब अनिरुद्ध शोणितपुर से नहीं लौटा तो उसके परिवार वालों तथा मित्रों ने वर्षा के चातुर्मास बड़े ही कष्ट में बिताये। जब अन्त में उन्होंने नारदमुनि से सुना कि किस तरह अनिरुद्ध बन्दी बना लिया गया है, तो कृष्ण के संरक्षण में यादव योद्धाओं की एक विशाल सेना बाणासुर की राजधानी के लिए रवाना हो गई और उसने जाकर घेरा डाल दिया। बाणासुर ने अपनी उतनी ही बड़ी सेना से उसका पुरजोर मुकाबला किया। बाणासुर की सहायता के लिए शिवजी, कार्तिकेय तथा योगियों की टोली लेकर, बलराम तथा कृष्ण से लड़ने आये। बाण सात्यकि से और बाण का पुत्र साम्ब से लड़ने लगा। सारे देवता आकाश में युद्ध देखने के लिए एकत्र हो गये। भगवान् कृष्ण ने अपने बाणों से शिवजी के अनुयायियों को तंग करना शुरू कर दिया। इस तरह शिवजी को दुविधा में डाल कर वे बाणासुर की सेना का सफाया कर सके। प्रद्युम्न ने कार्तिकेय की इतनी बुरी तरह से पिटाई की कि वे युद्धभूमि छोड़ कर भाग गये और बाणासुर की सेना के शेष सैनिक बलराम की गदा के प्रहारों से नष्ट-भ्रष्ट होकर चारों दिशाओं में तितर-बितर हो गये।

अपनी सेना का विनाश देख कर बाणासुर कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए तेजी से बढ़ा। किन्तु भगवान् ने बाण के सारथी को तत्काल मार डाला और उसके रथ तथा धनुष को तोड़ डाला। तत्पश्चात् उन्होंने अपना पञ्चजन्य शंख बजा दिया। इसके बाद अपने पुत्र की रक्षा करने के उद्देश्य से बाणासुर की माता कृष्ण के समक्ष नंगी होकर आई जिन्होंने उसे देखने से बचने के लिए अपना मुख मोड़ लिया।

इस अवसर का लाभ उठाकर बाण अपनी नगरी को भाग गया।

जब भगवान् कृष्ण शिवजी की सेना के भूतप्रेतों को पूरी तरह परास्त कर चुके तो कृष्ण से लड़ने के लिए शिवज्वर नामक हथियार आया—इसके तीन सिर तथा तीन पाँव थे और यह ज्वर का साक्षात् रूप था। शिवज्वर को आते देख कृष्ण ने अपना विष्णुज्वर छोड़ा। शिवज्वर विष्णुज्वर से परास्त हो गया और कहीं भी शरण न पाकर कृष्ण से दया की भीख माँगने के लिए उनकी स्तुति करने लगा। भगवान् कृष्ण शिवज्वर से प्रसन्न हो गये और उसे भय से मुक्त करने का वचन दिया। तब उसने कृष्ण को नमस्कार किया और चलता बना।

इसके बाद बाणासुर लौटा और अपने एक हजार हाथों में नाना प्रकार के हथियार लेकर उसने कृष्ण पर पुनः आक्रमण कर दिया। किन्तु भगवान् कृष्ण ने अब अपना सुदर्शन चक्र सँभाला और उस असुर के सभी हाथों को काटना शुरू कर दिया। तब शिवजी बाणासुर के प्राणों की रक्षा के लिए कृष्ण के पास पहुँचे और जब कृष्ण उसे जीवनदान देने के लिए तैयार हो गये तो उन्होंने शिवजी से कहा, ''बाणासुर का जन्म प्रह्लाद महाराज के कुल में हुआ है, अतः यह मरने के योग्य नहीं है। मैंने इसका मिथ्या गर्व विनष्ट करने के लिए उसकी चार बाहें छोड़कर शेष सारी भुजाएँ काट दी हैं और मैंने पृथ्वी पर उसकी भारस्वरूप सेना का संहार कर दिया है। अब वह बुढ़ापा तथा मृत्यु से मुक्त हो जायेगा और निर्भय रहते हुए आपका मुख्य सेवक रहेगा।''

जब बाणासुर आश्वस्त हो गया कि उसे कोई भय नहीं है, तो उसने कृष्ण को नमस्कार किया और उषा तथा अनिरुद्ध को विवाह-रथ पर चढ़ाकर कृष्ण के समक्ष ले आया। तब कृष्ण जुलूस के आगे-आगे अनिरुद्ध तथा उसकी दुलहन को लेकर द्वारका के लिए रवाना हो गये। जब वे नवदम्पति भगवान् की राजधानी पहुँचे तो नागरिकों, भगवान् के परिवारजनों एवं ब्राह्मणों ने उनका अभिनन्दन किया।

शृईशुक उवाच
अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ।
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; **अपश्यताम्**—न देखते हुए; **च**—तथा; **अनिरुद्धम्**—अनिरुद्ध को; **तत्**—उसके; **बन्धूनाम्**—परिवार वालों के लिए; **च**—तथा; **भारत**—हे भरतवंशी (परीक्षित महाराज); **चत्वारः**—चार; **वार्षिकः**—वर्षा ऋतु के; **मासाः**—महीने; **व्यतीयुः**—बीत गये; **अनुशोचताम्**—शोक करते हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे भारत, अनिरुद्ध के सम्बन्धीजन उसे लौटे न देखकर शोकग्रस्त रहे और इस तरह वर्षा के चार मास बीत गये।

नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ।
प्रययु: शोणितपुरं वृष्णय: कृष्णदैवता: ॥ २॥

शब्दार्थ

नारदात्—नारद से; तत्—उस; उपाकर्ण्य—सुनकर; वार्ताम्—समाचार को; बद्धस्य—पकड़े हुए के विषय में; कर्म—कर्म; च—तथा; प्रययु:—वे गये; शोणित-पुरम्—शोणितपुर; वृष्णय:—वृष्णिजन; कृष्ण—भगवान् कृष्ण; दैवता:—उनके पूज्य देव के रूप में प्राप्त।

नारद से अनिरुद्ध के कार्यों तथा उसके बन्दी होने के समाचार सुनकर, भगवान् कृष्ण को अपना पूज्य देव मानने वाले वृष्णिजन शोणितपुर गये।

प्रद्युम्नो युयुधानश्च गद: साम्बोऽथ सारण: ।
नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिन: ॥ ॥
अक्षौहिणीभिर्द्वादशभि: समेता: सर्वतो दिशम् ।
रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभा: ॥ ४॥

शब्दार्थ

प्रद्युम्न: युयुधान: च—प्रद्युम्न तथा युयुधान (सात्यकि); गद: साम्ब: अथ सारण:—गद, साम्ब तथा सारण; नन्द-उपनन्द-भद्र—नन्द, उपनन्द तथा भद्र; आद्या:—इत्यादि; राम-कृष्ण-अनुवर्तिन:—बलराम तथा कृष्ण के पीछे पीछे; अक्षौहिणीभि:—अक्षौहिणी के साथ; द्वादशभि:—बारह; समेता:—एकत्र; सर्वत: दिशम्—सारी दिशाओं में; रुरुधु:—घेर लिया; बाण-नगरम्—बाणासुर की नगरी को; समन्तात्—पूर्णतया; सात्वत-ऋषभा:—सात्वतों के प्रमुखों ने।

श्री बलराम तथा कृष्ण को आगे करके सात्वत वंश के प्रमुख—प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द, भद्र तथा अन्य लोग बारह अक्षौहिणी सेना के साथ एकत्र हुए और चारों ओर से बाणासुर की नगरी को पूरी तरह से घेर लिया।

भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ।
प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५॥

शब्दार्थ

भज्यमान—टूट जाने से; पुर—नगरी के; उद्यान—बगीचे; प्राकार—ऊँची दीवारें, परकोटे; अट्टाल—चौकसी मीनारें, बुर्ज; गोपुरम्—तथा प्रवेशद्वार, सिंहद्वार; प्रेक्षमाण:—देखते हुए; रुषा—क्रोध से; आविष्ट:—पूरित; तुल्य—समान; सैन्य:—सेना के साथ; अभिनिर्ययौ—उनकी ओर गये।

उन्हें अपनी नगरी के बाहरी बगीचे, ऊँची दीवारें, मीनारें तथा प्रवेशद्वार नष्ट-भ्रष्ट करते देखकर बाणासुर क्रोध से भर उठा और वह उन्हीं के बराबर सेना लेकर उनसे मुठभेड़ करने के

लिए निकल आया।

बाणार्थे भगवान्रुद्रः ससुतः प्रमथैर्वृतः ।
आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

बाण-अर्थे—बाण के लिए; भगवान् रुद्रः—शिवजी ने; स-सुतः—पुत्र (कार्तिकेय, जो कि देव-सेना के सेनापति हैं) सहित; प्रमथैः—प्रमथों (योगीजन जो कई रूपों में शिवजी की सेवा करते हैं) सहित; वृतः—संग में लेकर; आरुह्य—चढ़ कर; नन्दि—नन्दि पर; वृषभम्—अपने बैल; युयुधे—युद्ध किया; राम-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण से।

भगवान् रुद्र अपने पुत्र कार्तिकेय तथा प्रमथों को साथ लेकर बाणासुर के पक्ष में बलराम तथा कृष्ण से लड़ने के लिए अपने बैल-वाहन नन्दि पर सवार होकर आये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि यहाँ पर *भगवान्* शब्द यह सूचित कराने के लिए प्रयुक्त हुआ है कि शिवजी स्वभाव से सर्वज्ञ हैं और इस तरह वे भगवान् कृष्ण की महानता से भलीभाँति अवगत हैं। फिर भी, यह जानते हुए कि भगवान् कृष्ण उन्हें हरा देंगे वे भगवान् की महिमा का प्रदर्शन करने के लिए उनके विरुद्ध युद्ध करने आये।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि शिवजी दो कारणों से युद्ध करने आये: पहला—भगवान् कृष्ण के आनन्द तथा उत्साहवर्धन के लिए और दूसरा—यह प्रदर्शित करने कि कृष्ण रूप में भगवान् का अवतार अन्य अवतारों से—यथा भगवान् रामचन्द्र से श्रेष्ठ है यद्यपि वे मनुष्य की भाँति लीलाएँ करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी बतलाते हैं कि कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति योगमाया ने शिवजी को उसी तरह मोहित किया जिस तरह ब्रह्मा को किया था। अपने कथन के समर्थन में आचार्य ने भक्तिरसामृत सिन्धु से *ब्रह्मरुद्रादिमोहनम्* पद उद्धृत किया है। निस्सन्देह योगमाया का कार्य भगवान् की लीलाओं के लिए उत्तम व्यवस्था करना है। इस तरह शिवजी भगवान् कृष्ण से युद्ध करने के लिए उत्साहित हो गए।

आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्धुतं रोमहर्षणम् ।
कृष्णशङ्करयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७॥

शब्दार्थ

आसीत्—हुआ; सु-तुमुलम्—अत्यन्त घमासान; युद्धम्—युद्ध; अद्भुतम्—अद्भुत; रोम-हर्षणम्—शरीर के रोंगटे खड़ा कर देने वाला; कृष्ण-शङ्करयोः—कृष्ण तथा शिव के मध्य; राजन्—हे राजा (परीक्षित); प्रद्युम्न-गुहयोः—प्रद्युम्न तथा कार्तिकेय के मध्य; अपि—भी।

तत्पश्चात् अत्यन्त अद्‌भुत, घमासान तथा रोंगटे खड़ा कर देने वाला युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें भगवान् कृष्ण शंकर से और प्रद्युम्न कार्तिकेय से भिड़ गये।

कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ।
साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

कुम्भाण्ड-कूपकर्णाभ्याम्—कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण द्वारा; बलेन सह—बलराम के साथ; संयुगः—युद्ध; साम्बस्य—साम्ब का; बाण-पुत्रेण—बाण के पुत्र के साथ; बाणेन सह—बाण के साथ; सात्यकेः—सात्यकि का।

बलरामजी ने कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण से, साम्ब ने बाण-पुत्र से और सात्यकि ने बाण से युद्ध किया।

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा इत्यादि; सुर—देवताओं के; अधीशाः—शासक; मुनयः—मुनिगण; सिद्ध-चारणाः—सिद्ध तथा चारण देवतागण; गन्धर्व-अप्सरसः—गन्धर्व तथा अप्सराएँ; यक्षाः—यक्षगण; विमानैः—विमानों से; द्रष्टुम्—देखने के लिए; आगमन्—आये।

सिद्धों, चारणों, महामुनियों, गन्धर्वों, अप्सराओं तथा यक्षों के साथ ब्रह्मा तथा अन्य शासक देवतागण अपने अपने दिव्य विमानों में चढ़ कर (युद्ध) देखने आये।

शङ्करानुचराञ्शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ।
डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥ ॥
प्रेतमातृपिशाचांश्च कुष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् ।
द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

शङ्कर—शंकर के; अनुचरान्—अनुयायी; शौरिः—भगवान् कृष्ण ने; भूत-प्रमथ—भूतों तथा प्रमथगणों; गुह्यकान्—गुह्यकजन (कुवेर के सेवक जो स्वर्ग के कोष की रक्षा करते हैं); डाकिनीः—देवी काली की सेवा करने वाली असुरिनियों; यातुधानान्—मनुष्यों को खा जाने वाले असुर, जो राक्षस भी कहे जाते हैं; च—तथा; वेतालान्—वेतालों को; स-विनायकान्—विनायकों समेत; प्रेत—प्रेतगणों; मातृ—मातृपक्ष के असुरों; पिशाचान्—अन्तरिक्ष में रहने वाले मांस-भक्षी असुरों; च—भी; कुष्माण्डान्—शिव के अनुयायियों को जो योगियों के ध्यान को भंग करते रहते हैं; ब्रह्म-राक्षसान्—उन ब्राह्मणों की आसुरी आत्माएँ जिनकी मृत्यु पाप-कृत्यों से हुई है; द्रावयाम् आस—भगा दिया; तीक्ष्ण-अग्रैः—तेज नोक वाले; शरैः—बाणों से; शार्ङ्ग-धनुः—शार्ङ्ग नामक धनुष से; च्युतैः—छोड़े गये।

अपने शार्ङ्ग धनुष से तेज नोक वाले बाणों को छोड़ते हुए भगवान् कृष्ण ने शिवजी के विविध अनुचरों—भूतों, प्रमथों, गुह्यकों, डाकिनियों, यातुधानों, वेतालों, विनायकों, प्रेतों,

माताओं, पिशाचों, कुष्माण्डों तथा ब्रह्म-राक्षसों—को भगा दिया।

पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिणाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ।
प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

पृथक्-विधानि—विविध प्रकारों के; प्रायुङ्क्त —लगे हुए; पिणाकी—त्रिशूलधारी शिवजी ने; अस्त्राणि—हथियार; शार्ङ्गिणे—शार्ङ्ग धनुषधारी कृष्ण के विरुद्ध; प्रति-अस्त्रैः—विरोधी अस्त्रों द्वारा; शमयाम् आस—शान्त कर दिया; शार्ङ्ग-पाणिः—शार्ङ्ग धनुषधारी; अविस्मितः—तनिक भी चकित हुए बिना।.

त्रिशूलधारी शिवजी ने शार्ङ्ग धनुषधारी कृष्ण पर अनेक हथियार चलाये। किन्तु कृष्ण तनिक भी विचलित नहीं हुए—उन्होंने उपयुक्त प्रतिअस्त्रों द्वारा इन सारे हथियारों को निष्प्रभावित कर दिया।

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ।
आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-अस्त्रस्य—ब्रह्मास्त्र का; च—तथा; ब्रह्म-अस्त्रम्—ब्रह्मास्त्र से; वायव्यस्य—हवाई हथियार का; च—तथा; पार्वतम्—पर्वत अस्त्र से; आग्नेयस्य—आग्नेयास्त्र का; च—तथा; पार्जन्यम्—वर्षा अस्त्र से; नैजम्—अपने निजी (नारायणास्त्र) से; पाशुपतस्य—शिवजी के पाशुपतास्त्र का; च—तथा।.

भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मास्त्र का सामना दूसरे ब्रह्मास्त्र से, वायुअस्त्र का सामना पर्वत अस्त्र से, अग्नि अस्त्र का वर्षा अस्त्र से तथा शिवजी के निजी पाशुपतास्त्र का सामना अपने निजी अस्त्र नारायणास्त्र से किया।

मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ।
बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

मोहयित्वा—मोहित करके; तु—तब; गिरिशम्—शिवजी को; जृम्भण-अस्त्रेण—जँभाई लाने वाले अस्त्र से; जृम्भितम्—जँभाई लाते हुए; बाणस्य—बाण की; पृतनाम्—सेना को; शौरिः—कृष्ण; जघान—मारने लगे; असि—तलवार; गदा—गदा; इषुभिः—तथा बाणों से।.

जृम्भणास्त्र द्वारा जम्भाई लिवाकर शिवजी को मोहित कर देने के बाद कृष्ण बाणासुर की सेना को अपनी तलवार, गदा तथा बाणों से मारने लगे।

स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ।

असृग्विमुञ्चन्गात्रेभ्यः शिखिनापक्रमद्रणात् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

स्कन्दः—कार्तिकेय; प्रद्युम्न-बाण—प्रद्युम्न के बाणों की; ओघैः—वर्षा से; अर्द्यमानः—व्यथित हुआ; समन्ततः—चारों ओर; असृक्—रक्त; विमुञ्चन्—गिराते हुए; गात्रेभ्यः—अपने अंगों से; शिखिना—मोर वाहन पर; अपाक्रमत्—चला गया; रणात्—युद्धभूमि से।

कार्तिकेय चारों ओर से हो रही प्रद्युम्न के बाणों की वर्षा से व्यथित थे अतः वे अपने मोर-वाहन पर चढ़ कर युद्धभूमि से भाग गये क्योंकि उनके अंग-प्रत्यंग से रक्त निकलने लगा था।

कुम्भाण्डकूपकर्णश्च पेततुर्मुषलार्दितौ ।
दुद्रुवुस्तदनीकनि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कुम्भाण्ड-कूपकर्णः च—कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण; पेततुः—गिर पड़े; मुषल—(बलराम की) गदा से; अर्दितौ—चोट खाकर; दुद्रुवुः—भाग गये; तत्—उनकी; अनीकानि—सेनाएँ; हत—मारे गये; नाथानि—जिनके सेना-नायक; सर्वतः—सभी दिशाओं में।

कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण बलराम की गदा से चोट खाकर धराशायी हो गये। जब इन दोनों असुरों के सैनिकों ने देखा कि उनके सेना-नायक मारे जा चुके हैं, तो वे सभी दिशाओं में तितर-बितर हो गये।

विशीर्यमाणम्स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षितः ।
कृष्णमभ्यद्रवत्सङ्ख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

विशीर्यमाणम्—छिन्न-भिन्न किये हुए; स्व—अपनी; बलम्—सेना को; दृष्ट्वा—देखकर; बाणः—बाण; अति—अत्यन्त; अमर्षितः—क्रुद्ध; कृष्णम्—कृष्ण पर; अभ्यद्रवत्—आक्रमण कर दिया; सङ्ख्ये—युद्धभूमि में; रथी—रथ पर सवार; हित्वा—एक तरफ छोड़ कर; एव—निस्सन्देह; सात्यकिम्—सात्यकि को।

बाणासुर अपनी समूची सेना को छिन्नभिन्न होते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। सात्यकि से लड़ना छोड़ कर और अपने रथ पर सवार होकर युद्धभूमि को पार करते हुए उसने कृष्ण पर आक्रमण कर दिया।

धनूंष्याकृष्य युगपद् बाणः पञ्चशतानि वै ।
एकैकस्मिन्शरौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धनूंषि—धनुषों को; आकृष्य—खींचकर; युगपत्—एकसाथ; बाणः—बाण ने; पञ्च-शतानि—पाँच सौ; वै—निस्सन्देह; एक-एकस्मिन्—हर एक पर; शरौ—तीर; द्वौ द्वौ—दो दो; सन्दधे—चढ़ाया; रण—युद्ध के कारण; दुर्मदः—घमंड से मतवाला।

युद्ध करने की सनक में बहकर बाण ने एकसाथ अपने पाँच सौ धनुषों की डोरियाँ खींच कर हर डोरी पर दो दो बाण चढ़ाये।

तानि चिच्छेद भगवान्धनूंसि युगपद्धरिः ।
सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तानि—उन; चिच्छेद—काट दिया; भगवान्—भगवान्; धनूंसि—धनुषों को; युगपत्—एक ही बार में; हरिः—श्रीकृष्ण ने; सारथिम्—रथ हाँकने वाले को; रथम्—रथ को; अश्वान्—घोड़ों को; च—तथा; हत्वा—मार कर; शङ्खम्—अपना शंख; अपूरयत्—बजाया।

भगवान् श्री हरि ने बाणासुर के सारे धनुषों को एक ही साथ काट दिया और उसके सारथी, रथ तथा घोड़ों को मार गिराया। तत्पश्चात् भगवान् ने अपना शंख बजाया।

तन्माता कोटरा नाम नग्ना मक्तशिरोरुहा ।
पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्—उसकी (बाणासुर की); माता—माता; कोटरा नाम—कोटरा नामक; नग्ना—नंगी; मुक्त—खोले; शिरः-रुहा—अपने बाल; पुरः—सामने; अवतस्थे—खड़ी हो गई; कृष्णस्य—कृष्ण के; पुत्र—अपने पुत्र के; प्राण—जीवन; रिरक्षया—बचाने की आशा से।

तभी बाणासुर की माता कोटरा अपने पुत्र के प्राण बचाने की इच्छा से भगवान् कृष्ण के समक्ष नंग-धड़ंग तथा बाल बिखेरे आ धमकी।

ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः ।
बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाविशत्पुरम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; तिर्यक्—पीछे की ओर किये; मुखः—अपना मुँह; नग्नाम्—नग्न स्त्री को; अनिरीक्षन्—न देखते हुए; गदाग्रजः—कृष्ण; बाणः—बाण; च—तथा; तावत्—उस अवसर पर; विरथः—रथविहीन; छिन्न—टूटा हुआ; धन्वा—धनुष; आविशत्—प्रविष्ट हुआ; पुरम्—नगरी में।

भगवान् गदाग्रज ने उस नंगी स्त्री को देखे जाने से बचने के लिए अपना मुख पीछे की ओर मोड़ लिया और रथविहीन हो जाने तथा धनुष के टूट जाने से बाणासुर इस अवसर का लाभ उठाकर अपने नगर को भाग गया।

विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रीशिरास्त्रीपात् ।

अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२॥

शब्दार्थ

विद्राविते—भगा दिये जाने पर; भूत-गणे—शिवजी के सारे अनुचरों के; ज्वरः—शिवजी की सेवा करने वाला साक्षात् ज्वर; तु—लेकिन; त्रि—तीन; शिराः—सिर वाले; त्रि—तीन; पात्—पाँव वाले; अभ्यधावत—की ओर दौड़ा; दाशार्हम्—भगवान् कृष्ण को; दहन्—जलाते हुए; इव—सदृश; दिशः—दिशाएँ; दश—दसों।

जब शिवजी के अनुचर भगा दिये गये, तो तीन सिर तथा तीन पैर वाला शिवज्वर कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए आगे लपका। ज्योंही शिवज्वर निकट पहुँचा तो ऐसा लगा कि वह दसों दिशाओं की सारी वस्तुओं को जला देगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने शिवज्वर का निम्नलिखित वर्णन उद्धृत किया है—

ज्वरस्त्रिपदस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः ।

भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥

''भयानक शिवज्वर के तीन पाँव, तीन सिर, छह भुजाएँ तथा नौ आँखें थीं। राख की वर्षा करते हुए वह जैसे ब्रह्माण्ड के संहार के समय यमराज सा प्रतीत हो रहा था।''

अथ नारायणः देवः तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ।
माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात; नारायणः देवः—भगवान् नारायण (कृष्ण) ने; तम्—उस (शिवज्वर) को; दृष्ट्वा—देखकर; व्यसृजत्—छोड़ दिया; ज्वरम्—अपना साक्षात् ज्वर (जो अतीव शीतल था, जबकि शिवज्वर अतीव गर्म था); माहेश्वरः—महेश्वर का; वैष्णवः—भगवान् विष्णु के; च—तथा; युयुधाते—लड़ने लगे; ज्वरौ—दो ज्वर; उभौ—एक-दूसरे के विरुद्ध।

तत्पश्चात् इस अस्त्र को पास आते देखकर भगवान् नारायण ने अपना निजी ज्वर अस्त्र, विष्णुज्वर, छोड़ा। इस तरह शिवज्वर तथा विष्णुज्वर एक-दूसरे से युद्ध करने लगे।

माहेश्वरः समाक्रन्दन्वैष्णवेन बलार्दितः ।
अलब्ध्वाभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ।
शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलिः ॥ २४॥

शब्दार्थ

माहेश्वरः—शिव का (ज्वर अस्त्र); समाक्रन्दन्—चिल्लाता हुआ; वैष्णवेन—वैष्णवज्वर के; बल—बल से; अर्दितः—पीड़ित; अलब्ध्वा—न पाकर; अभयम्—निडरता; अन्यत्र—और कहीं; भीतः—डरा हुआ; माहेश्वरः ज्वरः—शिव ज्वर; शरण—शरण के लिए; अर्थी—लालायित; हृषीकेशम्—हर एक की इन्द्रियों के स्वामी, भगवान् कृष्ण की; तुष्टाव—उसने प्रशंसा की; प्रयत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर।

विष्णुज्वर के बल से परास्त शिवज्वर पीड़ा से चिल्ला उठा। किन्तु कहीं आश्रय न पाकर

भयभीत हुआ शिवज्वर इन्द्रियों के स्वामी कृष्ण के पास शरण पाने की आशा से आया। इस तरह वह अपने हाथ जोड़कर उनकी प्रशंसा करने लगा।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इंगित किया है, यह महत्त्वपूर्ण है कि शिवज्वर अपने स्वामी शिव को छोड़कर सीधे भगवान् कृष्ण की शरण लेने गया।

ज्वर उवाच
नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशम्
सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं
यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गम्प्रशान्तम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ज्वरः उवाच—(शिव) ज्वर ने कहा; नमामि—मैं नमस्कार करता हूँ; त्वा—तुमको; अनन्त—अनन्त; शक्तिम्—शक्ति वाले; पर—परम; ईशम्—स्वामी; सर्व—सबों के; आत्मानम्—आत्मा; केवलम्—शुद्ध; ज्ञप्ति—चेतना की; मात्रम्—समग्रता; विश्व—ब्रह्माण्ड की; उत्पत्ति—उत्पत्ति; स्थान—पालन; संरोध—तथा संहार का; हेतुम्—कारण; यत्—जो; तत्—वह; ब्रह्म—ब्रह्म, परम सत्य; ब्रह्म—वेदों द्वारा; लिन्गम्—जिसका अप्रत्यक्ष प्रसंग (अनुमान); प्रशान्तम्—पूर्णतया शान्त।

शिवज्वर ने कहा : हे अनन्त शक्ति वाले, समस्त जीवों के परमात्मा भगवान्, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप शुद्ध तथा पूर्ण चेतना से युक्त हैं और इस विराट ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन तथा संहार के कारण हैं। आप पूर्ण शान्त हैं और आप परम सत्य (ब्रह्म) हैं जिनका प्रकारान्तर से सारे वेद उल्लेख करते हैं।

तात्पर्य : इसके पूर्व शिवज्वर अपने को अनन्त शक्तिशाली मान रहा था और इसीलिए वह श्रीकृष्ण को जला देना चाहता था। किन्तु अब वह स्वयं भस्म हो चुका था और यह समझते हुए कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं वह विनयपूर्वक उन्हें नमस्कार करने और उनकी स्तुति करने आया।

आचार्यों के अनुसार *सर्वात्मानम्* शब्द सूचक है कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं—समस्त जीवों को चेतना प्रदान करने वाले हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कृष्ण करते हैं—*मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—मुझी से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती अपनी टीका में बल देते हैं कि शिवज्वर ने कई प्रकार से अपने स्वामी की अपेक्षा कृष्ण की श्रेष्ठता का अनुभव कर लिया था। इसीलिए शिवज्वर ने कृष्ण को *अनन्त-शक्ति, परेश* तथा शिवजी के भी—*सर्वात्मा*—कह कर पुकारा है।

केवलं ज्ञप्तिमात्रम् शब्द सूचित करते हैं कि भगवान् कृष्ण शुद्ध सर्वज्ञान से युक्त हैं। हम अपने सीमित ज्ञान के अनुसार इस जगत में कर्म करते हैं लेकिन भगवान् कृष्ण अपने अनन्त ज्ञान से सृजन, पालन तथा संहार का असीम कार्य सम्पन्न करते हैं। जैसाकि श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं, वायु जैसे स्थूल तत्त्वों के कार्य भी उन पर आश्रित हैं। इसकी पुष्टि *तैत्तिरीय उपनिषद* (२.८.१) में हुई है—*भीषास्माद् वात: पवते*—उनके डर से वायु बहती है। इस तरह भगवान् कृष्ण सभी जीवों के चरम आराध्य हैं।

कालो दैवं कर्म जीव: स्वभावो
द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकार: ।
तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाह-
स्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

काल:—समय; दैवम्—भाग्य; कर्म—भौतिक कर्म के फल; जीव:—व्यष्टि जीव; स्वभाव:—उसकी इच्छाएँ; द्रव्यम्—पदार्थ का सूक्ष्म रूप; क्षेत्रम्—शरीर; प्राण:—प्राण-वायु; आत्मा—मिथ्या अहंकार; विकार:—(ग्यारह इन्द्रियों के) रूपान्तर; तत्—इन सबों का; सङ्घाट:—संमेल (सूक्ष्म शरीर के रूप में); बीज—बीज; रोह—तथा अंकुर का; प्रवाह:—निरन्तर बहाव; त्वत्—तुम्हारा; माया—भौतिक मोहिनी शक्ति; एषा—यह; तत्—इसके; निषेधम्—निषेध (आप); प्रपद्ये—शरण के लिए आया हूँ।

काल, भाग्य, कर्म, जीव तथा उसका स्वभाव, सूक्ष्म भौतिक तत्त्व, भौतिक शरीर, प्राण-वायु, मिथ्या अहंकार, विभिन्न इन्द्रियाँ तथा जीव के सूक्ष्म शरीर में प्रतिबिम्बित इन सबों की समग्रता—ये सभी आपकी माया हैं, जो बीज तथा पौधे के अन्तहीन चक्र जैसे हैं। इस माया का निषेध, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।

तात्पर्य : *बीजरोह प्रवाह* शब्द की व्याख्या इस तरह की जाती है : बद्धजीव भौतिक शरीर ग्रहण करता है, जिससे वह भौतिक जगत का भोग करने का प्रयास करता है। यह शरीर भावी जगत का *बीज* है क्योंकि जब कोई व्यक्ति इस शरीर से कर्म करता है, तो उससे अन्य कर्म उत्पन्न होते हैं, जो बढ़कर (*रोह*) दूसरा भौतिक शरीर धारण करने के लिए बाध्य कर देते हैं। दूसरे शब्दों में, भौतिक जीवन कर्म तथा फल की शृंखला है। भगवान् की शरण में जाने का निर्णय बद्धजीव को इस व्यर्थ के बारम्बार वृद्धि तथा फल से छुटकारा दिला देता है।

श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार *तन्निषेधं प्रपद्ये* शब्द बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण *निषेधावधिभूतम्*—निषेध की अवधि—हैं। दूसरे शब्दों में, जब सारे मोह का निषेध हो जाता है, तो

परम सत्य बचा रहता है।

शिक्षा की विधि ज्ञानार्जन द्वारा अज्ञान के उन्मूलन की विधि कही जा सकती है। आगमन, निगमन तथा प्रज्ञा विधियों से हम बाहर से सुन्दर, मोहमय तथा अपूर्ण का निराकरण करने का प्रयास करते हैं और अपने को पूर्णज्ञान के पद तक उठाना चाहते हैं। अन्ततोगत्वा जब मोह का निषेध हो जाता है तब जो ठोस रूप में बच जाता है, वह परम सत्य भगवान् है।

पिछले श्लोक में शिवज्वर ने भगवान् को *सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम्* कहा है। अब शिवज्वर भगवान् के विषय में अपना दार्शनिक वर्णन यह कह कर समाप्त करता है कि संसार के विविध पक्ष भी परमेश्वर की शक्तियाँ हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती उल्लेख करते हैं कि भगवान् का अपना शरीर तथा इन्द्रियाँ, जैसाकि *तन्निषेधम्* शब्द से पता चलता है, भगवान् के शुद्ध आध्यात्मिक शरीर से अभिन्न हैं। भगवान् के शरीर तथा इन्द्रियाँ न तो उनसे बाहर हैं न ही उन्हें आच्छादित करती हैं अपितु भगवान् अपने आध्यात्मिक रूप तथा इन्द्रियों से अभिन्न हैं। पूर्ण ब्रह्म अपनी असीम सम्मोहक विविधता से युक्त श्रीकृष्ण ही हैं।

नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नै-
र्देवान्साधूल्लोकसेतून्बिभर्षि ।
हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानान्
जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥ २७॥

शब्दार्थ

नाना—विविध; भावैः—मनोभावों से; लीलया—लीलाओं के रूप में; एव—निस्सन्देह; उपपन्नैः—कल्पित; देवान्—देवताओं; साधून्—साधुओं; लोक—संसार के; सेतून्—धर्मसंहिता को; बिभर्षि—स्थिर रखते हो; हंसि—संहार करते हो; उत्-मार्गान्—मार्ग से विपथ; हिंसया—हिंसा द्वारा; वर्तमानान्—जीवित; जन्म—जन्म; एतत्—यह; ते—तुम्हारा; भार—भार; हाराय—उतारने के लिए; भूमेः—पृथ्वी का।

आप देवताओं, साधुओं तथा इस जगत के लिए धर्मसंहिता को बनाये रखने के लिए अनेक भावों से लीलाएँ करते हैं। इन लीलाओं से आप उनका भी वध करते हैं, जो सही मार्ग से हट जाते हैं और हिंसा द्वारा जीवन-यापन करते हैं। निस्सन्देह आपका वर्तमान अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिए है।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (९.२९) में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

''न तो मैं किसी से द्वेष करता हूँ न मैं किसी का पक्षपात करता हूँ। मैं सबों के प्रति समभाव रखता हूँ। किन्तु जो भी भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है—मुझमें है—और मैं भी उसका मित्र हूँ।''

देवता तथा साधु पुरुष (*देवान् साधून्*) भगवान् की इच्छा पूरी करने के लिए समर्पित रहते हैं। देवता प्रशासक की तरह कार्य करते हैं और साधुजन अपने उपदेशों तथा आदर्शों से आत्म-साक्षात्कार तथा पवित्रता का मार्ग प्रशस्त करते हैं। किन्तु जो लोग प्राकृतिक अर्थात् ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करते हैं और अन्यों के साथ हिंसा करके जीते हैं, वे भगवान् द्वारा विविध लीला-अवतारों में विनष्ट कर दिये जाते हैं। जैसाकि भगवान् *भगवद्गीता* (४.११) में कहते हैं—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्य-हम्*। वे निष्पक्ष हैं किन्तु जीवों के कर्मों के प्रति समुचित प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

तप्तोऽहम्ते तेजसा दुःसहेन
शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ।
तावत्तापो देहिनां तेऽन्घ्रिमूलं
नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तप्तः—जलाया हुआ; अहम्—मैं; ते—तुम्हारी; तेजसा—शक्ति द्वारा; दुःसहेन—दुस्सह; शान्त—ठण्डा, शीतल; उग्रेण—फिर भी तप्त; अति—अत्यधिक; उल्बणेन—भयानक; ज्वरेण—ज्वर से; तावत्—तब तक; तापः—जलन; देहिनाम्—देहधारियों की; ते—तुम्हारे; अङ्घ्रि—चरणों के; मूलम्—तलवा; न—नहीं; उ—निस्सन्देह; सेवेरन्—सेवा करते हैं; यावत्—जब तक; आशा—भौतिक इच्छाओं से; अनुबद्धाः—सतत बँधे हुए।

मैं आपके भयानक ज्वर अस्त्र के भयानक तेज से त्रस्त हूँ जो शीतल होकर भी ज्वल्यमान है। सारे देहधारी जीव तब तक कष्ट भोगते हैं जब तक वे भौतिक महत्वाकांक्षाओं से बँधे रहते हैं और आपके चरणकमलों की सेवा करने से दूर भागते हैं।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में शिवज्वर ने कहा था कि जो लोग हिंसा का जीवन बिताते हैं उन्हें भगवान् के हाथों वैसी ही हिंसा मिलती है। किन्तु यहाँ पर वह उसके आगे यह कहता है कि जो लोग भगवान् की शरण ग्रहण नहीं करते वे विशेष रूप से दण्डनीय हैं। यद्यपि शिवज्वर ने अभी तक स्वयं हिंसात्मक कार्य किया था किन्तु भगवान् की शरण में आ जाने तथा अपना सुधार कर लेने के कारण आशावान है कि उसे भगवत्कृपा प्राप्त हो सकेगी। दूसरे शब्दों में, वह अब भगवद्भक्त बन गया है।

श्रीभगवानुवाच
त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; त्रि-शिरः—हे तीन सिरों वाले; ते—तुमसे; प्रसन्नः—प्रसन्न; अस्मि—हूँ; व्येतु—चला जाये; ते—तुम्हारा; मत्—मेरे; ज्वरात्—ज्वर अस्त्र से; भयम्—भय; यः—जो भी; नौ—हमारा; स्मरति—स्मरण करता है; संवादम्—वार्तालाप; तस्य—उसका; त्वत्—तुम्हारा; न भवेत्—नहीं हो; भयम्—भय।

भगवान् ने कहा : हे तीन सिरों वाले, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। मेरे ज्वर अस्त्र से तुम्हारा भय दूर हो और जो कोई भी हमारी इस वार्ता को सुने वह तुमसे भयभीत न हो।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् शिवज्वर को अपना भक्त मान लेते हैं और उसे पहला आदेश यह देते हैं कि तुम कभी भी अपने तप्त ज्वर से उन लोगों को नहीं डराओगे जो भगवान् की इस लीला को श्रद्धापूर्वक सुनते हैं।

इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ।
बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यन्जनार्दनम् ॥ ० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहे जाने पर; अच्युतम्—अच्युत भगवान् कृष्ण द्वारा; आनम्य—झुक कर; गतः—चला गया; माहेश्वरः—शिव का; ज्वरः—ज्वर अस्त्र; बाणः—बाण; तु—लेकिन; रथम्—अपने रथ पर; आरूढः—चढ़ कर; प्रागात्—आगे आया; योत्स्यन्—युद्ध करने के उद्देश्य से; जनार्दनम्—भगवान् कृष्ण से।

ऐसा कहे जाने पर माहेश्वर-ज्वर ने अच्युत भगवान् को प्रणाम किया और चला गया। किन्तु तभी बाणासुर अपने रथ पर सवार होकर भगवान् कृष्ण से लड़ने के लिए प्रकट हुआ।

ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ।
मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ १ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात; बाहु—अपनी भुजाओं से; सहस्रेण—एक हजार; नाना—अनेक; आयुध—हथियार; धरः—धारण किये; असुरः—असुर ने; मुमोच—छोड़ा; परम—अत्यधिक; क्रुद्धः—क्रुद्ध; बाणान्—बाणों को; चक्र-आयुधे—चक्रधारी पर; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

हे राजन्, अपने एक हजार हाथों में असंख्य हथियार लिए उस अतीव क्रुद्ध असुर ने चक्रधारी भगवान् कृष्ण पर अनेक बाण छोड़े।

तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
चिच्छेद भगवान्बाहून्शाखा इव वनस्पतेः ॥ २॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; अस्यतः—फेंके गये; अस्त्राणि—हथियारों को; असकृत्—बारम्बार; चक्रेण—अपने चक्र से; क्षुर—तेज; नेमिना—परिधि वाले; चिच्छेद—काट डाला; भगवान्—भगवान् ने; बाहून्—भुजाएँ; शाखाः—टहनियों; इव—की तरह; वनस्पतेः—वृक्ष की।

जब बाण भगवान् पर लगातार हथियार बरसाता रहा तो उन्होंने अपने तेज चक्र से बाणासुर की भुजाओं को काट डाला मानो वे वृक्ष की टहनियाँ हों।

बाहुषु छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान्भवः ।
भक्तानकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ॥

शब्दार्थ

बाहुषु—बाहों पर; छिद्यमानेषु—काटी जाती हुई; बाणस्य—बाणासुर की; भगवान् भवः—शिवजी; भक्त—अपने भक्त के प्रति; अनुकम्पी—दयालु; उपव्रज्य—पास जाकर; चक्र-आयुधम्—चक्रधारी कृष्ण से; अभाषत—बोले।

बाणासुर की भुजाएँ कटते देखकर शिवजी को अपने भक्त के प्रति दया आ गयी अतः वे भगवान् चक्रायुध (कृष्ण) के पास पहुँचे और उनसे इस प्रकार बोले।

श्रीरुद्र उवाच

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाड्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-रुद्रः उवाच—शिव ने कहा; त्वम्—तुम; हि—अकेले; ब्रह्म—परम सत्य; परम्—परम; ज्योतिः—प्रकाश; गूढम्—छिपा हुआ; ब्रह्मणि—ब्रह्म में; वाक्-मये—भाषा के रूप में (वेदों में); यम्—जिसको; पश्यन्ति—देखते हैं; अमल—निष्कलंक; आत्मानः—जिनके हृदय; आकाशम्—आकाश के; इव—सदृश; केवलम्—शुद्ध।

श्री रुद्र ने कहा : आप ही एकमात्र परम सत्य, परम ज्योति तथा ब्रह्म की शाब्दिक अभिव्यक्ति के भीतर के गुह्य रहस्य हैं। जिनके हृदय निर्मल हैं, वे आपका दर्शन कर सकते हैं क्योंकि आप आकाश की भाँति निर्मल हैं।

तात्पर्य : परम सत्य समस्त प्रकाश का उद्गम है अतएव वह परम प्रकाश है—आत्म-प्रकाशमय है। इस परम ब्रह्म की गुह्य विवेचना वेदों में की गई है इसलिए सामान्य पाठक की समझ के परे है। श्रील जीव गोस्वामी द्वारा *गोपाल तापनी उपनिषद* से उद्धृत निम्नलिखित कथन यह प्रदर्शित करते हैं कि वैदिक ध्वनियों से कभी कभी ब्रह्म का उद्घाटन किस तरह होता है—*ते होचुरुपासनमेतस्य परात्मनो गोविन्दस्याखिलाधारिणो ब्रूहि* (पूर्व खण्ड १७)—उन्होंने (चार कुमारों ने) (ब्रह्मा से)

कहा—कृपया बतलायें कि गोविन्द की किस तरह पूजा करनी चाहिए जो परमात्मा हैं और जो प्रत्येक विद्यमान पदार्थ की आधारशिला हैं। *चेतश्चेतनानाम्* (पूर्व खण्ड २१)—वह समस्त जीवों में प्रमुख है। तथा *तं ह देवम् आत्मवृत्तिप्रकाशम्* (पूर्व खण्ड २)—अपने आप की अन ुभूति होने पर परमेश्वर की अनुभूति की जाती है। महान् आचार्य जीव गोस्वामी भी *श्रीमद्भागवत* से एक श्लोक (१..४८) उद्धृत करते हैं— *गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्*—परब्रह्म मनुष्य सदृश रूप में छिपा है।

चूँकि भगवान् शुद्ध हैं, तो फिर कुछ लोग कृष्ण के रूप तथा कार्यों को अशुद्ध रूप में क्यों अनुभव करते हैं? आचार्य जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि जिनके स्वयं के हृदय अशुद्ध हैं, वे शुद्ध भगवान् को नहीं समझ सकते। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती अर्जुन के प्रति भगवान् के ही उपदेश को *श्री-हरिवंश* से उद्धृत करते हैं—

तत्परं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत्।
ममैव तद्घनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत॥

"उस (समग्र प्रकृति) से श्रेष्ठ परब्रह्म है, जिससे इस सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार होता है। हे भारत! तुम्हें जान लेना चाहिए कि परब्रह्म मेरे केन्द्रीभूत तेज से युक्त है।"

इस प्रकार शिवजी अपने भक्त को बचाने के लिए अपने नित्य आराध्य प्रभु भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हैं। भगवान् की मोहिनी शक्ति ने शिवजी को कृष्ण से भिड़ने के लिए प्रेरित किया था किन्तु अब यह युद्ध समाप्त हो चुका था और अपने भक्त को बचाने के लिए शिवजी ये सुन्दर स्तुतियाँ करते हैं।

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो
द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ।
चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा
अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥५॥
रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः
केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ।
प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः
स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥६॥

शब्दार्थ

नाभिः—नाभि; नभः—आकाश; अग्निः—अग्नि; मुखम्—मुख; अम्बु—जल; रेतः—वीर्य; द्यौः—स्वर्ग; शीर्षम्—सिर; आशाः—दिशाएँ; श्रुतिः—श्रवणेन्द्रिय; अङ्घ्रिः—पाँव; उर्वी—पृथ्वी; चन्द्रः—चन्द्रमा; मनः—मन; यस्य—जिसकी; दृक्—दृष्टि; अर्कः—सूर्य; आत्मा—आत्मचेतना; अहम्—मैं (शिव); समुद्रः—समुद्र; जठरम्—उदर; भुज—बाहु; इन्द्रः—इन्द्र; रोमाणि—शरीर के रोएँ; यस्य—जिसके; ओषधयः—औषधीय पौधे; अम्बु-वाहाः—जलवाहक बादल; केशाः—सिर के बाल; विरिञ्चः—ब्रह्मा; धिषणा—विवेक, बुद्धि; विसर्गः—जननेन्द्रियाँ; प्रजा-पतिः—मनुष्य को उत्पन्न करने वाला; हृदयम्—हृदय; यस्य—जिसका; धर्मः—धर्म; सः—वह; वै—निस्सन्देह; भवान्—आप; पुरुषः—आदि-स्रष्टा; लोक—सारे लोक; कल्पः—जिससे उत्पन्न।

आकाश आपकी नाभि है, अग्नि आपका मुख है, जल आपका वीर्य है और स्वर्ग आपका सिर है। दिशाएँ आपकी श्रवणेन्द्रिय (कान) हैं, औषधि-पौधे आपके शरीर के रोएँ हैं तथा जलधारक बादल आपके सिर के बाल हैं। पृथ्वी आपका पाँव है, चन्द्रमा आपका मन है तथा सूर्य आपकी दृष्टि (नेत्र) है, जबकि मैं आपका अहंकार हूँ। समुद्र आपका उदर है, इन्द्र आपकी भुजा है, ब्रह्मा आपकी बुद्धि है, प्रजापति आपकी जननेन्द्रिय (लिंग) है और धर्म आपका हृदय है। असल में आप आदि-पुरुष हैं, लोकों के स्रष्टा हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की व्याख्या है कि जिस तरह फल के भीतर रहने वाले छोटे-छोटे कीट फल को नहीं समझ पाते उसी तरह हम क्षुद्र जीव उस परम सत्य को नहीं समझ सकते जिसमें हम स्थित हैं। भगवान् की विराट अभिव्यक्ति को समझना कठिन है, तो फिर श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूप के विषय में क्या कहा जा सकता है? अतएव हमें कृष्णभावनामृत की शरण लेनी चाहिए। भगवान् इसे समझने में हमारी मदद स्वयं करेंगे।

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्
धर्मस्य गुप्त्यै जगतो हिताय ।
वयं च सर्वे भवतानुभाविता
विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ७॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारा; अवतारः—अवतार; अयम्—यह; अकुण्ठ—असीम; धामन्—हे शक्ति वाले; धर्मस्य—न्याय की; गुप्त्यै—रक्षा के लिए; जगतः—ब्रह्माण्ड के; हिताय—लाभ के लिए; वयम्—हम; च—भी; सर्वे—सभी; भवता—आपके द्वारा; अनुभाविताः—प्रबुद्ध तथा अधिकारप्राप्त; विभावयामः—हम प्रकट करते तथा उत्पन्न करते हैं; भुवनानि—जगतों को; सप्त—सात।

हे असीम शक्ति के स्वामी, इस भौतिक जगत में आपका वर्तमान अवतार न्याय के सिद्धान्तों की रक्षा करने तथा समग्र ब्रह्माण्ड को लाभ दिलाने के निमित्त है। हममें से प्रत्येक देवता आपकी कृपा तथा सत्ता पर आश्रित है और हम सभी देवता सात लोक मण्डलों को उत्पन्न

करते हैं।

तात्पर्य : एक ऐतिहासिक व्यक्ति की तरह जब शिवजी कृष्ण की स्तुति कर रहे हैं, तो एक संदेह उठ सकता है क्योंकि बाहरी तौर पर कृष्ण मनुष्य जैसे स्वरूप में शिव के समक्ष खड़े हैं। किन्तु यह तो भगवान् की अहैतुकी कृपा है कि वे हमारी मानवी आँखों के लिए दृश्य रूप में प्रकट होते हैं। यदि हम परम सत्य श्रीकृष्ण को समझना चाहते हैं, तो हमें चाहिए कि कृष्णभावनाभावित के किसी मान्य अधिकारी से सुनें यथा *भगवद्गीता* में साक्षात् कृष्ण से या मान्य वैष्णव अधिकारी शिव से सुनें जो यहाँ भगवान् की स्तुति कर रहे हैं।

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीय-
स्तुर्यः स्वदृग्धेतुरहेतुरीशः ।
प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं
स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; एकः—एक; आद्यः—आदि; पुरुषः—परम पुरुष; अद्वितीयः—अद्वितीय; तुर्यः—दिव्य; स्व-दृक्—स्वयं प्रकाश; हेतुः—कारण; अहेतुः—कारणरहित; ईशः—परम नियन्ता; प्रतीयसे—अनुभव किये जाते हो; अथ अपि—इतने पर भी; यथा—के अनुसार; विकारम्—विविध रूपान्तरों; स्व—अपनी; मायया—माया से; सर्व—समस्त; गुण—गुणों की; प्रसिद्ध्यै—पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए।

आप अद्वितीय, दिव्य तथा स्वयं-प्रकाश आदि-पुरुष हैं। अहैतुक होकर भी आप सबों के कारण हैं और परम नियन्ता हैं। तिस पर भी आप पदार्थ के उन विकारों के रूप में अनुभव किये जाते हैं, जो आपकी माया द्वारा उत्पन्न हैं। आप इन विकारों की स्वीकृति इसलिए देते हैं जिससे विविध भौतिक गुण पूरी तरह प्रकट हो सकें।

तात्पर्य : आचार्यों ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : श्रील श्रीधर स्वामी की विवेचना है कि *आद्यः पुरुषः* पद सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण अपना विस्तार महाविष्णु के रूप में करते हैं—जो जगत का भार सँभालने वाले तीन पुरुषों में प्रथम हैं। भगवान् *एक अद्वितीय* हैं क्योंकि न तो कोई भगवान् के तुल्य है, न उनसे भिन्न है। कोई भी व्यक्ति पूर्णतया भगवान् के समान नहीं है किन्तु सारे जीव भगवान् की शक्ति के अंश होने के कारण गुण में उनसे भिन्न नहीं हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु इस अचिन्त्य स्थिति को *अचिन्त्य भेदाभेद* कहते हैं। परम पुरुष में अनन्त आध्यात्मिक चेतना होती है, जबकि जीवों में अत्यल्प चेतना होती है और वह भी मोह द्वारा आच्छादित होती रहती है।

श्रील जीव गोस्वामी *आद्य: पुरुष:* की व्याख्या करते हुए *सात्वत तन्त्र* से यह उद्धरण देते हैं—*विष्णोस्तु त्रीणिरूपाणि*—विष्णु के तीन रूप हैं। श्रील जीव गोस्वामी भी श्रुति से भगवान् का वचन उद्धृत करते हैं—*पूर्वमेवाहमिहासम्*—प्रारम्भ में इस जगत में केवल मैं था। यह कथन *पुरुष अवतार* को बताने वाला है, जो विराट जगत के पहले स्थित था। श्रील जीव गोस्वामी ने एक श्रुति मंत्र भी—*तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्*—भगवान् का पुरुष पद ऐसा है—उद्धृत किया है। वस्तुत: भगवान् कृष्ण पुरुष अवतार के सार हैं क्योंकि वे *तुरीय* हैं जैसाकि इस श्लोक में वर्णित है। जीव गोस्वामी ने *तुरीय* (शाब्दिक अर्थ चतुर्थ) शब्द की व्याख्या *श्रीमद्भागवत* के श्लोक (११.१५.१६) पर श्रील श्रीधर स्वामी की टीका से उद्धरण देते हुए की है।

विराट् हिरण्यगर्भश्च कारणं चेत्युपाधय: ।
ईशस्य यत्त्रिभिर्हीनं तुरीयं तद् विदुर्बुधा: ॥

"भगवान् का विराट रूप, उनका हिरण्यगर्भ रूप तथा भौतिक प्रकृति का आदि हेतु रूप—ये सभी सापेक्ष विचार हैं किन्तु क्योंकि भगवान् इन तीनों द्वारा आच्छादित नहीं होते अत: बुद्धिमान व्यक्ति उन्हें "चौथा" कहते हैं।"

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार *तुरीय* शब्द सूचक है कि भगवान् चतुर्व्यूह नामक अपने चौरंगी विस्तार के चौथे सदस्य हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् कृष्ण वासुदेव हैं।

भगवान् कृष्ण *स्व-दृक्* अर्थात् केवल अपने को ठीक से देख सकने वाले हैं क्योंकि उनका अस्तित्व आध्यात्मिक है और वे अतीव शुद्ध हैं। वे *हेतु* अर्थात् हर वस्तु के कारणस्वरूप हैं फिर भी *अहेतु* हैं अर्थात् कारणरहित हैं। इसीलिए वे *ईश* अर्थात् परम नियन्ता हैं।

इस श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियाँ विशिष्ट दार्शनिक महत्त्व रखती हैं। जब ईश्वर एक हैं, तो फिर विभिन्न लोग उनको भिन्न भिन्न प्रकार से क्यों देखते हैं? इसकी आंशिक व्याख्या यहाँ दी गई है। भगवान् की बहिरंगा शक्ति, माया के कारण भौतिक प्रकृति निरन्तर *विकार* अवस्था में रहती है। तब तो एक अर्थ से भौतिक प्रकृति *असत्* अर्थात् असल नहीं है। किन्तु ईश्वर परम सत्य हैं और वे सारी वस्तुओं के भीतर हैं तथा सारी वस्तुएँ उनकी शक्ति हैं अत: भौतिक वस्तुओं तथा शक्तियों में कुछ सच्चाई रहती है। इसलिए कुछ लोग भौतिक शक्ति के एक पक्ष को देखते हैं और सोचते हैं, "यह

सत्य है'' जबकि अन्य लोग दूसरे पक्ष को देखते हैं और सोचते हैं, ''नहीं, सत्य यह है।'' बद्धजीव होने के कारण हम सभी भौतिक प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों से आवृत हैं इसीलिए हम परम सत्य या परमेश्वर का वर्णन अपनी दूषित दृष्टि के अनुसार करते हैं। फिर भी भौतिक प्रकृति के आच्छादक गुण—यथा हमारी बद्ध बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ—असल हैं (भगवान् की शक्ति होने के कारण) इसीलिए सारी वस्तुओं के भीतर से हम भगवान् को थोड़ा-बहुत व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से देख सकते हैं। इसीलिए इस श्लोक में *प्रतीयसे* अर्थात् ''आप देखे जाते हैं'' आया है। यही नहीं, भौतिक प्रकृति के आच्छादक गुणों की अभिव्यक्ति के बिना सृष्टि का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता, यह उद्देश्य है बद्धजीवों को भगवान् के बिना, भोग करने का अत्यधिक प्रयास करने देना जिससे कि वे अन्तत: ऐसे भ्रामक विचार की व्यर्थता को समझ सकें।

यथैव सूर्य: पिहितश्छायया स्वया
छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति ।
एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्व-
मात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यथा एव—जिस तरह; सूर्य:—सूर्य; पिहित:—ढका; छायया—छाया से; स्वया—अपनी; छायाम्—छाया को; च—तथा; रूपाणि—दृश्य रूप; च—भी; सञ्चकास्ति—प्रकाशित करता है; एवम्—उसी तरह से; गुणेन—भौतिक गुण (मिथ्या अहंकार का) द्वारा; अपिहित:—ढका हुआ; गुणान्—पदार्थ के गुणों के; त्वम्—तुम; आत्म-प्रदीप:—स्वयं प्रकाशित; गुणिन:—इन गुणों का स्वामी (जीव); च—तथा; भूमन्—हे सर्वशक्तिमान।

हे सर्वशक्तिमान, जिस प्रकार सूर्य बादल से ढका होने पर भी बादल को तथा अन्य सारे दृश्य रूपों को भी प्रकाशित करता है उसी तरह आप भौतिक गुणों से ढके रहने पर भी स्वयं प्रकाशित बने रहते हैं और उन सारे गुणों को, उन गुणों से युक्त जीवों समेत, प्रकट करते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर शिवजी पिछले श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियों में व्यक्त विचार को और अधिक स्पष्ट करते हैं। बादल तथा सूर्य का दृष्टान्त उपयुक्त है। सूर्य अपनी शक्ति से बादल उत्पन्न करता है, जो सूर्य को हमारी दृष्टि से ओझल बनाता है। फिर भी सूर्य ही बादल को तथा उसी के साथ अन्य सारी वस्तुओं को हमारे लिए दृश्य बनाता है। इसी प्रकार भगवान् अपनी माया का विस्तार करते हैं और हमें सीधे अपना दर्शन करने से रोकते हैं। तो भी ईश्वर ही अकेले ऐसे हैं, जो अपनी आच्छादक शक्ति—भौतिक जगत—को हमारे समक्ष प्रकट करते हैं। इस तरह भगवान् *आत्म-प्रदीप*—स्वयं प्रकाशित—हैं।

उनके अस्तित्व की सच्चाई से ही सारी वस्तुएँ दृश्य बनती हैं।

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसकी; माया—माया से; मोहित—मोहित; धियः—उनकी बुद्धि; पुत्र—पुत्र; दार—पत्नी; गृह—घर; आदिषु—इत्यादि में; उन्मज्जन्ति—वे ऊपर उठ आते हैं; निमज्जन्ति—डूब जाते हैं; प्रसक्ताः—पूरी तरह फँसे हुए; वृजिन—दुख के; अर्णवे—समुद्र में।

आपकी माया से मोहित बुद्धि वाले अपने बच्चों, पत्नी, घर इत्यादि में पूरी तरह से लिप्त और भौतिक दुख के सागर में निमग्न लोग कभी ऊपर उठते हैं, तो कभी नीचे डुब जाते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि *उन्मज्जन्ति* सूचक है उच्चतर योनियों—यथा देव योनि में उत्थान और *निमज्जन्ति* द्योतक है निम्न योनियों—जड़ जीवन यथा वृक्षों का। जैसाकि *वायु पुराण* में कहा गया है—*विपर्ययश्च भवति ब्रह्मत्वस्थावरत्वयोः*—जीव ब्रह्मा से लेकर जड़ प्राणी तक के बीच चक्कर लगाता रहता है।

श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि भगवान् की स्तुति कर चुकने के बाद शिवजी अब बाणासुर के लिए भगवान् की कृपा प्राप्त करने की मूल इच्छा के विषय को आगे बढ़ाते हैं। इस प्रकार इस श्लोक में तथा अगले चार श्लोकों में शिवजी बाणासुर को भगवान् के साथ उसकी वास्तविक स्थिति का उपदेश देते हैं। बाण के लिए शिव द्वारा दया की याचना श्लोक ४५ में मिलती है।

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

देव—भगवान् द्वारा; दत्तम्—दिया हुआ; इमम्—इसको; लब्ध्वा—प्राप्त करके; नृ—मनुष्यों का; लोकम्—संसार; अजित—अवश्य; इन्द्रियः—उसकी इन्द्रियाँ; यः—जो; न आद्रियेत—आदर नहीं करेगा; त्वत्—तुम्हारे; पादौ—पाँव; सः—वह; शोच्यः—दयनीय; हि—निस्सन्देह; आत्म—अपना; वञ्चकः—ठग, धोखा देने वाली।

जिसने ईश्वर से यह मनुष्य जीवन उपहार के रूप में प्राप्त किया है किन्तु फिर भी जो अपनी इन्द्रियों को वश में करने तथा आपके चरणों का आदर करने में विफल रहता है, वह सचमुच शोचनीय है क्योंकि वह अपने को ही धोखा देता है।

तात्पर्य : शिवजी यहाँ उन लोगों की भर्त्सना करते हैं, जो भगवान् की भक्ति करने से कतराते हैं।

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥ ४२॥

शब्दार्थ

यः—जो; त्वाम्—तुमको; विसृजते—छोड़ देता है; मर्त्यः—मरणशील मनुष्य; आत्मानम्—उसकी सही आत्मा; प्रियम्—सर्वप्रिय; ईश्वरम्—भगवान् को; विपर्यय—जो सर्वथा विपरीत हैं; इन्द्रिय-अर्थ—इन्द्रियविषयों के; अर्थम्—हेतु; विषम्—विष को; अत्ति—खाता है; अमृतम्—अमृत को; त्यजन्—त्यागते हुए।

जो मर्त्य प्राणी अपने इन्द्रियविषयों के लिए, जिनका की स्वभाव सर्वथा विपरीत है, आपको, अर्थात् उसकी असली आत्मा, सर्वप्रिय मित्र तथा स्वामी हैं, छोड़ देता है, वह अमृत छोड़ कर उसके बदले में विष-पान करता है।

तात्पर्य : उपर्युक्त व्यक्ति शोचनीय है क्योंकि वह अपने वास्तविक प्रिय स्वामी को छोड़ देता है और उसे स्वीकार करता है, जो प्रिय नहीं है और ईश्वरीय नहीं है—अर्थात् क्षणिक इन्द्रिय-तृप्ति को स्वीकार करता है, जिससे कष्ट तथा मोह उत्पन्न होता है।

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; ब्रह्मा—ब्रह्मा; अथ—तथा; विबुधाः—देवतागण; मुनयः—मुनिगण; च—और; अमल—शुद्ध; आशयाः—चेतना वाले; सर्व-आत्मना—हार्दिक रूप से; प्रपन्नाः—शरणागत; त्वाम्—तुमको; आत्मानम्—आत्मा; प्रेष्ठम्—प्रियतम; ईश्वरम्—प्रभु को।

मैंने, ब्रह्मा ने, अन्य देवता तथा शुद्ध मन वाले मुनिगण—सभी लोगों ने पूर्ण मनोयोग से आपकी शरण ग्रहण की है। आप हमारे प्रियतम आत्मा तथा प्रभु हैं।

तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं
समं प्रसान्तं सुहृदात्मदैवम् ।
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं
भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; त्वा—तुम; जगत्—ब्रह्माण्ड के; स्थिति—पालन; उदय—उत्थान; अन्त—तथा मृत्यु; हेतुम्—कारण; समम्—समभाव; प्रशान्तम्—परम शान्त; सुहृत्—मित्र; आत्म—आत्मा; दैवम्—तथा पूज्य स्वामी; अनन्यम्—अद्वितीय; एकम्—अनोखा; जगत्—जगतों के; आत्म—तथा सारे जीवों के; केतम्—आश्रय; भव—भौतिक जीवन के; अपवर्गाय—समाप्ति (मुक्ति) के लिए; भजाम—हम पूजा करें; देवम्—भगवान् की।

हे भगवन्, भौतिक जीवन से मुक्त होने के लिए हम आपकी पूजा करते हैं। आप ब्रह्माण्ड

के पालनकर्ता और इसके सृजन तथा मृत्यु के कारण हैं। आप समभाव तथा पूर्ण शान्त, असली मित्र, आत्मा तथा पूज्य स्वामी हैं। आप अद्वितीय हैं और समस्त जगतों तथा जीवों के आश्रय हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि भगवान् असली मित्र हैं क्योंकि वे उस व्यक्ति की उचित बुद्धि को गति प्रदान करते हैं, जो ईश्वर तथा आत्मा के विषय में सत्य जानना चाहता है। श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बल देते हैं कि *भवापवर्गाय* शब्द शुद्ध भगवत्प्रेम की सर्वोच्च मुक्ति का सूचक है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी बतलाते हैं कि भगवान् *समम्* हैं—पूर्णतया विषयनिष्ठ और सन्तुलित हैं जबकि अन्य सारे जीव वास्तविकता को पूरी तरह न समझने के कारण कभी भी विषयनिष्ठ नहीं हो सकते। जो लोग भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं, वे भी भगवान् की चरम चेतना का आश्रय लेकर *समम्* बन जाते हैं।

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती
मयाभयं दत्तममुष्य देव ।
सम्पाद्यतां तद्भवतः प्रसादो
यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; मम—मेरा; इष्टः—कृपा किया हुआ; दयितः—अत्यन्त प्रिय; अनुवर्ती—अनुचर; मया—मेरे द्वारा; अभयम्—अभय; दत्तम्—दिया गया; अमुष्य—उसका; देव—हे प्रभु; सम्पाद्यताम्—आप इसे प्रदान करें; तत्—इसलिए; भवतः—अपनी; प्रसादः—कृपा; यथा—जिस तरह; हि—निस्सन्देह; ते—तुम्हारा; दैत्य—असुरों का; पतौ—प्रमुख (प्रह्लाद) के लिए; प्रसादः—कृपा।

यह बाणासुर मेरा अति प्रिय तथा आज्ञाकारी अनुचर है और इसे मैंने अभयदान दिया है। अतएव हे प्रभु, इसे आप उसी तरह अपनी कृपा प्रदान करें जिस तरह आपने असुर-राज प्रह्लाद पर कृपा दर्शाई थी।

तात्पर्य : शिवजी बाणासुर की सहायता करना चाहते हैं क्योंकि इस असुर ने शिवजी के ताण्डव-नृत्य के समय संगीत वाद्य बजाकर उनके प्रति असीम भक्ति प्रदर्शित की थी। बाण पर शिवजी की कृपा का दूसरा कारण यह है कि वह प्रह्लाद तथा बलि जैसे महान् भक्तों का वंशज है।

श्रीभगवानुवाच

**यदात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव ।
भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥**

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; यत्—जो; आत्थ—कहा है; भगवन्—हे प्रभु; त्वम्—तुमने; नः—हम पर; करवाम—हमें करना चाहिए; प्रियम्—सन्तोषप्रद, सुखकर; तव—तुम्हारा; भवतः—आपके द्वारा; यत्—जो; व्यवसितम्—निश्चित; तत्—वह; मे—मेरे द्वारा; साधु—उत्तम; अनुमोदितम्—सहमति व्यक्त की गई।

भगवान् ने कहा : हे प्रभु, आपकी प्रसन्नता के लिए हमें अवश्य ही वह करना चाहिए जिसके लिए आपने हमसे प्रार्थना की है। मैं आपके निर्णय से पूरी तरह सहमत हूँ।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण द्वारा शिव को *भगवान्* कह कर सम्बोधित किया जाना हमें विचित्र नहीं लगना चाहिए। सारी वस्तुएँ भगवान् की विभिन्नांश हैं, गुणात्मक दृष्टि से वे उनसे अभिन्न हैं और शिवजी विशेष रूप से शक्तिमान शुद्ध जीव हैं जिनमें भगवान् के अनेक गुण पाये जाते हैं। जिस प्रकार पिता बड़ी ही खुशी के साथ अपने प्रिय पुत्र को अपनी सम्पत्ति में साझीदार बना लेता है उसी तरह भगवान् प्रसन्नतापूर्वक शुद्ध जीवों को अपनी कुछ शक्ति तथा ऐश्वर्य दे देते हैं। जिस तरह पिता बड़े ही गर्व तथा खुशी से अपने पुत्रों के सद्गुणों का अवलोकन करता है उसी तरह भगवान् कृष्णभावनामृत में प्रबल शुद्ध जीवों की बड़ाई करने में अतीव प्रसन्न होते हैं। परमेश्वर इसीलिए शिवजी को *भगवान्* कह कर सम्बोधित करके बड़ाई करने में प्रसन्न होते हैं।

**अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ।
प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥**

शब्दार्थ

अवध्यः—जिसका वध नहीं किया जाये; अयम्—वह; मम—मेरे द्वारा; अपि—निस्संदेह; एषः—यह; वैरोचनि-सुतः—वैरोचनि (बलि) का पुत्र; असुरः—असुर; प्रह्लादाय—प्रह्लाद को; वरः—वर; दत्तः—दिया हुआ; न वध्यः—अवध्य; मे—मेरे द्वारा; तव—तुम्हारा; अन्वयः—वंशज।

मैं वैरोचनि के इस असुर-पुत्र को नहीं मारूँगा क्योंकि मैंने प्रह्लाद महाराज को वर दिया है कि मैं उसके किसी भी वंशज का वध नहीं करूँगा।

**दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ।
सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥ ४८ ॥**

शब्दार्थ

दर्प—मिथ्या गर्व; उपशमनाय—दमन करने के लिए; अस्य—उसका; प्रवृक्णाः—काटे हुए; बाहवः—भुजाएँ; मया—मेरे द्वारा; सूदितम्—मारी गयी; च—तथा; बलम्—सेना; भूरि—विशाल; यत्—जो; च—तथा; भारायितम्—भार बन जाने से; भुवः—पृथ्वी के लिए।

मैंने बाणासुर के मिथ्या गर्व का दमन करने के लिए ही इसकी भुजाएँ काट दी हैं। और मैंने इसकी विशाल सेना का वध किया है क्योंकि वह पृथ्वी पर भार बन चुकी थी।

चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यत्यजरामरः ।
पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

चत्वारः—चार; अस्य—इसकी; भुजाः—बाँहें; शिष्टाः—बची हुई; भविष्यति—होंगी; अजर—बूढ़ी न होने वाली; अमरः—तथा अमर; पार्षद—संगी; मुख्यः—प्रधान; भवतः—आपका; न कुतश्चित्-भयः—किसी भी तरह का इसे भय नहीं रहेगा; असुरः—असुर।

यह असुर, जिसकी अभी भी चार बाँहें हैं अजर तथा अमर होगा और आपके प्रधान सेवक के रूप में सेवा करेगा। इस तरह उसे किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा।

इति लब्ध्वाभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसासुरः ।
प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वो समुपानयत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; लब्ध्वा—पाकर; अभयम्—भय से मुक्ति; कृष्णम्—कृष्ण को; प्रणम्य—प्रणाम करके; शिरसा—सिर के बल; असुरः—असुर; प्रद्युम्निम्—प्रद्युम्न-पुत्र, अनिरुद्ध को; रथम्—अपने रथ पर; आरोप्य—बैठाकर; स-वध्वः—उसकी पत्नी सहित; समुपानयत्—उन्हें ले आया।

इस तरह भयमुक्त होकर बाणासुर ने अपना माथा जमीन पर टेककर भगवान् कृष्ण को नमस्कार किया। तब बाण ने अनिरुद्ध तथा उसकी पत्नी को उनके रथ पर बैठाया और उन्हें कृष्ण के सामने ले आया।

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलङ्कृतम् ।
सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

अक्षौहिण्या—पूरी अक्षौहिणी के द्वारा; परिवृतम्—घिरा; सु—सुन्दर; वासः—वस्त्र; समलङ्कृतम्—तथा गहनों से सजा; स-पत्नीकम्—पत्नी सहित अनिरुद्ध को; पुरः-कृत्य—सामने करके; ययौ—वह (कृष्ण) गया; रुद्र—शिवजी से; अनुमोदितः—विदा लेकर।

तब भगवान् कृष्ण ने अपनी टोली के आगे अनिरुद्ध तथा उसकी पत्नी को कर लिया। दोनों सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों से खूब सजाये गये थे और उन्होंने उन दोनों को पूरी अक्षौहिणी

से घेर लिया। इस तरह भगवान् कृष्ण ने शिव से विदा ली और प्रस्थान कर दिया।

स्वराजधानीं समलङ्कृतां ध्वजैः
सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ।
विवेश शङ्खानकदुन्दुभिस्वनै-
रभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

स्व—अपनी; राजधानीम्—राजधानी को; समलङ्कृताम्—पूरी तरह सजायी गयी; ध्वजैः—झंडियों से; स—तथा सहित; तोरणैः—विजय तोरणों; उक्षित—पानी से छिड़काव किये गये; मार्ग—जिसके रास्ते; चत्वराम्—तथा चौराहे; विवेश—प्रवेश किया; शङ्ख—शंख; आनक—ढोल; दुन्दुभि—तथा नगाड़ों की; स्वनैः—गूँज से; अभ्युद्यतः—सत्कार किया गया; पौर—नगरवासियों द्वारा; सुहृत्—अपने सम्बन्धियों द्वारा; द्विजातिभिः—तथा ब्राह्मणों द्वारा।

तत्पश्चात् भगवान् अपनी राजधानी में प्रविष्ट हुए। नगर को झंडियों तथा विजय तोरणों से खूब सजाया गया था और इसकी गलियों तथा चौराहों पर पानी छिड़कवाया गया था। ज्योंही शंख, आनक तथा दुन्दुभियाँ गूँजने लगीं त्योंही भगवान् के सम्बन्धी, ब्राह्मण तथा जनता के लोग उनका स्वागत करने के लिए आगे आये।

य एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगम् ।
संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

यः—जो भी; एवम्—इस प्रकार; कृष्ण-विजयम्—कृष्ण की विजय को; शङ्करेण—शंकर के साथ; च—तथा; संयुगम्—युद्ध को; संस्मरेत्—स्मरण करता है; प्रातः—सुबह; उत्थाय—जाग कर; न—नहीं; तस्य—उसकी; स्यात्—होगी; पराजयः—हार।

जो भी व्यक्ति प्रातःकाल उठकर शिव के साथ युद्ध में कृष्ण की विजय का स्मरण करता है उसे कभी भी पराजय का अनुभव नहीं करना होगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "बाणासुर और भगवान् कृष्ण का युद्ध" नामक तिरसठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चौंसठ

राजा नृग का उद्धार

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह श्रीकृष्ण ने राजा नृग को शाप से मुक्त किया और

राजन्य वर्ग को ब्राह्मण की सम्पत्ति लेने के महान् खतरे के प्रति आगाह किया।

एक दिन साम्ब तथा यादव वंश के कुछ अन्य लड़के जंगल में खेलने गये। देर तक खेलने के बाद उन्हें बहुत प्यास लगी और वे इधर-उधर जल की तलाश करने लगे। उन्हें एक सूखे कुएँ के भीतर एक विचित्र जीव दिखा। यह पहाड़ की तरह का एक विशाल छिपकली जैसा (गिरगिट) था। बच्चों को तरस आ गया अत: वे इसे निकालने लगे। किन्तु चमड़े की पट्टियों और रस्सियों से निकालने के कई प्रयासों के असफल हो जाने पर वे सब कृष्ण के पास गये और सारी घटना कह सुनाई। भगवान् उनके साथ कुएँ तक गये और अपना बायाँ हाथ फैलाकर उस छिपकली को आसानी से बाहर निकाल लिया। वह जीव कृष्ण के हाथ का स्पर्श पाते ही देवता रूप में बदल गया। तब कृष्ण ने उससे पूछा, ''तुम कौन हो और तुमने यह अधम रूप कैसे धारण किया है ?''

उस दैवी जीव ने उत्तर दिया ''मेरा नाम राजा नृग है। मैं इक्ष्वाकु का पुत्र हूँ। मैं दान देने के लिए विख्यात था। मैंने अनेक ब्राह्मणों को असंख्य गौवें दान में दीं किन्तु एक समय एक गाय, जो उच्च कोटि के ब्राह्मण की थी, मेरे झुंड में आ मिली। मैंने अनजाने यह गाय एक अन्य ब्राह्मण को दान में दे दी। जब गाय के पहले वाले स्वामी ने दूसरे ब्राह्मण को यह गाय ले जाते देखा तो उसने अपनी गाय माँगी और दूसरे ब्राह्मण से झगड़ने लगा। कुछ देर तक झगड़ते रहने के बाद वे मेरे पास आये और मैंने उन दोनों से कहा कि इस एक गाय के बदले तुम लोग एक लाख गौवें ले लो और अनजान में हुए मेरे अपराध को क्षमा कर दो। किन्तु दो में से किसी भी ब्राह्मण ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और यह मामला बिना किसी निर्णय के वहीं का वहीं बना रहा।

''इसके थोड़ी देर बाद मेरी मृत्यु हो गई और यमदूतों द्वारा मुझे यमराज के दरबार में ले जाया गया। यमराज ने मुझसे पूछा कि तुम दो में से किसे पहले करना पसन्द करोगे—अपने पापों के परिणामों को भोगना या अपने पुण्य कर्मों का फल भोगना। मैंने पापों के परिणामों को पहले भोगना पसन्द किया और इस तरह मैंने छिपकली का रूप धारण किया।''

अपनी कहानी सुनाने के बाद राजा नृग ने भगवान् कृष्ण की स्तुति की और तब विशेष दैवी विमान में चढ़कर स्वर्गलोक चला गया।

भगवान् कृष्ण ने अपने पार्षदों तथा सामान्य लोगों को भी ब्राह्मण की सम्पत्ति चुराने के खतरों के

विषय में उपदेश दिया। अन्त में भगवान् अपने महल लौट आये।

श्रीबादरायणिरुवाच

एकदोपवनं राजन्जग्मुर्यदुकुमारकाः ।
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्न चारुभानुगदादयः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः—बादरायण के पुत्र (शुकदेव गोस्वामी) ने; उवाच—कहा; एकदा—एक दिन; उपवनम्—छोटे से जंगल में; राजन्—हे राजा (परीक्षित); जग्मुः—गये; यदु-कुमारकाः—यदुवंश के बालक; विहर्तुम्—खेलने के लिए; साम्ब-प्रद्युम्न-चारु-भानु-गद-आदयः—साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, गद तथा अन्य।

श्री बादरायणि ने कहा : हे राजा, एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, गद तथा यदुवंश के अन्य बालक खेलने के लिए एक छोटे से जंगल में गये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि इस अध्याय में वर्णित राजा नृग की कथा समस्त दम्भी राजाओं को गम्भीर उपदेश देने के लिए है। इस कथा के माध्यम से श्रीकृष्ण ने अपने ही परिवार के सदस्यों को गम्भीर उपदेश देना चाहा जो अपने ऐश्वर्य से गर्वित हो उठे थे।

क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः ।
जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

क्रीडित्वा—खेल चुकने के बाद; सु-चिरम्—दीर्घकाल तक; तत्र—वहाँ; विचिन्वन्तः—ढूँढ़ते हुए; पिपासिताः—प्यासे; जलम्—जल; निरुदके—जलरहित; कूपे—कुएँ में; ददृशुः—देखा; सत्त्वम्—जीव; अद्भुतम्—अद्भुत।

देर तक खेलते रहने के बाद उन्हें प्यास लगी। जब वे पानी की तलाश कर रहे थे तो उन्होंने एक सूखे कुएँ के भीतर झाँका और उन्हें एक विचित्र सा जीव दिखा।

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ।
तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ॥

शब्दार्थ

कृकलासम्—छिपकली, गिरगिट; गिरि—पर्वत; निभम्—सदृश; वीक्ष्य—देखकर; विस्मित—चकित; मानसाः—मनों वाले; तस्य—उसके; च—तथा; उद्धरणे—बाहर निकालने का; यत्नम्—प्रयास; चक्रुः—किया; ते—उन्होंने; कृपया अन्विताः—दयाभाव अनुभव करते हुए।

लड़के इस जीव को, जो कि छिपकली थी और पर्वत जैसी दिख रही थी, देखकर विस्मित हो गए। उन्हें उसके प्रति दया आ गई और वे उसे कुएँ से बाहर निकालने का प्रयास करने लगे।

**चर्मजैस्तान्तवै: पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भका: ।
नाशक्नुरन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुका: ॥ ४ ॥**

शब्दार्थ

चर्म-जै:—चमड़े की बनी; तान्तवै:—तथा काते सूत की बनी; पाशै:—रस्सियों से; बद्ध्वा—बाँधकर; पतितम्—गिरे हुए जीव को; अर्भका:—लड़के; न अशक्नुरन्—समर्थ नहीं हो सके; समुद्धर्तुम्—बाहर निकालने में; कृष्णाय—कृष्ण को; आचख्यु:—सूचना दी; उत्सुका:—उत्तेजित ।.

उन्होंने वहाँ फँसी उस छिपकली को चमड़े की पट्टियों तथा सूत की रस्सियों से पकड़ा किन्तु फिर भी वे उसे बाहर नहीं निकाल सके। अत: वे कृष्ण के पास गये और उत्तेजित होकर उनसे उस जीव के विषय में बतलाया।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि इस अध्याय में यदुबालकों को, यहाँ तक कि श्री प्रद्युम्न को कम आयु का बतलाया गया है, अत: यह अवश्य कोई प्रारम्भिक लीला होगी।

**तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान्विश्वभावन: ।
वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥**

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; आगत्य—जाकर; अरविन्द-अक्ष:—कमलनेत्रों वाले; भगवान्—भगवान् ने; विश्व—ब्रह्माण्ड के; भावन:—पालनकर्ता; वीक्ष्य—देखकर; उज्जहार—ऊपर खींच लिया; वामेन—बाएँ; तम्—उसको; करेण—हाथ से; स:—वह; लीलया—आसानी से ।.

ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता कमलनेत्र भगवान् उस कुएँ के पास गये और वहाँ वह छिपकली देखी। तत्पश्चात् उन्होंने अपने बाएँ हाथ से उसे आसानी से बाहर निकाल लिया।

**स उत्तम:श्लोककराभिमृष्टो
विहाय सद्य: कृकलासरूपम् ।
सन्तप्तचामीकरचारुवर्ण:
स्वर्ग्यद्भुतालङ्करणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥**

शब्दार्थ

स:—वह; उत्तम:-श्लोक—यशस्वी भगवान् के; कर—हाथ द्वारा; अभिमृष्ट:—स्पर्श की गई; विहाय—छोड़कर; सद्य:—तुरन्त; कृकलास—छिपकली का; रूपम्—स्वरूप; सन्तप्त—पिघले; चामीकर—सोने के; चरु—सुन्दर; वर्ण:—रंग; स्वर्गी—स्वर्ग का निवासी; अद्भुत—विचित्र; अलङ्करण—गहने; अम्बर—वस्त्र; स्रक्—तथा मालाएँ ।.

यशस्वी भगवान् के हाथों का स्पर्श पाते ही उस जीव ने तुरन्त अपना छिपकली का रूप त्याग दिया और स्वर्ग के वासी का रूप धारण कर लिया। उसका रंग पिघले सोने जैसा सुन्दर था और वह अद्भुत गहनों, वस्त्रों तथा मालाओं से अलंकृत था।

पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं
जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ।
कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो
देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

पप्रच्छ—पूछा; विद्वान्—भलीभाँति अवगत; अपि—यद्यपि; तत्—इसका; निदानम्—कारण; जनेषु—सामान्य लोगों में; विख्यापयितुम्—जनाने के लिए; मुकुन्दः—भगवान् कृष्ण ने; कः—कौन; त्वम्—तुम; महा-भाग—हे भाग्यशाली; वरेण्य—सर्वोत्तम; रूपः—स्वरूप; देव-उत्तमम्—उत्तम देवता; त्वाम्—तुमको; गणयामि—मैं मानता हूँ; नूनम्—निश्चय ही।

भगवान् कृष्ण परिस्थिति को समझ गये किन्तु सामान्य जनों को सूचित करने के लिए उन्होंने पूछा, ''हे महाभाग, आप कौन हैं? आपके उत्तम स्वरूप को देखकर मैं सोच रहा हूँ कि आप अवश्य ही कोई श्रेष्ठ देवता हैं।

दशामिमां वा कतमेन कर्मणा
सम्प्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ।
आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो
यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८॥

शब्दार्थ

दशाम्—दशा; इमाम्—इस; वा—तथा; कतमेन—किस; कर्मणा—कर्म से; सम्प्रापितः—तक लाये गये; असि—तुम हो; अतत्-अर्हः—उसके पात्र नहीं; सु-भद्र—हे महात्मा; आत्मानम्—अपने आप; आख्याहि—बतलाओ; विवित्सताम्—जानने के इच्छुक; नः—हमसे; यत्—यदि; मन्यसे—सोचते हो; नः—हमसे; क्षमम्—उचित; अत्र—यहाँ; वक्तुम्—कहना।

''आप किस विगत कर्म से इस दशा को प्राप्त हुए? हे महात्मन, ऐसा लगता है कि आप ऐसे भाग्य के योग्य नहीं थे। हम आपके विषय में जानना चाहते हैं अतः यदि आप हमें बताने का यह समय तथा स्थान उचित समझते हों तो कृपा करके अपने विषय में बतलाइये।''

श्रीशुक उवाच
इति स्म राजा सम्पृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना ।
माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; स्म—निस्सन्देह; राजा—राजा; सम्पृष्टः—पूछे जाने पर; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; अनन्त—अनन्त; मूर्तिना—स्वरूपों वाले; माधवम्—माधव को; प्रणिपत्य—प्रणाम करके; आह—वह बोला; किरीटेन—अपने मुकुट से; अर्क—सूर्य जैसी; वर्चसा—चमक से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार अनन्त रूप कृष्ण द्वारा पूछे जाने पर सूर्य के समान चमचमाते मुकुट वाले राजा ने माधव को प्रणाम किया और वह इस प्रकार बोला।

नृग उवाच
नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ।
दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ ॥

शब्दार्थ

नृगः उवाच—राजा नृग ने कहा; नृगः नाम—नृग नामक; नर-इन्द्रः—मनुष्यों के ऊपर शासन करने वाला; अहम्—मैं; इक्ष्वाकु-तनयः—इक्ष्वाकु पुत्र; प्रभो—हे प्रभु; दानिषु—दानियों में; आख्यायमानेषु—गिनती किये जानेवाले; यदि—शायद; ते—तुम्हारे; कर्णम्—कानों को; अस्पृशम्—मैंने छुआ हो।

राजा नृग ने कहा : मैं इक्ष्वाकु का पुत्र नृग नामक राजा हूँ। हे प्रभु, शायद आपने मेरे विषय में तब सुना होगा जब दानी पुरुषों की सूची बाँची जा रही होगी।

तात्पर्य : आचार्यों ने इंगित किया है कि यद्यपि "शायद आपने मेरे विषय में सुना है" जैसा वाक्य आया है किन्तु इसका आशय यही है कि इसमें सन्देह नहीं है।

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ।
कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; नु—निस्सन्देह; ते—तुम्हें; अविदितम्—अज्ञात; नाथ—हे स्वामी; सर्व—समस्त; भूत—जीवों के; आत्म—बुद्धि के; साक्षिणः—साक्षी को; कालेन—समय द्वारा; अव्याहत—अविचल; दृशः—जिसकी दृष्टि; वक्ष्ये—मैं कहूँगा; अथ अपि—तो भी; तव—तुम्हारी; आज्ञया—आज्ञा से।

हे स्वामी, आपसे अज्ञात है ही क्या? आपकी दृष्टि काल द्वारा अविचलित है और आप सारे जीवों के मनों के साक्षी हैं। तो भी आपकी आज्ञा पाकर मैं कहूँगा।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् सब कुछ जानने वाले हैं अतः किसी वस्तु के बारे में उन्हें सूचित करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी भगवान् के अभिप्राय को पूरा करने के लिए राजा नृग बोलेंगे।

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ।
यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यावत्यः—जितने; सिकताः—बालू के कण; भूमेः—पृथ्वी से सम्बन्धित; यावत्यः—जितने; दिवि—आकाश में; तारकाः—तारे; यावत्यः—जितनी; वर्ष—वर्षा की; धाराः—बूँदें; च—तथा; तावतीः—उतनी ही; अददम्—मैंने दीं; स्म—निस्सन्देह; गाः—गौवें।

मैंने दान में उतनी ही गौवें दीं जितने कि पृथ्वी पर बालू के कण हैं, आकाश में तारे हैं या वर्षा की बूँदें होती हैं।

तात्पर्य : भाव यह है कि राजा ने दान में असंख्य गौवें दीं।

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूप-
गुणोपपन्नाः कपिला हेमसृङ्गीः ।
न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा
दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

पयः-विनीः—दूधवाली; तरुणीः—जवान; शील—अच्छा आचरण; रूप—सौन्दर्य; गुण—तथा अन्य गुण; उपपन्नाः—से युक्त; कपिलाः—भूरे रंग की; हेम—सोने के; शृङ्गीः—सींगों वाली; न्याय—न्यायपूर्वक; अर्जिताः—अर्जित की गई; रूप्य—चाँदी के; खुराः—खुरों वाली; स-वत्साः—अपने बछड़ों सहित; दुकूल—सुन्दर वस्त्र; माला—मालाओं से; आभरणाः—विभूषित; ददौ—दिया; अहम्—मैंने।

मैंने दान में जो बछड़ों सहित गौवें दीं वे जवान, भूरी, दूध देनेवाली थीं और अच्छे आचरण और सुन्दर तथा अच्छे गुणों से सम्पन्न थीं, जिन्हें ईमानदारी से अर्जित किया गया था तथा जिनके सींग सोने से, खुर चाँदी से मढ़े थे और जो सुन्दर सजावटी वस्त्रों एवं मालाओं से अलंकृत थीं।

स्वलङ्कृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः
सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ।
तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः
प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥ १४ ॥
गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः
कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ।
वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथा-
निष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सु—अच्छी तरह; अलङ्कृतेभ्यः—आभूषणों से सजाई गई; गुण—अच्छे गुण; शील—तथा चरित्र; वद्भ्यः—से युक्त; सीदत्—पीड़ित; कुटुम्बेभ्यः—कुटुम्बियों को; ऋत—सत्य; व्रतेभ्यः—समर्पित; तपः—तपस्या के लिए; श्रुत—भलीभाँति परिचित; ब्रह्म—वेदों से; वदान्य—अत्यन्त विद्वान; सद्भ्यः—सन्त स्वभाव वालों को; प्रादाम्—मैंने दिया; युवभ्यः—युवकों को; द्विज—ब्राह्मणों को; पुम्-गवेभ्यः—अतीव विशिष्ट; गो—गौवें; भू—भूमि; हिरण्य—सोना; आयतन—घर; अश्व—घोड़े; हस्तिनः—तथा हाथी; कन्याः—विवाह योग्य पुत्रियाँ; स—सहित; दासीः—दासियाँ; तिल—तिल; रूप्य—चाँदी; शय्याः—तथा पलंग; वासांसि—वस्त्र; रत्नानि—रत्न; परिच्छदान्—गृह सामग्री; रथान्—रथ; इष्टम्—की गई पूजा; च—तथा; यज्ञैः—अग्नि यज्ञों द्वारा; चरितम्—किया गया; च—तथा; पूर्तम्—पवित्र कार्य।

सर्वप्रथम मैंने दान प्राप्त करने वाले ब्राह्मणों को उत्तम आभूषणों से अलंकृत करके सम्मानित किया। वे अतीव सम्मानित ब्राह्मण जिनके परिवार कष्ट में थे, युवक थे तथा उत्तम चरित्र और गुणों से युक्त थे। वे सत्यनिष्ठ, तपस्या के लिए विख्यात, वैदिक शास्त्रों में पारंगत

तथा आचरण में साधुवत थे। मैंने उन्हें गौवें, भूमि, सोना, मकान, घोड़े, हाथी तथा दासी समेत विवाह के योग्य कुमारियाँ, तिल, चाँदी, सुन्दर शय्या, वस्त्र, रत्न, गृहसज्जा-सामग्री तथा रथ दान में दिये। इसके अतिरिक्त मैंने वैदिक यज्ञ किये और अनेक पवित्र कल्याण कार्य सम्पन्न किये।

कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ।
सम्पृक्ताविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कस्यचित्—किसी; द्विज—ब्राह्मण की; मुख्यस्य—प्रमुख; भ्रष्टा—खोई हुई; गौः—गाय; मम—मेरे; गो-धने—झुंड में; सम्पृक्ता—मिल जाने से; अविदुषा—अनजान; सा—वह; च—तथा; मया—मेरे द्वारा; दत्ता—दी गई; द्वि-जातये—(दूसरे) ब्राह्मण को।.

एकबार किसी उत्तम ब्राह्मण की गाय भटक गई और मेरे झुंड में आ मिली। इससे अनजान होने के कारण मैंने वह गाय किसी दूसरे ब्राह्मण को दान में दे दी।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की व्याख्या है कि *द्विज-मुख्य* शब्द ऐसे ब्राह्मण का सूचक है, जिसने दान लेना बन्द कर दिया हो और इस तरह वह अनुचित ढंग से दी गई गाय के बदले में एक लाख गौवें लेने से भी इनकार कर देगा।

तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्रोवाच ममेति तम् ।
ममेति परिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७॥

शब्दार्थ

ताम्—उस (गाय) को; नीयमानाम्—ले जाते हुए; तत्—उसका; स्वामी—मालिक; दृष्ट्वा—देखकर; उवाच—कहा; मम—मेरा; इति—इस प्रकार; तम्—उसको; मम—मेरी; इति—इस प्रकार; परिग्राही—दान लेने वाला; आह—कहा; नृगः—राजा नृग ने; मे—मुझको; दत्तवान्—दिया; इति—इस प्रकार।.

जब गाय के पहले मालिक ने उसे ले जाते हुए देखा तो उसने कहा, ''यह मेरी है।'' दूसरे ब्राह्मण ने जिसने उसे दान के रूप में स्वीकार किया था उत्तर दिया ''नहीं, यह तो मेरी है। इसे नृग ने मुझे दिया था।''

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ।
भवान्दातापहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

विप्रौ—दोनों ब्राह्मण; विवदमानौ—झगड़ते हुए; माम्—मुझसे; ऊचतुः—कहा; स्व—अपना; अर्थ—स्वार्थ; साधकौ—पूरा करते हुए; भवान्—आप; दाता—देने वाले; अपहर्ता—ले लेने वाले; इति—इस प्रकार; तत्—यह; श्रुत्वा—सुनकर; मे—मेरा; अभवत्—हो गया; भ्रमः—मोहग्रस्त।

दोनों ब्राह्मण झगड़ते हुए और उनमें से हरएक अपने प्रयोजन की पुरजोर कोशिश करता हुआ, मेरे पास आये। उनमें से एक ने कहा, ''आपने यह गाय मुझे दी'' तथा दूसरे ने कहा, ''किन्तु तुमने उसे मुझसे चुराया था।'' यह सुनकर मैं भ्रमीत हो गया।

अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ।
गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥
भवन्तावनुगृह्णीतां किङ्करस्याविजानतः ।
समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अनुनीतौ—विनीत भाव से प्रार्थित; उभौ—दोनों; विप्रौ—ब्राह्मणों से; धर्म—धार्मिक कर्तव्य का; कृच्छ्र—कठिन स्थिति; गतेन—(मेरे) द्वारा, जो अन्दर था; वै—निस्सन्देह; गवाम्—गौवों का; लक्षम्—एक लाख; प्रकृष्टानाम्—उत्तम गुणों वाली; दास्यामि—मैं दूँगा; एषा—इस एक; प्रदीयताम्—दे दें; भवन्तौ—आप दोनों; अनुगृह्णीताम्—कृपा दिखलाते हुए; किङ्करस्य—अपने सेवक का; अविजानतः—अनजान; समुद्धरतम्—बचा लीजिये; माम्—मुझको; कृच्छ्रात्—संकट से; पतन्तम्—गिरते हुए; निरये—नरक में; अशुचौ—मलिन।

इस स्थिति में अपने को कर्तव्य के घोर संकट में पाकर मैंने दोनों ब्राह्मणों से अनुनय-विनय की ''मैं इस गाय के बदले एक लाख उत्तम गौवें दूँगा। कृपा करके उसे मुझे वापस कर दीजिये। आप अपने इस दास मुझपर कृपालु हों। मैं जो कर रहा था उससे अनजान था। मुझे इस कठिन स्थिति से बचा लें अन्यथा मैं निश्चित रूप से मलिन नरक में गिरूँगा।''

नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ।
नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; प्रतीच्छे—चाहता हूँ; वै—निस्सन्देह; राजन्—हे राजन्; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; स्वामी—मालिक; अपाक्रमत्—चला गया; न—नहीं; अन्यत्—अतिरिक्त; गवाम्—गौवों के; अपि—भी; अयुतम्—दस हजार; इच्छामि—चाहता हूँ; इति—ऐसा कहकर; अपरः—दूसरा (ब्राह्मण); ययौ—चला गया।

गाय के इस मालिक ने कहा, ''हे राजन्, मैं इस गाय के बदले में कुछ भी नहीं चाहता।'' और वह चला गया। दूसरे ब्राह्मण ने घोषित किया, ''मैं दस हजार अधिक गौवें भी (जितना तुम दे रहे हो उससे अधिक) नहीं चाहता।'' और वह भी चला गया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में टीका की है ''इस तरह राजा के प्रस्ताव को न मानकर

दोनों ब्राह्मण क्रुद्ध होकर वहाँ से यह सोचते चले गये कि उनकी वैधस्थिति से बेदखल कर दिया गया है।''

एतस्मिन्नन्तरे यामैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ।
यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥ २२॥

शब्दार्थ

एतस्मिन्—इस; अन्तरे—अवसर में; यामैः—यमराज के; दूतैः—दूतों द्वारा; नीतः—ले जाया गया; यम-क्षयम्—यमराज के धाम तक; यमेन—यमराज द्वारा; पृष्टः—पूछा गया; तत्र—वहाँ; अहम्—मैं; देव-देव—हे देवताओं के स्वामी; जगत्—ब्रह्माण्ड के; पते—हे स्वामी।

हे देवों के देव, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, इस तरह उत्पन्न परिस्थिति से लाभ उठाकर यमराज के दूत बाद में मुझे यमराज के धाम ले गये। वहाँ स्वयं यमराज ने मुझसे पूछा।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार राजा द्वारा इसके पूर्व किये गये सकाम कर्म निर्दोष थे। किन्तु अब अनजाने में त्रुटि उठ खड़ी हुई अत: जब राजा की मृत्यु हुई तो यमदूत उसे यमराज के संयमनी नामक धाम में उठा ले गये।

पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्ष उताहो नृपते शुभम् ।
नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥ २॥

शब्दार्थ

पूर्वम्—पहले; त्वम्—तुम; अशुभम्—अशुभ फल; भुङ्क्षे—अनुभव करना चाहते हो; उत आह उ—या अन्य कुछ; नृ-पते—हे राजा; शुभम्—शुभफल; न—नहीं; अन्तम्—अन्त; दानस्य—दान का; धर्मस्य—धार्मिक; पश्ये—मैं देखता हूँ; लोकस्य—जगत का; भास्वतः—चमकते हुए।

[यमराज ने कहा] हे राजा, सर्वप्रथम आप अपने पापों के फलों का अनुभव करना चाहते हैं या अपने पुण्य का। निस्सन्देह मुझे न तो आपके द्वारा सम्पन्न कर्तव्यपूर्ण दान का अन्त दीखता है, न ही उस दान के परिणामस्वरूप तेजपूर्ण स्वर्गलोक में आपके भोगों का।

पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः ।
तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥ २४॥

शब्दार्थ

पूर्वम्—पहले; देव—हे प्रभु; अशुभम्—पापपूर्ण फल; भुञ्जे—अनुभव करूँगा; इति—ऐसा कहकर; प्राह—कहा; पत—नीचे गिरो; इति—इस प्रकार; सः—वह; तावत्—तभी; अद्राक्षम्—मैंने देखा; आत्मानम्—अपने आपको; कृकलासम्—छिपकली; पतन्—गिरते हुए; प्रभो—हे स्वामी।

मैंने कहा : हे प्रभु, पहले मुझे अपने पापों का फल भोगने दें और यमराज बोले, ''तो नीचे

गिरो।'' मैं तुरन्त नीचे गिरा और हे स्वामी, गिरते समय मैंने देखा कि मैं छिपकली बन गया हूँ।

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ।
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मण्यस्य—ब्राह्मण भक्त; वदान्यस्य—उदार; तव—तुम्हारे; दासस्य—दास की; केशव—हे कृष्ण; स्मृतिः—स्मरणशक्ति; न—नहीं; अद्य—आज; अपि—तक; विध्वस्ता—विनष्ट; भवत्—आपके; सन्दर्शन—दर्शन का; अर्थिनः—इच्छुक।

हे केशव, मैं आपके दास रूप में ब्राह्मणों का भक्त था और उनके प्रति उदार था और मैं सदैव आपके दर्शन के लिए लालायित रहता था। इसीलिए आजतक मैं (अपने विगत जीवन को) नहीं भूल पाया।

तात्पर्य : इस श्लोक पर श्रील जीव गोस्वामी की टीका इस प्रकार है ''चूँकि राजा नृग ने खुले रूप से कह दिया कि उसमें दो अद्वितीय गुण थे—ब्राह्मण भक्ति तथा वदान्यता—अत: स्पष्ट है कि उसमें ये गुण अंशरूप में ही थे क्योंकि जो सचमुच शुद्ध होगा वह उनके बारे में कभी भी डींग नहीं हाँकेगा। यह भी स्पष्ट है कि राजा नृग ने ऐसे पुण्य को पुण्य के लिए ही पृथक् लक्ष्य समझा। इस तरह उसे भगवान् कृष्ण की शुद्ध भक्ति का पूरी तरह बोध नहीं हो सका। कृष्ण उसके जीवन के एकमात्र लक्ष्य नहीं थे जैसाकि अम्बरीष महाराज के नियमित अभ्यास की स्थिति में भी वे थे। न ही राजा नृग ने अम्बरीष महाराज की तरह किसी बाधा पर विजय प्राप्त की जब उन पर दुर्वासा मुनि कुपित हो गये थे। फिर भी हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि चूँकि नृग किसी न किसी कारणवश भगवान् का दर्शन कर सका अत: उसमें भगवान् की संगति पाने की सच्ची इच्छा का सद्गुण अवश्य रहा होगा।''

श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में उपर्युक्त विश्लेषण की पुष्टि की है ''कुल मिलाकर वह (नृग) कृष्णभावनामृत विकसित नहीं कर पाया था। कृष्णभावना-भावित व्यक्ति ईश्वर या कृष्ण के लिए प्रेम उत्पन्न करता है, शुभ या अशुभ कर्मों के लिए नहीं। इसलिए उसे ऐसे कर्म का फल नहीं मिलता। जैसाकि *ब्रह्म संहिता* में कहा गया है कि भक्त, भगवान् की कृपा से, कभी भी सकाम कर्मों के फल नहीं भोगता।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने निम्नलिखित टीका की है—''जब नृग ने 'आपके दर्शन के लिए लालायित' कहा तो वह किसी ऐसी घटना का उल्लेख कर रहा था जिसमें एक बार उसकी भेंट किसी

महान् भक्त से हुई थी। यह भक्त भगवान् के सर्वोत्तम अर्चाविग्रह के लिए मन्दिर प्राप्त करने का इच्छुक था और वह *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* जैसे शास्त्रों की प्रतियाँ भी प्राप्त करना चाहता था। अतीव उदार होने के कारण नृग ने इन वस्तुओं का प्रबन्ध कर दिया। इससे भक्त इतना प्रसन्न हुआ कि उसने राजा को आशीर्वाद दिया, "हे राजन्! आपको भगवान् के दर्शन हों।" तभी से नृग भगवान् का दर्शन करना चाह रहा था।

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा
योगेश्वरः श्रुतिदृशामलहृद्विभाव्यः ।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः
स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—तुम; कथम्—कैसे; मम—मेरा; विभो—हे सर्वशक्तिमान; अक्षि-पथः—दृष्टिगोचर; पर-आत्मा—परमात्मा; योग—योग के; ईश्वरैः—स्वामियों द्वारा; श्रुति—श्रुतियों की; दृशा—आँखों के द्वारा; अमल—निर्मल; हृत्—उनके हृदयों के भीतर; विभाव्यः—ध्यान किये जाने योग्य; साक्षात्—प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर; अधोक्षज—हे दिव्य प्रभु, जो इन्द्रियों से नहीं देखे जा सकते; उरु—कठिन; व्यसन—कष्टों द्वारा; अन्ध—अन्धा; बुद्धेः—बुद्धिवाला; स्यात्—शायद हो; मे—मेरे लिए; अनुदृश्यः—देखे जाने योग्य; इह—इस जगत में; यस्य—जिसका; भव—भौतिक जीवन का; अपवर्गः—अन्त।

हे विभु! मैं आपको अपने समक्ष कैसे देख पा रहा हूँ? आप तो परमात्मा हैं जिस पर बड़े से बड़े योगेश्वर केवल वेद रूपी दिव्य आँख के द्वारा अपने शुद्ध हृदयों के भीतर ध्यान लगा सकते हैं। तो हे दिव्य प्रभु, आप किस तरह मुझे प्रत्यक्ष दिख रहे हैं क्योंकि मेरी बुद्धि भौतिक जीवन के कठिन कष्टों से अन्धी हो चुकी है? जिसने इस जगत के भव-बन्धनों को समाप्त कर दिया है, वही आपको देख सकता है।

तात्पर्य : छिपकली का शरीर होते हुए भी राजा नृग को अपना पूर्व-जन्म स्मरण था। और अब जब उसे भगवान् का दर्शन करने का अवसर मिला तो वह यह समझ सकता था कि उसे भगवान् की विशेष कृपा प्राप्त हुई है।

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७॥
अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ।
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

देव-देव—स्वामियों के स्वामी; जगत्—ब्रह्माण्ड के; नाथ—हे स्वामी; गो-विन्द—हे गौवों के स्वामी; पुरुष-उत्तम—हे पुरुषोत्तम; नारायण—हे समस्त जीवों के आधार; हृषीकेश—हे इन्द्रियों के स्वामी; पुण्य-श्लोक—हे दिव्य श्लोकों द्वारा स्तुति किये जाने वाले; अच्युत—हे अच्युत; अव्यय—हे न बदलने वाले; अनुजानीहि—कृपया जाने दें; माम्—मुझको; कृष्ण—हे कृष्ण; यान्तम्—जाने वाले को; देव-गतिम्—देवताओं के लोक में; प्रभो—हे प्रभु; यत्र क्व अपि—जहाँ कहीं भी; सतः—रहते हुए; चेतः—मन; भूयात्—हो; मे—मेरा; त्वत्—तुम्हारे; पद—पैरों की; आस्पदम्—शरण।.

हे देवदेव, जगन्नाथ, गोविन्द, पुरुषोत्तम, नारायण, हृषीकेश, पुण्यश्लोक, अच्युत, अव्यय, हे कृष्ण, कृपा करके मुझे अब देवलोक के लिए प्रस्थान करने की अनुमति दें। हे प्रभु, मैं जहाँ भी रहूँ, मेरा मन सदैव आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है भगवान् की कृपा प्राप्त हो जाने से उसकी श्रद्धा को बल मिला और इस तरह दास पद प्राप्त करके राजा नृग ने भगवान् के नामों का उच्चारण करते हुए उनका विधिवत यशोगान किया और तब भगवान् से विदा लेने के लिए अनुमति माँगी। उसकी स्तुति का भाव यह है ''आप देवदेव अर्थात् देवताओं के स्वामी और जगन्नाथ हैं अत: आप मेरे भी नाथ होइये। हे गोविन्द! आप जिस कृपा-चितवन से गौवों को मोहते हैं उसीसे मुझे अपनी सम्पत्ति बना लें। आप ऐसा कर सकते हैं क्योंकि आप पुरुषोत्तम हैं। हे नारायण! चूँकि आप जीवों के आधार हैं अत: मेरे आश्रय बनें, भले ही मैं बुरा क्यों न होऊँ। हे हृषीकेश! मेरी इन्द्रियों को अपनी बना लें। हे पुण्यश्लोक! अब आप नृग के उद्धारक के रूप में विख्यात हो चुके हैं। हे अच्युत! आप मेरे मन से कभी ओझल न हों। हे अव्यय! मेरे मन में कभी भी आपकी न्यूनता न हो। इन श्लोकों का तात्पर्य इस रूप में *श्रीमद्भागवत* के महान् टीकाकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा दिया गया है।

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; ते—आपको; सर्व-भावाय—समस्त प्राणियों के स्रोत; ब्रह्मणे—परम सत्य को; अनन्त—असीम; शक्तये—शक्ति वाले; कृष्णाय—कृष्ण को; वासुदेवाय—वसुदेव के पुत्र; योगानाम्—योग की समस्त विधियों के; पतये—स्वामी को; नमः—नमस्कार.

हे वसुदेवपुत्र कृष्ण, मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ आप समस्तजीवों के उद्गम हैं, परम सत्य हैं, अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं और समस्त आध्यात्मिक प्रवर्गों के स्वामी हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधरस्वामी की टीका है कि यहाँ पर राजा नृग ब्रह्म को नमस्कार करता है—

अर्थात् उस परम सत्य को जो कर्म करते हुए भी अपरिवर्तित रहते हैं प्राचीन काल से ही पाश्चात्य दार्शनिक इस प्रश्न को लेकर उलझ रहे हैं कि ईश्वर किस तरह अपरिवर्तित रहते हुए भी कर्म कर सकता है श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि इस शंका का समाधान *अनन्त शक्तये* शब्द से हो जाता है, जो यह बतलाता है कि ईश्वर ''असीम शक्ति के स्वामी'' हैं इस तरह वे अनन्त शक्तियों के द्वारा, अपनी अनिवार्य प्रकृति को बदले बिना ही, असंख्य कर्म कर सकते हैं।

राजा नृग नित्य आनन्द स्वरूप और जीवन के चरम-लक्ष्य श्रीकृष्ण को पुनः नमस्कार करता है कृष्ण के पवित्र नाम का विश्लेषण *महाभारत* के एक श्लोक (उद्योग पर्व ७१.४) में हुआ है, जिसे श्रील प्रभुपाद ने *चैतन्य चरितामृत* (मध्य ९.० तात्पर्य) में उद्धृत किया है—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।

तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

कृष् शब्द भगवान् का आकर्षक स्वरूप है और *ण* का अर्थ है ''आध्यात्मिक आनन्द'' जब कृष् क्रिया *ण* से मिलती है, तो *कृष्ण* बनता है, जो परब्रह्म का सूचक है।

राजा नृग उपर्युक्त स्तुति तब करता है जब वह भगवान् की संगति छोड़कर जाने वाला होता है।

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ।
अनुज्ञातो विमानाछ्यमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥ ० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; तम्—उनको; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; पादौ—पाँवों को; स्पृष्ट्वा—छूकर; स्व—अपने; मौलिना—मुकुट से; अनुज्ञातः—विदा पाकर; विमान—दैवीयान पर; अछ्यम्—अत्युत्तम; आरुहत्—चढ़ गया; पश्यताम्—देखते देखते; नृणाम्—मनुष्यों के.

इस तरह कह कर महाराज नृग ने भगवान् कृष्ण की परिक्रमा की और उनके चरणों पर अपना मुकुट छुवाया तब विदाई की अनुमति पाकर वहाँ पर उपस्थित लोगों के देखते देखते राजा नृग एक अद्भुत स्वर्गिक विमान पर चढ़ गया

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः ।
ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः—कृष्ण ने; परिजनम्—निजी संगियों से; प्राह—बोले; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकी का पुत्र; ब्रह्मण्य—ब्राह्मण भक्त; देवः—ईश्वर; धर्म—धर्म का; आत्मा—आत्मा; राजन्यान्—राजसी वर्ग को; अनुशिक्षयन्—शिक्षा देने के लिए.

तब देवकी पुत्र, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण जो ब्राह्मणों के प्रति विशेष रूप से अनुरक्त हैं और जो साक्षात् धर्म के सार हैं अपने निजी संगियों से बोले और इस प्रकार राजसी वर्ग को शिक्षा दी।

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ।
तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञां ईश्वरमानिनाम् ॥ २॥

शब्दार्थ

दुर्जरम्—अपाच्य; बत—निस्सन्देह; ब्रह्म—ब्राह्मण की; स्वम्—सम्पत्ति; भुक्तम्—भोगी गई; अग्नेः—अग्नि की अपेक्षा; मनाक्—रंच भर; अपि—भी; तेजीयसः—तेजस्वी के लिए; अपि—भी; किम् उत—तो क्या कहा जाय; राज्ञाम्—राजाओं के; ईश्वर—नियंत्रक; मानिनाम्—मानने वाले.

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : एक ब्राह्मण की सम्पत्ति कितनी अपाच्य होती है, भले ही उसका रंचभर हो और अग्नि से भी अधिक तेजस्वी द्वारा उपभोग क्यों न किया जाय! तो फिर उन राजाओं के विषय में क्या कहा जाय जो अपने को स्वामी मानकर उसका भोग करना चाहते हैं।

तात्पर्य : तपस्या, योग इत्यादि द्वारा शक्तिशाली बनने वाले भी ब्राह्मण की चुराई हुई सम्पत्ति का भोग नहीं कर सकते तो फिर अन्यों के विषय में क्या कहा जाय?

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ।
ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; हालाहलम्—हालाहल नामक विष जिसका पान शिवजी ने बिना नशे के प्रभाव से किया; मन्ये—मैं मानता हूँ; विषम्—विष; यस्य—जिसका; प्रतिक्रिया—प्रभाव; ब्रह्म-स्वम्—ब्राह्मण की सम्पत्ति; हि—निस्सन्देह; विषम्—विष; प्रोक्तम्—कहा गया; न—नहीं; अस्य—इसका; प्रतिविधिः—उपचार, निराकरण; भुवि—संसार में.

मैं हालाहल को असली विष नहीं मानता क्योंकि इसका भी निराकरण हो जाता है, किन्तु ब्राह्मण की सम्पत्ति चुराये जाने को असली विष कहा जा सकता है, क्योंकि इस संसार में इसका कोई उपचार नहीं है।

तात्पर्य : जो किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति को चुराकर यह सोचता है कि वह इसका भोग करेगा तो वास्तव में वह अत्यन्त घातक विष का पान करता है।

हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ।
कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ४॥

शब्दार्थ

हिनस्ति—नष्ट करता है; विषम्—विष को; अत्तारम्—निगलने वाले को; वह्निः—अग्नि; अद्भिः—जल से; प्रशाम्यति—बुझाई जाती है; कुलम्—परिवार को; स-मूलम्—जड़ समेत; दहति—जलाती है; ब्रह्म-स्व—ब्राह्मण की सम्पत्ति; अरणि—आग जलाने वाला काष्ठ; पावकः—अग्नि.

विष केवल उसी को मारता है, जो उसे निगलता है और सामान्य अग्नि को पानी से बुझाया जा सकता है किन्तु ब्राह्मण की सम्पत्ति रूपी अरणि से उत्पन्न अग्नि चोर के समस्त परिवार को समूल नष्ट कर देती है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ब्राह्मण की सम्पत्ति की चोरी से उत्पन्न अग्नि की तुलना उस अग्नि से करते हैं, जो पुराने वृक्ष के कोटर के भीतर जलती है ऐसी अग्नि को अनेक बार होने वाली वर्षा का जल भी नहीं बुझा पाता—यह भीतर ही भीतर पूरे वृक्ष को—भूमि के भीतर जड़ों तक जला डालती है इसी प्रकार ब्राह्मण की सम्पत्ति के चुराने से उत्पन्न अग्नि अत्यन्त भयानक होती है और यथासम्भव किसी भी तरह से इससे बचना चाहिए

ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् ।
प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥ ५॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-स्वम्—ब्राह्मण की सम्पत्ति; दुरनुज्ञातम्—समुचित अनुमति न दिये जाने पर; भुक्तम्—भोगी गई; हन्ति—विनष्ट करती है; त्रि—तीन; पूरुषम्—व्यक्तियों को; प्रसह्य—बलपूर्वक; तु—लेकिन; बलात्—बाह्य शक्ति (सरकारी इत्यादि) का प्रयोग करने से; भुक्तम्—भोगी गई; दश—दस; पूर्वान्—पहले के; दश—दस; अपरान्—बाद के.

यदि कोई व्यक्ति बिना उचित अनुमति के ब्राह्मण की सम्पत्ति का भोग करता है, तो वह सम्पत्ति उस व्यक्ति की तीन पीढ़ियों तक को नष्ट कर देती है। किन्तु यदि वह इसे बलपूर्वक या राजकीय अथवा किसी बाहरी सहायता से छीन लेता है, तो उसके पूर्वजों की दस पीढ़ियाँ तथा उसके उत्तराधिकारियों की दस पीढ़ियाँ विनष्ट हो जाती हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार *त्रि-पूरुष* द्योतक है अपना, अपने पुत्रों तथा अपने पौत्रों का

राजानो राजलक्ष्म्यान्धा नात्मपातं विचक्षते ।
निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

राजानः—राजपरिवार के सदस्य; राज—राजसी; लक्ष्म्या—ऐश्वर्य से; अन्धाः—अन्धे हुए; न—नहीं; आत्म—अपना; पातम्—पतन; विचक्षते—पहले से देख पाते हैं; निरयम्—नरक; ये—जो; अभिमन्यन्ते—लालायित रहते हैं; ब्रह्म-स्वम्—ब्राह्मण की सम्पत्ति; साधु—उपयुक्त; बालिशः—बचकाना, मूर्ख.

राजसी ऐश्वर्य से मदान्ध राजा अपना पतन पहले से देख पाने में असमर्थ रहते हैं। वे ब्राह्मण की सम्पत्ति के लिए मूर्खतापूर्वक लालायित रहकर वास्तव में नरक जाने के लिए लालायित रहते हैं।

गृह्णन्ति यावतः पांशून्क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ।
विप्राणां हृतवृत्तीनाम्वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥ ७ ॥
राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरङ्कुशाः ।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

गृह्णन्ति—स्पर्श करते हैं; यावतः—जितने; पांशून्—धूल के कण; क्रन्दताम्—क्रन्दन करते हुए; अश्रु-बिन्दवः—आँसू की बूँदें; विप्राणाम्—ब्राह्मणों के; हृत—हरण की गई; वृत्तीनाम्—जीविका के साधनों का; वदान्यानाम्—उदार; कुटुम्बिनाम्—परिवार के लोगों के; राजानः—राजालोग; राज-कुल्याः—राज परिवार के अन्य सदस्य; च—भी; तावतः—उतने; अब्दान्—वर्षों तक; निरङ्कुशाः—अनियंत्रित; कुम्भी-पाकेषु—कुम्भीपाक नामक नरक में; पच्यन्ते—पकाये जाते हैं; ब्रह्म-दाय—ब्राह्मण के हिस्से का; अपहारिणः—अपहरण करने वाले.

जिनके ऊपर आश्रित परिवार हो तथा जिनकी सम्पत्ति हड़प ली गई हो, ऐसे उदारचेता ब्राह्मणों के आँसुओं से धूल के जितने कणों का स्पर्श होता है, उतने वर्षों तक वे अनियंत्रित राजा, जो ब्राह्मण की सम्पत्ति को हड़प लेते हैं, अपने राज परिवारों के साथ कुम्भीपाक नामक नर्क में भुने जाते हैं।

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

स्व—अपने द्वारा; दत्ताम्—दिया गया; पर—दूसरे के द्वारा; दत्ताम्—दिया गया; वा—अथवा; ब्रह्म-वृत्तिम्—ब्राह्मण की सम्पत्ति; हरेत्—चुराता है; च—तथा; यः—जो; षष्टि—साठ; वर्ष—वर्षों तक; सहस्राणि—हजारों; विष्ठायाम्—मल में; जायते—उत्पन्न होता है; कृमिः—कीट.

चाहे अपना दिया दान हो या किसी अन्य का, जो व्यक्ति किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति को चुराता है, वह साठ हजार वर्षों तक मल में कीट के रूप में जन्म लेगा

न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृध्वाल्पायुषो नराः ।
पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; मे—मुझको; ब्रह्म—ब्राह्मणों की; धनम्—सम्पत्ति; भूयात्—चाहे जो हो; यत्—जो; गृध्वा—इच्छा करके; अल्प-आयुषः—अल्पायु; नराः—मनुष्यगण; पराजिताः—पराजित; च्युताः—विहीन; राज्यात्—राज्य से; भवन्ति—हो जाते हैं; उद्वेजिनः—कष्ट पहुँचाने वाले; अहयः—सर्प.

मैं ब्राह्मणों की सम्पत्ति की कामना नहीं करता जो इसका लोभ करते हैं उनकी आयु क्षीण होती है और वे पराजित होते हैं, वे अपने राज्य खो देते हैं और दुसरों को कष्ट पहुँचाने वाले सर्प बनते हैं।

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ।
घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

विप्रम्—विद्वान ब्राह्मण के प्रति; कृत—किया गया; आगसम्—पाप; अपि—भी; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; द्रुह्यत—शत्रु की तरह व्यवहार करते हैं; मामकाः—हे मेरे अनुयायियो; घ्नन्तम्—शारीरिक प्रहार करते हुए; बहु—बारम्बार; शपन्तम्—शाप देते हुए; वा—अथवा; नमः-कुरुत—तुम्हें नमस्कार करना चाहिए; नित्यशः—सदैव.

हे मेरे अनुयायियो, तुम कभी भी विद्वान ब्राह्मण के साथ कठोर व्यवहार न करो, भले ही उसने पाप क्यों न किये हों। यदि वह तुम्हारे शरीर पर वार भी करे या बारम्बार तुम्हें शाप दे तो भी उसे नमस्कार करते रहो

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण यह उपदेश न केवल अपने निजी संगियों को देते हैं अपितु उन सबों को भी देते हैं, जो अपने को भगवान् के अनुयायी होने का दावा करते हैं।

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ।
तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अहम्—मैं; प्रणमे—प्रणाम करता हूँ; विप्रान्—ब्राह्मणों को; अनु-कालम्—सर्वदा; समाहितः—सावधानी के साथ; तथा—उसी तरह; नमत—नमस्कार करना चाहिए; यूयम्—तुम सबों को; च—भी; यः—जो; अन्यथा—अन्यथा; मे—मेरे द्वारा; सः—वह; दण्ड—दण्ड का; भाक्—भागी.

जिस तरह मैं सदैव ध्यान रखते हुए ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ उसी तरह तुम सबों को चाहिए कि उन्हें नमस्कार करो। जो कोई भी अन्यथा कर्म करता है, उसे मैं दण्ड देता हूँ

ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ।
अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४॥

शब्दार्थ

ब्राह्मण—ब्राह्मण की; अर्थः—सम्पदा; हि—निस्सन्देह; अपहृतः—हरण की गई; हर्तारम्—लेने वाले को; पातयति—गिरा दिया जाता है; अधः—नीचे; अजानन्तम्—अनजाने में; अपि—भी; हि—निस्सन्देह; एनम्—इस; नृगम्—राजा नृग को; ब्राह्मण—ब्राह्मण की; गौः—गाय; इव—सदृश.

जब किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति अनजाने में भी चुराई जाती है, तो उस व्यक्ति को निश्चित रूप से पतित होना पड़ता है, जिस तरह ब्राह्मण की गाय से नृग को पतित होना पड़ा

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि उनके उपदेश केवल सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक हैं जैसाकि नृग महाराज के साथ निश्चित रूप से हुआ।

एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः ।
पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विश्राव्य—सुनाकर; भगवान्—भगवान्; मुकुन्दः—कृष्ण; द्वारका-ओकसः—द्वारकावासियों को; पावनः—शुद्ध करने वाले; सर्व—सभी; लोकानाम्—लोकों के; विवेश—प्रविष्ट हुए; निज—अपने; मन्दिरम्—महल में।.

इस तरह से द्वारका निवासियों को उपदेश देने के बाद, समस्त लोकों को पवित्र करने वाले भगवान् मुकुन्द अपने महल में प्रविष्ट हुए।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''राजा नृग का उद्धार'' नामक चौंसठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पैंसठ

बलराम का वृन्दावन जाना

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह भगवान् बलराम गोकुल गये, वहाँ पर गोपियों के साथ रमण किया और यमुना नदी का कर्षण किया।

एक दिन बलराम अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों को देखने गोकुल गये। जब वे वहाँ पहुँचे तो वृद्धा गोपियाँ तथा कृष्ण के माता-पिता नन्द-यशोदा जो दीर्घकाल से चिन्तित थे—सबों ने उनको गले लगाया और आशीर्वाद दिया। बलराम ने अपने पूज्यों का उनकी आयु, मैत्री तथा पारिवारिक सम्बन्ध के अनुसार अभिवादन किया। जब गोकुलवासी तथा बलराम एक-दूसरे की कुशल-क्षेम पूछ चुके तो

बलराम अपनी यात्रा के बाद विश्राम करने लगे।

थोड़े ही समय बाद तरुण गोपियाँ बलराम के पास आईं और उनसे कृष्ण की कुशलता के बारे में पूछा, ''क्या कृष्ण अपने माता-पिता तथा सखाओं को अब भी स्मरण करते हैं? क्या वे उन सबसे मिलने गोकुल आयेंगे? हमने कृष्ण के लिए अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि अपने पिता, माता तथा अन्य संबंधियों को त्याग दिया किन्तु अब उन्होंने हम सबों को त्याग दिया है। उनके मधुर मन्द-हासयुक्त मुख को देखने के बाद हम काम-इच्छा से अभिभूत होकर उनके शब्दों पर विश्वास करने के अतिरिक्त कर ही क्या सकती थीं? इतने पर भी यदि कृष्ण हमसे विलग होकर अपने दिन काट सकते हैं, तो हम उनके वियोग को क्यों नहीं सहन कर सकतीं? अत: उनके विषय में बातें करते रहने का कोई कारण नहीं है।'' इस तरह से गोपियाँ कृष्ण की मनोहर बातों, मोहक चितवन, क्रीड़ामय संकेतों तथा प्रेमपूर्ण आलिंगन का स्मरण करने लगीं जिसके कारण वे सिसकने लगीं। बलराम ने कृष्ण द्वारा भेजा गया मोहक सन्देश सुनाकर उन्हें ढाढ़स बँधाया।

भगवान् बलराम यमुना के तट पर कुंजों में गोपियों के साथ विहार करते हुए गोकुल में दो मास रहे। इन लीलाओं को देखकर देवताओं ने स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजाईं और फूलों की वर्षा की तथा स्वर्ग के मुनियों ने भगवान् बलराम की महिमा का गान किया।

एक दिन बलराम वारुणी मदिरा पीकर मदोन्मत्त हो उठे और गोपियों के साथ जंगल में घूमने लगे। उन्होंने यमुना को पुकारा, ''तुम पास आ जाओ जिससे मैं गोपियों के साथ तुम्हारे जल में क्रीड़ा कर सकूँ।'' किन्तु यमुना ने इस आदेश की उपेक्षा की। अत: बलराम ने अपने हल की नोक से यमुना को खींचना प्रारम्भ कर दिया और उसे सैकड़ों धाराओं में विभक्त कर दिया। भय से काँपती यमुनादेवी प्रकट हुईं और बलराम के चरणों पर गिरकर क्षमा करने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने यमुना को जाने दिया और तब युवती-मित्रों के साथ कुछ काल तक क्रीड़ा करने के लिए जल में प्रवेश किया। जब वे जल से बाहर आये तो कान्ति देवी ने उन्हें सुन्दर आभूषण, वस्त्र तथा हार प्रदान किये। आज भी यमुना नदी बलदेव के सामने घुटने टेकने के प्रतीक रूप में उनके हल द्वारा काटी गई अनेक धाराओं में बहती है।

जब भगवान् बलराम क्रीड़ा कर रहे थे तो उनका मन गोपियों की क्रीड़ाओं से मोहित हो गया।

इस तरह उन्होंने उनके साथ कई रातें बिताईं किन्तु उन्हें लगा उनके संग में मानो एक रात ही बिताई है।

श्रीशुक उवाच
बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ।
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; बलभद्रः—बलराम; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरुओं में श्रेष्ठ (राजा परीक्षित); भगवान्—भगवान्; रथम्—अपने रथ में; आस्थितः—सवार; सुहृत्—शुभचिन्तक मित्रों को; दिदृक्षुः—देखने की इच्छा से; उत्कण्ठः—उत्सुक; प्रययौ—यात्रा की; नन्द-गोकुलम्—नन्द महाराज के गोकुल-ग्राम की।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे कुरुश्रेष्ठ, एक बार अपने शुभचिन्तक मित्रों को देखने के लिए उत्सुक भगवान् बलराम अपने रथ पर सवार हुए और उन्होंने नन्द गोकुल की यात्रा की।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील जीव गोस्वामी ने इंगित किया है, *हरिवंश* (विष्णु पुराण ४६.) में भी बलराम के श्री वृन्दावन जाने का वर्णन मिलता है—

कस्यचिदथ कालस्य स्मृत्वा गोपेषु सौहृदम्।

जगामैको व्रजं रामः कृष्णस्यानुमते स्थितः॥

"ग्वालों के साथ प्रगाढ़ मैत्री का स्मरण करके एक बार भगवान् बलराम भगवान् कृष्ण से अनुमति लेकर अकेले ही व्रज गये।" वृन्दावन के भोले-भाले वासी व्यथित थे कि भगवान् कृष्ण अन्यत्र जाकर रहने लगे हैं इसलिए भगवान् बलराम उन लोगों को सान्त्वना देने वहाँ गये थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि शुद्ध प्रेम के महासागर भगवान् कृष्ण भी व्रज क्यों नहीं गये। उसकी व्याख्या करने के लिए उन्होंने दो श्लोक उद्धृत किये हैं—

प्रेयसीः प्रेमविख्याताः पितरावतिवत्सलौ।

प्रेमवश्यश्च कृष्णस्तांस्त्यक्त्वा नः कथमेष्यति॥

इति मत्वैव यदवः प्रत्यबध्नन् हरेर्गतौ।

व्रजप्रेमप्रवर्धि स्वलीलाधीनत्वमीयुषः॥

"यदुओं ने सोचा, "भगवान् की प्रेमिकाएँ अपने शुद्ध आह्लादमय प्रेम के लिए विख्यात हैं और उनके माता-पिता उनके प्रति अतीव वत्सल हैं। भगवान् कृष्ण शुद्ध प्रेम के वशीभूत हैं अतएव यदि वे उन्हें देखने जाते हैं, तो फिर वे किस तरह उन्हें छोड़कर हमारे पास वापस आ सकेंगे?" इस विचार से

यदुओं ने भगवान् हरि को जाने से रोका। वे जानते थे कि वे उन लीलाओं के अधीन हो जाते हैं जिनमें वे व्रजवासियों के नित्यवर्धमान प्रेम का आदान-प्रदान करते हैं।''

परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ।
रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

परिष्वक्तः—आलिंगन किया हुआ; चिर—दीर्घकाल से; उत्कण्ठैः—चिन्तित; गोपैः—ग्वालों के द्वारा; गोपीभिः—गोपियों के द्वारा; एव—निस्सन्देह; च—भी; रामः—बलराम; अभिवाद्य—अभिवादन करके; पितरौ—अपने माता-पिता (नन्द तथा यशोदा) को; आशीर्भिः—प्रार्थनाओं से; अभिनन्दितः—हर्षपूर्वक सत्कार किया हुआ।

दीर्घकाल से वियोग की चिन्ता सह चुकने के कारण गोपों तथा उनकी पत्नियों ने बलराम का आलिंगन किया। तब बलराम ने अपने माता-पिता को प्रणाम किया और उन्होंने स्तुतियों द्वारा बलराम का हर्ष के साथ सत्कार किया।

तात्पर्य : इस स्थिति के सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने निम्नलिखित श्लोक दिया है—

नित्यानन्दस्वरूपोऽपि प्रेमतप्तो व्रजौकसाम्।

ययौ कृष्णमपि त्यक्त्वा यस्तं रामं मुहुः स्तुमः॥

''हम भगवान् बलराम का बारम्बार यशोगान करते हैं। यद्यपि वे नित्यानन्द हैं किन्तु व्रजवासियों के प्रति अपने प्रेम के कारण उन्हें वेदना का अनुभव हुआ अतः वे भगवान् कृष्ण को छोड़ कर भी उन्हें देखने गये।''

चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः ।
इत्यारोप्याङ्कमालिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ॥

शब्दार्थ

चिरम्—दीर्घकाल से; नः—हमारी; पाहि—रक्षा करें; दाशार्ह—हे दशार्ह वंशज; स—सहित; अनुजः—तुम्हारे छोटे भाई के; जगत्—ब्रह्माण्ड के; ईश्वरः—स्वामी; इति—ऐसा कह कर; आरोप्य—उठाकर; अङ्कम्—अपनी गोद में; आलिङ्ग्य—आलिंगन करके; नेत्रैः—आँखों के; सिषिचतुः—सिक्त कर दिया; जलैः—जल से।

[नन्द तथा यशोदा ने प्रार्थना की] : ''हे दशार्ह वंशज, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, तुम तथा तुम्हारे छोटे भाई कृष्ण सदैव हमारी रक्षा करते रहो।'' यह कह कर उन्होंने श्री बलराम को अपनी गोद में उठा लिया, उनका आलिंगन किया और अपने नेत्रों के आँसुओं से उन्हें सिक्त कर दिया।

तात्पर्य : इस श्लोक पर श्रील जीव गोस्वामी ने इस प्रकार टीका की है : ''नन्द तथा यशोदा ने श्री बलराम से प्रार्थना की, ''तुम अपने छोटे भाई सहित हमारी रक्षा करते रहो।'' इस तरह उन्होंने इस बात के लिए सम्मान व्यक्त किया कि वे बड़े भाई हैं और उन्होंने यह भी दिखलाया कि वे उन्हें अपने ही पुत्र के रूप में कितना मानते हैं।''

गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवन्दितः ।
यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४॥
समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः ।
विश्रान्तम्सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥
पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्‌गदया गिरा ।
कृष्णे कमलपत्राक्षे सन्न्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

गोप—ग्वालों के; वृद्धान्—गुरुजन; च—तथा; विधि-वत्—वैदिक आदेशों के अनुसार; यविष्ठैः—छोटों के द्वारा; अभिवन्दितः—आदरपूर्वक सत्कार किया; यथा-वयः—आयु के अनुसार; यथा-सख्यम्—मैत्री के अनुसार; यथा-सम्बन्धम्—पारिवारिक सम्बन्ध के अनुसार; आत्मनः—अपने से; समुपेत्य—पास जाकर; अथ—तब; गोपालान्—ग्वालों को; हास्य—मुसकानों से; हस्त-ग्रह—उनके हाथ लेकर; आदिभिः—इत्यादि द्वारा; विश्रान्तम्—विश्राम किया; सुखम्—सुखपूर्वक; आसीनम्—बैठकर; पप्रच्छुः—पूछा; पर्युपागताः—चारों ओर एकत्र होकर; पृष्टाः—पूछा; च—तथा; अनामयम्—स्वास्थ्य के विषय में; स्वेषु—उनके मित्रों के बारे में; प्रेम—प्रेमवश; गद्‌गदया—रुक रुककर; गिरा—वाणी से; कृष्णे—कृष्ण के लिए; कमल—कमल की; पत्र—पंखड़ी (जैसी); अक्षे—आँखों वाले; सन्न्यस्त—समर्पित करके; अखिल—समस्त; राधसः—भौतिक सम्पत्ति।

तब बलराम ने अपने से बड़े ग्वालों के प्रति समुचित सम्मान प्रकट किया तथा जो छोटे थे उन्होंने उनका सादर-सत्कार किया। वे आयु, मैत्री की कोटि तथा पारिवारिक सम्बन्ध के अनुसार हरएक से हँसकर, हाथ मिलाकर स्वयं मिले। तत्पश्चात् विश्राम कर लेने के बाद उन्होंने सुखद आसन ग्रहण किया और सारे लोग उनके चारों ओर एकत्र हो गये। उनके प्रति प्रेम से रुद्ध वाणी से उन ग्वालों ने, जिन्होंने कमल-नेत्र कृष्ण को सर्वस्व अर्पित कर दिया था, अपने (द्वारका के) प्रियजनों के स्वास्थ्य के विषय में पूछा। बदले में बलराम ने ग्वालों की कुशल-मंगल के विषय में पूछा।

कच्चिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते ।
कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥ ७॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; नः—हमारे; बान्धवाः—सम्बन्धी; राम—हे बलराम; सर्वे—सभी; कुशलम्—ठीक से; आसते—हैं; कच्चित्—क्या; स्मरथ—स्मरण करते हैं; नः—हमको; राम—हे राम; यूयम्—तुम सभी; दार—पत्नियों; सुत—तथा पुत्रों; अन्विताः—सहित।

[ग्वालों ने कहा] : हे राम, हमारे सारे सम्बन्धी ठीक से तो हैं न? और हे राम क्या तुम सभी लोग अपनी पत्नियों तथा पुत्रों सहित अब भी हमें याद करते हो?

दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ।
निहत्य निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रीताः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्य से; कंसः—कंस; हतः—मारा गया; पापः—पापी; दिष्ट्या—भाग्य से; मुक्ताः—मुक्त हुए; सुहृत्-जनाः—प्रिय सम्बन्धी; निहत्य—मार कर; निर्जित्य—जीत कर; रिपून्—शत्रुओं को; दिष्ट्या—भाग्यवश; दुर्गम्—दुर्ग या किले में; समाश्रीताः—शरण ले ली है।

यह हमारा परम सौभाग्य है कि पापी कंस मारा जा चुका है और हमारे प्रिय सम्बन्धी मुक्त हो चुके हैं। हमारा यह भी सौभाग्य है कि हमारे सम्बन्धियों ने अपने शत्रुओं को मार डाला है और पराजित कर दिया है तथा एक विशाल दुर्ग में पूर्ण सुरक्षा प्राप्त कर ली है।

गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छू रामसन्दर्शनादृताः ।
कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—तरुण गोपियों ने; हसन्त्यः—हँसती हुई; पप्रच्छुः—पूछा; राम—बलराम से; सन्दर्शन—साक्षात् दर्शन द्वारा; आदृताः—आदरित; कच्चित्—क्या; आस्ते—रह रहा है; सुखम्—सुखपूर्वक; कृष्णः—कृष्ण; पुर—नगर के; स्त्री-जन—स्त्रियों के; वल्लभः—प्राणप्रिय।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : भगवान् बलराम के साक्षात् दर्शन से गौरवान्वित हुई गोपियों ने हँसते हुए उनसे पूछा, ''नगर की स्त्रियों के प्राणप्रिय कृष्ण सुखपूर्वक तो हैं?''

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार भगवान् कृष्ण की प्रिय संगिनियाँ उन्मत्त होकर हँस रही थीं क्योंकि वे अपने प्रेमी कृष्ण के वियोग में अतीव दुख का अनुभव कर रही थीं। भगवान् राम ने अपने छोटे भाई कृष्ण के प्रति उनके प्रेम का अतीव आदर किया। इस तरह *रामसन्दर्शनादृताः* शब्द का अर्थ हुआ कि बलराम ने गोपियों का आदर किया और पहले दिया गया अर्थ भी कि गोपियों ने बलराम का आदर किया।

कच्चित्स्मरति वा बन्धून्पितरं मातरं च सः ।

अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ।
अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; स्मरति—स्मरण करता है; वा—अथवा; बन्धून्—अपने परिवार के सदस्यों को; पितरम्—पिता को; मातरम्—अपनी माता को; च—तथा; सः—वह; अपि—भी; असौ—स्वयं; मातरम्—अपनी माता को; द्रष्टुम्—देखने के लिए; सकृत्—एक बार; अपि—भी; आगमिष्यति—आयेगा; अपि—निस्सन्देह; वा—अथवा; स्मरते—स्मरण करता है; अस्माकम्—हमारी; अनुसेवाम्—स्थिर सेवा; महा—बलशाली; भुजः—भुजाओं वाला।

''क्या वे अपने परिवार वालों को, विशेषतया अपने माता-पिता को याद करते हैं? क्या आपके विचार में वे अपनी माता को एक बार भी देखने वापस आयेंगे? और क्या बलशाली भुजाओं वाले कृष्ण हमारे द्वारा सदा की गई सेवा का स्मरण करते हैं?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि गोपियाँ फूलों की माला गूँथ कर, दक्षता के साथ सुगन्ध लेप करके तथा फूलों की पंखड़ियों से पंखे, शय्या तथा वितान बना कर कृष्ण की सेवा करती थीं। इन प्रेमपूर्ण सरल कार्यों से गोपियाँ भगवान् की सबसे बड़ी सेवा करती थीं।

मातरं पितरं भ्रातृन्पतीन्पुत्रान्स्वसृनपि ।
यदर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥
ता नः सद्यः परित्यज्य गतः सञ्छिन्नसौहृदः ।
कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

मातरम्—माता को; पितरम्—पिता को; भ्रातृन्—भाइयों को; पतीन्—पतियों को; पुत्रान्—पुत्रों को; स्वसृन्—बहनों को; अपि—भी; यत्—जिनके; अर्थे—लिए; जहिम—हमने छोड़ दिया; दाशार्ह—हे दशार्हवंशी; दुस्त्यजान्—त्याग पाना कठिन; स्व-जनान्—अपने ही लोगों को; प्रभो—हे प्रभु; ताः—उन्हीं स्त्रियों को; नः—हम; सद्यः—सहसा; परित्यज्य—त्याग कर; गतः—चले गये; सञ्छिन्न—तोड़ कर; सौहृदः—मित्रता; कथम्—कैसे; नु—निस्सन्देह; तादृशम्—ऐसा; स्त्रीभिः—स्त्रियों द्वारा; न श्रद्धीयेत—विश्वास नहीं किया जायेगा; भाषीतम्—कहे गये शब्द।

''हे दाशार्ह, हमने कृष्ण की खातिर अपनी माताओं, पिताओं, भाइयों, पतियों, पुत्रों तथा बहनों का भी परित्याग कर दिया यद्यपि इन पारिवारिक सम्बन्धों का परित्याग कर पाना कठिन है। किन्तु हे प्रभु, अब उन्हीं कृष्ण ने सहसा हम सबों को त्याग कर हमारे साथ के समस्त स्नेह-बन्धनों को तोड़ दिया है और वे चले गये हैं। और ऐसे में कोई स्त्री उनके वादों पर कैसे विश्वास कर सकती है?

कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो
वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ।

गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दर-
स्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

कथम्—कैसे; नु—निस्सन्देह; गृह्णन्ति—स्वीकार करती हैं; अनवस्थित—अस्थिर; आत्मनः—हृदय वाले के; वचः—शब्द; कृत-घ्नस्य—कृतघ्न का; बुधाः—बुद्धिमान; पुर—नगर की; स्त्रियः—स्त्रियाँ; गृह्णन्ति—स्वीकार करती हैं; वै—निस्सन्देह; चित्र—आश्चर्यजनक; कथस्य—कथाओं के; सुन्दर—सुन्दर; स्मित—हँसती हुई; अवलोक—तिरछी नजरों से; उच्छ्वसित—पुनः जीवन प्रदान की गई; स्मर—काम-वासना द्वारा; आतुराः—विक्षुब्ध, चंचल।

''नगर की बुद्धिमान स्त्रियाँ ऐसे व्यक्ति के वचनों पर कैसे विश्वास कर सकती हैं जिसका हृदय इतना अस्थिर है और जो इतना कृतघ्न है? वे उन पर इसलिए विश्वास कर लेती थीं क्योंकि वे इतने अद्भुत ढंग से बोलते हैं और उनकी सुन्दर हँसी से युक्त चितवनें काम-वासना जगा देती हैं।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार इस श्लोक की प्रथम दो पंक्तियाँ कुछ गोपियों की उक्ति हैं और अन्य दो पंक्तियों में कुछ के उत्तर हैं।

किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ।
यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४॥

शब्दार्थ

किम्—क्या (लाभ); नः—हमारे लिए; तत्—उसके विषय में; कथया—विचार-विमर्श से; गोप्यः—हे गोपियो; कथाः—कथाएँ; कथयत—कृपा करके कहो; अपराः—अन्य; याति—बीतता है; अस्माभिः—हमारे; विना—बिना; कालः—समय; यदि—यदि; तस्य—उसका; तथा एव—उसी विधि से; नः—हमारा।

''हे गोपियो, उनके विषय में बातें करने में क्यों पड़ी हो? कृपा करके किसी अन्य विषय पर बात चलाओ। यदि वे हमारे बिना अपना समय बिता लेते हैं, तो हम भी उसी तरह से (उनके बिना) अपना समय बिता लेंगी।''

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि यहाँ पर गोपियाँ सूक्ष्म रीति से संकेत करती हैं कि भगवान् कृष्ण उन सबों के बिना अपना समय सुखपूर्वक बिता लेते हैं जबकि वे सब अपने स्वामी के बिना सर्वाधिक दुखी हैं। भगवान् तथा उनमें यही अन्तर है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इसकी टीका इस प्रकार की है : ''गोपियों ने अपने को अन्य स्त्रियों से पृथक् मानते हुए इस प्रकार सोचा, ''यदि अन्य स्त्रियाँ अपने प्रेमियों के साथ रहती हैं, तो वे जीवित रहती हैं और यदि उनसे विलग हो जाती हैं, तो मर जाती हैं। किन्तु हम न तो जीवित हैं न मरती हैं। विधाता ने हमारे मस्तकों पर यही भाग्य लिख रखा है। हम इसका कौन-सा उपचार ढूँढ़ सकती हैं?''

इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारुवीक्षितम् ।
गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार कह कर; प्रहसितम्—अट्टहास; शौरेः—भगवान् कृष्ण का; जल्पितम्—मोहक बातचीत; चारु—आकर्षक; वीक्षितम्—चितवनें; गतिम्—चाल; प्रेम—प्रेममय; परिष्वङ्गम्—आलिंगन; स्मरन्त्यः—स्मरण करती हुईं; रुरुदुः—चिल्ला उठीं; स्त्रियः—स्त्रियाँ।

ये शब्द कहती हुईं तरुण गोपियों को भगवान् शौरि की हँसी, अपने साथ उनकी मोहक बातें, उनकी आकर्षक चितवनें, उनके चलने का ढंग तथा उनके प्रेमपूर्ण आलिंगनों का स्मरण हो आया। इस तरह वे सिसकने लगीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका इस प्रकार है : "गोपियों ने सोचा, "कृष्ण रूपी चन्द्रमा अपनी अमृतमयी हँसी के तीरों से हमारे हृदयों को विदीर्ण करता हुआ दूर चला गया। अत: जब वह नगर की स्त्रियों के साथ भी वैसा ही करता है, तो वे क्यों नहीं मर जायेंगी?" इन विचारों से अभिभूत होकर तरुण गोपियाँ श्री बलदेव की उपस्थिति में भी चिल्लाने लगीं।

सङ्कर्षणस्ताः कृष्णस्य सन्देशैर्हृदयंगमैः ।
सान्त्वयामास भगवान्नानानुनयकोविदः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सङ्कर्षणः—परम आकर्षण वाले, बलराम ने; ताः—उनको; कृष्णस्य—कृष्ण के; सन्देशैः—गुप्त सन्देश से; हृदयम्—हृदय को; गमैः—स्पर्श करते; सान्त्वयाम् आस—ढाढ़स बँधाया; भगवान्—भगवान्; नाना—अनेक प्रकार के; अनुनय—बीच-बचाव में; कोविदः—पटु।

सबों को आकृष्ट करने वाले भगवान् बलराम ने नाना प्रकार से समझाने-बुझाने में पटु होने के कारण, गोपियों को भगवान् कृष्ण द्वारा उनके साथ भेजे हुए गुप्त सन्देश सुनाकर उन्हें धीरज बँधाया। ये सन्देश गोपियों के हृदयों को भीतर तक छू गये।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने *विष्णु पुराण* का निम्नलिखित श्लोक (५.२४.२०) उद्धृत किया है, जो गोपियों के लिए बलराम द्वारा लाए गए कृष्ण के सन्देशों को बताने वाला है—

सन्देशै साममधुरै प्रेमगर्भैरगर्वितै।

रामेणाश्वासिता गोप्यः कृष्णस्यातिमनोहरै॥

"भगवान् बलराम ने गोपियों को भगवान् कृष्ण का सर्वाधिक मोहक सन्देश देकर सान्त्वना दी

जिनमें मधुर अनुनय-विनय था और जो उनके प्रति शुद्ध प्रेम से प्रेरित थे और जिनमें रंचमात्र भी गर्व नहीं था।'' श्रील जीव गोस्वामी यह भी टीका करते हैं कि संकर्षण नाम से यह अभिप्रेत है कि बलराम ने कृष्ण को अपने मन में प्रकट होने के लिए आकर्षित किया और इस तरह गोपियों को श्रीकृष्ण का दर्शन कराया। बलराम ने इस प्रकार से श्रीकृष्ण की प्रेमिकाओं को सान्त्वना दी।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि भगवान् कृष्ण ने विविध सन्देश भेजे थे। कुछ में गोपियों के लिए दिव्य ज्ञान का उपदेश था, कुछ में अनुनय-विनय और अन्य भगवान् की शक्ति को प्रकट करने वाले थे। *हृदयंगमै* शब्द के दिये हुए अर्थ के अतिरिक्त यह शब्द यह भी सूचित करता है कि ये सन्देश गोपनीय थे।

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवं एव च ।
रामः क्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७॥

शब्दार्थ

द्वौ—दो; **मासौ**—माह; **तत्र**—वहाँ (गोकुल में); **च**—तथा; **अवात्सीत्**—निवास किया; **मधुम्**—मधु (चैत्र); **माधवम्**—माधव (वैशाख); **एव**—निस्सन्देह; **च**—भी; **रामः**—बलराम; **क्षपासु**—रातों में; **भगवान्**—भगवान्; **गोपीनाम्**—गोपियों को; **रतिम्**—माधुर्य सुख; **आवहन्**—लाते हुए।

भगवान् बलराम वहाँ मधु चैत्र तथा माधव वैशाख दो मास तक रहे और रात में अपनी गोपिका-मित्रों को माधुर्य आनन्द प्रदान करते रहे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर गोस्वामी कहते हैं कि जिन गोपियों ने श्री बलराम के साथ उनके गोकुल आने पर माधुर्य सुख प्राप्त किया उन्होंने उस समय अल्पायु होने के कारण कृष्ण के रास-नृत्य में भाग नहीं लिया था। इसकी पुष्टि में श्रील जीव गोस्वामी ने *भागवत* का श्लोक (.१५.८)—*गोप्योऽअन्तरेण भुजयोः*—उद्धृत किया है, जो यह बताता है कि कुछ विशेष गोपियाँ बलराम की संगिनियों के रूप में रहती हैं। यही नहीं, जीव गोस्वामी कहते हैं कि जब कृष्ण ने शंखचूड़ का वध किया उस समय मनाये गये होलिकोत्सव में बलराम ने जिन गोपियों के साथ रमण किया वे कृष्ण द्वारा रमण की गई गोपियों से भिन्न थीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस व्याख्या से सहमत हैं।

पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना ।
यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८॥

शब्दार्थ

पूर्ण—पूर्ण; चन्द्र—चन्द्रमा की; कला—किरणों से; मृष्टे—नहलाई, स्नात; कौमुदी—कुमुदिनी की, जो चाँदनी पाकर खिलती है; गन्ध—सुगन्ध (ले जाने वाली); वायुना—हवा से; यमुना—यमुना नदी के; उपवने—उद्यान में; रेमे—रमण किया; सेविते—सेवित; स्त्री—स्त्रियों से; गणैः—अनेक; वृतः—घिरे हुए।

अनेक स्त्रियों के संग भगवान् बलराम ने यमुना नदी के तट पर एक उद्यान में रमण किया। यह उद्यान पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से नहलाया हुआ था और रात में खिली कुमुदिनियों की सुगन्ध ले जाने वाली मन्द वायु के द्वारा स्पर्शित था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि भगवान् बलराम की माधुर्य लीला यमुना के किनारे एक छोटे-से जंगल में हुई जो श्रीराम-घट्ट के नाम से विख्यात है और श्रीकृष्ण की रास स्थली से काफी दूर है।

वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ।
पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

वरुण—समुद्र के देवता वरुण द्वारा; प्रेषिता—भेजी गई; देवी—दैवी; वारुणी—वारुणी शराब; वृक्ष—पेड़ के; कोटरात्—खोखले छिद्र से; पतन्ती—बह निकली; तत्—उस; वनम्—जंगल को; सर्वम्—सारे; स्व—अपनी; गन्धेन—सुगन्ध से; अध्यवासयत्—अधिक सुगन्धित बना दिया।

वरुण देव द्वारा भेजी गयी दैवी वारुणी मदिरा एक वृक्ष के खोखले छिद्र से बह निकली और अपनी मधुर गन्ध से सारे जंगल को और अधिक सुगन्धित बना दिया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि वारुणी शहद के आसवन से प्राप्त एक द्रव है। श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि वरुण-पुत्री देवी वारुणी उस विशेष दैवी पेय की अधिष्ठात्री है। वे *श्री हरिवंश* से निम्नलिखित उद्धरण भी देते हैं—*समीपं प्रेषिता पित्रा वरुणेन तवानघ।* यहाँ देवी वारुणी बलराम से कहती है, "हे निष्पाप! मेरे पिता वरुण ने मुझे आपके पास भेजा है।"

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; गन्धम्—सुगन्ध को; मधु—शहद की; धारायाः—धारा का; वायुना—वायु द्वारा; उपहृतम्—पास लाई गई; बलः—बलराम; आघ्राय—सूँघ कर; उपगतः—पास जाकर; तत्र—वहाँ; ललनाभिः—तरुण स्त्रियों के; समम्—साथ; पपौ—पिया।

वायु उस मधुर पेय की धारा की सुगन्ध को बलराम के पास ले गई और जब उन्होंने उसे सूँघा तो वे (वृक्ष के पास) गये। वहाँ उन्होंने तथा उनकी संगिनियों ने उसका पान किया।

उपगीयमानो गन्धर्वैर्वनिताशोभिमण्डले ।
रेमे करेणुयूथेशो माहेन्द्र इव वारणः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

उपगीयमानः—गीतों के द्वारा प्रशंसित; गन्धर्वैः—गन्धर्वों द्वारा; वनिता—युवतियों द्वारा; शोभि—सुशोभित; मण्डले—गोले में; रेमे—रमण किया; करेणु—हथनियों के; यूथ—झुंड के; ईशः—स्वामी; माहा-इन्द्रः—इन्द्र के; इव—सदृश; वारणः—हाथी (ऐरावत)।

जब गन्धर्वगण उनका यशोगान कर रहे थे तो भगवान् बलराम तरुण स्त्रियों के तेजोमय वृत्त के मध्य रमण कर रहे थे। वे इन्द्र के शानदार हाथी ऐरावत, जो हथनियों के झुंड में रमण कर रहा हो की तरह लग रहे थे।

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ववृषुः कुसुमैर्मुदा ।
गन्धर्वा मुनयो रामं तद्वीर्यैरीडिरे तदा ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

नेदुः—ध्वनि करने लगीं; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; व्योम्नि—आकाश में; ववृषुः—वर्षा की; कुसुमैः—फूलों से; मुदा—हर्षपूर्वक; गन्धर्वाः—गन्धर्वों ने; मुनयः—मुनियों ने; रामम्—बलराम की; तत्-वीर्यैः—उनके वीरतापूर्ण कार्यों समेत; ईडिरे—प्रशंसा की; तदा—तब ।

उस समय आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्वों ने प्रसन्नतापूर्वक फूलों की वर्षा की और मुनियों ने भगवान् बलराम के वीरतापूर्ण कार्यों की प्रशंसा की।

उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुध ।
वनेषु व्यचरत्क्षीवो मदविह्वललोचनः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

उपगीयमान—गायी जाकर; चरितः—उनकी लीलाएँ; वनिताभिः—स्त्रियों सहित; हलायुधः—बलराम; वनेषु—वनों के बीच; व्यचरत्—घूमने लगे; क्षीवः—चूर; मद—नशे में; विह्वल—पराजित; लोचनः—आँखें।

जब उनके कार्यों का गान हो रहा था, तो हलायुध मदोन्मत्त जैसे होकर अपनी संगिनियों के संग विविध जंगलों में घूम रहे थे। उनकी आँखें नशे में चूर थीं।

स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया ।
बिभ्रत्स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ।
स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ॥ २४॥
निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ।
अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

स्रक्-वी—माला धारण किये; एक—एक; कुण्डलः—कुण्डल; मत्तः—हर्ष से उन्मत्त; वैजयन्त्या—वैजयन्ती नामक; च—तथा; मालया—माला से; बिभ्रत्—प्रदर्शित करते हुए; स्मित—हँसता हुआ; मुख—उसका मुख; अम्भोजम्—कमल सदृश; स्वेद—पसीने का; प्रालेय—बर्फ के साथ; भूषितम्—अलंकृत; सः—उसने; आजुहाव—बुलाया; यमुनाम्—यमुना नदी को; जल—जल में; कृईडा—खेलने के; अर्थम्—हेतु; ईश्वरः—भगवान्; निजम्—अपने; वाक्यम्—शब्द; अनादृत्य—अनादर करके; मत्तः—उन्मत्त; इति—इस प्रकार (सोचते हुए); आप-गाम्—नदी को; बलः—बलराम ने; अनागताम्—न आती हुई; हल—अपने हल के; अग्रेण—अगले भाग या नोक से; कुपितः—क्रुद्ध; विचकर्ष ह—खींचा।

हर्ष से उन्मत्त बलराम फूल-मालाओं से खेल रहे थे। इनमें सुप्रसिद्ध वैजयन्ती माला सम्मिलित थी। वे कान में एक कुण्डल पहने थे और उनके मुसकान-भरे कमल-मुख पर पसीने की बूँदें इस तरह सुशोभित थीं मानो बर्फ के कण हों। तब उन्होंने यमुना को बुलाया जिससे वे उसके जल में क्रीडा कर सकें किन्तु उसने उनके आदेश की उपेक्षा इसलिए कर दी क्योंकि वे मदोन्मत्त थे। इससे बलराम क्रुद्ध हो उठे और वे अपने हल की नोक से नदी को खींचने लगे।

पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाहुता ।
नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

पापे—रे पापिनी; त्वम्—तुम; माम्—मेरा; अवज्ञाय—अनादर करके; यत्—क्योंकि; न आयासि—नहीं आती हो; मया—मेरे द्वारा; आहुता—बुलाई गई; नेष्ये—मैं लाऊँगा; त्वाम्—तुमको; लाङ्गल—अपने हल की; अग्रेण—नोक से; शतधा—सौ भागों में; काम—स्वेच्छा से; चारिणीम्—चलने वाली।

[बलराम ने कहा] : मेरा अनादर करने वाली पापिनी! तुम मेरे बुलाने पर न आकर केवल मनमाने चलने वाली हो। अतः मैं अपने हल की नोक से सौ धाराओं के रूप में तुम्हें यहाँ ले आऊँगा।

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ।
उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥ २७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निर्भर्त्सिता—फटकारी गई; भीता—डरी हुई; यमुना—यमुना नदी की अधिष्ठात्री देवी; यदु-नन्दनम्—यदु के प्रिय वंशज बलराम से; उवाच—बोली; चकिता—काँपती हुई; वाचम्—शब्द; पतिता—गिरी हुई; पादयोः—पाँवों पर; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : हे राजन्, बलराम द्वारा इस प्रकार फटकारी जाकर डरी हुई यमुनादेवी आईं और यदुनन्दन बलराम के चरणों पर गिर पड़ीं। काँपते हुए उसने उनसे निम्नलिखित शब्द कहे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार बलराम के समक्ष प्रकट होने वाली देवी श्रीमती कालिन्दी की अंशरूपा थीं, जो कि द्वारका में भगवान् कृष्ण की पत्नी हैं। श्रील जीव गोस्वामी उन्हें कालिन्दी की ''छाया'' बतलाते हैं और श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पुष्टि करते हैं कि वे कालिन्दी की अंश हैं कालिन्दी नहीं। श्रील जीव गोस्वामी *श्री हरिवंश* से भी इस कथन के द्वारा प्रमाण देते हैं—*प्रत्युवाचार्णववधूम्*—अर्थात् देवी यमुना समुद्र की पत्नी हैं। इसीलिए *हरिवंश* में उन्हें *सागरांगना* भी कहा गया है।

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ।
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

राम राम—हे राम, राम; महा-बाहो—हे विशाल भुजाओं वाले; न जाने—मैं नहीं जानती; तव—तुम्हारा; विक्रमम्—पराक्रम; यस्य—जिसका; एक—एक; अंशेन—अंश से; विधृता—धारण की गई; जगती—पृथ्वी; जगतः—ब्रह्माण्ड के; पते—हे स्वामी।.

[यमुनादेवी ने कहा] : हे विशाल भुजाओं वाले राम, हे राम, मैं आपके पराक्रम के बारे में कुछ भी नहीं जानती। हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, आप अपने एक अंशमात्र से पृथ्वी को धारण किए हुए हैं।

तात्पर्य : *एकांशेन* भगवान् के शेष रूप अंश का द्योतक है। इसकी पुष्टि आचार्यों द्वारा हुई है।

परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम् ।
मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

परम्—परम; भावम्—पद को; भगवतः—भगवान् का; भगवन्—हे भगवान्; माम्—मुझको; अजानतीम्—न जानती हुई; मोक्तुम् अर्हसि—कृपया छोड़ दें; विश्व—ब्रह्माण्ड के; आत्मन्—हे आत्मा; प्रपन्नाम्—शरणागत; भक्त—अपने भक्तों पर; वत्सल—हे दयालु।.

हे प्रभु, आप मुझे छोड़ दें। हे ब्रह्माण्ड के आत्मा, मैं भगवान् के रूप में आपके पद को नहीं जानती थी किन्तु अब मैं आपकी शरण में हूँ और आप अपने भक्तों पर सदैव दयालु रहते हैं।

ततो व्यमुञ्चद्यमुनां याचितो भगवान्बलः ।
विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ ० ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; व्यमुञ्चत्—छोड़ दिया; यमुनाम्—यमुना को; याचितः—याचना करती हुई; भगवान्—भगवान्; बलः—बलराम; विजगाह—घुस गये; जलम्—जल में; स्त्रीभिः—स्त्रियों के साथ; करेणुभिः—अपनी हथनियों के साथ; इव—सदृश; इभ—हाथियों के; राट्—राजा।.

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : तब बलराम ने यमुना को छोड़ दिया और जिस तरह हाथियों का राजा अपनी हथनियों के झुण्ड के साथ जल में प्रवेश करता है उसी तरह वे अपनी संगिनियों के साथ नदी के जल में प्रविष्ट हुए।

कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासीताम्बरे ।
भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

कामम्—इच्छानुसार; विहृत्य—क्रीड़ा कर चुकने के बाद; सलिलात्—जल से; उत्तीर्णाय—बाहर निकले हुए को; असित—नीला; अम्बरे—कपड़ों की जोड़ी (ऊपर तथा नीचे के); भूषणानि—गहने; महा—अत्यधिक; अर्हाणि—मूल्यवान; ददौ—दिया; कान्तिः—देवी कान्ति; शुभाम्—अतीव सुन्दर; स्रजम्—गले का हार।.

बलराम ने जी भरकर जल-क्रीड़ा की और जब वे बाहर निकले तो देवी कान्ति ने उन्हें नीले वस्त्र, मूल्यवान आभूषण तथा चमकीला गले का हार भेंट किया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने *विष्णु पुराण* से उद्धरण देकर यह दर्शाया है कि यहाँ पर उल्लिखित देवी कान्ति वास्तव में देवी लक्ष्मी हैं—

वरुणप्रहिता चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम्।

समुद्राभे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छता॥

''वरुण द्वारा भेजी गई देवी लक्ष्मी ने उन्हें न मुरझाने वाले कमल-पुष्पों की माला तथा समुद्र की भाँति नीले रंग वाले वस्त्रों की जोड़ी भेंट की।''

भागवत के महान् टीकाकार श्रील श्रीधर स्वामी ने देवी लक्ष्मी द्वारा बलराम से कहे गये कथन को *श्री हरिवंश* से भी उद्‌धृत किया है—

जातरूपमयं चैकं कुण्डलं वज्रभूषणम्।

आदिपद्मं च पद्माख्यं दिव्यं श्रवणभूषणम्।

देवेमां प्रतिगृह्णीष्व पौराणीं भूषणक्रियाम्॥

''हे स्वामी! आप दैवी आभूषणों के रूप में अपने कानों के लिए यह हीरे से जड़ा हुआ सोने का एक कुण्डल और पद्म कहलाने वाला यह आदि कमल स्वीकार करें। कृपया इन्हें स्वीकार करें क्योंकि

अलंकरण का यह कार्य परम्परागत है।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इतना और इंगित किया है कि लक्ष्मीजी भगवान् के स्वांश द्वितीय व्यूह से सम्बद्ध संकर्षण की प्रिया हैं।

वसित्वा वाससी नीले मालां आमुच्य काञ्चनीम् ।
रेये स्वलङ्कृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥ २॥

शब्दार्थ

वसित्वा—पहन कर; वाससी—वस्त्रों की जोड़ी; नीले—नीले रंग की; मालाम्—गले का हार; आमुच्य—पहन कर; काञ्चनीम्—सुनहली; रेजे—शोभायमान हो रहे थे; सु—सुन्दर; अलङ्कृतः—आभूषित; लिप्तः—लेप किया; माहा-इन्द्रः—महेन्द्र का; इव—सदृश; वारणः—हाथी।

भगवान् बलराम ने नीले वस्त्र पहने और गले में सुनहरा हार डाल लिया। सुगन्धियों से लेपित और सुन्दर ढंग से अलंकृत होकर वे इन्द्र के हाथी जैसे सुशोभित हो रहे थे।

तात्पर्य : चन्दन-लेप तथा अन्य शुद्ध सुगंधित वस्तुओं का लेप करके बलराम इन्द्र के महान् हाथी ऐरावत जैसे लग रहे थे।

अद्यापि दृश्यते राजन्यमुनाकृष्टवर्त्मना ।
बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; अपि—भी; दृश्यते—देखी जाती है; राजन्—हे राजा (परीक्षित); यमुना—यमुना नदी; आकृष्ट—खींची हुई; वर्त्मना—धाराओं से; बलस्य—बलराम के; अनन्त—असीम; वीर्यस्य—बल के; वीर्यम्—पराक्रम; सूचयती—सूचित करती हुई; इव—मानो; हि—निस्सन्देह।

हे राजन्, आज भी यह देखा जा सकता है कि किस तरह यमुना अनेक धाराओं में होकर बहती है, जो असीम बलशाली बलराम द्वारा खींचे जाने पर बन गई थीं। इस प्रकार यमुना उनके पराक्रम को प्रदर्शित करती है।

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ।
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सर्वा—सभी; निशाः—रातें; याताः—बीत गईं; एका—एक; इव—मानो; रमतः—रमण करते हुए; व्रजे—व्रज में; रामस्य—बलराम के; आक्षिप्त—मोहित; चित्तस्य—चित्त का; माधुर्यैः—अद्वितीय सौन्दर्य से; व्रज-योषिताम्—व्रज की स्त्रियों के।

इस तरह बलराम के लिए सारी रातें व्रज में रमण करते करते एक रात की तरह बीत गईं।

उनका मन व्रज की तरुण स्त्रियों की अद्वितीय माधुरी से मोहित था।

तात्पर्य : भगवान् बलराम व्रज की तरुण एवं सुन्दर स्त्रियों की मोहक लीलाओं से मुग्ध हो गए। इस तरह हर रात उनके लिए नया अनुभव था और सारी रातें इस तरह बीत गईं मानो एक ही रात हो।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''बलराम का वृन्दावन जाना'' नामक पैंसठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter छियासठ

पौण्ड्रक—छद्म वासुदेव

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि किस तरह भगवान् कृष्ण काशी (वाराणसी) गये और वहाँ पौण्ड्रक तथा काशिराज का वध किया, किस तरह सुदर्शन चक्र से असुर को हराया, काशी नगरी को भस्म किया और सुदक्षिण को मारा।

जब बलदेव व्रज गये हुए थे तो मूर्खों के बहकावे में आकर करूष के राजा पौण्ड्रक ने अपने को असली वासुदेव घोषित कर दिया। इस तरह उसने इस संदेश के साथ भगवान् कृष्ण को ललकारा कि ''चूँकि मैं ही असली भगवान् हूँ इसलिए तुम इस पद पर अपना झूठा दावा तथा मेरे दिव्य प्रतीकों को त्याग दो तथा मेरी शरण ग्रहण करो। यदि ऐसा नहीं करते तो युद्ध के लिए तैयार रहो।''

जब उग्रसेन तथा उनके राज-दरबारियों ने पौण्ड्रक की इस झूठी शेखी को सुना तो वे दिल खोलकर हँसे। तब श्रीकृष्ण ने पौण्ड्रक के दूत से अपने स्वामी के पास यह संदेश ले जाने के लिए कहा, ''रे मूर्ख! मैं तुम्हें तथाकथित सुदर्शन चक्र तथा मेरे अन्य दिव्य प्रतीकों को जिन्हें धारण करने का तुमने दुस्साहस किया है, त्यागने के लिए बाध्य कर दूँगा। और जब तुम युद्धभूमि में धराशायी हो जाओगे तो तुम कुत्तों का भोजन बनोगे।''

तब भगवान् कृष्ण काशी गये। कृष्ण को युद्ध के लिए तैयारी करते देखकर पौण्ड्रक अपनी सेना लेकर उनका सामना करने के लिए शहर से बाहर निकल आया। उसका मित्र काशिराज उसके पीछे-पीछे रक्षक के रूप में आया। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड की विनाश-अग्नि सभी दिशाओं के हर जीव को जला डालती है उसी तरह कृष्ण ने पौण्ड्रक तथा काशिराज की सेनाओं का संहार कर डाला। तत्पश्चात्

पौण्ड्रक को प्रताड़ित करके उन्होंने उसका तथा काशिराज दोनों के सिर अपने सुदर्शन चक्र से काट डाले। तत्पश्चात् वे द्वारका लौट आये। चूँकि पौण्ड्रक भगवान् का निरन्तर ध्यान करता रहा था, यहाँ तक कि उन्हीं के समान वेश धारण करता रहा था इसलिए उसे मुक्ति मिल गई।

जब कृष्ण ने काशिराज का सिर काटा तो उसका सिर उसके नगर में उड़ गया। जब उसकी रानियों, पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों ने इस सिर को देखा तो वे सभी लोग शोकमग्न हो गये। उसी समय अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए पौण्ड्रक-पुत्र सुदक्षिण शिवजी की पूजा करने लगा ताकि वह अपने पिता के हत्यारे को नष्ट कर सके। सुदक्षिण की पूजा से प्रसन्न होकर शिवजी ने उससे वर माँगने के लिए कहा तो उसने अपने पिता के हत्यारे का वध करने के लिए साधनों की याचना की। शिवजी ने उससे कहा कि वह इन्द्रजाल से दक्षिणाग्नि की पूजा करे। सुदक्षिण ने ऐसा ही किया। फलस्वरूप यज्ञकुण्ड की लपटों से सशरीर एक भयानक असुर प्रकट हुआ। यह असुर भयानक त्रिशूल लिए बाहर आया और तुरन्त ही द्वारका के लिए चल पड़ा।

जब यह असुर द्वारका पहुँचा तो वहाँ के लोग भयभीत हो उठे किन्तु कृष्ण ने उन्हें सुरक्षा का आश्वासन दिया और शिवजी की इन्द्रजाल सृष्टि का सामना करने के लिए अपने सुदर्शन चक्र को भेजा। सुदर्शन ने असुर को हरा दिया। वह असुर वाराणसी लौट आया और उसने सुदक्षिण तथा उसके पुरोहितों को भस्म कर दिया। सुदर्शन चक्र असुर का पीछा करते हुए वाराणसी में प्रविष्ट हुआ और पूरी नगरी को भस्म कर दिया। तब भगवान् का यह चक्र उनके पास द्वारका लौट आया।

श्रीशुक उवाच
नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ।
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; **नन्द**—महाराज नन्द के; **व्रजम्**—ग्वालों के ग्राम की ओर; **गते**—चले जाने पर; **रामे**—बलराम के; **करूष-अधिपतिः**—करूष के शासक (पौण्ड्रक) ने; **नृप**—हे राजा (परीक्षित); **वासुदेवः**—भगवान्, वासुदेव; **अहम्**—मैं; **इति**—इस प्रकार सोचते हुए; **अज्ञः**—मूर्ख; **दूतम्**—संदेशवाहक को; **कृष्णाय**—भगवान् कृष्ण के पास; **प्राहिणोत्**—भेजा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, जब बलराम नन्द के ग्राम व्रज को देखने गये हुए थे तो करूष के राजा ने मूखर्तापूर्वक यह सोचकर कि ''मैं भगवान् वासुदेव हूँ'' भगवान् कृष्ण के पास अपना दूत भेजा।

तात्पर्य : चूँकि बलराम नन्द-व्रज गये हुए थे इसलिए पौण्ड्रक ने मूर्खतापूर्वक सोचा कि अब तो कृष्ण अकेले होंगे अत: उन्हें ललकारना आसान होगा। फलत: उसने भगवान् के पास अपना सिरफिरा संदेश भेजने का दुस्साहस किया।

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ।
इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥ २॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; वासुदेवः—वासुदेव; भगवान्—भगवान्; अवतीर्णः—अवतरित; जगत्—ब्रह्माण्ड के; पतिः—स्वामी; इति—इस प्रकार; प्रस्तोभितः—चापलूसी में आकर, बहकावे में आकर; बालैः—बचकाने मनुष्यों द्वारा; मेने—उसने कल्पना की; आत्मानम्—अपने को; अच्युतम्—अच्युत भगवान्।

पौण्ड्रक मूर्ख लोगों की चापलूसी में आ गया जिन्होंने उससे कहा, ''तुम भगवान् वासुदेव हो और ब्रह्माण्ड के स्वामी के रूप में अब पृथ्वी में अवतरित हुए हो।'' इस तरह वह अपने आपको भगवान् अच्युत मान बैठा।

तात्पर्य : पौण्ड्रक ने मूर्खतावश अज्ञानी व्यक्तियों की चापलूसी मान ली।

दूतं च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ।
द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ॥

शब्दार्थ

दूतम्—दूत को; च—तथा; प्राहिणोत्—भेजा; मन्दः—मन्द बुद्धि; कृष्णाय—कृष्ण के पास; अव्यक्त—अकथ्य; वर्त्मने—जिसका मार्ग; द्वारकायाम्—द्वारका में; यथा—जिस तरह; बालः—बालक; नृपः—राजा; बाल—बालकों द्वारा; कृतः—बनाया गया; अबुधः—मूर्ख।

अतएव उस मन्द बुद्धि पौण्ड्रक ने अव्यक्त भगवान् कृष्ण के पास द्वारका में एक दूत भेजा। पौण्ड्रक ऐसे मूर्ख बालक की तरह आचरण कर रहा था जिसे अन्य बालक राजा मान लेते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार पौण्ड्रक के कृष्ण के पास दूत भेजने का शुकदेव गोस्वामी द्वारा दुबारा उल्लेख किये जाने का कारण यह है कि महामुनि स्वयं पौण्ड्रक की निपट मूर्खता पर चकित हैं।

दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ।
कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४॥

शब्दार्थ

दूतः—सन्देशवाहक ने; तु—तब; द्वारकाम्—द्वारका में; एत्य—पहुँच कर; सभायाम्—राजसभा में; आस्थितम्—उपस्थित; प्रभुम्—सर्वशक्तिमान स्वामी; कृष्णम्—कृष्ण से; कमल—कमल की; पत्र—पंखुड़ियों (सदृश); अक्षम्—आँखों वाले; राज—अपने राजा का; सन्देशम्—सन्देश; अब्रवीत्—कहा।

द्वारका पहुँचने पर दूत ने कमल-नेत्र कृष्ण को उनकी राजसभा में उपस्थित पाया। उसने राजा का सन्देश उन सर्वशक्तिमान प्रभु को कह सुनाया।

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

वासुदेवः—वासुदेव; अवतीर्णः—इस जगत में अवतरित हुआ; अहम्—मैं; एकः एव—एकमात्र; न—नहीं; च—तथा; अपरः—दूसरा कोई; भूतानाम्—जीवों पर; अनुकम्पा—दया दिखाने के; अर्थम्—हेतु; त्वम्—तुम; तु—किन्तु; मिथ्या—झूठा; अभिधाम्—उपाधि; त्यज—छोड़ दो।

[पौण्ड्रक की ओर से दूत ने कहा] : मैं ही एकमात्र भगवान् वासुदेव हूँ और दूसरा कोई नहीं है। मैं ही इस जगत में जीवों पर दया दिखलाने के लिए अवतरित हुआ हूँ। अतः तुम अपना झूठा नाम छोड़ दो।

तात्पर्य : देवी सरस्वती की प्रेरणा से श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इन दो श्लोकों का असली आशय प्रस्तुत करते हैं: ''मैं वासुदेव अवतार नहीं हूँ अपितु तुम्हीं वासुदेव हो, अन्य कोई नहीं है। चूँकि तुम जीवों पर दया दिखलाने के लिए अवतरित हुए हो अतः मेरी यह झूठी उपाधि छुड़वाइये जो उस सीप की तरह है, जो अपने को चाँदी मान बैठी है।'' भगवान् निश्चित रूप से इस अनुरोध को पूरा करेंगे।

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत ।
त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यानि—जिन; त्वम्—तुम; अस्मत्—हमारे; चिह्नानि—प्रतीकों को; मौढ्यात्—मूढ़तावश; बिभर्षि—धारण करते हो; सात्वत—हे सात्वतों में प्रमुख; त्यक्त्वा—छोड़ कर; एहि—आओ; माम्—मेरी; त्वम्—तुम; शरणम्—शरण के लिए; न—नहीं; उ—अन्यथा; चेत्—यदि; देहि—दो; मम—मुझको; आहवम्—युद्ध।

हे सात्वत, तुम मेरे निजी प्रतीकों को छोड़ दो जिन्हें इस समय तुम मूर्खतावश धारण करते हो और आकर मेरी शरण लो। यदि तुम ऐसा नहीं करते तो मुझसे युद्ध करो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पुनः सरस्वती देवी की प्रेरणा से पौण्ड्रक के शब्दों की व्याख्या करते हैं। तदनुसार उनका अर्थ होगा, ''मैंने मूढ़तावश नकली शंख, चक्र, कमल तथा गदा धारण कर रखे हैं और आप मुझे इनका उपयोग करने की अनुमति देकर इनको बनाए रखे हुए हो। आप अभी

तक मुझे वश में करके इन नकली प्रतीकों को हटा नहीं पाये। अत: कृपा करके आइये और मुझे इन्हें त्यागने के लिए बाध्य करके मुझे मुक्त कीजिये। मेरे साथ युद्ध करके मुझे मार कर मुझे मोक्ष प्रदान कीजिये।''

श्रीशुक उवाच
कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ।
उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कत्थनम्—शेखी बघारने, डींग हाँकने को; तत्—उस; उपाकर्ण्य—सुनकर; पौण्ड्रकस्य—पौण्ड्रक की; अल्प—छोटी; मेधसः—बुद्धि वाले; उग्रसेन-आदयः—राजा उग्रसेन इत्यादि; सभ्याः—सभा के सदस्य; उच्चकैः—जोरों से; जहसुः—हँसने लगे; तदा—तब।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब अज्ञानी पौण्ड्रक की इस व्यर्थ की डींग को राजा उग्रसेन तथा सभा के अन्य सदस्यों ने सुना तो वे जोर-जोर से हँसने लगे।

उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु ।
उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८॥

शब्दार्थ

उवाच—कहा; दूतम्—दूत से; भगवान्—भगवान्; परिहास—हँसी-मजाक; कथाम्—वाद-विवाद के; अनु—बाद; उत्स्रक्ष्ये—मैं फेंक दूँगा; मूढ—हे मूर्ख; चिह्नानि—प्रतीक; यैः—जिनके बारे में; त्वम्—तुम; एवम्—इस तरह से; विकत्थसे—डींग मार रहे हो।

सभा के हँसी-मजाक का आनन्द लेने के बाद भगवान् ने दूत से (अपने स्वामी को सूचित करने के लिए) कहा, ''रे मूर्ख! मैं निस्सनदेह उन हथियारों को फेंक दूँगा जिनके विषय में तुम इस तरह डींग मार रहे हो।''

तात्पर्य : संस्कृत के शब्द *उत्स्रक्ष्ये* के अर्थ हैं, ''मैं फेंक दूँगा, छोड़ूँगा।'' मूर्ख पौण्ड्रक ने चाहा था कि भगवान् कृष्ण अपने शक्तिशाली हथियार—यथा गदा तथा चक्र—का परित्याग कर दें। यहाँ भगवान् उत्तर देते हैं—*उत्स्रक्ष्ये मूढ चिन्हानि*—हाँ, मूर्ख, जब हम युद्धभूमि में मिलेंगे तो मैं इन हथियारों को छोड़ूँगा।

लीला पुरुषोत्तम *भगवान् श्रीकृष्ण* नामक पुस्तक में श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का वर्णन सुंदर रीति से इस प्रकार किया है : ''जब राजा उग्रसेन समेत राजसभा के लोगों ने पौण्ड्रक द्वारा भेजा गया सन्देश सुना तो बड़ी देर तक वे जोर-जोर से हँसते रहे। सभा के सारे सदस्यों के अट्टहास का मजा ले चुकने

के बाद कृष्ण ने उस दूत को यह उत्तर दिया, ''हे पौण्ड्रक के दूत! तुम अपने स्वामी के पास मेरा सन्देश ले जाओ। वह निपट धूर्त है। मैं उसे धूर्त ही कहता हूँ और मैं उसके आदेशों का पालन करने से इनकार करता हूँ। मैं कभी भी वासुदेव के प्रतीकों, विशेषतया चक्र का परित्याग नहीं करूँगा। मैं इस चक्र का प्रयोग न केवल पौण्ड्रक का अपितु उसके सारे अनुयायियों का भी वध करने के लिए करूँगा। मैं इस पौण्ड्रक तथा उसके मूर्ख संगियों का विनाश कर दूँगा जो कि वञ्चकों तथा वञ्चितों के समाज के समान हैं।''

मुखं तदपिधायाज्ञ कङ्कगृध्रवटैर्वृतः ।
शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९॥

शब्दार्थ

मुखम्—मुख को; तत्—उस; अपिधाय—ढक कर; अज्ञ—रे अज्ञानी; कङ्क—चील्हों; गृध्र—गीधों; वटैः—वट पक्षियों से; वृतः—घिरा; शयिष्यसे—तुम सो जाओगे; हतः—मारे हुए; तत्र—तत्पश्चात्; भविता—तुम बनोगे; शरणम्—आश्रय; शुनाम्—कुत्तों के।

''रे मूर्ख! जब तुम मारे जाओगे और तुम्हारा मुख गीधों, चील्हों तथा वट पक्षियों से ढका रहेगा तो तुम कुत्तों का आश्रय-स्थल बनोगे।''

तात्पर्य : पौण्ड्रक ने मूर्खतावश भगवान् को अपनी शरण में आने के लिए कहला भेजा था किन्तु यहाँ भगवान् उसे कहला भेजते हैं, ''तुम मेरी शरण नहीं हो अपितु तुम कुत्तों की शरण बनोगे जब वे तुम्हारे शव को प्रसन्नतापूर्वक खायेंगे।''

श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का विस्तृत वर्णन किया है, ''[भगवान् कृष्ण ने पौण्ड्रक से कहा, ''जब मैं तुम्हारा विनाश करूँगा] रे मूर्ख राजा, तब तुम्हें शर्म से अपना मुख छिपाना पड़ेगा और जब मेरे चक्र से तुम्हारा सिर तुम्हारे शरीर से कट कर अलग होगा तो मांसभक्षी पक्षी, यथा चील्ह, गीध तथा बाज तुम्हें घेर लेंगे। उस समय तुम मेरी शरण बनने के बजाय जो तुमने माँगी है, इन अधम पक्षियों की कृपा के पात्र होगे। उस समय तुम्हारा शरीर कुत्तों के सामने फेंक दिया जायेगा जिसे वे बड़े ही हर्ष से खायेंगे।''

इति दूतस्तमाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ।
कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार कह कर; दूतः—दूत; तम्—उन; आक्षेपम्—अपमानों को; स्वामिने—अपने स्वामी के प्रति; सर्वम्—पूर्णतः; आहरत्—ले गया; कृष्णः—कृष्ण; अपि—तथा; रथम्—अपने रथ पर; आस्थाय—सवार होकर; काशीम्—वाराणसी; उपजगाम ह—के निकट गये।

जब भगवान् इस तरह बोल चुके तो उनके अपमानपूर्ण उत्तर को उस दूत ने अपने स्वामी के पास जाकर पूरी तरह कह सुनाया। तब भगवान् कृष्ण अपने रथ पर सवार हुए और काशी के निकट गये।

तात्पर्य : लीला पुरुषोत्तम *भगवान् श्री कृष्ण* नामक पुस्तक में श्रील प्रभुपाद ने उक्त घटना का वर्णन इस प्रकार किया है : ''वह दूत कृष्ण का सन्देश अपने स्वामी पौण्ड्रक के पास लाया जिसने इन सारे अपमानों को धैर्यपूर्वक सुना। बिना विलम्ब किये श्रीकृष्ण तुरन्त ही धूर्त पौण्ड्रक को दण्ड देने के लिए अपने रथ पर सवार होकर चल दिये। चूँकि उस समय करूषराज (पौण्ड्रक) अपने मित्र काशीराज के पास रह रहा था इसलिए कृष्ण ने सम्पूर्ण काशी नगरी को घेर लिया।''

पौण्ड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ।
अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

पौण्ड्रकः—पौण्ड्रक; अपि—तथा; तत्—उसका; उद्योगम्—तैयारी; उपलभ्य—देखकर; महा-रथः—बलशाली योद्धा; अक्षौहिणीभ्याम्—दो अक्षौहिणियों द्वारा; संयुक्तः—साथ हो लिए; निश्चक्राम—बाहर गया; पुरात्—नगर से; द्रुतम्—तुरन्त।

भगवान् कृष्ण द्वारा युद्ध की तैयारी को देखते हुए बलशाली योद्धा पौण्ड्रक तुरन्त ही दो अक्षौहिणी सेना के साथ नगर के बाहर निकल आया।

तस्य काशीपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौण्ड्रकं हरिः ॥ १२ ॥
शङ्खार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ।
बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १ ॥
कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ।
अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका (पौण्ड्रक का); काशी-पतिः—काशी का स्वामी; मित्रम्—मित्र; पार्ष्णि-ग्राहः—पीछे से रक्षक के रूप में; अन्वयात्—पीछे पीछे गया; नृप—हे राजा (परीक्षित); अक्षौहिणीभिः—अक्षौहिणियों समेत; तिसृभिः—तीन; अपश्यत्—देखा; पौण्ड्रकम्—पौण्ड्रक को; हरिः—कृष्ण ने; शङ्ख—शंख; अरि—चक्र; असि—तलवार; गदा—गदा; शार्ङ्ग—शार्ङ्ग धनुष; श्रीवत्स—वक्षस्थल पर बालों का श्रीवत्स चिह्न सहित; आदि—तथा अन्य प्रतीक; उपलक्षितम्—अंकित; बिभ्राणम्—

धारण किये हुए; कौस्तुभ-मणिम्—कौस्तुभ मणि; वन-माला—जंगली फूलों की माला से; विभूषितम्—सुशोभित; कौशेय—सुन्दर रेशम के; वाससी—वस्त्रों की जोड़ी; पीते—पीत; वसानम्—पहने; गरुड-ध्वजम्—जिसके झंडे में गरुड़ अंकित है; अमूल्य—अनमोल; मौलि—मुकुट; आभरणम्—आभूषण; स्फुरत्—चमकते हुए; मकर—मकर के आकार वाले; कुण्डलम्—कुण्डलों सहित।

हे राजन्, पौण्ड्रक का मित्र काशीराज उसके पीछे पीछे गया और वह तीन अक्षौहिणी सेना समेत पीछे के रक्षकों की अगुआई कर रहा था। भगवान् कृष्ण ने देखा कि पौण्ड्रक भगवान् के ही प्रतीक यथा शंख, चक्र, तलवार तथा गदा और दिखावटी शार्ङ्ग धनुष तथा श्रीवत्स चिन्ह भी धारण किये था। वह नकली कौस्तुभ मणि भी पहने था। वह जंगली फूलों की माला से सुशोभित था और ऊपर और नीचे उत्तम पीले रेशमी वस्त्र पहने था। उसके झंडे में गरुड़ का चिन्ह था और वह मूल्यवान मुकुट तथा चमचमाते मकराकृति वाले कुंडल पहने था।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में टीका की है, ''जब दोनों राजा कृष्ण का सामना करने भगवान् के समक्ष आये तो कृष्ण ने पहली बार पौण्ड्रक को आमने-सामने देखा।''

दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यं वेषं कृत्रिममास्थितम् ।
यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरीः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; तम्—उसको; आत्मनः—अपने ही; तुल्यम्—तुल्य, समान; वेषम्—वेश में; कृत्रिमम्—कृत्रिम, नकली; आस्थितम्—सजाये हुए; यथा—सदृश; नटम्—अभिनयकर्ता; रङ्ग—मंच में; गतम्—प्रवेश हुआ; विजहास—हँसे; भृशम्—खूब कस कर; हरिः—भगवान् कृष्ण।

जब भगवान् हरि ने देखा कि राजा ने उन्हीं जैसा अपना वेश बना रखा है, जिस तरह मंच पर कोई अभिनेता करता है, तो वे खूब हँसे।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है : ''कुल मिलाकर पौण्ड्रक की वेशभूषा तथा पहनावा स्पष्ट रूप से बनावटी थे। कोई भी समझ सकता था कि वह बनावटी वेशभूषा में मञ्च पर वासुदेव का नाटक करने वाला कोई व्यक्ति था। जब श्रीकृष्ण ने पौण्ड्रक को अपनी भंगिमा तथा वेशभूषा का अनुकरण किये देखा तो वे अपनी हँसी रोक नहीं पाये, अतः वे जीभरकर हँसे।''

श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि भगवान् की वेशभूषा तथा उनकी चाल-ढाल का पूर्णतया अनुकरण करने के लिए पौण्ड्रक को शिवजी से वर प्राप्त था—यह तथ्य *पद्म पुराण* के उत्तरखण्ड में पाया जाता है।

शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ।
असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

शूलैः—त्रिशूल से; गदाभिः—गदा से; परिघैः—नेचों से; शक्ति—शक्ति; ऋष्टि—एक प्रकार की तलवार; प्रास—लम्बा नुकीला अस्त्र; तोमरैः—तथा भालों से; असिभिः—तलवारों से; पट्टिशैः—कुल्हाड़ियों से; बाणैः—तथा बाणों से; प्राहरन्—आक्रमण किया; अरयः—शत्रुओं ने; हरिम्—भगवान् कृष्ण पर।

भगवान् हरि के शत्रुओं ने उन पर त्रिशूलों, गदाओं, नेचों, शक्तियों, ऋष्टियों, प्रासों, तोमरों, तलवारों, कुल्हाड़ियों तथा बाणों से आक्रमण किया।

कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयोर्
बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् ।
गदासिचक्रेषुभिरार्दयद्भृशं
यथा युगान्ते हुतभुक्पृथक्प्रजाः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः—कृष्ण; तु—किन्तु; तत्—उस; पौण्ड्रक-काशिराजयोः—पौण्ड्रक तथा काशिराज की; बलम्—सेना को; गज—हाथी; स्यन्दन—रथ; वाजि—घोड़े; पत्ति—तथा पैदल; मत्—से युक्त; गदा—गदा; असि—तलवार; चक्र—चक्र; इसुभिः—तथा बाणों से; आर्दयत्—रौंदते हुए; भृशम्—बुरी तरह से; यथा—जिस प्रकार; युग—ऐतिहासिक युग के; अन्ते—अन्त में; हुत-भुक्—अग्नि (प्रलयंकारी); पृथक्—विभिन्न प्रकार के; प्रजाः—जीव।

किन्तु भगवान् कृष्ण ने पौण्ड्रक तथा काशिराज की सेना पर भीषण वार किया, जिसमें हाथी, रथ, घोड़े तथा पैदल सम्मिलित थे। भगवान् ने अपनी गदा, तलवार, सुदर्शन चक्र तथा बाणों से अपने शत्रुओं को उसी तरह रौंद दिया जिस तरह युगान्त में प्रलयाग्नि विविध प्रकारके प्राणियों को रौंदती है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में इस तरह टीका की है : ''राजा पौण्ड्रक के पक्ष के सैनिक कृष्ण पर अपने हथियारों की वर्षा करने लगे। हथियारों में त्रिशूल, गदा, ख भे, भाले, तलवारें, खंजर तथा बाण थे, जो लहरों की तरह उड़ते आ रहे थे और कृष्ण उनका सामना कर रहे थे। उन्होंने न केवल इन हथियारों को नष्ट-भ्रष्ट किया अपितु पौण्ड्रक के सिपाहियों तथा सहायकों को भी नष्ट कर दिया जिस तरह इस ब्रह्माण्ड के प्रलय के समय विनाश की अग्नि हर वस्तु को जलाकर स्वाहा कर देती है। विपक्षी दल के हाथी, रथ, घोड़े तथा पैदल सिपाही कृष्ण के हथियारों से तितर-बितर हो गये।''

आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जर-
द्विपत्खरोष्ट्रैररिणावखण्डितैः ।
बभौ चितं मोदवहं मनस्विना-
माक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

आयोधनम्—युद्धभूमि; तत्—उस; रथ—रथों; वाजि—घोड़ों; कुञ्जर—हाथियों; द्विपत्—दो पैर वालों (मनुष्यों); खर—गदहों; उष्ट्रैः—तथा ऊँटों से; अरिणा—अपने चक्र से; अवखण्डितैः—खण्ड खण्ड किये; बभौ—चमक रही थी; चितम्—फैले हुए; मोद—हर्ष; वहम्—लाते हुए; मनस्विनाम्—बुद्धिमान को; आक्रीडनम्—खेल का मैदान, अखाड़ा; भूत-पतेः—भूतों के स्वामी, शिवजी के; इव—सदृश; उल्बणम्—भयंकर।

भगवान् के चक्र द्वारा खण्ड-खण्ड किये गये रथों, घोड़ों, हाथियों, मनुष्यों, खच्चरों तथा ऊँटों से पटा हुआ युद्ध क्षेत्र उसी तरह चमक रहा था मानो विद्वान को आनन्द प्रदान करने वाला भूतपति का भयावना अखाड़ा हो।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है : ''यद्यपि विध्वंस किया हुआ युद्ध क्षेत्र संसार के प्रलय के समय शिवजी के नृत्य-स्थल जैसा लग रहा था किन्तु कृष्ण के पक्ष के योद्धा इस दृश्य को देखकर अत्यन्त प्रोत्साहित थे और वे और अधिक शक्ति से युद्ध कर रहे थे।''

अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भो पौण्ड्रक यद्भवान् ।
दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; आह—कहा; पौण्ड्रकम्—पौण्ड्रक से; शौरिः—भगवान् कृष्ण ने; भोः भोः पौण्ड्रक—अरे पौण्ड्रक; यत्—जो; भवान्—आपने; दूत—दूत के; वाक्येन—शब्दों से; माम्—मुझसे; आह—कहा; तानि—वे; अस्त्राणि—हथियार; उत्सृजामि—मैं छोड़ रहा हूँ; ते—तुम्हारे ऊपर।

तब भगवान् कृष्ण ने पौण्ड्रक को सम्बोधित किया : रे पौण्ड्रक! तूने अपने दूत के माध्यम से जिन हथियारों के लिए कहलवाया था अब मैं उन्हीं को तुझ पर छोड़ रहा हूँ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में इस प्रकार लिखा है : ''इस समय भगवान् कृष्ण ने पौण्ड्रक से कहा, ''पौण्ड्रक! तुमने मुझसे भगवान् विष्णु के प्रतीकों को विशेषतया मेरे चक्र को छोड़ने के लिए अनुरोध किया था। अब मैं इसे तुझ पर छोड़ूँगा। सावधान! तू झूठे ही मेरा अनुकरण करते हुए अपने को वासुदेव घोषित कर रहा है। अतः तुझसे बढ़कर मूर्ख कोई नहीं है।'' कृष्ण के इस कथन से स्पष्ट है कि जो भी धूर्त अपने को ईश्वर घोषित करता है, वह मानव समाज में सबसे बड़ा मूर्ख है।''

त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाज्ञ मृषा धृतम् ।
व्रजामि शरनं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

त्याजयिष्ये—(तुमसे) छुड़वाकर रहूँगा; अभिधानम्—उपाधि; मे—मेरा; यत्—जो; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अज्ञ—रे मूर्ख; मृषा—झूठे ही; धृतम्—धारण किये हुए; व्रजामि—जाऊँगा; शरणम्—शरण में; ते—तुम्हारी; अद्य—आज; यदि—यदि; न इच्छामि—नहीं चाहता हूँ; संयुगम्—युद्ध।

रे मूर्ख! अब मैं तुझसे अपना नाम छुड़वाकर रहूँगा जिसे तूने झूठे ही धारण कर रखा है। मैं तब अवश्य ही तेरी शरण ग्रहण करूँगा यदि मैं तुझसे युद्ध नहीं करना चाहूँगा।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद इस तरह लिखते है : ''हे पौण्ड्रक! अब मैं तुम्हें यह झूठा प्रतिनिधित्व त्यागने के लिए बाध्य कर दूँगा। तूने चाहा है कि मैं तेरी शरण लूँ। अब तेरी बारी है। अब हम लड़ेंगे और यदि मैं हारा और तू विजयी हुआ तो मैं अवश्य ही तेरी शरण आ जाऊँगा।''

इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ।
शिरोऽवृश्चद्रथाङ्गेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों के साथ; क्षिप्त्वा—चिढ़ाते हुए; शितैः—तेज; बाणैः—बाणों से; विरथी—रथविहीन; कृत्य—करके; पौण्ड्रकम्—पौण्ड्रक को; शिरः—उसका सिर; अवृश्चत्—काट लिया; रथ-अङ्गेन—अपने सुदर्शन चक्र से; वज्रेण—अपने वज्र से; इन्द्रः—इन्द्र; यथा—जिस तरह; गिरेः—पर्वत का।

पौण्ड्रक को इस तरह चिढ़ा कर भगवान् कृष्ण ने अपने तेज बाणों से उसका रथ विनष्ट कर दिया। फिर भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर उसी तरह काट लिया जिस तरह इन्द्र अपने वज्र से पर्वत की चोटी को काट गिराता है।

तथा काशीपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः ।
न्यपातयत्काशीपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तथा—उसी तरह; काशी-पतेः—काशिराज के; कायात्—शरीर से; शिरः—सिर; उत्कृत्य—काट कर; पत्रिभिः—अपने बाणों से; न्यपातयत्—उड़ते हुए भेज दिया; काशि-पुर्याम्—काशी नगरी में; पद्म—कमल के; कोशम्—फूल के कोश को; इव—सदृश; अनिलः—वायु।

भगवान् कृष्ण ने अपने बाणों से काशिराज के सिर को उसके शरीर से उसी तरह काट कर उसे काशी नगरी में जा गिराया मानो वायु द्वारा फेंका गया कमल का फूल हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने बतलाया है कि कृष्ण ने काशिराज के सिर को शहर में क्यों फेंका: ''काशिराज ने युद्ध में जाते समय नागरिकों को वचन दिया था, 'हे काशीवासियो! आज मैं शत्रु

का सिर काट कर नगर में लाऊँगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं मानो।' राजा की पापी रानियों ने भी अपनी दासियों से डींग मारते कहा था, ''आज हमारे स्वामी द्वारका के प्रभु का सिर अवश्य लायेंगे।'' इसीलिए भगवान् ने काशी निवासियों को चकित करने के लिए राजा का सिर नगर में फेंक दिया।''

एवं मत्सरिणम्हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः ।
द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥ २३॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मत्सरिणम्—ईर्ष्यालु; हत्वा—मार कर; पौण्ड्रकम्—पौण्ड्रक को; स—सहित; सखम्—उसके मित्र; हरिः—भगवान् कृष्ण; द्वारकाम्—द्वारका में; आविशत्—प्रवेश किया; सिद्धैः—स्वर्ग के योगियों द्वारा; गीयमान—गायी जाकर; कथा—उनके विषय में कथाएँ; अमृतः—अमृत तुल्य।

इस तरह ईर्ष्यालु पौण्ड्रक तथा उसके सहयोगी का वध करने के बाद भगवान् कृष्ण द्वारका लौट गये। ज्योंही वे नगर में प्रविष्ट हुए स्वर्ग के सिद्धों ने उनकी अमर अमृतमयी महिमा का गान किया।

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ।
बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सः—वह (पौण्ड्रक); नित्यम्—निरन्तर; भगवत्—भगवान् के; ध्यान—ध्यान द्वारा; प्रध्वस्त—पूर्णतया ध्वस्त; अखिल—समस्त; बन्धनः—बन्धन; बिभ्राणः—मानते हुए; च—तथा; हरेः—भगवान् कृष्ण का; राजन्—हे राजा (परीक्षित); स्वरूपम्—साकार रूप; तत्-मयः—उनकी चेतना में लीन; अभवत्—हो गया।

निरन्तर भगवान् का ध्यान करते रहने से पौण्ड्रक ने अपने सारे भौतिक बन्धनों को ध्वंस कर दिया था। हे राजन्, निस्सन्देह भगवान् कृष्ण के स्वरूप का अनुकरण करके अन्ततोगत्वा वह कृष्णभावनाभावित हो गया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में लिखा है : ''जहाँ तक पौण्ड्रक का सम्बन्ध था वह भगवान् वासुदेव की भाँति मिथ्या ही वेश धारण करके किसी न किसी प्रकार से उनका चिन्तन करता रहता था। इसीलिए पौण्ड्रक को मुक्ति के पाँच प्रकारों में से सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुई। इस तरह उसे वैकुण्ठ लोक में स्थान प्राप्त हुआ जहाँ भक्तगण भी अपने चारों हाथों में चार प्रतीक धारण करने वाले विष्णु के समान शरीर धारण किये रहते हैं। यथार्थ में पौण्ड्रक का ध्यान विष्णु रूप पर केन्द्रित था किन्तु वह अपने आपको विष्णु समझता था, जो कि अपराध था। किन्तु कृष्ण द्वारा वध हो जाने पर वह

अपराध भी जाता रहा। इस तरह उसे सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुई और उसे भगवान् के ही समान रूप मिल गया।''

शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ।
किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशिशिरे जनाः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

शिरः—सिर; पतितम्—गिरा हुआ; आलोक्य—देखकर; राज-द्वारे—राजमहल के द्वार पर; स-कुण्डलम्—कुण्डल सहित; किम्—क्या; इदम्—यह है; कस्य—किसका; वा—अथवा; वक्त्रम्—सिर; इति—इस प्रकार; संशिशिरे—सन्देह व्यक्त किया; जनाः—लोगों ने।

राजमहल के द्वार पर पड़े हुए कुण्डल से विभूषित सिर को देखकर वहाँ पर उपस्थित सारे लोग चकित थे। उनमें से कुछ ने पूछा, ''यह क्या है?'' और दूसरों ने कहा, ''यह सिर है लेकिन, यह है किसका?''

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद इस प्रकार लिखते हैं: ''जब काशिराज का सिर नगरद्वार के भीतर आ गिरा तो लोग वहाँ एकत्र हो गये और उस अद्‌भुत वस्तु को देखकर वे चकित रह गये। जब उन्होंने देखा कि उसमें कुण्डल भी हैं, तो वे समझ गए कि यह किसी मनुष्य का सिर है। वे अनुमान लगाने लगे कि यह किसका सिर हो सकता है। कुछ लोगों ने सोचा कि यह कृष्ण का सिर है क्योंकि श्रीकृष्ण काशिराज के शत्रु थे और उन्होंने अनुमान लगाया कि हो न हो काशिराज ने उनका सिर नगर में इसलिए फेंका है कि लोग शत्रु के वध से प्रसन्न हो सकें। किन्तु अन्त में यह पता चल गया कि वह सिर कृष्ण का नहीं अपितु स्वयं काशिराज का था।''

राज्ञः काशीपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः ।
पौराश्च हा हता राजन्नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

राज्ञः—राजा का; काशी-पतेः—काशी के स्वामी; ज्ञात्वा—पहचान कर; महिष्यः—उसकी रानियाँ; पुत्र—उसके पुत्र; बान्धवाः—तथा उसके अन्य सम्बन्धी; पौराः—नगर के निवासी; च—तथा; हा—हाय; हताः—(हम) मारे गये; राजन्—हे राजा (परीक्षित); नाथ नाथ—हे नाथ, हे नाथ; इति—इस प्रकार; प्रारुदन्—जोर जोर से विलखने लगे।

हे राजन्, जब उन लोगों ने पहचाना कि यह उनके राजा—काशीपति का सिर है, तो उसकी रानियाँ, पुत्र तथा अन्य सम्बन्धी एवं नगर के सारे निवासी ''हाय! हम मारे गये! हे नाथ, हे नाथ!'' कह कर रोने लगे।

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पतेः ।
निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७॥
इत्यात्मनाभिसन्धाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ।
सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥ २८॥

शब्दार्थ

सुदक्षिणः—सुदक्षिण नामक; तस्य—उसका (काशिराज का); सुतः—पुत्र; कृत्वा—सम्पन्न करके; संस्था-विधिम्—दाह-संस्कार; पतेः—अपने पिता का; निहत्य—मार कर; पितृ—पिता का; हन्तारम्—मारने वाले को; यास्यामि—ले सकूँगा; अपचितिम्—बदला; पितुः—अपने पिता का; इति—इस प्रकार; आत्मना—अपनी बुद्धि से; अभिसन्धाय—निश्चय करके; स—सहित; उपाध्यायः—पुरोहितों; महा-ईश्वरम्—शिवजी की; सु-दक्षिणः—अत्यन्त दानी होने से; अर्चयाम् आस—पूजा की; परमेण—अत्यधिक; समाधिना—ध्यान से।

जब राजा का पुत्र सुदक्षिण अपने पिता का दाह-संस्कार कर चुका तो उसने अपने मन में निश्चय किया, "मैं अपने पिता के हत्यारे का वध करके ही उसकी मृत्यु का बदला ले सकता हूँ।" इस तरह दानी सुदक्षिण अपने पुरोहितों सहित बहुत ही लगन से भगवान् महेश्वर की पूजा करने लगा।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, "काशिराज के स्वामी विश्वनाथ (शिवजी) हैं। भगवान् विश्वनाथ का मन्दिर अभी भी काशी में है और प्रतिदिन हजारों तीर्थयात्री अब भी मन्दिर में एकत्र होते हैं।"

प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद्विभुः ।
पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९॥

शब्दार्थ

प्रीतः—सन्तुष्ट; अविमुक्ते—अविमुक्त में, काशी जनपद के अन्तर्गत पवित्र स्थल में; भगवान्—शिवजी; तस्मै—उसको; वरम्—वर; अदात्—दिया; विभुः—शक्तिशाली देवता; पितृ—पिता का; हन्तृ—वध करने वाला; वध—हत्या करने के लिए; उपायम्—साधन; सः—उसने; वव्रे—चुना; वरम्—अपने वर के रूप में; ईप्सितम्—इच्छित।

पूजा से सन्तुष्ट होकर शक्तिशाली शिवजी अविमुक्त नामक पवित्र स्थल में प्रकट हुए और सुदक्षिण को इच्छित वर माँगने को कहा। राजकुमार ने अपने पिता के वध करने वाले की हत्या करने के साधन को ही अपने वर के रूप में चुना।

दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ।
अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ०॥

साधयिष्यति सङ्कल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ।
इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥ १ ॥

शब्दार्थ

दक्षिण-अग्निम्—दक्षिण अग्नि को; परिचर—तुम्हें सेवा करनी चाहिए; ब्राह्मणैः—ब्राह्मणों के; समम्—साथ; ऋत्विजम्—आदि पुरोहित को; अभिचार-विधानेन—अभिचार अनुष्ठान द्वारा (शत्रु को मारने या हानि पहुँचाने के लिए किया गया अनुष्ठान; सः—वह; च—तथा; अग्निः—अग्नि; प्रमथैः—प्रमथों द्वारा (शिवजी की टोली के शक्तिशाली योगी जो विभिन्न रूप धारण कर सकते हैं); वृतः—घिरे हुए; साधयिष्यति—सम्पन्न करेगा; सङ्कल्पम्—तुम्हारे मनोभाव को; अब्रह्मण्ये—ब्राह्मणों के शत्रु के विरुद्ध; प्रयोजितः—प्रयुक्त; इति—इस तरह; आदिष्टः—आदेश दिया हुआ; तथा—उसी तरह से; चक्रे—किया; कृष्णाय—कृष्ण के विरुद्ध; अभिचरन्—हानि पहुँचाने की इच्छा से; व्रती—व्रत करने वाला।

शिवजी ने कहा : ''तुम ब्राह्मणों के साथ अभिचार अनुष्ठान के आदेशों का पालन करते हुए आदि पुरोहित दक्षिणाग्नि की सेवा करो। तब दक्षिणाग्नि अनेक प्रमथों सहित तुम्हारी इच्छा पूरी करेगा यदि तुम इसे ब्राह्मणों से शत्रुता रखने वाले किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध निर्देशित कर सकोगे।'' इस प्रकार आदिष्ट सुदक्षिण ने अनुष्ठान व्रतों का दृढ़ता से पालन किया और कृष्ण के विरुद्ध अभिचार का आह्वान किया।

तात्पर्य : यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है कि शक्तिशाली दक्षिणाग्नि को केवल उस व्यक्ति के विरुद्ध निर्देशित किया जा सकता है, जो ब्राह्मण संस्कृति के प्रतिकूल हो। किन्तु कृष्ण तो ब्राह्मणों के सर्वाधिक अनुकूल हैं और यथार्थतः ब्राह्मण संस्कृति का पालन करने वाले हैं। इस प्रकार शिवजी जानते थे कि यदि सुदक्षिण इस अनुष्ठान की शक्ति का प्रयोग कृष्ण के विरुद्ध करेगा तो वह स्वयं मर जायेगा।

ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ।
तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥ २ ॥
दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया ।
आलिहन्सृक्वणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलत् ॥ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अग्निः—अग्नि; उत्थितः—उठा; कुण्डात्—यज्ञ वेदी के कुंड से; मूर्ति-मान्—साक्षात; अति—अत्यधिक; भीषणः—भयावना; तप्त—पिघले; ताम्र—ताँबे (जैसा); शिखा—चोटी; श्मश्रुः—दाढ़ी; अङ्गार—गर्म अंगारे; उद्गारि—उगलती हुई; लोचनः—आँखें; दंष्ट्र—दाँत; उग्र—भयावह; भ्रु—भौंहों के; कुटी—गड्ढों के; दण्ड—तथा तोरण से; कठोर—कर्कश; आस्यः—मुख; स्व—अपनी; जिह्वया—जीभ से; आलिहन्—चाटते हुए; सृक्वणी—अपने मुँह के कोनों को; नग्नः—नंग-धड़ंग; विधुन्वन्—हिलाता हुआ; त्रि-शिखम्—अपना त्रिशूल; ज्वलत्—लपलपाता।

तत्पश्चात् यज्ञकुण्ड से अत्यन्त भयावने नंग-धड़ंग पुरुष का रूप धारण कर अग्नि बाहर निकली। इस अग्नि सरीखे प्राणी की दाढ़ी तथा चोटी पिघले ताँबे जैसी थीं और उसकी आँखों

से जलते हुए गर्म अंगारे निकल रहे थे। उसका मुख दाढ़ों तथा भयावह कुटिल एवं गहरी भौंहों के साथ अत्यन्त भयावना लग रहा था। अपने मुख के कोनों को अपनी जीभ से चाटता हुआ यह असुर अपना ज्वलित त्रिशूल हिला रहा था।

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम् ।
सोऽभ्यधावद्वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन्दिशः ॥ ४॥

शब्दार्थ

पद्भ्याम्—अपने पैरों से; ताल—ताड़-वृक्षों की; प्रमाणाभ्याम्—माप वाला; कम्पयन्—हिलाता हुआ; अवनी—पृथ्वी के; तलम्—पृष्ठ को; सः—वह; अभ्यधावत्—दौड़ा; वृतः—घिर कर; भूतैः—भूत-प्रेतों के द्वारा; द्वारकाम्—द्वारका की ओर; प्रदहन्—जलाता हुआ; दिशः—दिशाओं को।

यह दैत्य ताड़-वृक्ष जैसी लंबी टाँगों से अपने साथ भूतों को लेकर, धरती को हिलाता तथा संसार को सभी दिशाओं में जलाता हुआ द्वारका की ओर भागा।

तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः ।
विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ५॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आभिचार—अभिचार अनुष्ठान से उत्पन्न; दहनम्—अग्नि को; आयान्तम्—निकट आते हुए; द्वारका-ओकसः—द्वारकावासी; विलोक्य—देखकर; तत्रसुः—भयभीत हो उठे; सर्वे—सभी; वन-दाहे—जंगल में आग लगने पर; मृगाः—पशु; यथा—जिस तरह।

अभिचार अनुष्ठान से उत्पन्न अग्नि तुल्य असुर को निकट आते देखकर द्वारका के सारे निवासी उसी तरह भयभीत हो उठे जिस तरह दावाग्नि (जंगल की अग्नि) से पशु भयभीत हो उठते हैं।

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः ।
त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥ ६॥

शब्दार्थ

अक्षैः—चौसर से; सभायाम्—राज-दरबार में; क्रीडन्तम्—खेलते हुए; भगवन्तम्—भगवान् को; भय—भय से; आतुराः—क्षुब्ध; त्राहि त्राहि—रक्षा करो, रक्षा करो; त्रि—तीन; लोक—लोकों के; ईश—हे स्वामी; वह्नेः—अग्नि से; प्रदहतः—जल रहे; पुरम्—नगर को।

भय से किंकर्तव्यविमूढ़ लोगों ने उस समय राज-दरबार में चौसर खेल रहे भगवान् के पास रो-रो कर कहा, ‘‘हे तीनों लोकों के स्वामी, नगर को जलाने वाली इस अग्नि से हमारी रक्षा कीजिये! रक्षा कीजिये!’’

श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ।
शरण्यः सम्प्रहस्याह मा भैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; तत्—यह; जन—जनता की; वैक्लव्यम्—विकलता; दृष्ट्वा—देखकर; स्वानाम्—अपने ही लोगों को; च—तथा; साध्वसम्—विक्षुब्ध; शरण्यः—शरण के सर्वोत्तम साधन ने; सम्प्रहस्य—जोर से हँस कर; आह—कहा; मा भैष्ट—मत डरो; इति—इस प्रकार; अविता अस्मि—संरक्षण प्रदान करूँगा; अहम्—मैं।

जब कृष्ण ने लोगों की व्याकुलता सुनी और देखा कि उनके अपने लोग भी विक्षुब्ध हैं, तो एकमात्र सर्वश्रेष्ठ शरणदाता हँस पड़े और उनसे कहा, ''डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।''

सर्वस्यान्तर्बहिःसाक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ।
विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ८॥

शब्दार्थ

सर्वस्य—सबों के; अन्तः—भीतर; बहिः—तथा बाहर के; साक्षी—गवाह; कृत्याम्—निर्मित प्राणी को; माहा-ईश्वरीम्—शिवजी के; विभुः—सर्वशक्तिमान भगवान्; विज्ञाय—पूरी तरह जानते हुए; तत्—उसको; विघात—हराने के; अर्थम्—हेतु; पार्श्व—अपने निकट; स्थम्—खड़े; चक्रम्—अपने चक्र को; आदिशत्—आदेश दिया।

सबों के अन्तः और बाह्य साक्षी सर्वशक्तिमान भगवान् समझ गये कि यह दैत्य शिवजी द्वारा यज्ञ-अग्नि से उत्पन्न किया गया है। इस असुर को पराजित करने के लिए कृष्ण ने अपनी बगल में प्रतीक्षा कर रहे अपने सुदर्शन चक्र को रवाना कर दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि भगवान् कृष्ण राजा के रूप में द्यूत-क्रीड़ा में मग्न थे और अग्नि-तुल्य असुर के आक्रमण जैसे नगण्य कार्य से विचलित नहीं होना चाहते थे। अत: उन्होंने अपने चक्र को भेज दिया और उसे आवश्यक कदम उठाने का आदेश दिया।

तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं
जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ।
स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी
चक्रं मुकुन्दास्त्रं अथाग्निमार्दयत् ॥ ९॥

शब्दार्थ

तत्—उस; सूर्य—सूर्यों के; कोटि—करोड़ों; प्रतिमम्—सदृश; सुदर्शनम्—सुदर्शन को; जाज्वल्यमानम्—अग्नि से प्रज्ज्वलित; प्रलय—ब्रह्माण्ड के संहार की; अनल—अग्नि (सदृश); प्रभम्—तेज; स्व—अपनी; तेजसा—गर्मी से; खम्—आकाश; ककुभः—दिशाएँ; अथ—तथा; रोदसी—स्वर्ग तथा पृथ्वी; चक्रम्—चक्र को; मुकुन्द—कृष्ण के; अस्त्रम्—हथियार; अथ—भी; अग्निम्—(सुदक्षिण द्वारा उत्पन्न) अग्नि को; आर्दयत्—सताया।

भगवान् मुकुन्द का वह सुदर्शन चक्र करोड़ों सूर्यों की तरह प्रज्ज्वलित हो उठा। उसका तेज

ब्रह्माण्ड की प्रलयाग्नि सदृश प्रज्वलित था और अपनी गर्मी से वह आकाश, सारी दिशाओं, स्वर्ग तथा पृथ्वी एवं उस अग्नि-तुल्य असुर को भी पीड़ा देने लगा।

कृत्यानलः प्रतिहतः स रथाङ्गपाणे-
रस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ।
वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं
सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः. ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

कृत्या—योग-बल से उत्पन्न; अनलः—अग्नि; प्रतिहतः—हताश; सः—वह; रथ-अङ्ग-पाणेः—सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले कृष्ण के; अस्त्र—हथियार की; ओजसा—शक्ति से; सः—वह; नृप—हे राजा; भग्न-मुखः—पीछे मुड़कर; निवृत्तः—विरत; वारानसीम्—वाराणसी में; परिसमेत्य—सभी दिशाओं में पहुँचकर; सुदक्षिणम्—सुदक्षिण के; तम्—उस; स—सहित; ऋत्विक्-जनम्—उसके पुरोहितों को; समदहत्—जला दिया; स्व—अपने आप (सुदक्षिण); कृतः—उत्पन्न; अभिचारः—हिंसा करने के निमित्त।

हे राजन्, भगवान् कृष्ण के अस्त्र की शक्ति से विचलित, तंत्र से उत्पन्न वह अग्नि-तुल्य प्राणी अपना मुँह मोड़कर चला गया। तब हिंसा के लिए उत्पन्न किया गया वह असुर वाराणसी लौट आया जहाँ उसने नगर को घेर लिया और सुदक्षिण तथा उसके पुरोहितों को जलाकर भस्म कर दिया यद्यपि सुदक्षिण ही उसका उत्पन्न करने वाला था।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : "द्वारका में आग लगाने में असमर्थ होकर वह अग्नि-तुल्य असुर काशिराज की राजधानी वाराणसी लौट गया। उसके वापस होने से मंत्रों के आदेश में सहायक सारे पुरोहित अपने स्वामी सुदक्षिण समेत उस अग्निमय दैत्य के प्रज्वलित तेज से जलकर भस्म हो गये। तंत्र में निर्देशित मंत्रों की विधि के अनुसार यदि मंत्र शत्रु का वध नहीं कर पाता तो वह अपने सृजनकर्ता का ही वध कर देता है क्योंकि इसके लिए किसी न किसी का वध करना आवश्यक है। सुदक्षिण उत्पन्नकर्ता था और पुरोहित उसके सहायक थे अतएव वे सभी जलाकर भस्म कर दिये गये। असुरों की यही रीति है। असुरगण ईश्वर को मारने के लिए कोई चीज उत्पन्न करते हैं किन्तु वे उसी अस्त्र से स्वयं मारे जाते हैं।"

चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं
वारानसीं साट्टसभालयापणाम् ।
सगोपुराट्टालककोष्ठसङ्कुलां

सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालिनीम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

चक्रम्—चक्र; च—तथा; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; तत्—वह (अग्नि से उत्पन्न असुर); अनुप्रविष्टम्—प्रवेश करके; वाराणसीम्—वाराणसी को; स—सहित; अट्ट—अटालिकाएँ; सभा—उसके सभाभवन; आलय—निवास; आपणाम्—तथा बाजार; स—सहित; गोपुर—नगरद्वार; अट्टालक—बुर्जियों; कोष्ठ—तथा भण्डारों; सङ्कुलाम्—पुंजित; स—सहित; कोश—खजाने; हस्ति—हाथियों; अश्व—घोड़ों; रथ—रथों; अन्न—तथा अन्नों के लिए; शालिनीम्—महलों (गोदामों) सहित।

भगवान् विष्णु का चक्र अग्नि तुल्य असुर का पीछा करते हुए वाराणसी के भीतर भी घुसा और फिर नगर को भस्म करने लगा, जिसमें नगर के सभाभवन तथा अट्टालिकाओं से युक्त आवासीय महल, सारे बाजार, नगरद्वार, बुर्जियाँ, भण्डार तथा खजाने और हथसाल, घुड़साल, रथसाल तथा अन्नों के गोदाम सम्मिलित थे।

दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

दग्ध्वा—जलाकर; वाराणसीम्—वाराणसी को; सर्वाम्—पूरी; विष्णोः—विष्णु का; चक्रम्—चक्र; सुदर्शनम्—सुदर्शन; भूयः—फिर से; पार्श्वम्—बगल में; उपातिष्ठत्—गया; कृष्णस्य—कृष्ण के; अक्लिष्ट—बिना किसी कष्ट या थकावट के; कर्मणः—जिसके कर्म।

सम्पूर्ण वाराणसी नगरी को जलाने के बाद भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र बिना प्रयास के कर्म करने वाले श्रीकृष्ण के पास लौट आया।

य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमःश्लोकविक्रमम् ।
समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४॥

शब्दार्थ

यः—जो; एनम्—इसको; श्रावयेत्—सुनाता है; मर्त्यः—मरणशील मनुष्य; उत्तमः-श्लोक—उत्तम श्लोकों से प्रशंसित भगवान् कृष्ण की; विक्रमम्—वीरतापूर्ण लीला को; समाहितः—पूरे ध्यान से; वा—अथवा; शृणुयात्—सुनता है; सर्व—समस्त; पापैः—पापों से; प्रमुच्यते—छूट जाता है।

जो भी मर्त्य प्राणी भगवान् उत्तमश्लोक की इस वीरतापूर्ण लीला को सुनाता है या केवल इसे ध्यानपूर्वक सुनता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाएगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''पौण्ड्रक—छद्म वासुदेव'' नामक छियासठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सतसठ

बलराम द्वारा द्विविद वानर का वध

इस अध्याय में बतलाया गया है कि बलराम ने किस तरह रैवतक पर्वत में व्रज की तरुणियों के साथ रमण किया और वहाँ द्विविद नामक वानर का वध किया।

नरकासुर राक्षस का जिसका वध कृष्ण ने किया था, उसका एक मित्र था, जिसका नाम द्विविद था। यह वानर (गोरिल्ला) था। द्विविद अपने मित्र की मृत्यु का बदला लेना चाहता था, अतएव उसने ग्वालों के घरों को आग लगा दी, कृष्ण के आनर्त प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और अपनी विशाल भुजाओं से समुद्र के जल को मथ कर समुद्री तट-प्रदेश को आप्लावित कर दिया। फिर इस धूर्त ने महामुनियों के आश्रमों के वृक्षों को तोड़ डाला और यज्ञ की अग्नि में मल-मूत्र विसर्जित कर दिया। उसने स्त्रियों तथा पुरुषों का अपहरण करके उन्हें पर्वत-गुफाओं में बन्दी बनाकर बाहर से बड़ी बड़ी शिलाओं से उनके द्वार बन्द कर दिये। इस तरह समूचे प्रदेश को ध्वंस करके तथा अनेक उच्च कुल की तरुणियों का शील भंग करके द्विविद रैवतक पर्वत में आया, जहाँ उसने बलदेवजी को सुन्दर स्त्रियों की टोली के साथ रमण करते देखा। वारुणी मदिरा पीकर उन्मत्त हुए बलदेव की परवाह न करते हुए द्विविद उन्हीं के समक्ष उन स्त्रियों को अपना गुप्तांग दिखाने लगा और अपनी भौंहों से भद्दे भद्दे इशारे करके तथा मल-मूत्र विसर्जित करके, उनको अपमानित करने लगा।

द्विविद के इस रोषपूर्ण आचरण से बलदेव क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने उस वानर के ऊपर एक पत्थर फेंका। किन्तु द्विविद ने अपने को बचा लिया। तब उसने बलदेव का उपहास किया और स्त्रियों के वस्त्र खींचने लगा। उसकी यह अभद्रता देखकर बलदेव ने उसे मार डालने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी गदा और अपना हल उठाया। तब बलशाली द्विविद ने पृथ्वी से एक शाल वृक्ष उखाड़ा और इस वृक्ष से उनके सिर पर प्रहार किया। किन्तु बलदेवजी अविचलित रहे और इस वृक्ष के तने को खण्ड खण्ड कर डाला। द्विविद ने दूसरा वृक्ष उखाड़ा और इस तरह एक के बाद एक वृक्ष उखाड़ कर जंगल को उजाड़ बना दिया। यद्यपि उसने बलदेव के सिर पर एक के बाद एक प्रहार किये किन्तु उन्होंने उन सबों को खण्ड खण्ड कर डाला। इसके बाद वह मूर्ख वानर उन पर पत्थर फेंकने लगा। किन्तु बलदेव ने इन्हें भी चूर चूर कर दिया। इसके बाद उसने बलदेव पर आक्रमण किया और मुक्कों से उनकी छाती पर प्रहार किया, जिससे वे अति क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपनी गदा तथा हल को एक तरफ रखते हुए

द्विविद के गले तथा कंधे पर प्रहार किया, जिस पर वह वानर रक्त उगलने लगा और गिर कर मर गया।

द्विविद को मार कर बलदेव जब द्वारका के लिए रवाना हुए तो देवताओं तथा ऋषियों ने आकाश से उन पर फूलों की वर्षा की और उनकी स्तुतियाँ कीं तथा उन्हें नमस्कार किया।

श्रीराजोवाच
भुयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा—यशस्वी राजा (परीक्षित) ने; उवाच—कहा; भूयः—आगे; अहम्—मैं; श्रोतुम्—सुनने के लिए; इच्छामि—इच्छा करता हूँ; रामस्य—बलराम के; अद्भुत—विस्मयकारी; कर्मणः—कार्यकलाप; अनन्तस्य—अनन्त के; अप्रमेयस्य—अथाह, अपार; यत्—जो; अन्यत्—दूसरा; कृतवान्—किया; प्रभुः—प्रभु ने।

यशस्वी राजा परीक्षित ने कहा : मैं अनन्त तथा अपार भगवान् श्रीबलराम के विषय में और आगे सुनना चाहता हूँ जिनके कार्यकलाप अतीव विस्मयकारी हैं। उन्होंने और क्या किया?

श्रीशुक उवाच
नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः ।
सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; नरकस्य—नरकासुर का; सखा—मित्र; कश्चित्—कोई; द्विविदः—द्विविद; नाम—नामक; वानरः—वानर; सुग्रीव—राजा सुग्रीव; सचिवः—जिसका सलाहकार; सः—वह; अथ—भी; भ्राता—भाई; मैन्दस्य—मैन्द का; वीर्य-वान्—शक्तिशाली।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : द्विविद नाम का एक वानर था, जो नरकासुर का मित्र था। यह शक्तिशाली द्विविद मैन्द का भाई था और राजा सुग्रीव ने उसे आदेश दिया था।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने द्विविद वानर के विषय में कुछ रोचक बातों का संकेत किया है। यद्यपि द्विविद भगवान् रामचन्द्र का संगी था किन्तु बाद में नरकासुर की कुसंगति से वह दूषित हो गया जैसाकि यहाँ पर कहा गया है—*नरकस्य सखा।* यह कुसंगति द्विविद के उस अपराध का फल थी जो उसने अपने बल के कारण गर्वित होकर श्रीरामचन्द्र के भाई लक्ष्मण तथा अन्यों का अनादर करके किया था। जो लोग भगवान् रामचन्द्र की पूजा करते हैं, वे कभी कभी मैन्द और द्विविद की स्तुति भगवान् के सेवक-विग्रहों के रूप में करते हैं। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार इस श्लोक में वर्णित मैंद तथा द्विविद इन्हीं विग्रहों के मान्यताप्राप्त अंश हैं, जो भगवान् रामचन्द्र के वैकुण्ठधाम के वासी हैं।

श्रील जीव गोस्वामी के इस मत से श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर सहमत हैं कि द्विविद कुसंगति से दूषित हो गया था, जो श्रीमान् लक्ष्मण के प्रति अनादर व्यक्त करने का दण्ड था। किन्तु विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि यहाँ पर उल्लिखित मैंद तथा द्विविद वास्तव में नित्यमुक्त भक्त थे जिन्हें रामचन्द्रजी की पूजा के समय सेवक विग्रह कह कर पुकारा जाता है। भगवान् ने उनका पतन कुसंगति का दुष्परिणाम, जो महापुरुषों को अपमानित करने से प्राप्त होता है, दिखाने के लिए किया। इस प्रकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती द्विविद तथा मैंद के पतन की तुलना जय तथा विजय के पतन से करते हैं।

सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् ।
पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ॥

शब्दार्थ

सख्युः—अपने मित्र (नरक, जिसका वध कृष्ण ने किया था) का; सः—वह; अपचितिम्—उऋण; कुर्वन्—होने के लिए; वानरः—वानर; राष्ट्र—राज्य का; विप्लवम्—उत्पात करते हुए; पुर—नगर; ग्राम—गाँव; आकरान्—तथा खानों को; घोषान्—ग्वालों के समुदायों (बस्तियों) को; अदहत्—जला डाला; वह्निम्—आग; उत्सृजन्—फैलाकर।

अपने मित्र (नरक) की मृत्यु का बदला लेने के लिए द्विविद वानर ने नगरों, गाँवों, खानों तथा ग्वालों की बस्तियों में आग लगाते हुए उन्हें जलाकर पृथ्वी को तहस-नहस कर दिया।

तात्पर्य : कृष्ण ने द्विविद के मित्र नरक का वध कर दिया था अत: अपने मित्र का बदला लेने के लिए इस वानर ने कृष्ण के समृद्धिशाली साम्राज्य को नष्ट करना चाहा। श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में लिखा है, ''ग्रामों, नगरों तथा औद्योगिक स्थानों एवं खदानों और साथ ही साथ दुग्ध उद्योग एवं गो-रक्षा में व्यस्त व्यवसायियों के निवासस्थानों में आग लगा देना द्विविद का पहला काम था।''

क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत् ।
आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥ ४॥

शब्दार्थ

क्वचित्—एक बार; सः—वह, द्विविद; शैलान्—पर्वतों को; उत्पाट्य—उखाड़ कर; तैः—उनके साथ; देशान्—सारे राज्यों को; समचूर्णयत्—विनष्ट कर दिया; आनर्तान्—आनर्तन प्रदेश (जिसमें द्वारका स्थित है) के लोगों को; सुतराम् एव—विशेष रूप से; यत्र—जहाँ; आस्ते—उपस्थित है; मित्र—उसके मित्र का; हा—मारने वाला; हरिः—कृष्ण।

एक बार द्विविद ने अनेक पर्वतों को उखाड़ लिया और उनका प्रयोग सभी निकटवर्ती राज्यों को, विशेषतया आनर्त प्रदेश को विध्वंस करने के लिए किया जहाँ उसके मित्र को मारने वाले, भगवान् हरि रहते थे।

क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ।
देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूले न्यमज्जयत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—एक बार; समुद्र—समुद्र के; मध्य—बीच में; स्थः—स्थित; दोर्भ्याम्—अपनी भुजाओं से; उत्क्षिप्य—मथ कर; तत्—उसके; जलम्—जल को; देशान्—राज्यों को; नाग—हाथी; अयुत—दस हजार; प्राणः—शक्ति वाले; वेला—समुद्रतटीय; कूले—किनारों को; न्यमज्जयत्—डुबो दिया।

दूसरे अवसर पर वह समुद्र में घुस गया और दस हजार हाथियों के बल के बराबर अपनी बाहों से उसके पानी को मथ डाला और इस तरह समुद्रतट के भागों को डुबो दिया।

आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ।
अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान्खलः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

आश्रमान्—आश्रमों को; ऋषि—ऋषियों के; मुख्यानाम्—प्रमुख; कृत्वा—करके; भग्न—तोड़-फोड़; वनस्पतीन्—वृक्षों को; अदूषयत्—दूषित कर डाला; शकृत्—मल से; मूत्रैः—मूत्र से; अग्नीन्—अग्नियों को; वैतानिकान्—यज्ञ की; खलः—दुष्ट ने।

उस दुष्ट वानर ने प्रमुख ऋषियों के आश्रमों के वृक्षों को तहस-नहस कर डाला और अपने मल-मूत्र से यज्ञ की अग्नियों को दूषित कर दिया।

पुरुषान्योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोनीगुहासु सः ।
निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशष्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

पुरुषान्—पुरुषों को; योषितः—तथा स्त्रियों को; दृप्तः—ढीठ या उद्धत; क्ष्मा-भृत्—पर्वत की; द्रोणी—घाटी के भीतर; गुहासु—गुफाओं में; सः—उसने; निक्षिप्य—फेंक कर; च—तथा; अप्यधात्—बन्द कर दिया; शैलैः—बड़े बड़े शिलाखण्डों से; पेशष्कारी—भिड़, बर्र; इव—सदृश; कीटकम्—छोटे कीड़े को।

जिस तरह भिड़-कीट छोटे छोटे कीड़ों को बन्दी बना लेता है, उसी तरह उसने ढिठाई करके पुरुषों तथा स्त्रियों को पर्वत की घाटी में गुफाओं के भीतर डाल कर इन गुफाओं को बड़े बड़े शिलाखण्डों से बन्द कर दिया।

एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ।
श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; देशान्—विविध राज्यों को; विप्रकुर्वन्—तंग करते; दूषयन्—दूषित करते हुए; च—तथा; कुल—कुलीन; स्त्रियः—स्त्रियों को; श्रुत्वा—सुनकर; सु-ललितम्—अत्यन्त मधुर; गीतम्—गीत; गिरिम्—पर्वत में; रैवतकम्—रैवतक नामक; ययौ—गया।

एक बार जब द्विविद निकटवर्ती राज्यों को तंग करने तथा कुलीन स्त्रियों को दूषित करने में इस तरह लगा हुआ था, तो उसने रैवतक पर्वत से आती हुई अत्यन्त मधुर गायन की आवाज सुनी। अतएव वह वहाँ जा पहुँचा।

तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ।
सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥
गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ।
विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अपश्यत्—देखा; यदु-पतिम्—यदुओं के स्वामी; रामम्—बलराम को; पुष्कर—कमल की; मालिनम्—माला पहने; सु-दर्शनीय—अत्यन्त आकर्षक; सर्व—समस्त; अङ्गम्—अंगों को; ललना—युवतियों के; यूथ—समूह के; मध्य-गम्—बीच में; गायन्तम्—गाते हुए; वारुणीम्—वारुणी शराब को; पीत्वा—पीकर; मद—नशा से; विह्वल—अस्थिर; लोचनम्—आँखों को; विभ्राजमानम्—शोभायमान, चमचमाते; वपुषा—अपने शरीर से; प्रभिन्नम्—कामोन्मत्त; इव—मानो; वारणम्—हाथी।

वहाँ उसने यदुओं के स्वामी श्री बलराम को देखा जो कमल-पुष्पों की माला से सुशोभित थे और जिनका हर अंग अत्यन्त आकर्षक लग रहा था। वे युवतियों के मध्य गा रहे थे और चूँकि उन्होंने वारुणी मदिरा पी रखी थी अतएव उनकी आँखें इस तरह घूम रही थीं मानो वे नशे में हों। उनका शरीर चमचमा रहा था और वे कामोन्मत्त हाथी की तरह व्यवहार कर रहे थे।

दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् ।
चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं सम्प्रदर्शयन् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दुष्टः—दुष्ट; शाखा-मृगः—वानर (वृक्षों की शाखाओं में रहने वाला पशु); शाखाम्—शाखा पर; आरूढः—चढ़ कर; कम्पयन्—हिलाते हुए; द्रुमान्—वृक्षों को; चक्रे—किया; किलकिला-शब्दम्—किलकिल की आवाज किलकारियाँ; आत्मानम्—अपने आपको; सम्प्रदर्शयन्—दिखलाते हुए।

वह दुष्ट वानर वृक्ष की शाखा पर चढ़ गया और वृक्षों को हिलाकर तथा किलकारियाँ मारते हुए अपनी उपस्थिति जताने लगा।

तात्पर्य : *शाखामृग* शब्द सूचित करता है कि द्विविद सामान्य बन्दरों की तरह वृक्षों पर चढ़ जाता था। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''द्विविद नामक वह वानर वृक्षों पर चढ़ कर एक शाखा से दूसरी शाखा

पर कूद सकता था। कभी कभी वह शाखाएँ हिलाकर विशेष प्रकार की 'किल-किल' ध्वनि करता था। इससे श्री बलराम का ध्यान मनमोहक वातावरण की ओर से विचलित हो गया।''

तस्य धाष्ट्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ।
हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥ १२॥

शब्दार्थ

तस्य—उस; धाष्ट्यम्—धृष्टता, ढिठाई; कपेः—वानर की; वीक्ष्य—देखकर; तरुण्यः—तरुण स्त्रियाँ; जाति—स्वभाव से; चापलाः—चंचल, अगम्भीर; हास्य-प्रियाः—हँसोड़; विजहसुः—जोर से हँसीं; बलदेव-परिग्रहाः—बलदेव की प्रेयसियाँ।

जब बलदेव की प्रेयसियों ने वानर की ढिठाई देखी तो वे हँसने लगीं। आखिर वे तरुणियाँ थीं, जिन्हें हँसी-मजाक भाता था और वे चपल थीं।

ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैर्सम्मुखादिभिः ।
दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षितः ॥ १॥

शब्दार्थ

ताः—उन (तरुणियों) का; हेलयाम् आस—मजाक उड़ाया; कपिः—वानर ने; भ्रू—अपनी भौंहों के; क्षेपैः—गंदे संकेतों से; सम्मुख—उनके सामने खड़े होकर; आदिभिः—इत्यादि से; दर्शयन्—दिखलाते हुए; स्व—अपना; गुदम्—मलद्वार; तासाम्—उनको; रामस्य—बलराम के; च—तथा; निरीक्षितः—देखते हुए।

बलराम के देखते हुए भी द्विविद ने उन तरुणियों को अपनी भौंहों से गंदे इशारे करते हुए, उनके सामने आकर खड़े होकर और उन्हें अपनी गुदा (मलद्वार) दिखलाकर अपमानित किया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: ''वह वानर इतना उद्दंड था कि बलरामजी की उपस्थिति में भी वह अपने शरीर के निचले अंगों को स्त्रियों के समक्ष प्रदर्शित करने लगा। कभी कभी वह अपनी भौंहें चलाते हुए आगे बढ़कर अपने दाँत दिखलाता था।'' श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि द्विविद स्त्रियों के निकट आ जाता, इधर-उधर घूमता और पेशाब कर देता।

तं ग्राव्णा प्राहरत्क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ।
स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ।
गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन्हसन् ॥ १४॥
निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ।
कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥ १५॥

शब्दार्थ

तम्—उस पर, द्विविद पर; ग्राव्णा—शिला; प्राहरत्—फेंका; क्रुद्धः—क्रुद्ध; बलः—बलराम ने; प्रहरताम्—हथियार फेंकने वालों का; वरः—सर्वश्रेष्ठ; सः—वह, द्विविद; वञ्चयित्वा—बचाकर; ग्रावाणम्—शिला को; मदिरा—शराब का; कलशम्—पात्र; कपिः—वानर ने; गृहीत्वा—पकड़ कर; हेलयाम् आस—मजाक उड़ाया; धूर्तः—धूर्त; तम्—उसको, बलराम को; कोपयन्—क्रोध करते; हसन्—हँसते; निर्भिद्य—तोड़ कर; कलशम्—पात्र को; दुष्टः—दुष्ट; वासांसि—वस्त्रों को (तरुणियों के); आस्फालयत्—खींच लिया; बलम्—बलराम को; कदर्थीकृत्य—अनादर करके; बल-वान्—शक्तिशाली; विप्रचक्रे—अपमान किया; मद—मिथ्या अहंकार से; उद्धतः—फूला हुआ।

सर्वश्रेष्ठ योद्धा बलराम ने क्रुद्ध होकर उस पर एक शिला फेंकी किन्तु उस धूर्त वानर ने अपने को उस शिला से बचा कर बलराम के शराब के पात्र को उड़ा ले गया। दुष्ट द्विविद ने बलराम की हँसी उड़ाते हुए उन्हें और अधिक क्रुद्ध करके उस पात्र को तोड़ डाला और तरुणियों के वस्त्र खींच कर बलराम को और भी अधिक अपमानित किया। इस तरह मिथ्या गर्व से फूलकर कुप्पा हुआ बलशाली वानर श्री बलराम का अपमान करता रहा।

तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ।
क्रुद्धो मुषलमादत्त हलं चारिजिघांसया ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; तस्य—उसकी; अविनयम्—ढिठाई; दृष्ट्वा—देखकर; देशान्—राज्यों को; च—तथा; तत्—उसके द्वारा; उपद्रुतान्—तहस-नहस किये; क्रुद्धः—क्रुद्ध; मुषलम्—अपनी गदा; आदत्त—ग्रहण की; हलम्—अपना हल; च—तथा; अरि—शत्रु; जिघांसया—मारने की इच्छा से।

भगवान् बलराम ने उस वानर के ढीठ आचरण को देखा और आसपास के राज्यों में उसके द्वारा उत्पन्न विनाश-लीला (उपद्रव) का विचार किया। इस तरह बलराम ने क्रुद्ध होकर अपने शत्रु का अन्त करने का निश्चय करके अपनी गदा तथा अपना हल उठा लिया।

तात्पर्य : *अविनयम्* का अर्थ है "विनय से रहित।" विनय तथा शालीनता से रहित द्विविद ने निर्लज्जतापूर्वक अत्यन्त दुष्ट कृत्य किये। द्विविद ने बलराम के समक्ष जो छिछोरा आचरण प्रदर्शित किया उसके अतिरिक्त उसके द्वारा सामान्य लोगों के प्रति किये गये महान् उपद्रवों से बलराम अवगत थे। अत: अपराधी वानर को अब मरना होगा।

द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ।
अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥ १७॥

शब्दार्थ

द्विविदः—द्विविद; अपि—भी; महा—महान्; वीर्यः—बल वाला; शालम्—शाल वृक्ष को; उद्यम्य—उठाकर; पाणिना—अपने हाथ से; अभ्येत्य—पास आकर; तरसा—तेजी से; तेन—उससे; बलम्—बलराम को; मूर्धनि—सिर पर; अताडयत्—मारा।

बलशाली द्विविद भी युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। एक हाथ से शाल का वृक्ष उखाड़ कर

वह बलराम की ओर दौड़ा और उनके सिर पर उस वृक्ष के तने से प्रहार किया।

तं तु सङ्कर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा ।
प्रतिजग्राह बलवान्सुनन्देनाहनच्च तम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (तने) को; तु—लेकिन; सङ्कर्षण:—बलराम ने; मूर्ध्नि—सिर पर; पतन्तम्—गिरते हुए; अचल:—न हिलने वाला पर्वत; यथा—जिस तरह; प्रतिजग्राह—पकड़ लिया; बल-वान्—बलशाली; सुनन्देन—अपनी गदा सुनन्द से; अहनत्—प्रहार किया; च—तथा; तम्—उस (द्विविद) पर।

किन्तु भगवान् संकर्षण पर्वत की तरह अचल बने रहे और अपने सिर के ऊपर गिरते हुए लट्ठे को यों ही दबोच लिया। तब उन्होंने द्विविद पर अपनी सुनन्द गदा से प्रहार किया।

मूषलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ।
गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ॥ १९ ॥
पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ।
तेनाहनत्सुसङ्क्रुद्धस्तं बल: शतधाच्छिनत् ॥ २० ॥
ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाच्छिनत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

मूषल—गदा से; आहत—प्रहार किया; मस्तिष्क:—खोपड़ी; विरेजे—सुशोभित हुई; रक्त—खून की; धारया—धारा से; गिरि:—पर्वत; यथा—जिस तरह; गैरिकया—गेरू से; प्रहारम्—प्रहार; न—नहीं; अनुचिन्तयन्—गम्भीर मानते हुए; पुन:—फिर; अन्यम्—दूसरे (वृक्ष) को; समुत्क्षिप्य—उखाड़ कर; कृत्वा—करके; निष्पत्रम्—पत्तियों से रहित; ओजसा—बलपूर्वक; तेन—उसके द्वारा; अहनत्—प्रहार किया; सु-सङ्क्रुद्ध:—पुरजोर क्रोध के साथ; तम्—उसको; बल:—बलराम ने; शतधा—सैकड़ों खंडों में; अच्छिनत्—छिन्न-भिन्न कर डाला; तत:—तब; अन्येन—दूसरे से; रुषा—क्रोधपूर्वक; जघ्ने—चूर चूर कर दिया; तम्—उसको; च—तथा; अपि—भी; शतधा—सैकड़ों खंडों में; अच्छिनत्—तोड़ डाला।

खोपड़ी पर भगवान् की गदा से चोट खाकर द्विविद रक्त की धार बहने से उसी तरह सुशोभित हो रहा था जिस तरह कोई पर्वत गेरू से सुन्दर लगने लगता है। उसने घाव की परवाह न करके दूसरा वृक्ष उखाड़ा, बलपूर्वक उसकी पत्तियाँ विलग कीं और पुन: भगवान् पर प्रहार किया। अब बलराम ने क्रुद्ध होकर वृक्ष के सैकड़ों टुकड़े कर डाले। इस पर द्विविद ने दूसरा वृक्ष हाथ में लिया और फिर से बहुत ही रोषपूर्वक भगवान् पर प्रहार किया। भगवान् ने इस वृक्ष के भी सैकड़ों खण्ड कर डाले।

एवं युध्यन्भगवता भग्ने भग्ने पुन: पुन: ।
आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; युध्यन्—(द्विविद ने) युद्ध करते हुए; भगवता—भगवान् द्वारा; भग्ने भग्ने—बारम्बार तोड़े जाने पर; पुनः पुनः—फिर फिर; आकृष्य—उखाड़ कर; सर्वतः—सभी ओर से; वृक्षान्—वृक्षों को; निर्वृक्षम्—वृक्षरहित; अकरोत्—कर दिया; वनम्—वन को।.

इस तरह भगवान् से युद्ध करते द्विविद जिस भी वृक्ष से भगवान् पर प्रहार करता उसके बारम्बार विनष्ट हो जाने पर वह चारों ओर से तब तक वृक्ष उखाड़ता रहा जब तक कि जंगल वृक्षविहीन नहीं हो गया।

ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ।
तत्सर्वं चूर्णयां आस लीलया मुषलायुधः ॥ २॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अमुञ्चत्—उसने फेंका; शिला—चट्टान की; वर्षम्—वर्षा; बलस्य उपरि—बलराम के ऊपर; अमर्षितः—हताश होकर; तत्—उस; सर्वम्—समस्त; चूर्णयाम् आस—पीस डाला; लीलया—आसानी से; मुषल-आयुधः—गदाधारी ने।.

तत्पश्चात् क्रुद्ध वानर ने बलराम पर पत्थरों की वर्षा की किन्तु उस गदाधारी ने उन सबों को चकनाचूर कर डाला।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं : ''जब और वृक्ष नहीं बचे तब द्विविद ने पर्वतों की सहायता ली और बलरामजी के शरीर पर बड़े बड़े पत्थरों की वर्षा करने लगा। भगवान् बलराम ने खेल-खिलवाड़ करते हुए उन विशाल पत्थरों को तोड़ कर छोटे छोटे कंकड़ों में परिणत कर दिया।'' आज भी ऐसे अनेक खेल हैं जिनमें पत्थर या गेंद को छड़ी या बल्ले से मारकर खेला जाता है। यह खेलने की इच्छा मूलतः भगवान् में पाई जाती है जिन्होंने खेल खेल में (*लीलया*) बलशाली द्विविद द्वारा फेंके गये बड़े बड़े शिलाखण्डों को चूर चूर कर दिया।

स बाहू तालसङ्काशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ।
आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सः—वह; बाहू—दोनों भुजाएँ; ताल—ताड़ के वृक्ष; सङ्काशौ—जितनी बड़ी; मुष्टी—मुक्का में; कृत्य—करके; कपि—वानरों में; ईश्वरः—सबसे शक्तिशाली; आसाद्य—सामना करके; रोहिणी-पुत्रम्—रोहिणी के पुत्र बलराम को; ताभ्याम्—उन; वक्षसि—छाती पर; अरूरुजत्—मारा।.

सर्वाधिक शक्तिशाली वानर द्विविद अब ताड़-वृक्ष जैसे आकार वाली भुजाओं के सिरे पर मुक्के बाँध कर बलराम के समक्ष आया और उनके शरीर पर अपने मुक्के मारे।

यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुषललाङ्गले ।
जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

यादव-इन्द्रः—यादवों के प्रभु, बलराम ने; अपि—भी; तम्—उसको; दोर्भ्याम्—अपने हाथों से; त्यक्त्वा—एक ओर फेंक कर; मुषल-लाङ्गले—गदा तथा हल; जत्रौ—हँसली पर; अभ्यर्दयत्—जोर का प्रहार किया; क्रुद्धः—क्रुद्ध; सः—वह, द्विविद; अपतत्—गिर पड़ा; रुधिरम्—रक्त; वमन्—वमन करता हुआ।

तत्पश्चात् क्रुद्ध यादवेन्द्र ने अपनी गदा और हल को एक ओर फेंक दिया और अपने खाली हाथों से द्विविद की हँसली पर जोर का प्रहार किया। वह वानर रक्त वमन करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा।

तात्पर्य : लीला पुरुषोत्तम *भगवान् श्रीकृष्ण* में श्रील प्रभुपाद ने लिखा है : "इस बार बलरामजी अत्यन्त क्रोधित हो उठे। क्योंकि वानर उन पर हाथों से प्रहार कर रहा था अतएव बलरामजी ने भी उस पर अपनी गदा या हल से प्रहार नहीं किया। वे केवल मुक्के से वानर की हँसली (गले के पास की हड्डी) पर प्रहार करने लगे। यह प्रहार द्विविद के लिए प्राणान्तक सिद्ध हुआ।"

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ।
पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

चकम्पे—हिल उठा; तेन—उसके; पतता—गिरने से; स—सहित; टङ्कः—चोटियों; स—सहित; वनस्पतिः—वृक्ष; पर्वतः—पर्वत; कुरु-शार्दूल—हे कुरुओं में सिंह (महाराज परीक्षित); वायुना—वायु से; नौः—नाव; इव—मानो; अम्भसि—जल में।

हे कुरु-शार्दूल, जब वह गिरा तो रैवतक पर्वत अपनी चोटियों तथा वृक्षों समेत हिल उठा मानो समुद्र में वायु द्वारा हिलाई गई कोई नाव हो।

तात्पर्य : *टंक* शब्द न केवल पर्वत की चोटियों का सूचक है अपितु दरारों एवं पानी से भरे स्थानों का भी सूचक है। ये पर्वतीय क्षेत्र द्विविद के गिरने पर हिलने लगे।

जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चाम्बरे ।
सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

जय-शब्दः—जय (विजय) की ध्वनि; नमः-शब्दः—नमः (नमस्कार) की ध्वनि; साधु साधु इति—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा की पुकार; च—तथा; अम्बरे—आकाश में; सुर—देवताओं के; सिद्ध—सिद्धों के; मुनि-इन्द्राणाम्—तथा मुनियों के; आसीत्—थे; कुसुम—फूल; वर्षिणाम्—वर्षा करते।

स्वर्ग में देवता, सिद्धगण तथा मुनिगण निनाद करने लगे, "आपकी जय हो, आपको

नमस्कार है, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा हुआ!'' और भगवान् पर फूल बरसाने लगे।

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ।
संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निहत्य—मार कर; द्विविदम्—द्विविद को; जगत्—संसार के; व्यतिकर—उपद्रव; आवहम्—लाने वाले को; संस्तूयमानः—स्तुतियों द्वारा प्रशंसा किये जा रहे; भगवान्—भगवान् ने; जनैः—लोगों द्वारा; स्व—अपने; पुरम्—नगर (द्वारका) में; आविशत्—प्रवेश किया।

सारे संसार में उपद्रव मचाने वाले द्विविद को इस तरह मार कर भगवान् अपनी राजधानी लौट आये और लोगों ने रास्ते में उनका यशोगान किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध अन्तर्गत ''बलराम द्वारा द्विविद वानर का वध'' नामक सतसठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter अड़सठ

साम्ब का विवाह

इस अध्याय में बतलाया गया है कि कौरवों ने किस तरह साम्ब को बन्दी बनाया और बलदेव ने किस तरह उसे छुड़ाने के लिए हस्तिनापुर नगरी को खींच डाला।

जाम्बवती का प्रिय पुत्र साम्ब दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा को स्वयंवर सभा से बलपूर्वक भगा ले गया। कौरवों ने बदला लेने के लिए सेना जुटा कर उसे बन्दी बनाना चाहा। कुछ काल तक साम्ब उन सबों से अकेला लड़ता रहा और उसने आगे बढ़ने से रोके रखा किन्तु छ: कौरव योद्धाओं ने उसे विरथ कर दिया, उसका धनुष तोड़ डाला और उसे पकड़ कर बाँध लिया। वे उसे तथा लक्ष्मणा को हस्तिनापुर वापस ले आये।

जब राजा उग्रसेन ने साम्ब के बन्दी बनाये जाने का समाचार सुना तो उन्होंने बदला लेने के लिए यादवों को बुलाया। वे सब क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये किन्तु बलराम ने इस आशा से उन्हें शान्त करना चाहा कि कुरु तथा यदुवंशों के बीच कलह न हो। अत: वे अनेक ब्राह्मणों तथा वृद्ध यादवों को साथ लेकर हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गये।

यादवों की टोली ने नगर के बाहर एक उद्यान में डेरा डाल दिया और बलराम ने राजा धृतराष्ट्र की

मनोवृत्ति जानने के लिए उद्धव को भेजा। जब उद्धव ने कौरव दरबार में जाकर बलराम के आगमन की घोषणा की तो कौरवों ने उद्धव की पूजा की और अपने साथ मांगलिक उपहार लेकर बलराम से मिलने गये। कौरवों ने अनुष्ठानों तथा आदर-सामग्री से बलराम का सत्कार किया किन्तु जब उन्होंने उग्रसेन की यह माँग पेश की कि साम्ब को मुक्त कर दिया जाय तो वे सभी नाराज हो गये। उन्होंने कहा, ''यह विचित्र बात है कि यादवगण कौरवों को आदेश देने का प्रयास कर रहे हैं। यह तो पाँव की जूती के किसी के सिर पर चढ़ने जैसा है। हमारे ही बल पर इन यादवों को राज-सिंहासन प्राप्त हुआ है। फिर भी वे अब अपने आप को हमारे समान समझने लगे हैं। अब हम उन्हें राज-सुविधाएँ देने से बाज आये।''

यह कह कर कौरवों के सरदार अपने नगर के भीतर चले गये। बलराम ने तय किया कि मिथ्या गर्व से उन्मत्त लोगों से निपटने का एकमात्र उपाय है कि उन्हें कठिन दण्ड दिया जाय। अतएव उन्होंने अपना हल उठाया और पृथ्वी को सभी कुरुओं से विहीन बनाने की इच्छा से हस्तिनापुर को गंगा की ओर खींचने लगे। यह देखकर कि उनका नगर नदी में गिरने ही वाला है, भयभीत कौरवों ने तुरन्त साम्ब तथा लक्ष्मणा को लाकर बलराम के समक्ष प्रस्तुत किया और उनका यशोगान करने लगे। उन्होंने प्रार्थना की, ''हे प्रभु! हमें क्षमा कर दें क्योंकि हम आपके असली स्वरूप से अनजान थे।''

बलराम ने कौरवों को आश्वासन दिया कि वे उन्हें क्षति नहीं पहुँचायेंगे। दुर्योधन ने अपनी पुत्री तथा अपने नवीन दामाद को विविध वस्तुएँ दहेज में भेंट कीं। फिर दुर्योधन ने यादवों का सत्कार करते हुए बलदेव से प्रार्थना की कि वे साम्ब तथा लक्ष्मणा को लेकर द्वारका लौट जाँय।

श्रीशुक उवाच

दुर्योधनसुतां राजन्लक्ष्मणां समितिंजयः ।
स्वयंवरस्थामहरत्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; दुर्योधन-सुताम्—दुर्योधन की पुत्री; राजन्—हे राजा (परीक्षित); लक्ष्मणाम्—लक्ष्मणा को; समितिम्-जयः—युद्ध में विजयी; स्वयं-वर—स्वयंवर समारोह में; स्थाम्—स्थित; अहरत्—चुरा लिया; साम्बः—साम्ब ने; जाम्बवती-सुतः—जाम्बवती का पुत्र।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, जाम्बवती के पुत्र साम्ब ने जो सदैव युद्ध में विजयी होता था, दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा का उसके स्वयंवर समारोह से अपहरण कर लिया।

तात्पर्य : *भगवान् श्रीकृष्ण* में श्रील प्रभुपाद ने इस घटना का विवरण इस प्रकार दिया है : ''धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा विवाह के योग्य थी। वह कुरुवंश की एक अत्यन्त सुयोग्य कन्या थी और अनेक राजकुमार उससे विवाह करने के इच्छुक थे। ऐसी दशा में स्वयंवर संस्कार का आयोजन किया जाता है, जिससे कन्या अपनी रुचि के अनुसार वर का चुनाव कर सके। जब लक्ष्मणा स्वयंवर सभा में वर चुनने जा रही थी तभी साम्ब उस सभा में उपस्थित हुआ। साम्ब भगवान् श्रीकृष्ण की प्रमुख रानियों में से एक, श्रीमती जाम्बवती का पुत्र था। साम्ब को यह नाम इसलिए दिया गया था क्योंकि अति दुष्ट बालक होने से वह सदैव अपनी माता के पास रहता था। साम्ब नाम सूचित करता है कि यह पुत्र अपनी माता का लाडला था। *अम्बा* का अर्थ है ''माता'' और *स* का अर्थ है ''साथ।'' अतएव साम्ब को यह विशेष नाम इसलिए दिया गया क्योंकि वह सदैव अपनी माता के साथ रहता था। इसीलिए वह जाम्बवती-सुत भी कहलाता था। जैसाकि पहले बताया जा चुका है श्रीकृष्ण के सारे पुत्र अपने महान् पिता भगवान् कृष्ण के ही समान योग्य थे। यद्यपि लक्ष्मणा साम्ब से विवाह करने की इच्छुक नहीं थी तथापि साम्ब दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा को प्राप्त करना चाहता था। इसलिए साम्ब ने स्वयंवर समारोह से लक्ष्मणा का बलपूर्वक अपहरण कर लिया।''

कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ।
कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २॥

शब्दार्थ

कौरवाः—कुरुओं ने; कुपिताः—क्रुद्ध; ऊचुः—कहा; दुर्विनीतः—बुरे आचरण वाला; अयम्—यह; अर्भकः—बालक; कदर्थी-कृत्य—अपमानित करके; नः—हमको; कन्याम्—कुमारी लड़की को; अकामाम्—अनचाहे; अहरत्—ले गया; बलात्—बलपूर्वक।

क्रुद्ध कौरवों ने कहा : इस बुरे आचरण वाले बालक ने हमारी अविवाहिता कन्या को उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक हर कर हमारा अपमान किया है।

बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः ।
येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ॥ ॥

शब्दार्थ

बध्नीत—बन्दी बना लो; इमम्—इस; दुर्विनीतम्—बुरे आचरण वाले को; किम्—क्या; करिष्यन्ति—कर लेंगे; वृष्णयः—वृष्णिजन; ये—जो; अस्मत्—हमारी; प्रसाद—कृपा से; उपचिताम्—अर्जित; दत्ताम्—प्रदत्त; नः—हमारा; भुञ्जते—भोग रहे हैं; महीम्—पृथ्वी को।

बुरे आचरण वाले इस साम्ब को बन्दी बना लो। आखिर वृष्णिजन हमारा क्या कर लेंगे? वे हमारी ही कृपा से हमारे द्वारा प्रदत्त पृथ्वी पर शासन कर रहे हैं।

निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः ।
भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४॥

शब्दार्थ

निगृहीतम्—बन्दी बनाया; सुतम्—अपने पुत्र को; श्रुत्वा—सुन कर; यदि—यदि; एष्यन्ति—आयेंगे; इह—यहाँ; वृष्णयः—वृष्णिजन; भग्न—चूर चूर; दर्पाः—जिनका घमंड; शमम्—शान्ति; यान्ति—प्राप्त करेंगे; प्राणाः—इन्द्रियाँ; इव—सदृश; सु—उचित रीति से; संयताः—वशीभूत।

यदि वृष्णि लोग यह सुनकर कि उनका पुत्र पकड़ा गया है यहाँ आते हैं, तो हम उनके घमंड को तोड़ डालेंगे। इस प्रकार से वे उसी तरह दमित हो जायेंगे जिस तरह कठोर नियंत्रण के अन्तर्गत शारीरिक इन्द्रियाँ दमित हो जाती हैं।

इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ।
साम्बमारेभिरे योद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५॥

शब्दार्थ

इति—यह कह कर; कर्णः शलः भूरिः—कर्ण, शल तथा भूरि (सौमदत्ति); यज्ञकेतुः सुयोधनः—यज्ञकेतु (भूरिश्रवा) तथा दुर्योधन; साम्बम्—साम्ब के विरुद्ध; आरेभिरे—रवाना हो गये; योद्धुम्—युद्ध करने के लिए; कुरु-वृद्ध—कुरुओं के गुरुजन (भीष्म) द्वारा; अनुमोदिताः—स्वीकृति दिये जाने पर।

यह कह कर तथा कुरुवंश के वयोवृद्ध सदस्य द्वारा अपनी योजना की स्वीकृति लेने पर कर्ण, शल, भूरि, यज्ञकेतु तथा सुयोधन साम्ब पर आक्रमण करने के लिए कूच कर गए।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि यहाँ पर जिस कुरु-वृद्ध का उल्लेख है, वह भीष्म हैं जिन्होंने अपने कनिष्टजनों को इस प्रकार अनुमति दी, "चूँकि साम्ब ने इस कुमारी का स्पर्श कर लिया है अतएव यह दूसरा पति स्वीकार नहीं कर सकती। उसे ही इसका पति बनना होगा। तो भी तुम इसे बन्दी बना लो और इससे अपने अनुचित कार्य एवं हमारे पराक्रम के विषय में वक्तव्य दिला दो। लेकिन उसे किसी भी हालत में जान से न मारा जाय।" आचार्य का यह भी कहना है कि भीष्म इस श्लोक में वर्णित पाँचों योद्धाओं के साथ गये।

दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान्महारथः ।
प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; अनुधावतः—अपनी ओर दौड़ते हुए; साम्बः—साम्ब; धार्तराष्ट्रान्—धृतराष्ट्र के अनुयायियों को; महारथः—महान् रथ-योद्धा; प्रगृह्य—पकड़ कर; रुचिरम्—सुन्दर; चापम्—अपना धनुष; तस्थौ—खड़ा रहा; सिंहः—सिंह; इव—सदृश; एकलः—अकेला।

दुर्योधन तथा उसके साथियों को अपनी ओर दौड़ते देखकर, महारथी साम्ब ने अपना सुन्दर धनुष धारण कर लिया और वह सिंह की तरह अकेला खड़ा हो गया।

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ।
आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; ते—वे; जिघृक्षवः—पकड़ने के लिए दृढ़-संकल्प; क्रुद्धाः—क्रुद्ध; तिष्ठ तिष्ठ इति—जरा ठहरो, ठहरो; भाषिणः—कहते हुए; आसाद्य—सामने आकर; धन्विनः—धनुर्धर; बाणैः—अपने बाणों से; कर्ण-अग्रण्यः—कर्ण इत्यादि ने; समाकिरन्—उस पर वर्षा की।

पकड़ने के लिए कृतसंकल्प, क्रुद्ध कर्ण इत्यादि धनुर्धरों ने जोर-जोर से साम्ब से कहा, "ठहरो और युद्ध करो, ठहरो और युद्ध करो।" वे उसके पास आये और उस पर बाणों की वर्षा करने लगे।

सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ।
नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भः सिंह क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८॥

शब्दार्थ

सः—वह; अपविद्धः—अन्यायपूर्वक आक्रमण किया गया; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरु-श्रेष्ठ (परीक्षित महाराज); कुरुभिः—कुरुओं द्वारा; यदु-नन्दनः—यदुकुल के प्रिय पुत्र ने; न अमृष्यत्—सहन नहीं किया; तत्—उसे; अचिन्त्य—भगवान् कृष्ण का; अर्भः—बालक; सिंहः—सिंह; क्षुद्र—नगण्य; मृगैः—पशुओं द्वारा; इव—सदृश।

हे कुरु-श्रेष्ठ, चूँकि कृष्ण के पुत्र साम्ब को कुरुगण अनैतिक रीति से तंग कर रहे थे अतः यदुकुल का वह प्रिय पुत्र उनके आक्रमण को सहन नहीं कर सका जिस तरह एक सिंह क्षुद्र पशुओं के आक्रमण को सहन नहीं कर पाता।

तात्पर्य : *अचिन्त्यार्भ* शब्द की टीका करते हुए, लीला पुरुषोत्तम *भगवान् श्रीकृष्ण* में श्रील प्रभुपाद ने लिखा है : "भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र-रूप में यदुवंश का गौरवपूर्ण पुत्र साम्ब अचिन्त्य शक्तियों से समन्वित था।"

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः ।

कर्णादीन्षड्रथान्वीरस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ।
रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥ ॥

शब्दार्थ

विस्फूर्ज्य—टंकार करके; रुचिरम्—आकर्षक; चापम्—अपने धनुष को; सर्वान्—सबों को; विव्याध—बेध डाला; सायकैः—बाणों से; कर्ण-आदीन्—कर्ण तथा अन्यों को; षट्—छः; रथान्—रथों को; वीरः—वीर, साम्ब ने; तावद्भिः—उतने ही; युगपत्—एकसाथ; पृथक्—अलग अलग; चतुर्भिः—चार (बाणों) से; चतुरः—चार; वाहान्—घोड़ों को (प्रत्येक रथ के); एक-एकेन—एक-एक से; च—तथा; सारथीन्—सारथियों को; रथिनः—रथ की बागडोर सँभालने वाले योद्धाओं को; च—तथा; महा-इषु-आसान्—बड़े बड़े धनुर्धरों को; तस्य—उसका; तत्—वह; ते—उन्होंने; अभ्यपूजयन्—आदर किया।

अपने अद्भुत धनुष को टंकार करके वीर साम्ब ने बाणों से कर्ण आदि छहों योद्धाओं पर प्रहार किया। उसने छहों रथों को उतने ही बाणों से, चारों घोड़ों की टोली को चार बाणों से और प्रत्येक सारथी को एक एक बाण से बेध डाला। इसी तरह उसने रथों की बागडोर सँभालने वाले (रथी) महान् धनुर्धरों पर भी प्रहार किया। शत्रु योद्धाओं ने साम्ब को उसके इस पराक्रम प्रदर्शन के लिए बधाई दी।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : "जब साम्ब इस प्रकार अकेले ही बड़े पराक्रम से छहों महान् योद्धाओं से युद्ध कर रहा था तब उन योद्धाओं ने बालक साम्ब की अचिन्त्य शक्ति की सराहना की। युद्ध के बीच भी उन्होंने स्पष्टतः स्वीकार किया कि यह बालक साम्ब अद्भुत है।"

तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ।
एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदण्यः शरासनम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; तु—लेकिन; ते—उन्होंने; विरथम्—रथविहीन; चक्रुः—किया गया; चत्वारः—चार; चतुरः—उनमें से चार; हयान्—घोड़ों को; एकः—एक ने; तु—तथा; सारथिम्—सारथी को; जघ्ने—मारा; चिछेद—चीर डाला; अन्यः—दूसरा; शर-असनम्—उसके धनुष को।

किन्तु उन्होंने उसे रथ से नीचे उतरने पर विवश कर दिया और उसके बाद उनमें से चार ने उसके चारों घोड़ों को मार दिया, एक ने उसके सारथी को मार डाला और दूसरे ने उसके धनुष को तोड़ डाला।

तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ।
कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; बद्ध्वा—बाँधकर; विरथी-कृत्य—उसको रथ से विहीन करके; कृच्छ्रेण—कठिनाई से; कुरवः—कुरुओं ने; युधि—युद्ध में; कुमारम्—कुमार या बालक को; स्वस्य—अपनी; कन्याम्—पुत्री; च—तथा; स्व-पुरम्—अपने नगर; जयिनः—विजयी; अविशन्—प्रवेश किया।

युद्ध के दौरान साम्ब को रथविहीन करके कुरु-योद्धाओं ने बड़ी मुश्किल से उसे बाँध लिया और तब वे उस कुमार तथा अपनी राजकुमारी को लेकर विजयी भाव से अपने नगर में प्रविष्ट हुए।

तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्सञ्जातमन्यवः ।
कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

तत्—यह; श्रुत्वा—सुनकर; नारद—नारदमुनि के; उक्तेन—कथनों से; राजन्—हे राजा (परीक्षित); सञ्जात—जागा हुआ; मन्यवः—जिसका क्रोध; कुरून्—कुरुओं के; प्रति—प्रति; उद्यमम्—युद्ध की तैयारियाँ; चक्रुः—कीं; उग्रसेन—उग्रसेन द्वारा; प्रचोदिताः—प्रेरित।

हे राजन्, जब यादवों ने श्री नारद से यह समाचार सुना तो वे क्रुद्ध हो उठे। राजा उग्रसेन द्वारा प्रेरित किये जाने पर उन्होंने कुरुओं के विरुद्ध युद्ध की तैयारी कर ली।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: "महर्षि नारद ने तुरन्त यदुवंश को जानकारी दी कि साम्ब बन्दी बना लिया गया है। उन्होंने यदुवंशियों को सारी कथा कह सुनाई। साम्ब को छह योद्धाओं द्वारा अनुचित रीति से बन्दी बनाये जाने पर यदुवंशी अत्यधिक क्रुद्ध हो गये। अतः यदुवंश के प्रधान राजा उग्रसेन से अनुमति प्राप्त करके वे कुरुवंश की राजधानी पर आक्रमण करने को तत्पर हो गये।"

सान्त्वयित्वा तु तान्रामः सन्नद्धान्वृष्णिपुङ्गवान् ।
नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥ १४॥
जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ।
ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥ १५॥

शब्दार्थ

सान्त्वयित्वा—शान्त करके; तु—लेकिन; तान्—उनको; रामः—बलराम; सन्नद्धान्—कवच पहने; वृष्णि-पुङ्गवान्—वृष्णिवंशी वीरों को; न ऐच्छत्—नहीं चाहा; कुरूणाम् वृष्णीनाम्—कुरुओं तथा वृष्णियों के मध्य; कलिम्—कलह, झगड़ा; कलि—कलह के युग का; मल—कल्मष; अपहः—हटाने वाले; जगाम—गया; हास्तिन-पुरम्—हस्तिनापुर; रथेन—अपने रथ से; आदित्य—सूर्य (सदृश); वर्चसा—तेज वाले; ब्राह्मणैः—ब्राह्मणों के साथ; कुल—परिवार के; वृद्धैः—गुरुजनों के साथ; च—तथा; वृतः—घिरे हुए; चन्द्रः—चन्द्रमा; इव—सदृश; ग्रहैः—सात ग्रहों से।

किन्तु भगवान् बलराम ने वृष्णि-वीरों के क्रोध को शान्त किया जिन्होंने पहले से अपने कवच धारण कर लिये थे। कलह के युग को शुद्ध करने वाले (बलराम) कुरुओं तथा वृष्णियों

के बीच कलह नहीं चाहते थे। अत: वे ब्राह्मणों तथा परिवार के गुरुजनों (बड़े-बूढ़ों) के साथ अपने रथ पर हस्तिनापुर गये। उनका रथ सूर्य की तरह तेजोमय था। जब वे जा रहे थे तो ऐसे लग रहे थे मानो प्रधान ग्रहों द्वारा घिरा चन्द्रमा हो।

गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ।
उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

गत्वा—जाकर; गजाह्वयम्—हस्तिनापुर; रामः—बलराम; बाह्य—बाहर; उपवनम्—बगीचे में; आस्थितः—ठहर गये; उद्धवम्—उद्धव को; प्रेषयाम् आस—भेजा; धृतराष्ट्रम्—धृतराष्ट्र के विषय में; बुभुत्सया—जानने की इच्छा से।

हस्तिनापुर पहुँचकर बलराम नगर के बाहर एक बगीचे में रह गए और उद्धव को धृतराष्ट्र के इरादों का पता लगाने के लिए आगे भेज दिया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: ''जब श्री बलराम हस्तिनापुर की सीमा पर पहुँचे तो उन्होंने नगर में प्रवेश नहीं किया अपितु नगर के बाहर एक छोटे-से उद्यान-गृह में डेरा लगा दिया। तब उन्होंने उद्धव से कहा कि वे कुरुवंश के प्रमुखों से भेंट करके उनसे पूछें कि वे यदुवंश से युद्ध करना चाहते हैं या समझौता करना चाहते हैं।''

सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ।
दुर्योधनं च विधिवद्राममागतं अब्रवीत् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, उद्धव; अभिवन्द्य—वन्दना करके; अम्बिका-पुत्रम्—अम्बिका-पुत्र, धृतराष्ट्र को; भीष्मम् द्रोणम् च—भीष्म तथा द्रोण को; बाह्लिकम् दुर्योधनम् च—तथा बाह्लिक और दुर्योधन को; विधि-वत्—शास्त्रों के आदेशानुसार; रामम्—बलराम को; आगतम्—आया हुआ; अब्रवीत्—उसने कहा।

अम्बिका-पुत्र (धृतराष्ट्र) तथा भीष्म, द्रोण, बाह्लिक तथा दुर्योधन को समुचित आदर देकर उद्धव ने उन्हें बतलाया कि भगवान् बलराम आ गये हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि यहाँ पर उद्धव द्वारा युधिष्ठिर तथा उनके संगियों को नमस्कार किये जाने का उल्लेख नहीं है क्योंकि उन दिनों पाण्डवजन इन्द्रप्रस्थ में ठहरे हुए थे।

तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ।

तमर्चयित्वाभिययु: सर्वे मङ्गलपाणय: ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; अति—अत्यन्त; प्रीताः—प्रसन्न; तम्—उससे; आकर्ण्य—सुनकर; प्राप्तम्—आया हुआ; रामम्—बलराम को; सुहृत्-तमम्—अपने प्रियतम मित्र; तम्—उसको, उद्धव को; अर्चयित्वा—पूज कर; अभिययुः—गये; सर्वे—वे सभी; मङ्गल—शुभ भेंटें; पाणयः—अपने हाथों में।

यह सुनकर कि उनके प्रियतम मित्र बलराम आ चुके हैं, वे अत्यधिक प्रसन्न हुए और सर्वप्रथम उन्होंने उद्धव का आदर किया। तत्पश्चात् वे अपने हाथों में शुभ भेंटें लेकर भगवान् से मिलने गये।

तात्पर्य : *भगवान् श्रीकृष्ण* में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: "कुरुवंश के प्रधानगण, विशेष रूप से धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन अत्यन्त हर्षित थे क्योंकि उन्हें यह भलीभाँति पता था कि भगवान् श्री बलराम उनके परिवार के महान् शुभचिन्तक हैं। यह समाचार सुनकर उनके हर्ष की सीमा न रही अतएव उन्होंने तत्काल उद्धव का स्वागत किया। भगवान् बलराम का उचित स्वागत करने के लिए वे अपने अपने हाथों में उनके स्वागत की शुभ सामग्री ले लेकर उनसे भेंट करने नगरद्वार के बाहर गये।"

तं सङ्गम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ।
तेषां ये तत्प्रभावज्ञा: प्रणेमु: शिरसा बलम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसके; सङ्गम्य—पास जाकर; यथा—जिस तरह; न्यायम्—उचित; गाम्—गौवें; अर्घ्यम्—अर्घ्यजल; च—तथा; न्यवेदयन्—भेंट किया; तेषाम्—उनमें से; ये—जो; तत्—उसकी; प्रभाव—शक्ति; ज्ञाः—जानने वाले; प्रणेमुः—प्रणाम किया; शिरसा—अपने सिरों से; बलम्—बलराम को।

वे भगवान् बलराम के पास गये और गौवों तथा अर्घ्य की भेंटों से, यथोचित विधि से उनकी पूजा की। कुरुओं में से उन लोगों ने जो उनकी असली शक्ति से परिचित थे भूमि को सिर से छू कर उन्हें प्रणाम किया।

तात्पर्य : आचार्यों का कहना है कि भीष्मदेव जैसे गुरुजनों ने भी भगवान् बलदेव को नमस्कार किया।

बन्धून्कुशलिन: श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ।
परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वच: ॥ २० ॥

शब्दार्थ

बन्धून्—उनके सम्बन्धियों को; कुशलिनः—कुशलपूर्वक; श्रुत्वा—सुनकर; पृष्ट्वा—पूछ कर; शिवम्—उनकी कुशल-मंगल; अनामयम्—तथा स्वास्थ्य; परस्परम्—एक-दूसरे में; अथ उ—तत्पश्चात; रामः—बलराम; बभाषे—बोला; अविक्लवम्—सीधे; वचः—शब्द।

जब दोनों पक्षों ने सुन लिया कि उनके सम्बन्धीगण कुशल-मंगल से हैं और दोनों ने एक-दूसरे से कुशल-मंगल तथा स्वास्थ्य के विषय में पूछताछ कर ली तो बलराम ने कुरुओं से सीधे तौर पर इस प्रकार से कहा।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''परस्पर एक-दूसरे की कुशलता पूछ कर उन्होंने एक-दूसरे का स्वागत किया और जब यह औपचारिकता पूरी हो गई तो बलराम ने गम्भीर स्वर में तथा अत्यन्त धैर्यपूर्वक उनके विचारार्थ निम्नांकित शब्द प्रस्तुत किये।''

उग्रसेनः क्षितेशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः ।
तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वमविलम्बितम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

उग्रसेनः—राजा उग्रसेन ने; क्षित—पृथ्वी के; ईश—शासकों का; ईशः—शासक; यत्—जो; वः—तुमसे; आज्ञापयत्—यह माँग की है; प्रभुः—हमारे स्वामी; तत्—वह; अव्यग्र-धियः—एकाग्र होकर; श्रुत्वा—सुनकर; कुरुध्वम्—तुम लोगों को करना चाहिए; अविलम्बितम्—बिना देर लगाये।

[बलरामजी ने कहा] : राजा उग्रसेन हमारे स्वामी तथा राजाओं के भी शासक हैं। तुम लोग एकाग्र चित्त से उसे सुन लो जो उन्होंने तुम लोगों को करने के लिए कहा है और तब उसे तुरन्त करो।

यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाधर्मेण धार्मिकम् ।
अबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; यूयम्—तुम सभी; बहवः—अनेक; तु—लेकिन; एकम्—एक व्यक्ति को; जित्वा—जीत कर; अधर्मेण—धर्म के विरुद्ध; धार्मिकम्—धर्म का पालन करने वाले को; अबध्नीत—तुमने बाँध लिया है; अथ—ऐसा होते हुए भी; तत्—वह; मृष्ये—मैं सहन कर रहा हूँ; बन्धूनाम्—सम्बन्धियों के बीच; ऐक्य—एकता के लिए; काम्यया—इच्छा से।

[राजा उग्रसेन ने कहा है] : यद्यपि तुम में से कई ने अधर्म का सहारा लेकर धर्म के सिद्धान्तों पर चलने वाले अकेले प्रतिद्वन्द्वी को पराजित किया है फिर भी मैं पारिवारिक सदस्यों में एकता बनाये रखने के लिए यह सब सहन कर रहा हूँ।

तात्पर्य : यहाँ उग्रसेन के कहने का आशय यह है कि कुरु तुरन्त साम्ब को लेकर बलराम को सौंप दें।

वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ।
कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

वीर्य—शक्ति; शौर्य—साहस; बल—तथा बल से; उन्नद्धम्—पूरित; आत्म—अपनी; शक्ति—शक्ति; समम्—उपयुक्त; वचः—शब्द; कुरवः—कौरवजन; बलदेवस्य—बलदेव के; निशम्य—सुनकर; ऊचुः—बोले; प्रकोपिताः—क्रुद्ध।

बलराम के पराक्रम, साहस तथा बल से पूरित एवं उनकी शक्ति के समरुप इन शब्दों को सुनकर कौरवगण क्रुद्ध हो उठे और इस प्रकार बोले।

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ।
आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; महत्—अतीव; चित्रम्—आश्चर्य; इदम्—यह; काल—समय की; गत्या—गति से; दुरत्यया—दुर्निवार, दुर्लंघ्य; आरुरक्षति—चोटी पर चढ़ना चाहता है; उपानत्—जूता; वै—निस्सन्देह; शिरः—सिर; मुकुट—मुकुट से युक्त; सेवितम्—सुशोभित।

[कुरुनायकों ने कहा] : ओह, यह कितनी विचित्र बात है! काल की गति निस्सन्देह दुर्लंघ्य है—अब (पैरों की) एक जूती उस सिर पर चढ़ना चाहती है, जिसमें राजमुकुट सुशोभित है।

तात्पर्य : *काल-गत्या दुरत्यया* शब्दों से असहिष्णु कुरुगण यह निष्कर्ष निकाल रहे हैं कि अधम कलियुग आने वाला है। यहाँ कुरुगण यह संकेत करते हैं कि अधम कलियुग शुरू हो चुका है क्योंकि वे यह दावा कर रहे हैं कि "एक जूती उस सिर पर चढ़ना चाहती है, जिस पर राजमुकुट रखा है।" दूसरे शब्दों में, उन्होंने सोचा कि ये अधम यदुगण राजसी कुरुओं से ऊपर उठ जाना चाहते हैं।

एते यौनेन सम्बद्धाः सहशय्यासनाशनाः ।
वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एते—ये; यौनेन—वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा; सम्बद्धाः—जुड़े हुए; सह—साथ साथ; शय्या—बिस्तर; आसन—आसन; अशनाः—तथा भोजन; वृष्णयः—वृष्णिगण; तुल्यताम्—समानता पर; नीताः—लाये गये; अस्मत्—हमारे द्वारा; दत्त—दिया हुआ; नृप-आसनाः—राज-सिंहासन।

चूँकि ये वृष्णिजन हमसे वैवाहिक सम्बन्धों से बँधे हैं इसलिए हमने इन्हें अपनी शय्या, आसन तथा भोजन में बराबरी का पद दे रखा है। असल में तो हमीं ने इन्हें राज-सिंहासन प्रदान किया है।

चामरव्यजने शङ्खमातपत्रं च पाण्डुरम् ।
किरीटमासनं शय्यां भुञ्जतेऽस्मदुपेक्षया ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

चामर—चमरी की पूँछ के बाल के; व्यजने—दो पंखे; शङ्खम्—शंख; आतपत्रम्—छाता; च—तथा; पाण्डुरम्—श्वेत; किरीटम्—मुकुट; आसनम्—आसन; शय्याम्—राजशय्या का; भुञ्जते—भोग करते हैं; अस्मत्—हमारी; उपेक्षया—उपेक्षा से।

चूँकि हमने परवाह नहीं की इसलिए वे चमरी के पंखे तथा शंख, श्वेत छाता, सिंहासन तथा राजशय्या का भोग कर सके।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं कि कुरुगण सोच रहे थे कि ''यदुओं को चाहिए था कि हमारी उपस्थिति में ऐसी राजसी सामग्री का उपयोग न करते किन्तु हमने अपने पारिवारिक सम्बन्धों के कारण उन्हें ऐसा करने से रोका नहीं।'' *अस्मद्-उपेक्षया* शब्दों का प्रयोग करके कुरुगण यह कहना चाहते हैं: ''वे इन राजसी ठाट-बाटों का उपयोग इसलिए कर सके कि हमने इस बात को गम्भीरता से नहीं लिया।'' जैसी कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने व्याख्या की है, कुरुओं ने सोचा, ''उनके द्वारा इन वस्तुओं का उपयोग करने के विषय में चिन्ता करना आदरसूचक हो सकता था किन्तु वास्तव में उनके प्रति हममें ऐसा कोई आदर-भाव नहीं है...चूँकि वे निम्न कुल के हैं अतएव उनका आदर नहीं होना चाहिए अत: हम उनका आदर नहीं करते।''

अलं यदूनां नरदेवलाञ्छनै-
दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ।
येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा
आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥ २७॥

शब्दार्थ

अलम्—बस; यदूनाम्—यदुओं के लिए; नर-देव—राजाओं के; लाञ्छनैः—प्रतीकों से; दातुः—देने वाले के लिए; प्रतीपैः—विपरीत; फणिनाम्—साँपों के लिए; इव—सदृश; अमृतम्—अमृत; ये—जो; अस्मत्—हमारी; प्रसाद—कृपा से; उपचिताः—समृद्ध बने हुए; हि—निस्सन्देह; यादवाः—यदुगण; आज्ञापयन्ति—आदेश दे रहे हैं; अद्य—अब; गत-त्रपाः—लाज खोकर; बत—निस्सन्देह।

अब यदुओं को इससे आगे इन राजसी प्रतीकों का उपयोग न करने दिया जाय क्योंकि अब ये प्रदान करने वालों के लिए कष्टप्रद बन रहे हैं जिस तरह विषैले साँपों को पिलाया गया दूध। ये यादवगण हमारी कृपा से समृद्ध बनकर अब सारी लाज शर्म खो चुके हैं और हमें आदेश देने का दुस्साहस कर रहे हैं।

कथमिन्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ।
अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

कथम्—कैसे; इन्द्रः—इन्द्र; अपि—भी; कुरुभिः—कुरुओं के द्वारा; भीष्म-द्रोण-अर्जुन-आदिभिः—भीष्म, द्रोण, अर्जुन इत्यादि के द्वारा; अदत्तम्—न दिया हुआ; अवरुन्धीत—हड़प कर लेंगे; सिंह—सिंह द्वारा; ग्रस्तम्—पकड़ी गयी; इव—सदृश; उरणः—भेड़, मेमना।.

भला इन्द्र भी किसी वस्तु को हड़पने का दुस्साहस कैसे कर सकता है, जिसे भीष्म, द्रोण, अर्जुन या अन्य कुरुजनों ने उसे नहीं दिया है? यह तो वैसा ही है जैसे मेमना सिंह के वध की माँग करे।

श्रीबादरायणिरुवाच
जन्मबन्धुश्रीयोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ।
आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायनिः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; जन्म—जन्म; बन्धु—तथा सम्बन्ध का; श्रीया—ऐश्वर्य से; उन्नद्ध—महान् बनाया गया; मदाः—नशा; ते—वे; भरत-ऋषभ—हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ; आश्राव्य—सुनवाकर; रामम्—बलराम को; दुर्वाच्यम्—कटु वचन; असभ्याः—गँवार व्यक्ति; पुरम्—नगर में; आविशन्—प्रविष्ट हुए।.

श्रीबादरायण ने कहा, हे भारतों में श्रेष्ठ, अपने उच्च जन्म तथा सम्बन्धों के ऐश्वर्य से फूल कर कुप्पा हुए घमंडी कुरु जब ये कटु वचन बलराम से कह चुके तो वे अपने नगर को वापस चले गये।

दृष्ट्वा कुरूनां दौःशील्यं श्रुत्वावाच्यानि चाच्युतः ।
अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥ ० ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; कुरूणाम्—कुरुओं का; दौःशील्यम्—दुश्चरित्र; श्रुत्वा—सुनकर; अवाच्यानि—न कहने योग्य शब्द; च—तथा; अच्युतः—अच्युत बलराम ने; अवोचत्—कहा; कोप—क्रोध से; संरब्धः—क्रुद्ध; दुष्प्रेक्ष्यः—देखना कठिन; प्रहसन्—हँसते हुए; मुहुः—बारम्बार।.

कुरुओं के दुराचरण को देखकर तथा उनके भद्दे शब्दों को सुनकर अच्युत भगवान् बलराम क्रोध से उबल पड़े। उनका मुखमण्डल देखने में भयावना था और बारम्बार हँसते हुए वे इस प्रकार बोले।

नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्तिं नेच्छन्त्यसाधवः ।
तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥ १ ॥

शब्दार्थ

नूनम्—निश्चय ही; नाना—विविध; मद—कामवासनाओं से; उन्नद्धाः—फूलकर कुप्पा हुए; शान्तिम्—शान्ति; न इच्छन्ति—इच्छा नहीं करते; असाधवः—बदमाश; तेषाम्—उनके; हि—निस्सन्देह; प्रशमः—समझाना-बुझाना; दण्डः—शारीरिक दण्ड; पशूनाम्—पशुओं के लिए; लगुडः—लाठी; यथा—जिस तरह।

[भगवान् बलराम ने कहा] : ''स्पष्ट है कि इन बदमाशों की विविध वासनाओं ने इन्हें इतना दम्भी बना दिया है कि वे शान्ति चाहते ही नहीं। तो फिर इन्हें शारीरिक दण्ड द्वारा समझाना-बुझाना होगा जिस तरह लाठी से पशुओं को सीधा किया जाता है।

अहो यदून्सुसंरब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः ।
सान्त्वयित्वाहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ २ ॥
त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः ।
तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; यदून्—यदुओं को; सु-संरब्धान्—क्रोध से उबल रहे; कृष्णम्—कृष्ण को; च—भी; कुपितम्—क्रुद्ध; शनैः—धीरे धीरे; सान्त्वयित्वा—शान्त करके; अहम्—मैं; एतेषाम्—इन (कौरवों) के लिए; शमम्—शान्ति; इच्छन्—चाहते हुए; इह—यहाँ; आगतः—आया; ते इमे—वे ही (कुरुजन); मन्द-मतयः—दुर्बुद्धि; कलह—झगड़ने के लिए; अभिरताः—इच्छुक, लिप्त; खलाः—दुष्ट; तम्—उसको; माम्—मुझको; अवज्ञाय—अनादर करके; मुहुः—बारम्बार; दुर्भाषान्—कटु वचन; मानिनः—गर्वित होकर; अब्रुवन्—उन्होंने कहे हैं।

''ओह! मैं धीरे धीरे ही क्रुद्ध यदुजनों तथा कृष्ण को भी, जिन्हें क्रोध आ गया था शान्त कर सका था। मैं इन कौरवों के लिए शान्ति की कामना करते हुए यहाँ आया। किन्तु ये इतने मूर्ख, स्वभाव से कलह-प्रिय तथा दुष्ट हैं कि इन्होंने बारम्बार मेरा अनादर किया है। दम्भ के कारण इन्होंने मुझसे कटु वचन कहने का दुस्साहस किया है।

नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; उग्रसेनः—राजा उग्रसेन; किल—निस्सन्देह; विभुः—आदेश देने के योग्य; भोज-वृष्णि-अन्धक—भोजों, वृष्णियों तथा अन्धकों के; ईश्वरः—स्वामी; शक्र-आदयः—इन्द्र तथा अन्य देवता; लोक—लोकों के; पालाः—शासक; यस्य—जिसकी; आदेश—आज्ञा के; अनुवर्तिनः—अनुयायी।

''क्या भोजों, वृष्णियों तथा अन्धकों के स्वामी राजा उग्रसेन आदेश देने योग्य नहीं हैं जबकि इन्द्र तथा अन्य लोकपालक उनके आदेशों का पालन करते हैं?

सुधर्माक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः ।
आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सुधर्मा—स्वर्ग का राज सभाभवन, सुधर्मा; आक्रम्यते—अधिकार में रखता है; येन—जिसके (कृष्ण) द्वारा; पारिजातः—पारिजात नामक; अमर—अमर देवताओं का; अङ्घ्रिपः—वृक्ष; आनीय—लाकर; भुज्यते—भोगा जाता है; सः असौ—वही पुरुष; न—नहीं; किल—निस्सन्देह; अध्यासन—उच्च आसन; अर्हणः—योग्य।

''वही कृष्ण जो सुधर्मा सभाभवन के अधिकारी हैं और जिन्होंने अपने आनन्द के लिए अमर देवताओं से पारिजात वृक्ष ले लिया—क्या वही कृष्ण राजसिंहासन पर बैठने योग्य नहीं हैं?

तात्पर्य : यहाँ बलराम क्रोध में आकर कहते हैं, ''यदुओं पर ध्यान न दें—ये धूर्त कौरव भगवान् कृष्ण तक का अपमान करने का साहस करते हैं!''

यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ।
स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; पाद-युगम्—दो पैर; साक्षात्—स्वयं; श्रीः—लक्ष्मीजी; उपास्ते—पूजा करती हैं; अखिल—समस्त ब्रह्माण्ड की; ईश्वरी—स्वामिनी; सः—वह; न अर्हति—योग्य नहीं हैं; किल—निस्सन्देह; श्री-ईशः—लक्ष्मी के पति; नर-देव—मानव राजा की; परिच्छदान्—साज-सामग्री।

''समस्त ब्रह्माण्ड की स्वामिनी साक्षात् लक्ष्मीजी उनके पैरों की पूजा करती हैं। और उन्हीं लक्ष्मी के पति क्या मर्त्य राजा की साजसामग्री के पात्र नहीं हैं?

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालै-
मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः
श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; अङ्घ्रि—पैरों की; पङ्कज—कमल सदृश; रजः—धूल; अखिल—समस्त; लोक—लोकों के; पालैः—शासकों द्वारा; मौलि—मुकुट; उत्तमैः—उत्तम, श्रेष्ठ; धृतम्—धारण किया हुआ; उपासित—पूज्य; तीर्थ—तीर्थस्थानों का; तीर्थम्—तीर्थ, पवित्रता का उद्गम; ब्रह्मा-लोर्द् ब्रह्मा; भवः—ब्रह्मा; अहम्—; अपि—; यस्य—; कलाः—; कलायाः—; श्रीः—; च—; उद्वहेम—; चिरम्—; अस्य—; नृप-आसनम्—; क्व—.

यस्य—जिसके; अङ्घ्र—पैरों की; पङ्कज—कमल सदृश; रजः—धूल; अखिल—समस्त; लोक—लोकों के; पालै—शासकों द्वारा; मौलि—मुकुट; उत्तमै—उत्तम, श्रेष्ठ; धृतम्—धारण किया हुआ; उपासित—पूज्य; तीर्थ—तीर्थस्थानों का; तीर्थम्—तीर्थ,

पवित्रता का उद्गम; ब्रह्मा—ब्रह्मा; भवः—शिव; अहम्—मैं; अपि—भी; यस्य—जिसके; कलाः—अंश; कलाया—अंश के; श्रीः—लक्ष्मी; च—भी; उद्वहेम—धारण करते हैं; चिरम्—निरन्तर; अस्य—उसका; नृप-आसनम्—राजसिंहासन; क्व—कहाँ।

''कृष्ण के चरण-कमलों की धूल, जो सभी तीर्थस्थानों के लिए पवित्रता की उद्गम है बड़े बड़े देवताओं द्वारा पूजी जाती है। समस्त लोकों के प्रधान देवता उनकी सेवा में लगे रहते हैं और अपने मुकुटों पर कृष्ण के चरणकमलों की धूल धारण करके अपने को परम भाग्यशाली मानते हैं। ब्रह्मा तथा शिवजी जैसे बड़े बड़े देवता, यहाँ तक कि लक्ष्मीजी और मैं भी उनके दिव्य व्यक्तित्व के अंश हैं और हम भी उस धूल को बड़ी सावधानी से अपने सिरों पर धारण करते हैं। क्या इतने पर भी कृष्ण राजप्रतीकों का उपयोग करने या राजसिंहासन पर बैठने के योग्य नहीं हैं?

तात्पर्य : उपर्युक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *भगवान् कृष्ण* पर आधारित है। श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार यहाँ पर विशेष रूप से उल्लिखित तीर्थस्थान गंगा नदी है। गंगाजल सारे जगत को आप्लावित करता है और चूँकि गंगा कृष्ण के चरणकमलों से निकलती है, अतः इसके तट महान् तीर्थस्थान बन गये हैं।

भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल ।
उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

भुञ्जते—भोग करते हैं; कुरुभिः—कुरुओं द्वारा; दत्तम्—दिया हुआ; भू—भूमि; खण्डम्—सीमित भाग; वृष्णयः—वृष्णिगण; किल—निस्सन्देह; उपानहः—जूते; किल—निस्सन्देह; वयम्—हम; स्वयम्—स्वयं; तु—लेकिन; कुरवः—कुरुगण; शिरः—सिर।

''हम वृष्णिगण केवल उस छोटे से भूभाग का भोग करते हैं जिस किसी की कुरुगण हमें अनुमति देते हैं? और हम निस्सन्देह जूते हैं जबकि कुरुगण सिर हैं?

अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ।
असम्बद्धा गिरऋओ रुक्षाः कः सहेतानुशासीता ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; ऐश्वर्य—अपनी शासनशक्ति से; मत्तानाम्—उन्मत्तों के; मत्तानाम्—शारीरिक रूप से उन्मत्तों के; इव—मानो; मानिनाम्—अभिमानी; असम्बद्धाः—बेतुके तथा बिना सिर-पैर के; गिरः—शब्द; रुक्षाः—कर्कश; कः—कौन; सहेत—सह सकता है; अनुशासीता—आदेश देने वाला।

''जरा देखो तो इन अभिमानी कुरुओं को जो सामान्य शराबियों की तरह अपने तथाकथित

अधिकार से उन्मत्त हैं! ऐसा कौन वास्तविक शासक, जो आदेश देने के अधिकार से युक्त है, उनके मूर्खतापूर्ण एवं बेतुके शब्दों को सह सकेगा?''

अद्य निष्कौरवां पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ।
गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; निष्कौरवां—कौरवों से विहीन; पृथ्वीम्—पृथ्वी; करिष्यामि—करूँगा; इति—इस प्रकार कह कर; अमर्षितः—क्रुद्ध; गृहीत्वा—लेकर; हलम्—अपना हल; उत्तस्थौ—उठ खड़े हुए; दहन्—जलाते हुए; इव—मानो; जगत्—लोकों को; त्रयम्—तीनों।

क्रुद्ध बलराम ने घोषणा की, ''आज मैं पृथ्वी को कौरवों से विहीन कर दूँगा।'' यह कहकर उन्होंने अपना हलायुध ले लिया और उठ खड़े हुए मानो तीनों लोकों को स्वाहा करने जा रहे हों।

लाङ्गलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ।
विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

लाङ्गल—हल की; अग्रेण—नोक से; नगरम्—नगर को; उद्विदार्य—फाड़कर; गजाह्वयम्—हस्तिनापुर को; विचकर्ष—खींचा; सः—उसने; गङ्गायाम्—गंगा में; प्रहरिष्यन्—फेंकने ही वाले; अमर्षितः—क्रुद्ध।

भगवान् ने क्रुद्ध होकर अपने हल की नोक से हस्तिनापुर को उखाड़ा और सम्पूर्ण नगर को गंगा नदी में फेंकने की मंशा से उसे घसीटने लगे।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: ''बलराम इतने क्रुद्ध लग रहे थे मानो सारे संसार को जलाकर राख कर देंगे। वे दृढ़तापूर्वक खड़े हो गये और हल को हाथ में लेकर उससे भूमि पर प्रहार करने लगे। इस तरह सम्पूर्ण हस्तिनापुर नगर पृथ्वी से विलग हो गया। तत्पश्चात् बलराम उस नगर को गंगा नदी की बहती जलधारा की ओर घसीटने लगे। इससे पूरे हस्तिनापुर में ऐसा कम्पन हुआ मानो भूकम्प आया हो और ऐसा लगा कि सारा नगर नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि भगवान् की इच्छा से उनके हल का आकार बढ़ गया और जब बलराम हस्तिनापुर को जल की ओर घसीटने लगे तो उन्होंने गंगा नदी को आदेश दिया, ''तुम साम्ब को छोड़कर सबों पर आक्रमण करो और अपने जल से नगर के हर व्यक्ति को मार डालो।'' इस तरह वे पृथ्वी को कौरवविहीन करने की प्रतिज्ञा पूरी कर सकेंगे और साथ ही आश्वस्त हो रहे थे कि साम्ब को कुछ नहीं होगा।

जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् ।
आकृष्यमाणमालोक्य कौरवाः जातसम्भ्रमाः ॥ ४२ ॥
तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः ।
सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

जल-यानम्—नाव, घन्नाई; इव—मानो; आघूर्णम्—इधर-उधर डगमगाती; गङ्गायाम्—गंगा में; नगरम्—नगर को; पतत्—गिरते हुए; आकृष्यमाणम्—खींचे जाकर; आलोक्य—देखकर; कौरवाः—सारे कौरव; जात—होकर; सम्भ्रमाः—उत्तेजित एवं मोहित; तम्—उसकी, बलराम की; एव—निस्सन्देह; शरणम्—शरण के लिए; जग्मुः—गये; स—सहित; कुटुम्बः—उनके परिवार; जिजीविषवः—जीवित रहने की इच्छा करते हुए; स—सहित; लक्ष्मणम्—लक्ष्मणा को; पुरः-कृत्य—आगे करके; साम्बम्—साम्ब को; प्राञ्जलयः—आदरपूर्वक हाथ जोड़ कर; प्रभुम्—प्रभु को।

घसीटे जा रहे अपने नगर को समुद्र में घन्नाई की तरह डगमगाते तथा गंगा में गिरने ही वाला देखकर, सारे कौरव भयभीत हो उठे। वे अपने प्राण बचाने के लिए अपने साथ अपने परिवारों को लेकर भगवान् की शरण लेने गये। साम्ब तथा लक्ष्मणा को आगे करके उन्होंने विनयपूर्वक अपने हाथ जोड़ लिये।

तात्पर्य : हस्तिनापुर नगर इस तरह डगमगाने लगा मानो तूफानग्रस्त समुद्र में घन्नाई हो। भयभीत कौरवों ने भगवान् को शांत करने के लिए साम्ब तथा लक्ष्मणा को तुरन्त लाकर उनके सामने कर दिया।

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

राम राम—हे राम, हे राम; अखिल—हर वस्तु के; आधार—आधार; प्रभावम्—शक्ति; न विदाम—हम नहीं जानते हैं; ते—तुम्हारा; मूढानाम्—मूर्ख बने पुरुषों के; नः—हमको; कु—बुरा; बुद्धीनाम्—बुद्धि वालों के; क्षन्तुम् अर्हसि—कृपया क्षमा कर दें; अतिक्रमम्—अपराध को।

[कौरवों ने कहा] : हे राम, हे सर्वाधार राम, हम आपकी शक्ति के बारे में कुछ भी नहीं जानते। कृपया हमारा अपराध क्षमा कर दें क्योंकि हम अज्ञानी हैं तथा बहकावे में आ गये थे।

स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ।
लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

स्थिति—पालन; उत्पत्ति—सृजन; अप्ययानाम्—तथा संहार के; त्वम्—तुमको; एकः—एकमात्र; हेतुः—कारण; निराश्रयः—किसी अन्य आधार के बिना; लोकान्—लोकों को; क्रीडनकान्—गेंदों को; ईश—हे प्रभु; क्रीडतः—खेल रहे; ते—तुम्हारे; वदन्ति—वे कहते हैं; हि—निस्सन्देह।

आप अकेले जगत का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं और आपका कोई पूर्व हेतु (कारण) नहीं है। दरअसल, हे प्रभु, विद्वानों का कहना है कि जब आप अपनी लीलाएँ करते हैं, तो सारे संसार आपके खिलौने जैसे होते हैं।

त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया
भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ।
अन्ते च यः स्वात्मनिरुद्धविश्वः
शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; एव—ही; मूर्ध्नि—सिर पर; इदम्—यह; अनन्त—हे असीम; लीलया—लीला के रूप में, आसानी से; भू—पृथ्वी के; मण्डलम्—गोले को; बिभर्षि—वहन करते हो; सहस्र-मूर्धन्—हे हजार सिरों वाले; अन्ते—अन्त में; च—तथा; यः—जो; स्व—अपना; आत्म—शरीर के भीतर; निरुद्ध—लीन करके; विश्वः—ब्रह्माण्ड; शेषे—लेट जाते हो; अद्वितीयः—अद्वितीय; परिशिष्यमाणः—शेष।

हे हजार सिरों वाले अनन्त, आप अपनी लीला के रूप में इस भूमण्डल को अपने एक सिर पर धारण करते हैं। संहार के समय आप सारे ब्रह्माण्ड को अपने शरीर के भीतर लीन कर लेते हैं और अकेले बचकर विश्राम करने के लिए लेट जाते हैं।

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ।
बिभ्रतो भगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

कोपः—क्रोध; ते—तुम्हारा; अखिल—हर एक को; शिक्षा—शिक्षा; अर्थम्—के लिए; न—नहीं; द्वेषात्—घृणा से; न च—न तो; मत्सरात्—ईर्ष्या से; बिभ्रतः—धारण करने वाले; भगवन्—भगवान्; सत्त्वम्—सतोगुण; स्थिति—स्थिति; पालन—तथा रक्षण; तत्-परः—आशय के रूप में।

आपका क्रोध हर एक को शिक्षा देने के निमित्त है, यह घृणा या द्वेष की अभिव्यक्ति नहीं हैं। हे परमेश्वर, आप शुद्ध सतोगुण को धारण करते हैं और इस जगत को बनाये रखने तथा इसकी रक्षा करने के लिए ही क्रुद्ध होते हैं।

तात्पर्य : कुरुगण स्वीकार करते हैं कि भगवान् बलराम का क्रोध सब प्रकार से उचित था और वास्तव में उन्हीं के लाभ के लिए था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार कौरव कहना चाहते थे, ''चूँकि आपने अपना क्रोध प्रदर्शित किया है अतएव हम सभ्य बन गये हैं। इसके पूर्व हम दुष्ट थे और दर्प से अन्धे होने के कारण आपको देख नहीं सके थे।''

नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय ।
विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्ते; ते—तुमको; सर्व—सभी; भूत—जीवों के; आत्मन्—हे आत्मा; सर्व—समस्त; शक्ति—शक्तियों के; धर—हे धारण करने वाले; अव्यय—हे अव्यय; विश्व—ब्रह्माण्ड के; कर्मन्—हे बनाने वाले; नमः—नमस्कार; ते—तुमको; अस्तु—हो; त्वाम्—तुमको; वयम्—हम; शरणम्—शरण लेने; गताः—आये हैं।

हे समस्त जीवों के आत्मा, हे समस्त शक्तियों को धारण करने वाले, हे ब्रह्माण्ड के अव्यय स्त्रष्टा, हम आपको नमस्कार करते हैं और नमस्कार करते हुए आपकी शरण ग्रहण करते हैं।

तात्पर्य : कौरवों को स्पष्ट रूप से अनुभव हो गया कि उनके जीवन तथा प्रारब्ध भगवान् के हाथों में थे।

श्रीशुक उवाच
एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ।
प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; प्रपन्नैः—शरणागतों द्वारा; संविग्नैः—अत्यन्त दुखी; वेपमान—हिलते हुए; अयनैः—घरों वाले; बलः—बलराम; प्रसादितः—शान्त हुए; सु—अत्यन्त; प्रसन्नः—शान्त तथा मृदुल; मा भैष्ट—मत डरो; इति—इस प्रकार कहकर; अभयम्—भय से छुटकारा; ददौ—दे दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जिन कौरवों का नगर डगमगा रहा था और जो अत्यन्त कष्ट में होने से उनकी शरण में आ रहे थे, ऐसे कौरवों द्वारा स्तुति किये जाने पर बलराम शान्त हो गये और उनके प्रति कृपालु हो गये। उन्होंने कहा "डरो मत।" फिर उनके भय को हर लिया।

दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान्षष्टिहायनान् ।
ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान् ॥ ५० ॥
रथानां षट्सहस्त्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ।
दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्त्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

दुर्योधनः—दुर्योधन ने; पारिबर्हम्—दहेज के रूप में; कुञ्जरान्—हाथी; षष्टि—साठ; हायनान्—वर्ष आयु के; ददौ—दिया; च—तथा; द्वादश—बारह; शतानि—सौ; अयुतानि—दस हजार; तुरङ्गमान्—घोड़े; रथानाम्—रथों के; षट्-सहस्त्राणि—छः हजार; रौक्माणाम्—सोने के; सूर्य—सूर्य (जैसे); वर्चसाम्—तेजवान्; दासीनाम्—दासियों के; निष्क—रत्नजटित हार; कण्ट्थीनाम्—जिनके गलों में; सहस्त्रम्—एक हजार; दुहितृ—अपनी पुत्री के लिए; वत्सलः—पितृ-स्नेह से युक्त।

अपनी पुत्री के प्रति अत्यन्त वत्सल दुर्योधन ने उसे दहेज में १,२०० साठ वर्षीय हाथी,

१,२०,००० घोड़े, ६,००० सूर्य जैसे चमकते सुनहरे रथ तथा १,००० दासियाँ दीं जो गलों में रत्नजटित हार पहने थीं।

प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः ।
ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

प्रतिगृह्य—स्वीकार करके; तु—तथा; तत्—उसको; सर्वम्—समस्त; भगवान्—भगवान्; सात्वत—यादवों के; ऋषभः—प्रधान; स—सहित; सुतः—पुत्र; स—सहित; स्नुषः—पतोहू, पुत्रवधू; प्रायात्—प्रस्थान किया; सु-हृद्भिः—शुभचिन्तकों (कौरवों) द्वारा; अभिनन्दितः—विदा किया गया।.

यादवों के प्रमुख भगवान् ने इन सारे उपहारों को स्वीकार किया और तब अपने पुत्र तथा अपनी पुत्रवधू सहित वहाँ से प्रस्थान किया और उनके शुभचिन्तकों ने उन्हें विदाई दी।

ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः
समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः ।
शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां
मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; प्रविष्टः—प्रवेश करके; स्व—अपने; पुरम्—नगर में; हल-आयुधः—हल ही जिनका हथियार है, बलराम; समेत्य—मिलकर; बन्धून्—अपने सम्बन्धियों को; अनुरक्त—उनसे अनुरक्त; चेतसः—हृदयों वाले; शशंस—बतलाया; सर्वम्—हर बात; यदु-पुङ्गवानाम्—यदुओं के नायकों के; मध्ये—बीच में; सभायाम्—सभा के; कुरुषु—कुरुओं में; स्व—अपना; चेष्टितम्—कार्य।.

तब भगवान् हलायुध अपने नगर (द्वारका) में प्रविष्ट हुए और अपने सम्बन्धियों से मिले जिनके हृदय उनसे अनुराग में बँधे थे। सभाभवन में उन्होंने कुरुओं के साथ हुई प्रत्येक घटना यदुओं से कह सुनाई।

अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् ।
समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनुदृश्यते ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; अपि—भी; च—तथा; पुरम्—नगर; हि—निस्सन्देह; एतत्—यह; सूचयत्—सूचना देता है; राम—बलराम के; विक्रमम्—पराक्रम को; समुन्नतम्—उठा हुआ; दक्षिणतः—दक्षिण की ओर; गङ्गायाम्—गंगा में; अनुदृश्यते—दिखाई देता है।.

आज भी हस्तिनापुर नगर गंगा के तट पर दक्षिणी दिशा में उठा हुआ दिखता है। इस तरह यह भगवान् बलराम के पराक्रम का सूचक है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: ''क्षत्रिय राजाओं में अधिकतर यह प्रथा थी कि विवाह के पूर्व वर तथा वधू पक्ष के लोगों के बीच किसी प्रकार का युद्ध हो। जब साम्ब ने बलात लक्ष्मणा का हरण किया था तब कुरुवंश के प्रौढ़ सदस्य यह देखकर प्रसन्न हुए थे कि वह सचमुच उसके योग्य वर था। फिर भी व्यक्तिगत शक्ति को परखने के लिए उन्होंने उससे युद्ध किया और युद्ध के नियमों का अनादर करते हुए उसे बन्दी बना लिया। जब यदुवंश ने साम्ब को कौरवों के बन्धन से मुक्त कराने का निश्चय किया, तो स्वयं बलराम समझौता कराने आये। वे एक बलशाली क्षत्रिय थे अतएव उन्होंने कौरवों को तत्काल ही साम्ब को मुक्त करने का आदेश दिया। इस आदेश से कौरवों ने स्वयं को बाहरी तौर पर अपमानित समझा अत: उन्होंने बलराम की शक्ति को चुनौती दे दी। वे केवल इतना चाहते थे कि बलराम अपनी अचिन्त्य शक्ति का प्रदर्शन करें। इस प्रकार अतीव प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने अपनी कन्या साम्ब को दे दी और सारा मामला तय हो गया। दुर्योधन अपनी पुत्री लक्ष्मणा को बहुत चाहता था अतएव उसने बड़ी धूमधाम के साथ उसका विवाह साम्ब के साथ कर दिया...कौरव पक्ष की ओर से अपने भव्य स्वागत के बाद बलराम अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये और वे नवविवाहित दम्पत्ति को साथ लेकर अपनी राजधानी द्वारका के लिए चल पड़े।

विजयी होकर बलराम द्वारका पहुँचे जहाँ उनकी भेंट अनेक नागरिकों से हुई। वे सभी उनके भक्त तथा मित्र थे। जब वे सब एकत्र हो गये तो बलराम ने विवाह की सारी कथा कह सुनाई। वे यह सुनकर चकित थे कि बलराम ने किस तरह हस्तिनापुर को कंपित कर दिया।''

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत 'साम्ब का विवाह' नामक अरसठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter उनहत्तर

नारद मुनि द्वारा द्वारका में भगवान् कृष्ण के महलों को देखना

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह नारद मुनि भगवान् कृष्ण की गृहस्थ लीलाओं को देखकर चकित हुए और किस तरह उन्होंने भगवान् की स्तुति की।

नरकासुर को मारने के बाद भगवान् कृष्ण ने एकसाथ सोलह हजार कुमारियों को ब्याहा और नारद मुनि ने भगवान् की इस अद्वितीय पारिवारिक स्थिति में उनके विविध कार्यकलापों का अवलोकन करना चाहा। अत: वे द्वारका गये। नारद मुनि सोलह हजार महलों में से एक में प्रविष्ट हुए और उन्होंने देखा कि स्वयं रुक्मिणीदेवी हजारों दासियों के होते हुए भी श्रीकृष्ण की सेवा स्वयं कर रही थीं। ज्योंही भगवान् कृष्ण ने नारद को देखा तो वे अपने बिस्तर से उठ खड़े हुए, उन्हें प्रणाम किया और तब उन्हें अपने आसन पर बैठाया। तब भगवान् ने नारद के पाँव पखारे और उस जल को अपने सिर के ऊपर छिड़का। भगवान् का आचरण इतना आदर्शात्मक था।

भगवान् से थोड़ी देर बातें करने के बाद नारद उनके एक अन्य महल में गये जहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण को उनकी रानी तथा उद्धव के साथ चौसर खेलते देखा। वहाँ से दूसरे महल में जाकर देखा कि भगवान् कृष्ण अपने छोटे से शिशुओं को दुलार रहे थे। जब वे एक अन्य महल में गये तो उन्हें स्नान के लिए जाते देखा, उससे आगे वाले में यज्ञ करते, फिर उससे भी आगे वाले में ब्राह्मणों को भोजन कराते और अन्य महल में ब्राह्मणों का जूठन खाते देखा। एक महल में भगवान् दोपहर का अनुष्ठान कर रहे थे, अन्य में गायत्री मंत्र का मौन जप कर रहे थे, अगले वाले महल में अपने बिस्तर पर सो रहे थे, उससे अगले वाले में अपने मंत्रियों से विचार-विमर्श कर रहे थे और उससे भी आगे वाले में वे सखियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहे थे। कहीं भगवान् ब्राह्मणों को दान दे रहे थे तो अन्य स्थान पर वे अपनी प्रेयसी से हँसी-मजाक कर रहे थे। कहीं और वे परमात्मा का ध्यान कर रहे थे तो कहीं वे अपने आध्यात्मिक गुरु की सेवा कर रहे थे। कहीं वे अपने पुत्र-पुत्रियों के विवाह की व्यवस्था कर रहे थे तो अन्य कहीं वे पशुओं का शिकार करने जा रहे थे। अन्यत्र वे वेश बदल कर यह पता लगा रहे थे कि नागरिक उनके बारे में क्या सोचते हैं।

यह सब देखकर नारद ने भगवान् कृष्ण से कहा, ''मैं आपकी योगमाया शक्ति की इन विविधताओं को, जिन्हें मोहग्रस्त सामान्य जीव अनुभव नहीं कर सकते, समझ सकता हूँ क्योंकि मैंने आपके चरणकमलों की सेवा की है। इस तरह मैं परम भाग्यशाली हूँ और मेरी यही इच्छा है कि समस्त लोकों को शुद्ध करने वाली आपकी लीलाओं की महिमा का तीनों लोकों में घूम कर कीर्तन करूँ।''

श्रीकृष्ण ने नारद से कहा कि आप भगवान् के दिव्य ऐश्वर्य को देखकर हैरान न हों और उन्होंने नारद से इस संसार में अपने प्राकट्य का उद्देश्य बतलाया। तत्पश्चात् धर्म के अनुसार मुनि का समुचित आदर किया और नारदजी भगवान् का निरंतर ध्यान करते हुए वहाँ से विदा हुए।

श्रीशुक उवाच
नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ।
कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥
चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ।
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥
इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ।
पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ॥
उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ।
छुरितेषु सरःसूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥
प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ।
महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥
विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः
शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ।
संसिक्तमार्गाङ्गनवीथिदेहलीं
पतत्पताकध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; नरकम्—नरकासुर को; निहतम्—मारा गया; श्रुत्वा—सुनकर; तथा—भी; उद्वाहम्—विवाह; च—तथा; योषिताम्—स्त्रियों के साथ; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; एकेन—एक; बह्वीनाम्—अनेकों के साथ; तत्—वह; दिदृक्षुः—देखना चाहते हुए; स्म—निस्सन्देह; नारदः—नारद; चित्रम्—अद्‌भुत; बत—हाय; एतत्—यह; एकेन—एकाकी; वपुषा—शरीर से; युगपत्—एकसाथ; पृथक्—भिन्न; गृहेषु—घरों में; द्वि—दो बार; अष्ट—आठ; साहस्रम्—हजार; स्त्रियः—स्त्रियाँ; एकः—अकेला; उदावहत्—विवाह कर लिया; इति—इस प्रकार; उत्सुकः—उत्सुक; द्वारवतीम्—द्वारका में; देव—देवताओं के; ऋषिः—मुनि, नारद; द्रष्टुम्—देखने के लिए; आगमत्—आये; पुष्पित—फूल खिला हुआ; उपवन—बागों में; आराम—तथा विहार उद्यानों; द्विज—पक्षियों; अलि—तथा भौंरों के; कुल—झुंडों के साथ; नादिताम्—ध्वनित; उत्फुल्ल—खिला हुआ; इन्दीवर—नीले कमल; अम्भोज—दिन में खिलने वाले कमल; कह्लार—सफेद कमल; कुमुद—चाँदनी रात में खिलने वाला कमल; उत्पलैः—जल की कुमुदिनियों से; छुरितेषु—पूरित; सरःसु—झीलों में; उच्चैः—जोर जोर; कूजिताम्—आवाज से पूरित; हंस—हंस; सारसैः—तथा सारसों से; प्रासाद—महलों; लक्षैः—लाखों; नवभिः—नौ; जुष्टाम्—अलंकृत; स्फाटिक—स्फटिक के; राजतैः—तथा चाँदी से बने; महा-मरकत—महान् मरकत मणियों से; प्रख्यैः—जगमगाते; स्वर्ण—सोने; रत्न—तथा रत्नों के; परिच्छदैः—सजावटों से; विभक्त—क्रम से विभाजित; रथ्या—मुख्य गलियों; पथ—सड़कों; चत्वर—चौराहों; आपणैः—तथा बाजार-स्थलों से; शाला-सभाभिः—घरों के समूह सहित; रुचिराम्—मनोहर; सुर—देवताओं के; आलयैः—मन्दिरों से; संसिक्त—जल से सींची; मार्ग—सड़कें; अङ्गन—आँगन; वीथि—व्यापारिक मार्ग; देहलीम्—तथा उपवन; पतत्—उड़ते हुए; पताक—झंडों से युक्त; ध्वज—झंडे के डंडों से (ध्वज दण्ड); वारित—दूर किये हुए; आतपाम्—सूर्य की गर्मी से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब नारदमुनि ने सुना कि भगवान् कृष्ण ने नरकासुर का वध कर दिया है और अकेले अनेक स्त्रियों के साथ विवाह कर लिया है, तो नारदमुनि के मन में

भगवान् को इस स्थिति में देखने की इच्छा हुई। उन्होंने सोचा, ''यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि एक ही शरीर में भगवान् ने एकसाथ सोलह हजार स्त्रियों से विवाह कर लिया और वह भी अलग अलग महलों में।'' इस तरह देवर्षि उत्सुकतापूर्वक द्वारका गये।

यह नगर बगीचों तथा उद्यानों से युक्त था जिसके आसपास पक्षियों तथा भौंरों की ध्वनि गुंजरित थी। इसके सरोवर खिले हुए इन्दीवर, अम्भोज, कह्लार, कुमुद तथा उत्पल से भरे हुए थे और हंसों तथा सारसों की बोलियों से गुंजायमान थे। द्वारका को नौ लाख राजमहलों के होने का गर्व था। ये सारे महल स्फटिक तथा चाँदी के बने थे और विशाल मरकत मणियों से जाज्वल्यमान थे। इन महलों के भीतर साज-सामान पर सोने तथा रत्नों की सजावट थी। यातायात के लिए व्यवस्थित गलियाँ, सड़कें, चौराहे तथा बाजार थे और इस मनोहर नगर में अनेक सभाभवन तथा देवमन्दिर शोभा को बढ़ाने वाले थे। सड़कें, आँगन, व्यापारिक मार्ग तथा घरों के आँगन जल से सींचे हुए थे और लट्ठों से लहरा रहे झंडों से सूर्य की गर्मी से छाया पा रहे थे।

तात्पर्य : लीला पुरुषोत्तम *भगवान् श्रीकृष्ण* में श्रील प्रभुपाद ने द्वारका नगरी का सुन्दर वर्णन इस प्रकार किया है : ''इस विषय में कि श्रीकृष्ण अनेक पत्नियों के साथ किस तरह गृहस्थी चला रहे हैं जिज्ञासा होने के कारण नारदजी को इन लीलाओं के दर्शन करने की इच्छा हुई। अतएव वे श्रीकृष्ण के विभिन्न घरों को देखने चल पड़े। जब नारद द्वारका पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वाटिकाएँ और उद्यान रंगबिरंगे फूलों से पूर्ण हैं और फलों की वाटिकाएँ अनेक प्रकार के फलों से लदी हुई हैं। सुन्दर पक्षी चहचहा रहे थे और मोर हर्ष से कुहक रहे थे। वहाँ ताल तथा सरोवर भी थे, जो रक्तकमलों तथा नीलकमलों से भरे थे और किसी किसी जगह पर नाना प्रकार की कुमुदिनियाँ खिली थीं। जलाशयों में सुन्दर हंस तथा सारस भरे हुए थे और उनकी ध्वनि चारों ओर गूँज रही थी। नगर में चाँदी से बने हुए द्वारों वाले, उच्च कोटि के संगमरमर से बने हुए नौ लाख विशाल महल थे। गृहों तथा महलों के स्तम्भ पारस पत्थर, नीलम तथा मरकत मणियों से सज्जित थे और फर्श से सुन्दर प्रभा चमकती थी। मुख्य पथ, गलियाँ, चौराहें तथा बाजार बहुत ही सुन्दर ढंग से सजाये गये थे। सम्पूर्ण नगर विविध प्रकार के शिल्प सौन्दर्य वाले गृहों, सभाभवनों तथा देवमन्दिरों से पूर्ण था। ये सब मिलकर द्वारका को देदीप्यमान

नगर बना रहे थे। प्रशस्त पथ, चौराहें, गलियाँ तथा मार्ग और प्रत्येक घर के आँगन अत्यन्त स्वच्छ थे। प्रत्येक मार्ग के दोनों ओर झाड़ियाँ तथा समान अन्तर पर बड़े बड़े वृक्ष थे, जो छाया प्रदान करते थे ताकि पथिकों को धूप से कष्ट न हो।''

तस्यामन्त:पुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ।
हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥ ७॥
तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलङ्कृतम् ।
विवेशैकतोमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उस (द्वारका) में; अन्त:-पुरम्—रनिवास; श्री-मत्—ऐश्वर्यवान; अर्चितम्—पूजित; सर्व—सभी; धिष्ण्य—विभिन्न लोकों के; पैः—पालकों द्वारा; हरेः—भगवान् हरि का; स्व—निजी; कौशलम्—कौशल; यत्र—जहाँ; त्वष्ट्रा—त्वष्टा (स्वर्ग के शिल्पी विश्वकर्मा); कार्त्स्न्येन—पूर्णतया; दर्शितम्—दिखलाया गया; तत्र—वहाँ; षोडशभिः—सोलह; सद्म—घरों द्वारा; सहस्रैः—हजार; समलङ्कृतम्—सुंदर बनाया हुआ; विवेश—(नारद) प्रविष्ट हुए; एकतमम्—उनमें से एक; शौरेः—भगवान् कृष्ण की; पत्नीनाम्—पत्नियों के; भवनम्—महल; महत्—विशाल।

द्वारका नगर में एक सुन्दर अन्त:पुर था, जो लोकपालों द्वारा पूजित था। यह प्रदेश, जहाँ विश्वकर्मा ने अपनी सारी दैवी निपुणता दिखलाई थी भगवान् हरि का रिहायशी क्षेत्र था अत: इसे भगवान् कृष्ण की रानियों के सोलह हजार महलों से खूब सजाया गया था। नारदमुनि इन्हीं विशाल महलों में से एक में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि त्वष्टा अर्थात् विश्वकर्मा ने भगवान् की निपुणता प्रदर्शित की अत: वह ऐसे सुन्दर महल बना सका। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: ''संसार के बड़े बड़े राजा तथा राजकुमार इन महलों को देखने के लिए (भगवान् कृष्ण की) पूजा करने आते थे। इसकी शिल्प योजना देवताओं के शिल्पी स्वयं विश्वकर्मा ने बनाई थी और इन महलों के निर्माण में उसने अपनी सारी प्रतिभा तथा कौशल का प्रदर्शन किया था।''

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः ।
इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाहतत्विषा ॥ ९॥
वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलम्बिभिः ।
दान्तैरासनपर्यङ्कैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ ॥
दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलङ्कृतम् ।
पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीष सुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११॥

रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्त-
ध्वान्तं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनोऽङ्ग ।
नृत्यन्ति यत्र विहितागुरुधूपमक्षै-
र्निर्यान्तमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

विष्टब्धम्—टिका; विद्रुम—मूँगे के; स्तम्भैः—ख भों द्वारा; वैदूर्य—वैदूर्य मणियों के; फलक—सजावटी आवरणों से युक्त; उत्तमैः—उत्कृष्ट; इन्द्रनील-मयैः—नीलम से सज्जित; कुड्यैः—दीवालों से; जगत्या—फर्श से; च—तथा; अहत—निरन्तर; त्विषा—तेज से; वितानैः—चँदोवों से; निर्मितैः—निर्मित; त्वष्ट्रा—विश्वकर्मा द्वारा; मुक्ता-दाम—मोतियों की लड़ियों से; विलम्बिभिः—लटकनों से; दान्तैः—हाथी दाँत के; आसन—आसनों से; पर्यङ्कैः—तथा पलँगों से; मणि—मणियों; उत्तम—अतीव सुन्दर; परिष्कृतैः—अलंकृत; दासीभिः—दासियों से; निष्क—गले का पेंडल, लॉकेट; कण्ठीभिः—जिनके कण्ठों में; सु-वासोभिः—सुन्दर वस्त्र पहने; अलङ्कृतम्—अलंकृत; पुम्भिः—मनुष्यों द्वारा; स-कञ्चुक—कवच पहने; उष्णीष—साफा; सु-वस्त्र—सुन्दर कपड़े; मणि—मणिजटित; कुण्डलैः—तथा कुण्डलों से; रत्न—रत्नजटित; प्रदीप—दीपकों के; निकर—समूह; द्युतिभिः—प्रकाश से; निरस्त—भगाया हुआ; ध्वान्तम्—अँधेरा; विचित्र—विविध प्रकार के; वलभीषु—छज्जों पर; शिखण्डिनः—मोर; अङ्ग—हे प्रिय (राजा परीक्षित); नृत्यन्ति—नाचते हैं; यत्र—जहाँ; विहित—रखे गये; अगुरु—अगुरु; धूपम्—धूप; अक्षैः—झरोखों से; निर्यान्तम्—बाहर जाती हुई; ईक्ष्य—देखकर; घन—बादल; बुद्धयः—समझते हुए; उन्नदन्तः—जोर से चिल्लाते, कूकते।

महल को साधने वाले मूँगे के ख भों में वैदूर्य मणि जड़े थे। दीवालों पर नीलम जड़े थे और फर्श स्थायी-चमक से चमक रहे थे। उस महल में त्वष्टा ने चँदोवे बनाये थे जिनसे मोती की लड़ें लटक रही थीं। आसन तथा पलँग हाथी के दाँत तथा बहुमूल्य रत्नों से बने हुए थे। उनकी सेवा में अनेक सुवस्त्राभूषित दासियाँ थीं जो अपने गलों में लॉकेट पहने थीं। साथ ही कवचधारी रक्षक थे, जो साफा, सुन्दर वर्दी तथा रत्नजटित कुण्डल पहने थे। अनेक रत्नजटित दीपों का प्रकाश महल के अंधकार को दूर करने वाला था। हे राजन्, महल के छज्जों पर जोर जोर से कुहक रहे मोर नाच रहे थे, जो जालीदार खिड़कियों के छेदों से निकल रहे सुगन्धित अगुरु को देखकर भ्रम से बादल समझ रहे थे।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''इतना अधिक सुगंधित धूप जलाया जा रहा था कि सुगंधित धुआँ खिड़कियों के बाहर आ रहा था। मयूरों को उस धुएँ से भ्रम हो गया जिससे वे उन्हें मेघ समझ कर हर्ष से नृत्य करने लगे थे। अनेक दासियों ने सोने के हार, चूड़ियाँ तथा सुन्दर साड़ियाँ पहन रखी थीं। अनेक दासों ने उत्तम कुर्ते, साफे तथा रत्नजटित कुण्डल पहन रखे थे। वे सभी दास-दासियाँ अत्यन्त सुन्दर थे और विभिन्न गृहकार्यों में संलग्न थे।''

तस्मिन्समानगुणरूपवयःसुवेष-
दासीसहस्रयुतयानुसवं गृहिण्या ।

विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्म-
दण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥ १ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उसमें; समान—बराबर; गुण—निजी गुण; रूप—सौन्दर्य; वयः—तारुण्य तथा सुन्दर वेशभूषा; सु-वेष—तथा सुंदर वस्त्र; दासी—दासियों द्वारा; सहस्र—एक हजार; युतया—युक्त; अनुसवम्—प्रतिक्षण; गृहिण्या—अपनी पत्नी समेत; विप्रः—विद्वान ब्राह्मण (नारद) ने; ददर्श—देखा; चमर—चमरी की पूँछ के; व्यजनेन—पंखे से; रुक्म—सोने के; दण्डेन—मूठ वाली; सात्वत-पतिम्—सात्वतों के स्वामी, श्रीकृष्ण; परिवीजयन्त्या—पंखा झलते हुए।

उस महल में विद्वान ब्राह्मण ने सात्वत पति श्रीकृष्ण को उनकी पत्नी के साथ देखा जो सोने की मूठ वाली चामर से पंखा झल रही थीं। वे इस तरह से स्वयं उनकी सेवा कर रही थीं यद्यपि उनकी सेवा में निरन्तर एक हजार दासियाँ लगी थीं जो अपने निजी चरित्र, सौन्दर्य, तारुण्य तथा सुन्दर वेशभूषा में उन्हीं के समान थीं।

तं सन्निरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितश्री-
पर्यङ्कतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ।
आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीट-
जुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (नारद को); सन्निरीक्ष्य—देखकर; भगवान्—भगवान्; सहसा—तुरन्त; उत्थित—उठ गये; श्री—लक्ष्मी, रानी रुक्मिणी के; पर्यङ्कतः—पलंग से; सकल—सारे; धर्म—धर्म के; भृताम्—धारण करने वाले; वरिष्ठः—श्रेष्ठ; आनम्य—झुककर; पाद-युगलम्—दोनों पैरों को; शिरसा—अपने सिर से; किरीट—मुकुट से; जुष्टेन—युक्त; स-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; अवीविशत्—बैठाया; आसने—आसन पर; स्वे—अपने, निजी।

भगवान् धर्म के सबसे बड़े धारक हैं। अतएव जब उन्होंने नारद को देखा तो वे तुरन्त श्री देवी के पलंग पर से उठ खड़े हुए, नारद के चरणों पर मुकुट युक्त सिर को नवाया और अपने हाथ जोड़कर मुनि को अपने आसन पर बिठाया।

तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना
बिभ्रज्जगद्गुरुतमोऽपि सतां पतिर्हि ।
ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं
तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; अवनिज्य—धोकर; चरणौ—पाँव; तत्—वह; अपः—जल; स्व—अपने; मूर्ध्ना—सिर पर; बिभ्रत्—लेते हुए; जगत्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के; गुरु-तमः—परम गुरु; अपि—यद्यपि; सताम्—सन्त भक्तों के; पतिः—स्वामी; हि—निस्सन्देह; ब्रह्मण्य—ब्राह्मणों का पक्ष लेने वाले; देवः—प्रभु; इति—इस प्रकार कहे गये; यत्—चूँकि; गुण—गुण; नाम—नाम; युक्तम्—उपयुक्त; तस्य—उसका; एव—निस्सन्देह; यत्—जिसके; चरण—चरणों का; शौचम्—धोना, प्रक्षालन; अशेष—पूर्ण; तीर्थम्—पवित्र स्थान।

भगवान् ने नारद के चरण पखारे और उस जल को अपने सिर पर धारण किया। यद्यपि भगवान् कृष्ण ब्रह्माण्ड के परम गुरु हैं तथा अपने भक्तों के स्वामी हैं किन्तु इस तरह से आचरण करना उनके लिए उपयुक्त था क्योंकि उनका नाम ब्रह्मण्यदेव है अर्थात् ''ब्राह्मणों का पक्ष लेने वाले भगवान्।'' इस तरह श्रीकृष्ण ने नारदमुनि के चरण पखार कर उनका सम्मान किया यद्यपि भगवान् के ही चरणों को धोने वाला जल गंगा बन जाता है, जोकि परम तीर्थ हैं।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् कृष्ण के चरणकमल सर्वाधिक पावन गंगा के उद्गम हैं अतएव नारदमुनि के चरण पखार कर भगवान् के लिए अपने आप को शुद्ध करना आवश्यक नहीं था। प्रत्युत, जैसाकि श्रील प्रभुपाद बतलाते हैं, ''द्वारका में भगवान् कृष्ण पूर्ण मानव की लीला का आनन्द ले रहे थे। अतएव जब उन्होंने नारदमुनि के चरणों को पखारकर उस जल को अपने सिर पर धारण किया, तो नारद ने आपत्ति नहीं की क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि भगवान् ने हर एक को यह शिक्षा देने के लिए ऐसा किया है कि किस तरह सन्त पुरुषों का आदर किया जाता है।''

सम्पूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो
नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ।
वाण्याभिभाष्य मितयामृतमिष्टया तं
प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सम्पूज्य—अच्छी तरह पूजा करके; देव—देवताओं में; ऋषि—ऋषि; वर्यम्—सर्वोच्च; ऋषिः—ऋषि; पुराणः—आदि; नारायणः—भगवान् नारायण; नर-सखः—नर के मित्र; विधिना—शास्त्र द्वारा; उदितेन—आदिष्ट; वाण्या—वाणी से; अभिभाष्य—कह कर; मितया—नपी-तुली; अमृत—अमृत से; मिष्टया—मधुर; तम्—उसे, नारद को; प्राह—सम्बोधित किया; प्रभो—हे स्वामी; भगवते—भगवान् के लिए; करवाम—हम कर सकते हैं; हे—ओ; किम्—क्या।

वैदिक आदेशों के अनुसार देवर्षि की समुचित पूजा करने के बाद, नर के मित्र आदि ऋषि नारायण, भगवान् कृष्ण, ने नारद से बातें कीं और भगवान् की नपी-तुली वाणी अमृत की तरह मधुर थी। अन्त में भगवान् ने नारद से पूछा, ''हे प्रभु एवं स्वामी, हम आपके लिए क्या कर सकते हैं?''

तात्पर्य : इस श्लोक में *नारायणो नरसखः* शब्द सूचित करते हैं कि कृष्ण साक्षात् नारायण हैं, जो ऋषि नर के मित्र रूप में प्रकट हुए थे। दूसरे शब्दों में, कृष्ण *ऋषि पुराणः* हैं अर्थात् आदि तथा परम गुरु हैं। फिर भी, वैदिक आदेशों का पालन करते हुए (*विधिनोदितेन*) कि क्षत्रिय को ब्राह्मणों की

पूजा करनी चाहिए। भगवान् कृष्ण ने हर्ष पूर्वक अपने शुद्ध भक्त नारद मुनि की पूजा की।

श्रीनारद उवाच
नैवाद्भुतं त्वयि विभोऽखिललोकनाथे
मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ।
निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां
स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—श्री नारद ने कहा; न—नहीं; एव—तनिक भी; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; त्वयि—आपके लिए; विभो—हे सर्वशक्तिमान; अखिल—समस्त; लोक—लोकों के; नाथे—शासक के लिए; मैत्री—मित्रता; जनेषु—लोगों में; सकलेषु—समस्त; दमः—दमन; खलानाम्—ईर्ष्यालुओं के; निःश्रेयसाय—सर्वोच्च लाभ के लिए; हि—निस्सन्देह; जगत्—ब्रह्माण्ड के; स्थिति—पालन; रक्षणाभ्याम्—तथा सुरक्षा द्वारा; स्वैर—स्वेच्छा से; अवतारः—अवतार; उरु-गाय—हे विश्ववन्द्य; विदाम—हम जानते हैं; सुष्ठु—भलीभाँति।

श्री नारद ने कहा : हे सर्वशक्तिमान, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि समस्त जगतों के शासक आप सारे लोगों से मित्रता प्रदर्शित करते हुए भी दुष्टों का दमन करते हैं। जैसा कि हम सभी लोग भलीभाँति जानते हैं आप इस ब्रह्माण्ड में इसके पालन तथा रक्षण के द्वारा परम लाभ प्रदान करने के लिए स्वेच्छा से अवतरित होते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं वस्तुत: सारे जीव भगवान् के दास हैं। उन्होंने व्याख्या के लिए *पद्म पुराण* का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

अकारेणोच्यते विष्णुः श्रीरुकारेण कथ्यते।

मकारस्तु तयोर्दासः पञ्चविंशः प्रकीर्तितः॥

“[ॐ मंत्र में] अ अक्षर भगवान् विष्णु का सूचक है और उ देवीश्री का तथा म उनके दास का सूचक है, जो पच्चीसवाँ तत्त्व है।” पच्चीसवाँ तत्त्व *जीव* है। प्रत्येक जीव ईश्वर का दास है और ईश्वर हर जीव के असली मित्र हैं। इस तरह जब भगवान्, जरासन्ध जैसे दुष्ट व्यक्तियों को दण्डित भी करते हैं, तो वह दण्ड एक तरह से मित्रता जैसा होता है क्योंकि भगवान् द्वारा दिया जाने वाला दण्ड तथा उनका आशीर्वाद दोनों ही जीव के लाभ हेतु हैं।

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्गं
ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं

ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥ १८॥

शब्दार्थ

दृष्टम्—देखे हुए; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रि—पैरों की; युगलम्—जोड़ी; जनता—अपने भक्तों के लिए; अपवर्गम्—मोक्ष का उद्गम; ब्रह्म-आदिभिः—ब्रह्मा जैसे व्यक्तियों के द्वारा; हृदि—हृदय में; विचिन्त्यम्—सोचते हुए; अगाध—अथाह; बोधैः—बुद्धि से; संसार—भौतिक जीवन रूपी; कूप—कुएँ में; पतित—गिरे हुओं के; उत्तरण—उद्धार के लिए; अवलम्बम्—शरण; ध्यायन्—निरन्तर सोचते हुए; चरामि—विचरण करता हूँ; अनुगृहाण—आशीर्वाद दें; यथा—जिससे; स्मृतिः—स्मरणशक्ति; स्यात्—हो।

अब मैंने आपके उन चरणों के दर्शन किये हैं, जो आपके भक्तों को मोक्ष प्रदान करते हैं तथा जिन्हें ब्रह्मा तथा अन्य अथाह बुद्धि वाले महापुरुष भी केवल अपने हृदयों में ध्यान कर सकते हैं किन्तु जो भवकूप में गिर चुके हैं, वे उद्धार हेतु जिनकी शरण ग्रहण करते हैं। आप मुझ पर कृपालु हों जिससे विचरण करते हुए मैं निरन्तर आपका स्मरण कर सकूँ। कृपा करके मुझे शक्ति दें कि मैं आपका स्मरण कर सकूँ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने नारद मुनि से पूछा था, "हम आपके लिए क्या कर सकते हैं?" और यहाँ नारद उत्तर दे रहे हैं। नारद मुनि भगवान् कृष्ण के शुद्ध भक्त हैं अतः उनकी प्रार्थना दिव्य है।

ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ।
योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया ॥ १९॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अन्यत्—दूसरे; आविशत्—प्रवेश किया; गेहम्—आवास में; कृष्ण-पत्न्याः—कृष्ण की पत्नी के; सः—वह; नारदः—नारदमुनि; योग-ईश्वर—योगेश्वरों के; ईश्वरस्य—ईश्वर के; अङ्ग—हे राजा; योग-माया—मोह की आध्यात्मिक शक्ति; विवित्सया—जानने की इच्छा से।

हे राजन्, तब नारद ने भगवान् कृष्ण की दूसरी पत्नी के महल में प्रवेश किया। वे योगेश्वरों के ईश्वर की आध्यात्मिक शक्ति देखने के लिए उत्सुक थे।

दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ।
पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २०॥
पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदायातो भवानिति ।
क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ २१॥
अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन्जन्मैतच्छोभनं कुरु ।
स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

दीव्यन्तम्—खेलते हुए; अक्षैः—चौसर से; तत्र—वहाँ; अपि—निस्सन्देह; प्रियया—अपनी प्रिया के साथ; च—तथा; उद्धवेन—उद्धव के साथ; च—भी; पूजितः—पूजित; परया—दिव्य; भक्त्या—भक्ति द्वारा; प्रत्युत्थान—अपने आसन से खड़े

होकर; आसन—आसन प्रदान करके; आदिभिः—इत्यादि से; पृष्टः—पूछा; च—तथा; अविदुषा—अज्ञानी द्वारा; इव—मानो; असौ—वह, नारद; कदा—कब; आयातः—आये हुए; भवान्—आप; इति—इस प्रकार; क्रियते—करने की इच्छा से; किम्—क्या; नु—निस्सन्देह; पूर्णानाम्—जो पूर्ण हैं उनके द्वारा; अपूर्णैः—जो पूर्ण नहीं हैं उनके द्वारा; अस्मत्-आदिभिः—हम जैसों के द्वारा; अथ अपि—तो भी; ब्रूहि—कृपा करके कहें; नः—हमसे; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; जन्म—हमारा जन्म; एतत्—यह; शोभनम्—शुभ; कुरु—कीजिये; सः—वह, नारद; तु—लेकिन; विस्मितः—चकित; उत्थाय—उठकर; तूष्णीम्—चुपचाप; अन्यत्—अन्यत्र; अगात्—चले गये; गृहम्—महल में।

वहाँ उन्होंने भगवान् को अपनी प्रिया तथा अपने मित्र उद्धव के साथ चौसर खेलते देखा। भगवान् कृष्ण ने खड़े होकर और उन्हें आसन देकर नारदजी की पूजा की और तब उनसे इस तरह पूछा मानो वे कुछ जानते ही न हों, ''आप कब आये? हम जैसे अपूर्ण व्यक्ति आप जैसे पूर्ण व्यक्तियों के लिए क्या कर सकते हैं? हे ब्राह्मण, जैसा भी हो, कृपा करके मेरे जीवन को शुभ बना दें।'' ऐसा कहे जाने पर नारद चकित हो गए। वे चुपचाप खड़े रहे और अन्य महल में चले गये।

तात्पर्य : *भगवान् श्रीकृष्ण* में श्रील प्रभुपाद बतलाते हैं कि जब नारद दूसरे महल में आये तो ''कृष्ण ने ऐसा अभिनय किया मानो रुक्मिणी के महल में जो कुछ हुआ था उसे वे जानते ही न हों।'' नारद समझ गये कि कृष्ण एक ही समय दोनों महलों में उपस्थित थे और विभिन्न कार्य कर रहे थे अतएव ''वे भगवान् के कार्यों पर अत्यधिक आश्चर्य करके चुपचाप उस महल से चलते बने।''

तत्राप्यचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुतान्शिशून् ।
ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अपि—और; अचष्ट—देखा; गोविन्दम्—भगवान् कृष्ण को; लालयन्तम्—दुलारते हुए; सुतान्—बच्चों को; शिशून्—छोटे; ततः—तब; अन्यस्मिन्—दूसरे; गृहे—महल में; अपश्यत्—देखा (कृष्ण को); मज्जनाय—स्नान करने के लिए; कृत-उद्यमम्—तैयारी करते हुए।

इस बार नारदजी ने देखा कि भगवान् कृष्ण अपने छोटे छोटे बच्चों को वत्सल पिता की तरह दुलार रहे थे। वहाँ से वे अन्य महल में गये और उन्होंने देखा कि भगवान् कृष्ण स्नान करने के लिए तैयारी कर रहे हैं।

तात्पर्य : उपर्युक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *भगवान् श्रीकृष्ण* से लिया गया है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती टीका करते हैं कि नारद प्राय: जितने महलों में गये भगवान् कृष्ण ने वहाँ वहाँ उनकी पूजा की और सम्मान प्रदान किया।

जुह्वन्तं च वितानाग्नीन्यजन्तं पञ्चभिर्मखैः ।
भोजयन्तं द्विजान्क्वापि भुञ्जानमवशेषितम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

जुह्वन्तम्—आहुति डालते; च—तथा; वितान-अग्नीन्—यज्ञ अग्नि में; यजन्तम्—पूजा करते हुए; पञ्चभिः—पाँच; मखैः—अनिवार्य अनुष्ठानों (यज्ञ) द्वारा; भोजयन्तम्—खिलाते हुए; द्विजान्—ब्राह्मणों को; क्व अपि—कहीं; भुञ्जानम्—खाते हुए; अवशेषितम्—उच्छिष्ट।

एक स्थान पर भगवान् यज्ञ-अग्नियों में आहुतियाँ डाल रहे थे, दूसरे में पाँच महायज्ञों द्वारा पूजा कर रहे थे, अन्यत्र वे ब्राह्मणों को भोजन करा रहे थे तो कहीं पर ब्राह्मणों के द्वारा छोड़े गए भोजन को खा रहे थे।

तात्पर्य : पंच महायज्ञों की परिभाषा इस प्रकार है *पाठो होमश्च चातिथीनां सपर्या तर्पणं बलिः—* वेद पाठ, यज्ञअग्नि में आहुति डालना, अतिथियों की सेवा, पूर्वजों को बलि देना तथा सामान्य जीवों को (अपने भोजन में से) एक भाग देना।"

श्रील प्रभुपाद ने इन यज्ञों के बारे में निम्नलिखित टीका की है : "अन्य महल में श्रीकृष्ण गृहस्थों के लिए आवश्यक पंचयज्ञ नामक यज्ञ करते हुए पाये गये। इस यज्ञ को पंचसूना के नाम से भी जाना जाता है। ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से प्रत्येक व्यक्ति, विशेष रूप से गृहस्थ, पाँच प्रकार के पापकर्म करता है। जब हम घड़े से जल लेते हैं, तो हम उसमें रहने वाले अनेक कीटाणुओं का वध करते हैं। उसी तरह जब हम चक्की चलाते हैं अथवा भोजन करते हैं, तो हम अनेक कीटाणुओं का वध करते हैं। झाड़ू लगाते समय अथवा आग जलाते समय भी हम अनेक कीटाणुओं का वध करते हैं। जब हम सड़क पर चलते हैं, तो हम अनेक चीटियों तथा अन्य कीड़ों-मकोड़ों का वध कर जाते हैं। चेतन अथवा अचेतन अवस्था में हम समस्त विभिन्न गतिविधियों में हत्या करते हैं। इसलिए इन पापकर्मों के फल से मुक्ति पाने के लिए पंचसूना यज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य है।"

इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पुनः इंगित करते हैं कि भगवान् कृष्ण के महलों में दिन के विभिन्न समय घटित हो रहे थे। नारद ने अग्नियज्ञ—प्रातःकालीन अनुष्ठान—कराते तथा लगभग उसी समय भगवान् कृष्ण को ब्राह्मणों को भोजन कराते तथा उनके उच्छिष्ट को ग्रहण करते देखा—जो दोपहर के कार्य हैं।

क्वापि सन्ध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम् ।

एकत्र चासिचर्माभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥ २५॥

शब्दार्थ

क्व अपि—कहीं; सन्ध्याम्—संध्याकालीन अनुष्ठान; उपासीनम्—पूजा करते; जपन्तम्—मौन होकर जप करते; ब्रह्म—वैदिक मंत्र (गायत्री); वाक्-यतम्—अपनी वाणी को संयत करते; एकत्र—एक स्थान में; च—तथा; असि—तलवार; चर्माभ्याम्—तथा ढाल को; चरन्तम्—चलाते; असि-वर्त्मसु—तलवार चलाने के अभ्यास हेतु नियत दालानों में।

कहीं पर भगवान् मौन रहकर तथा मन ही मन गायत्री मंत्र का जप करते हुए संध्याकालीन पूजा के लिए अनुष्ठान कर रहे थे तो कुछ स्थानों पर जो तलवार के अभ्यास के लिए नियत थे, वे तलवार-ढाल चला रहे थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार *सन्ध्याम् उपासीनम्* शब्द संध्याकालीन अनुष्ठान के सूचक हैं जबकि *असि-चर्माभ्याम् चरन्तम्* तलवार चलाने के अभ्यास के सूचक हैं जिसे अधिक सुबह किया जाता है।

अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम् ।
क्वचिच्छयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च वन्दिभिः ॥ २६॥

शब्दार्थ

अश्वैः—घोड़ों पर; गजैः—हाथियों पर; रथैः—रथों पर; क्व अपि—कहीं; विचरन्तम्—सवारी करते; गद-अग्रजम्—गद के बड़े भाई, कृष्ण को; क्वचित्—कहीं; शयानम्—लेटे हुए; पर्यङ्के—पलंग में; स्तूयमानम्—प्रशंसा किये जाते; च—तथा; वन्दिभिः—वन्दीजनों (भाटों) द्वारा।

एक स्थान पर भगवान् गदाग्रज घोड़ों, हाथियों तथा रथों पर सवारी कर रहे थे और दूसरे स्थान पर वे अपने पलंग पर लेटे थे तथा भाट उनकी महिमा का गायन कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि घोड़ों तथा हाथियों पर सवारी करना दोपहर का कार्य है, जबकि लेटना रात के दूसरे पहर का।

मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः ।
जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याबलावृतम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

मन्त्रयन्तम्—विचार-विमर्श करते; च—तथा; कस्मिंश्चित्—कहीं; मन्त्रि-भिः—मंत्रियों के साथ; च—तथा; उद्धव-आदिभिः—उद्धव तथा अन्य; जल—जल में; क्रीडा—खिलवाड़ में; रतम्—व्यस्त; क्व अपि—कहीं; वार-मुख्या—राजसी नृत्यांगनाओं द्वारा; अबला—तथा अन्य स्त्रियों के; वृतम्—साथ में।

कहीं वे उद्धव तथा अन्य राजमंत्रियों से सलाह-मशविरा कर रहे थे तो कहीं पर वे अनेक नृत्यांगनाओं तथा अन्य तरुणियों से घिरकर जल-क्रीड़ा कर रहे थे।

तात्पर्य : यह भावार्थ श्रील प्रभुपाद द्वारा रचित भगवान् श्रीकृष्ण पर आधारित है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार, भगवान् कृष्ण अपने मंत्रियों से संध्या के लगभग मिले और जल-क्रीड़ा की लीला दोपहर के बाद हुई।

कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलङ्कृताः ।
इतिहासपुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

कुत्रचित्—कहीं; द्विज—ब्राह्मणों को; मुख्येभ्यः—सर्वश्रेष्ठ; ददतम्—देते हुए; गाः—गौवें; सु—अच्छी तरह; अलङ्कृताः—आभूषित; इतिहास—प्राचीन इतिहास; पुराणानि—तथा पुराणों को; शृण्वन्तम्—सुनते हुए; मङ्गलानि—शुभ; च—तथा।

कहीं वे उत्तम ब्राह्मणों को भलीभाँति अलंकृत गौवें दान दे रहे थे और कहीं वे महाकाव्य के इतिहासों तथा पुराणों का शुभ वृत्तान्त सुन रहे थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि गौवों का दान प्रात:काल दिया जाता है, जबकि इतिहास श्रवण अपराह्न में सम्पन्न होता है।

हसन्तं हासकथया कदाचित्प्रियया गृहे ।
क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

हसन्तम्—हँसते हुए; हास-कथया—हँसी-मजाक के वार्तालाप से; कदाचित्—किसी समय; प्रियया—अपनी पत्नी से; गृहे—महल में; क्व अपि—कहीं; धर्मम्—धर्म का; सेवमानम्—अभ्यास करते हुए; अर्थ—आर्थिक विकास; कामौ—इन्द्रिय-तृप्ति; च—तथा; कुत्रचित्—कहीं।

कहीं पर भगवान् कृष्ण किसी एक पत्नी के साथ हास-परिहास करते देखे गये। कहीं और वे अपनी पत्नी समेत धार्मिक-अनुष्ठान के कृत्यों में व्यस्त पाये गये। कहीं कृष्ण आर्थिक विकास के मामलों में तो कहीं शास्त्रों के नियमानुसार गृहस्थ जीवन का भोग करते पाये गये।

तात्पर्य : उक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *भगवान् श्रीकृष्ण* पर आधारित है।

हँसी-मजाक रात के समय किया जाता है, जबकि धार्मिक अनुष्ठान, आर्थिक विकास का कार्य तथा गृहस्थ जीवन का भोग दिन तथा रात दोनों ही में चलता है।

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ।
शुश्रूषन्तं गुरून्क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥ ० ॥

शब्दार्थ

ध्यायन्तम्—ध्यान करते हुए; एकम्—एकाकी; आसीनम्—बैठे हुए; पुरुषम्—भगवान् को; प्रकृतेः—भौतिक प्रकृति का; परम्—दिव्य; शुश्रूषन्तम्—क्षुद्र सेवा करते हुए; गुरून्—अपने से बड़ों की; क्व अपि—कहीं; कामैः—इच्छित; भोगैः—भोग्य वस्तुओं से; सपर्यया—तथा पूजा से।

कहीं वे अकेले बैठे हुए भौतिक प्रकृति से परे भगवान् का ध्यान कर रहे थे और कहीं पर वे अपने से बड़ों को इच्छित वस्तुएँ देकर तथा उनकी आदरपूर्वक पूजा करके उनकी दासोचित सेवा कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : ''जैसाकि प्रामाणिक ग्रंथों में कहा गया है ध्यान भगवान् विष्णु पर चित्त को एकाग्र करने के लिए किया जाता है। भगवान् कृष्ण स्वयं ही आदि विष्णु हैं किन्तु एक मानव की भूमिका मे रहने के कारण अपने व्यक्तिगत व्यवहार द्वारा उन्होंने हमें निश्चित रूप से यह शिक्षा दी कि ध्यान का क्या अर्थ है।''

ध्यान का यह कार्य *ब्राह्म मुहूर्त* अर्थात् सूर्योदय के पूर्व भोर समय का सूचक है।

कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित्सन्धिं चान्यत्र केशवम् ।
कुत्रापि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

कुर्वन्तम्—करते हुए; विग्रहम्—युद्ध; कैश्चित्—किसी व्यक्ति से; सन्धिम्—मेल-जोल; च—तथा; अन्यत्र—और कहीं; केशवम्—भगवान् कृष्ण को; कुत्र अपि—कहीं; सह—साथ; रामेण—बलराम के; चिन्तयन्तम्—सोचते हुए; सताम्—साधुओं के; शिवम्—कल्याण हेतु।

एक स्थान पर वे अपने कुछ सलाहकारों के साथ विचार-विमर्श करके युद्धों की योजना बना रहे थे और अन्य स्थान पर वे शान्ति स्थापित कर रहे थे। कहीं पर केशव तथा बलराम मिलकर पवित्र लोगों के कल्याण के विषय में चिन्तन कर रहे थे।

पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् ।
दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

पुत्राणाम्—पुत्रों के; दुहितॄणाम्—पुत्रियों के; च—तथा; काले—उपयुक्त समय पर; विधि—धर्म के अनुसार; उपयापनम्—उन्हें विवाहित करके; दारैः—पत्नियों के साथ; वरैः—तथा पतियों के साथ; तत्—उनके; सदृशैः—अनुरूप; कल्पयन्तम्—व्यवस्था करते हुए; विभूतिभिः—ऐश्वर्य की दृष्टि से।

नारद ने देखा कि भगवान् कृष्ण अपने पुत्रों तथा पुत्रियों का उचित समय पर उपयुक्त पत्नियों तथा पतियों के साथ विवाह करा रहे हैं और ये विवाहोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हो

रहे हैं।

तात्पर्य : उक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *भगवान् श्रीकृष्ण* पर आधारित है।

यहाँ पर *काले* शब्द का अर्थ है कि जब भगवान् कृष्ण के पुत्र तथा पुत्रियाँ समुचित आयु की हो गईं तो उनके विवाह की व्यवस्था की गई।

प्रस्थापनोपनयनैरपत्यानां महोत्सवान् ।
वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥ ॥

शब्दार्थ

प्रस्थापन—विदा करके; उपनयनैः—अगवानी करके; अपत्यानाम्—अपनी सन्तानों के; महा—महान्; उत्सवान्—उछाह; वीक्ष्य—देखकर; योग-ईश्वर—योग के स्वामियों के; ईशस्य—परम प्रभु को; येषाम्—जिसके; लोकाः—लोग; विसिस्मिरे—विस्मित थे।

नारद ने देखा कि किस तरह समस्त योगेश्वरों के स्वामी श्रीकृष्ण ने अपनी पुत्रियों तथा दामादों की विदाई की तथा पुनः महोत्सवों के अवसरों पर उनका घर में स्वागत करने की व्यवस्था की। सारे नागरिक इन उत्सवों को देखकर विस्मित थे।

यजन्तं सकलान्देवान्क्वापि क्रतुभिरूर्जितैः ।
पूर्तयन्तं क्वचिद्धर्मं कूर्पाराममठादिभिः ॥ ४॥

शब्दार्थ

यजन्तम्—पूजा करते; सकलान्—समस्त; देवान्—देवताओं की; क्व अपि—कहीं; क्रतुभिः—यज्ञों से; ऊर्जितैः—पूरी तरह विकसित; पूर्तयन्तम्—लोकसेवा पूरी करते हुए; क्वचित्—कहीं; धर्मम्—धार्मिक बन्धन; कूर्प—कुओं से; आराम—जन उद्यान; मठ—मठ; आदिभिः—इत्यादि से।

कहीं पर वे विस्तृत यज्ञों द्वारा देवताओं को पूज रहे थे और कहीं वे जनकल्याण कार्य यथा कुएँ, जन उद्यान तथा मठ बनवाकर अपना धार्मिक कर्तव्य पूरा कर रहे थे।

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम् ।
घ्नन्तं तत्र पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुङ्गवैः ॥ ५॥

शब्दार्थ

चरन्तम्—विचरण करते; मृगयाम्—शिकार करने के लिए; क्व अपि—कहीं; हयम्—घोड़े पर; आरुह्य—सवार होकर; सैन्धवम्—सिन्धु देश के; घ्नन्तम्—वध करते हुए; तत्र—वहाँ; पशून्—पशुओं को; मेध्यान्—यज्ञ में बलि के योग्य; परीतम्—घिरकर; यदु-पुङ्गवैः—अत्यन्त वीर यदुओं से।

अन्य स्थान पर वे आखेट पर गये थे। वे अपने सिन्धी घोड़े पर सवार होकर तथा अत्यन्त वीर यदुओं के संग यज्ञ में बलि के निमित्त पशुओं का वध कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है, ''वैदिक नियमों के अनुसार क्षत्रियों को वन में शान्ति बनाये रखने के लिए अथवा यज्ञ में बलि देने के लिए कतिपय अवसरों पर निर्दिष्ट पशुओं का शिकार करने की अनुमति थी। क्षत्रियों को वध करने की इस कला का अभ्यास करने की छूट है क्योंकि उन्हें समाज में शान्ति बनाये रखने के लिए अपने शत्रुओं का निर्ममतापूर्वक वध करना होता है।''

अव्यक्तलिन्गं प्रकृतिष्वन्तःपुरगृहादिषु ।
क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अव्यक्त—गुप्त; लिङ्गम्—उनकी पहचान; प्रकृतिषु—अपने मंत्रियों में; अन्तः-पुर—रनिवास के; गृह-आदिषु—आवासों आदि में.; क्वचित्—कहीं; चरन्तम्—विचरण करते; योग-ईशम्—योगेश्वर को; तत्-तत्—उनमें से हर एक का; भाव—मनोभाव; बुभुत्सया—जानने की इच्छा से।.

कहीं योगेश्वर कृष्ण वेश बदलकर मंत्रियों तथा अन्य नागरिकों के घरों में यह जानने के लिए कि उनमें से हर कोई क्या सोच रहा है, इधर उधर घूम रहे थे।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् कृष्ण सर्वज्ञ हैं किन्तु राजा की भाँति लीला करते हुए कभी कभी वेश बदलकर अपने राज्य की आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए विचरण करते थे।

अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ।
योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात; उवाच—कहा; हृषीकेशम्—भगवान् कृष्ण से; नारदः—नारद ने; प्रहसन्—हँसते हुए; इव—थोड़ा थोड़ा; योग-माया—उनकी आध्यात्मिक मोहक शक्ति का; उदयम्—प्राकट्य; वीक्ष्य—देखकर; मानुषीम्—मनुष्य की; ईयुषः—धारण करने वाले; गतिम्—चाल-ढाल का।.

इस प्रकार भगवान् की योगमाया का यह दृश्य देखकर नारद मुसकाये और तब उन्होंने भगवान् हृषीकेश को सम्बोधित किया जो मनुष्य का आचरण कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार नारदमुनि भगवान् की सर्वज्ञता को पूरी तरह समझते थे अतः जब उन्होंने भगवान् को वेश बदलकर अपने मंत्रियों के भाव जानने का प्रयत्न करते देखा तो नारद अपनी हँसी रोक न सके। किन्तु भगवान् के परम पद का स्मरण करते हुए उन्होंने अपनी हँसी को कुछ कुछ रोक लिया।

विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ।
योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

विदाम—हम जानते हैं; योग-मायाः—योगशक्तियाँ; ते—तुम्हारी; दुर्दर्शाः—देख पाना असम्भव; अपि—होते हुए भी; मायिनाम्—महान् योगियों के लिए; योग-ईश्वर—हे योगेश्वर; आत्मन्—हे परमात्मा; निर्भाताः—अनुभूति हुई; भवत्—आपके; पाद—चरणों की; निषेवया—सेवा से।

[नारद ने कहा] : हे परमात्मा, हे योगेश्वर, अब हम आपकी योगशक्तियों को समझ सके हैं, जिन्हें बड़े बड़े योगी भी मुश्किल से समझ पाते हैं। एकमात्र आपके चरणों की सेवा करने से मैं आपकी शक्तियों का अनुभव कर सका हूँ।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार यह श्लोक इंगित करता है कि ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े बड़े योगी भी भगवान् की योगशक्ति को पूरी तरह समझ नहीं पाते।

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान् ।
पर्यटामि तवोद्गायन्लीला भुवनपावनीः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अनुजानीहि—मुझे जाने की आज्ञा दें, विदा करें; माम्—मुझको; देव—हे प्रभु; लोकान्—लोकों को; ते—तुम्हारे; यशसा—यश से; आप्लुतान्—आप्लावित परिपूर्ण; पर्यटामि—विचरण करूँगा; तव—तुम्हारी; उद्गायन्—जोर जोर से गाते हुए; लीलाः—लीलाएँ; भुवन—सारे लोकों को; पावनीः—पवित्र करने वाली।

हे प्रभु, मुझे जाने की आज्ञा दें। मैं उन लोकों में, जो आपके यश से आप्लावित हैं, ब्रह्माण्ड को पवित्र करने वाली आपकी लीलाओं का जोर जोर से गायन करते हुए विचरण करूँगा।

तात्पर्य : नारद मुनि तक भगवान् कृष्ण की मानव रूप में की जा रही आश्चर्यमयी लीलाओं को देखकर मोहित थे। अतएव वे *अनुजानीहि मां देव* शब्दों के द्वारा अपने पर्यटन तथा प्रचार के सामान्य कार्य में वापस जाने की अनुमति चाहते हैं। जो कुछ उन्होंने देखा था उससे प्रोत्साहित होकर वे भगवान् श्रीकृष्ण के यश का दूर दूर तक प्रचार करना चाह रहे थे।

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता ।
तच्छिक्षयन्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; धर्मस्य—धर्म का; वक्ता—उपदेशक; अहम्—मैं; कर्ता—करने वाला; तत्—उसका; अनुमोदिता—स्वीकृति देने वाला; तत्—वह; शिक्षयन्—शिक्षा देते हुए; लोकम्—संसार को; इमम्—इस; आस्थितः—स्थित; पुत्र—हे पुत्र; मा खिदः—क्षुब्ध न होना।

भगवान् ने कहा : हे ब्राह्मण, मैं धर्म का उपदेशक, उसका कर्ता तथा अनुमोदनकर्ता हूँ। हे पुत्र, मैं जगत को शिक्षा देने के लिए धर्म का पालन करता हूँ, अतएव तुम विक्षुब्ध मत होना।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण नारद के उस आकुलता को दूर करना चाहते थे जिसे उन्होंने भगवान् कृष्ण द्वारा देवताओं की तथा स्वयं की पूजा करते देखकर अनुभव किया था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कृष्ण के भावों की निम्नलिखित व्याख्या देते हैं ''जैसाकि मैंने *भगवद्गीता* में कहा है—*यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः*—महापुरुष जो भी करता है सामान्यजन उसी का अनुसरण करते हैं। इसीलिए मैंने धर्म के नियमों का विस्तार करने के लिए ही आज आपके चरण पखारे हैं। भूतकाल में, अभी मैंने धर्म के नियमों का सीधे उपदेश देने की लीला प्रारम्भ नहीं की थी कि तुमने मेरे द्वारा केशी असुर के मारे जाने पर मेरी स्तुति की थी, किन्तु मैं तुम्हारी विस्तृत स्तुतियों तथा यशोगान को केवल सुनता रहा और तुम्हारा सम्मान नहीं किया। इसे स्मरण करके केवल विचार करो।

तुम मेरे द्वारा आज अपने चरण पखारे जाने और चरणोदक को स्वीकार करने की अनुमति देने को अपराध न मानो? जिस तरह बालक अपने पिता की गोद में बैठे हुए अपने पाँव छुआकर पिता का अपमान नहीं करता उसी तरह, हे पुत्र! तुम भी समझो कि तुमने कोई अपराध नहीं किया।''

श्रीशुक उवाच
इत्याचरन्तं सद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम् ।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; **इति**—इस प्रकार; **आचरन्तम्**—करते हुए; **सत्**—आध्यात्मिक; **धर्मान्**—धर्म के नियमों को; **पावनान्**—पवित्र करने वाले; **गृह-मेधिनाम्**—गृहस्थियों के लिए; **तम्**—उसको; **एव**—निस्सन्देह; **सर्व**—सभी; **गेहेषु**—महलों में; **सन्तम्**—उपस्थित; **एकम्**—एक रूप में; **ददर्श ह**—देखा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार नारद ने हर महल में भगवान् को एक ही स्वरूप में, गृहकार्यों में व्यस्त रहने वालों को शुद्ध करने वाले दिव्य धार्मिक नियमों को सम्पन्न करते देखा।

तात्पर्य : इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी उसी को दुहराते हैं, जो स्वयं भगवान् ने बतलाया है। *भगवान् कृष्ण* में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''लोगों को यह शिक्षा देने के लिए कि किस प्रकार भौतिक जगत के बन्धनों से बद्ध होकर भी मनुष्य अपने गृहस्थ जीवन को पवित्र बना सकता है, भगवान्

तथाकथित गृहकार्यों में संलग्न थे। वास्तव में गृहस्थ जीवन के कारण ही मनुष्य इस संसार में जीवित रहने के लिए बाध्य है। किन्तु गृहस्थों पर अत्यन्त कृपालु होने के कारण भगवान् ने साधारण गृहस्थ जीवन को पवित्र करने वाला मार्ग प्रदर्शित किया। कृष्ण समस्त गतिविधियों के केन्द्र हैं अतएव कृष्णभावनाभावित गृहस्थ का जीवन वैदिक आदेशों से ऊपर है और स्वत: पवित्र बन जाता है।''

जैसाकि इस अध्याय के श्लोक २ में कहा गया है, भगवान् द्वारा अनेक महलों में एक ही आध्यात्मिक स्वरूप (*एकेन वपुषा*) द्वारा सारे कार्य सम्पन्न हो रहे थे, जो एक साथ अनेक स्थानों में दिख रहे थे। नारद को यह दृश्य इसलिए प्रकट कराया गया क्योंकि वे इसे देखना चाहते थे और भगवान् उन्हें दिखाना चाहते थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि द्वारका के अन्य वासी नगर के उसी भाग में कृष्ण को देख सकते थे जहाँ वे रह रहे थे, अन्य स्थानों पर नहीं, भले ही वे किसी काम से वहाँ गये हों। इस तरह भगवान् ने अपने प्रिय भक्त नारद मुनि को अपनी लीलाओं की विशेष झाँकी दिखलाई।

कृष्णस्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ।
मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुक: ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य—कृष्ण के; अनन्त—असीम; वीर्यस्य—पराक्रम को; योग-माया—ठगने वाली शक्ति की; महा—विस्तृत; उदयम्—अभिव्यक्ति; मुहु:—बारम्बार; दृष्ट्वा—देख लेने के बाद; ऋषि:—ऋषि, नारद; अभूत्—हो गये; विस्मित:—चकित; जातकौतुक:—आश्चर्यपूरित।

असीम शक्ति वाले भगवान् कृष्ण के विस्तृत योग प्रदर्शन को बारम्बार देख लेने के बाद ऋषि चकित एवं आश्चर्य से पूरित हो गये।

इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ।
सम्यक्सभाजित: प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अर्थ—आर्थिक विकास के लिए उपयोगी वस्तुओं से; काम—इन्द्रिय-तृप्ति के; धर्मेषु—तथा धर्म के; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; श्रद्धित—श्रद्धावान; आत्मना—हृदय वाला; सम्यक्—भलीभाँति; सभाजित:—सम्मानित; प्रीत:—प्रसन्न; तम्—उसको; एव—निस्सन्देह; अनुस्मरन्—सदैव स्मरण करते; ययौ—चले गए।

भगवान् कृष्ण ने नारद का अत्यधिक सम्मान किया और उन्हें श्रद्धापूर्वक आर्थिक समृद्धि, इन्द्रिय-तृप्ति तथा धार्मिक कर्तव्यों से सम्बन्धित उपहार भेंट किये। इस तरह ऋषि पूरी तरह तुष्ट

होकर अनवतर भगवान् का स्मरण करते हुए वहाँ से चले गये।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में इंगित किया है *अर्थकामधर्मेषु* वाक्यांश सूचित करता है कि कृष्ण उस सामान्य गृहस्थ की तरह आचरण कर रहे थे, जो आर्थिक विकास, इन्द्रिय-तृप्ति तथा धार्मिक कार्यों में अत्यधिक रुचि रखता है। नारदमुनि भगवान् के उद्देश्य को समझ सके और वे श्रीकृष्ण के आदर्श आचरण से अतीव प्रसन्न हो गए। इस तरह शुद्ध कृष्णभावनामृत से परिबुद्ध होकर वे वहाँ से चले गये।

एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो
नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ।
रेमेऽग्ग षोडशसहस्रवराङ्गनानां
सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मनुष्य—मनुष्य के; पदवीम्—पथ को; अनुवर्तमानः—अनुसरण करते हुए; नारायणः—भगवान् नारायण; अखिल—हर एक के; भवाय—कल्याण हेतु; गृहीत—प्रकट करके; शक्तिः—शक्तियाँ; रेमे—रमण किया; अङ्ग—हे प्रिय (परीक्षित); षोडश—सोलह; सहस्र—हजार; वर—अति उत्तम; अङ्गनानाम्—स्त्रियों के; स-व्रीड—लजीली; सौहृद—तथा स्नेहमयी; निरीक्षण—चितवनों; हास—तथा हँसी से; जुष्टः—तुष्ट।

इस तरह भगवान् नारायण ने सभी जीवों के लाभ हेतु अपनी दैवी शक्तियों को प्रकट करके सामान्य मनुष्यों की चाल-ढाल का अनुकरण किया। हे राजन्, इस प्रकार उन्होंने अपनी उन सोलह हजार वरिष्ठ प्रेयसियों के साथ रमण किया जो अपनी लजीली स्नेहमयी चितवनों तथा मुसकान से भगवान् की सेवा करती थीं।

यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः
कर्माण्यनन्यविषयाणि हरीश्चकार ।
यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा
भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

यानि—जो; इह—इस संसार में; विश्व—ब्रह्माण्ड के; विलय—संहार; उद्भव—सृजन; वृत्ति—तथा पालन के; हेतुः—कारण, स्वरूप; कर्माणि—कर्म; अनन्य—अन्य किसी के नहीं; विषयाणि—कार्यक्रम; हरिः—भगवान् कृष्ण ने; चकार—सम्पन्न किया; यः—जो भी; तु—निस्सन्देह; अङ्ग—मेरे प्रिय राजा; गायति—उच्चारण करता है; शृणोति—सुनता है; अनुमोदते—अनुमोदन करता है; वा—अथवा; भक्तिः—भक्ति; भवेत्—उत्पन्न होती है; भगवति—भगवान् के प्रति; हि—निस्सन्देह; अपवर्ग—मोक्ष के; मार्गे—मार्ग में।

भगवान् हरि ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन तथा संहार के चरम कारण हैं। हे राजन्, जो भी

उनके द्वारा इस संसार में सम्पन्न अद्वितीय कार्यों के विषय में कीर्तन करता है, सुनता है या केवल प्रशंसा करता है, जिनका अनुकरण करना असम्भव है, वह अवश्य ही मोक्ष के प्रदाता भगवान् के प्रति भक्ति उत्पन्न कर लेगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *अनन्य विषयाणि* शब्द के अनेक अर्थ दिये हैं। यह शब्द सूचित करता है कि भगवान् ने द्वारका में ऐसे कार्य सम्पन्न किये जो उनके स्वांशों के लिए भी असामान्य थे, दूसरों का तो कहना ही क्या? अथवा इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि भगवान् ने ये कार्यकलाप अपने शुद्ध अनन्य भक्तों के हेतु सम्पन्न किये। कुछ भी हो, जो भी इन लीलाओं के विषय में सुनता-सुनाता है, वह अवश्य ही कृष्णभावनामृत में लग जाएगा जैसाकि श्रील प्रभुपाद लिखते हैं "निश्चय ही उसे मुक्ति पथ को पार करने में तथा भगवान् के चरणकमलों के अमृत का आस्वादन करने में आसानी होगी।" श्रील प्रभुपाद यह भी इंगित करते हैं कि *अनुमोदते* शब्द यहाँ पर इस बात का सूचक है कि जो "कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारक का अनुमोदन करता है" वह भी यहाँ पर उल्लिखित लाभ प्राप्त करेगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "नारद मुनि द्वारा द्वारका में भगवान् कृष्ण के महलों को देखना" नामक उनहत्तरवें अध्याय का श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Preliminary pages for bh. starts from here

Preliminary Page1

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

कृष्णद्वैपायन व्यास

कृत

श्रीमद्भागवतम्

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्लभीनाम् ॥ ६० ॥

— *भागवत* .४७.६०

श्रीमद्भागवतम्

(भगवत्-सन्देश)

दशम स्कन्ध

''परम पुरुषार्थ''

(भाग तीन—अध्याय ४५६९)

मूल संस्कृत पाठ, शब्दार्थ तथा विस्तृत तात्पर्य कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के शिष्यों द्वारा

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

श्रीमद्भागवतम् एवं सम्पादकीय बोर्ड

(संस्कृत से अंग्रेजी)

हृदयानन्द दास गोस्वामी

प्रोजेक्ट डायरेक्टर, अनुवादक, तात्पर्य लेखक एवं प्रधान संपादक

गोपीप्राणधन दास अधिकारी

अनुवादक, तात्पर्य लेखक एवं संस्कृत संपादक

द्रविड़ दास ब्रह्मचारी

अंग्रेजी संपादक

विषय-सूची

कृष्ण द्वारा द्वारका पुरी की स्थापना

अध्याय का सारांश

जरासन्ध द्वारा तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा को घेर लेना

कृष्ण द्वारा जरासन्ध की सेनाओं के विनाश का निश्चय किन्तु सम्प्रति उसे छोड़ देना

आकाश से दो दैवी रथों का उतरना

जरासन्ध से लड़ने के लिए कृष्ण, बलराम तथा छोटी–सी

सैनिक टुकड़ी का मथुरा से बाहर जाना

जरासन्ध द्वारा कृष्ण का अपमान तथा बलराम का ललकारा जाना

जरासन्ध द्वारा कृष्ण तथा बलराम पर आक्रमण

अविरत बाण वर्षा से कृष्ण द्वारा जरासन्ध की सेनाओं का विनाश

युद्ध–भूमि में भीषण नरसंहार

जरासन्ध को बन्दी बनाकर छोड़ा जाना

खिन्न होकर जरासन्ध का मगध लौटना

मथुरा में कृष्ण का वीरोचित सम्मान

जरासन्ध द्वारा मथुरा पर सत्रह बार आक्रमण और उसकी हार

कालयवन द्वारा मथुरा का घेरा जाना

कृष्ण द्वारा द्वारका का निर्माण

कृष्ण द्वारा प्रजा को द्वारका पहुँचाया जाना

अध्याय इक्यावन

मुचुकुन्द का उद्धार

अध्याय का सारांश

कृष्ण का निरस्त्र होकर मथुरा से बहिर्गमन

कृष्ण द्वारा कालयवन को पर्वत गुफा की ओर ले जाया जाना

मुचुकुन्द का कालयवन को अपनी दृष्टिपात से भस्म करना मुचुकुन्द की कथा

मुचुकुन्द का देवताओं से निद्रा का वरदान प्राप्त करना

मुचुकुन्द द्वारा कृष्ण सौन्दर्य निहारा जाना तथा उनसे अपनी कथा बतलाना

भगवान् कृष्ण द्वारा मुचुकुन्द को अपनी महिमा बतलाना

कृष्ण द्वारा मुचुकुन्द को मनचाहा वरदान देना

मुचुकुन्द का भौतिक जीवन में अपनी दशा पर शोक व्यक्त किया जाना

मुचुकुन्द को राजपद अस्वीकार होना

मुचुकुन्द द्वारा कृष्ण के चरणकमलों की सेवा का वर माँगा जाना

कृष्ण द्वारा मुचुकुन्द को शुद्ध–भक्ति का आशीर्वाद देना

अध्याय बावन

भगवान् कृष्ण के लिए रुक्मिणी–सन्देश

अध्याय का सारांश

मुचुकुन्द का बदरिकाश्रम जाकर भगवान् की पूजा के लिए घोर तपस्या करना